संवर्ग–1 : स्व–प्रबन्धन की प्रस्तावना एवं जीवन वृत्ति विकास

इकाई–1 : स्व–प्रबन्धन की अवधारणा, स्व–प्रबन्धन का आधार, अर्थ, प्रकृति एवं आवश्यकता

संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 स्व–प्रबन्धन

1.2.1 स्व–प्रबन्धन की आवश्यकता

1.3 स्व–प्रबन्धन का आधार

1.3.1 मानव संसाधन आन्दोलन

1.3.2 मानवतावादी मनोविज्ञान

1.3.3 मानवतावादी सिद्धान्त

1.3.4 मानवतावादी सिद्धान्त की समीक्षा

1.4 स्व–प्रबन्धन की अवधारणाएँ

1.4.1 स्व

1.4.2 मानव स्वभाव

1.4.3 मानव क्षमता

1.4.4 प्रबन्धन

1.5 स्व–प्रबन्धन का अर्थ

1.5.1 स्व–प्रबन्धन का स्वरूप

1.5.2 स्व–प्रबन्धन का पहलू

1.6 स्व–प्रबन्धन और जीवन विज्ञान

1.6.1 स्व–प्रबन्धन के सूत्र

1.7 सारांश

1.8 प्रश्नावली

1.9 संदर्भ ग्रंथ

1.0 प्रस्तावना

एक बार प्रबन्ध विशेषज्ञ पीटर फ्रगल भारत आये थे। उनसे पूछा कि भारत के बारे मे आपका क्या चिंतन है। उन्होंने कहा—भारत सांस्कृतिक विरासत से समृद्ध देश है। यह अविकसित (under-developed) नही किंतु अप्रबंधित (under managed) है। संसाधनों के कुशल प्रबंधन के अभाव मे परिणाम अनुत्पादक (counter-productive) होते हैं। यही स्थिति व्यक्ति के जीवन मे भी लागू होती है। स्वयं की क्षमताओ से अपरिचय एवं कुशल नियोजन के अभाव में व्यक्ति सफलताओं के सोपानों का आरोहण नही कर सकता। अत: इस पत्र में 'स्व–प्रबंधन' विषय पर विभिन्न पाठों के माध्यम से आपको जानकारी दी जाएगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जीवन की दो धाराएं हैं—अध्यात्मवादी एवं भौतिकवादी। जीवन की यात्रा का निर्वाह कोरे अध्यात्मवाद से संभव नहीं। जीवन में शांति एवं समाधि कोरे पदार्थवाद से संभव नहीं। जीवन की यात्रा के निर्वाह के लिए पदार्थ आवश्यक है और जीवन में शांति एवं समाधि के लिए अध्यात्म आवश्यक है। केवल एक धारा से, एकांतिक दृष्टिकोण से जीवन कभी सफल नहीं हो सकता। सफलता का सूत्र है—अनेकान्त का दृष्टिकोण।

वैज्ञानिक युग में इस सत्य को अनेक प्रबुद्ध लोग अनुभव कर रहे हैं। इसी का परिणाम है कि अनेक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, पर्यावरणविज्ञ, चिकित्सक, समाजशास्त्री, शांति अन्वेषक आदि मनीषियों का रुझान अध्यात्म अन्वेषण की ओर झुका है। इन मनीषियों में अध्यात्म को अपने क्षेत्र से जोड़कर अपूर्णता को पूर्णता एवं एकांतिकता को समग्रता में बदलने की तीव्र अभिरूचि जागी है। इसका एक संकेत है—''भौतिक विज्ञान की सलाहकार समिति का परामर्श।'' घटना 1982 की है। अमेरिका की सरकार ने अपनी वैज्ञानिक सलाहकार समिति से परामर्श मांगा कि आने वाले सौ सालों में किस प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान की जरूरत होगी? आप हमें बताएं एवं उस दिशा में अभी से कार्य प्रारंभ करें।

वैज्ञानिक सलाहकार समिति ने सुझाव दिया—'आने वाले सौ साल में हमें चेतना के भौतिक विज्ञान (Physics of consciousness) की जरूरत होगी। मन और शरीर के अन्त: सम्बंधों की जानकारी की जरूरत होगी। इस दिशा में अविलम्ब कार्य प्रारंभ करें।

अध्यात्म के सिद्धान्तों की खोज, चेतना के नियमों की खोज आधुनिक विज्ञान से भी प्रारंभ हो रही है। यह केवल भौतिक विज्ञान की ही बात नहीं किंतु जीव-विज्ञान, पर्यावरण-विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों से चेतना, स्व, मानव स्वभाव, अध्यात्म आदि अवधारणाओं को गहनता से समझने की मांग तीव्र होती जा रही है।

1.1 उद्देश्य

स्व-प्रबन्धन के प्रस्तुत प्रकरण में आप जान पाएंगे कि–

1. स्व-प्रबन्धन की जीवन में क्या आवश्यकता है?
2. इसका आधुनिक आधार क्या है? अर्थात् इसका वर्तमान स्वरूप किस प्रकार विकास में आया?
3. स्व-प्रबन्धन के विभिन्न 'पदों/शब्दों' का संदर्भ क्या है?
4. स्व-प्रबन्धन का अर्थ एवं वर्तमान स्वरूप क्या है?
5. जीवन विज्ञान और स्व-प्रबन्धन का परस्पर क्या सम्बन्ध है?

1.2 स्व-प्रबंधन (Personal mangement)

अध्यात्म जीवन का एक अभिन्न पक्ष है। अध्यात्म के सिद्धान्त से रिक्त होकर जीवन का कोई भी क्षेत्र सन्तोषजनक प्रगति नहीं कर सकता। व्यक्ति का जीवन शान्त व समाधिमय नहीं हो सकता। जहां जीवन को अध्यात्म से काट कर देखा गया, वहां अनर्थ घटित हुआ है। दु:ख बढ़ा है, समस्याएं बढ़ी हैं। इसके समाधान हेतु अनेक प्रबुद्ध मनीषियों ने अपने-अपने विषयों में अध्यात्म का प्रवेश कैसे हो? कैसे उसके अधूरेपन को पूरा किया जाये? इस पर गंभीर चिंतन कर समाधान देने की कोशिश की है। इसका एक उदाहरण है आज के मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत स्व-प्रबन्धन (Personal management) कार्यक्रम।

स्व-प्रबन्धन की धुरी किसी दूसरे पर नहीं किंतु स्वयं पर आधारित है। स्व-प्रबन्धन का केन्द्र बिन्दु है—स्वयं के प्रति जागरूकता। हजारों वर्षों से अध्यात्म का सूत्र रहा है—स्वयं को जानो। स्वयं के प्रति जागरूक रहो। इसी सत्य की प्रतिध्वनि पुन: हमें विभिन्न आधुनिक विद्या शाखाओं से सुनने को मिल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रही है। यह स्थिति प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक धरोहर अध्यात्म की उभरती हुई तीव्र अपेक्षा को सूचित कर रही है। 'प्रबन्धन' शब्द विशेष रूप से औद्योगिक जगत् में प्रयुक्त किया जाता है। इसका सामान्यतया अर्थ यह है कि सीमित संसाधनों का लक्ष्य प्राप्ति के लिए अधिकतम उपयोग।

1.2.1 स्व-प्रबन्धन की आवश्यकता

आज के इस जटिल संसार में जीवित रहने के लिए स्व-प्रबन्धन कौशल अत्यन्त आवश्यक हो गया है। स्वयं की सुषुप्त क्षमताओं को पहचानने एवं दूसरों को भी पहचानने में सहायता करने के लिए उच्च कोटि की जागरूकता एवं सुविकसित स्व-प्रबन्धन कौशल की आवश्यकता है। वर्तमान युग में प्रबंधकों के लिए सर्वांगीण विकास के साथ स्वयं एवं दूसरे साथियों को सुनियोजित करने की कला प्रबन्धन-रणनीति की एक औपचारिक आवश्यकता बन गई है। प्रभावशाली स्व-प्रबन्धन आज उन सबकी एक अनिवार्य आवश्यकता है जो जीवन में अपनी क्षमता का अधिकतम उपयोग करना चाहते हैं, संगठन का सफल प्रबन्धन करना चाहते हैं, जीवन की समस्याओं का सटीक समाधान पाना चाहते हैं या परिवार का परिपूर्ण दायित्व निभाना चाहते हैं।

वस्तुत: स्व-प्रबन्धन जीवन की लगाम अपने हाथ में लेने तथा साथियों के साथ सौहार्दपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण सम्बन्धों की अभिवृद्धि करने में व्यक्ति की सहायता करता है। यह विद्या स्वयं के बारे में अधिक से अधिक जानकारी को एक जगह केन्द्रित कर व्यक्ति को स्वयं की क्षमताओं के प्रति जागरूक बनाता है। यह भी दर्शाता है कि स्वयं व्यक्ति में वह क्षमता निहित है जिसके द्वारा वह अपनी सुषुप्त क्षमताओं को जागृत कर उनको परिपूर्ण बना सकता है। संक्षेप में स्व-प्रबन्धन वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में सफलता का दस्तावेज है। इसे केवल सफलता या उपलब्धि तक सीमिति करना बहुत छोटी बात होगी। यह उससे भी आगे की बात करता है। अनेक व्यक्ति कुछ छोटी-मोटी उपलब्धि के बाद अपने आपको चौराहे पर खड़ा पाते हैं एवं विचार करने लग जाते हैं कि अब आगे क्या करें? स्व-प्रबन्धन वह साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने ही दायरे में रहते हुए अपनी दृष्टि से सार्थक जीवन जीते हुए आने वाली अनेक चुनौतियों का साहस के साथ सामना कर सकता है। स्व-प्रबन्धन को यदि सम्पूर्ण जीवन के संदर्भ में देखें तो यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति अपने आंतरिक जगत्—इच्छाओं, कामनाओं, कल्पनाओं, विचारों, भावनाओं तथा बाह्य जगत् के सम्बन्धों, आजीविका के साधनों एवं सामाजिक जीवन के सम्पर्कों के साथ कैसे तालमेल एवं सामंजस्य स्थापित करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आदि का ज्ञान इस प्रबन्धन विषय के द्वारा हो सकता है।

स्व-प्रबन्धन में आये हुए सैद्धान्तिक सुझाव एवं व्यावहारिक प्रयोग अनेक वर्षों के अनुभवों का परिणाम है। इन प्रयोगों को ऋषि, मुनि एवं योगियों ने हजारों वर्षों से उपयोग में लिया तथा आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने अनेक लोगों के जीवन स्तर को समुन्नत, सफल व संतोष से परिपूर्ण करने के लिए काम में लिया है। जन सामान्य एवं विशेषकर विद्यार्थी वर्ग अपने विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति में भी इन्हें उपयोगी पायेंगे। उदाहरण के लिए विद्यार्थी को अपनी अभिव्यक्ति क्षमता बढ़ाने, केरियर (आजीविका क्षेत्र) का चयन करने एवं लोगों से काम लेने की कला को विकसित करने की जरूरत पड़ सकती है। ऐसे अवसरों पर 'स्व-प्रबंधन' से विद्यार्थी वर्ग को अच्छी सहायता मिल सकती है। यह उनकी जरूरतों, उनकी क्षमताओं, उनके विकास के साधनों की समझ को बढ़ाएगा। साथ ही विकास के अवसरों के प्रति जागरूक बनाते हुए यह भी दर्शाएगा कि स्वयं को नियोजित करने एवं दूसरों के साथ अच्छे सम्बन्धों को बढ़ाने में किन-किन दक्षताओं व प्रयोगों की अपेक्षा होगी।

उपरोक्त विवेचन से स्व-प्रबन्धन की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं में बांट सकते हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. सफलता के लिए
2. स्वयं के व्यक्तित्व निर्माण के लिए
3. लक्ष्य निर्माण के लिए
4. स्वयं की पहचान के लिए
5. दूसरों के व्यक्तित्व विकास में सहायक बनने के लिए

1.3 स्व-प्रबन्धन का आधार

वर्तमान में प्रचलित स्व-प्रबंधन के कार्यक्रमों को आध्यात्मिक साधना का आधुनिकतम संस्करण कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व और उसके महत्त्व को समझकर उसके सर्वतोमुखी एवं सम्पूर्ण विकास का प्रयत्न होता रहा है। आत्मा पर पूर्वार्जित कर्म एवं परिस्थिति के प्रभाव को भी स्वीकार किया गया है। इसके बावजूद भी इस सिद्धान्त को सर्वत्र भारतीय दर्शनों में स्वीकार किया गया है कि आत्मा में वह क्षमता या शक्ति है कि वह कर्म और परिस्थिति के प्रभावों पर विजय प्राप्त करके अपना सम्पूर्ण विकास कर सकती है। यही सिद्धान्त आत्मा के सम्पूर्ण विकास का आधार है। भारतीय संस्कृति में आत्मा का सम्पूर्ण विकास ही सर्वोच्च लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जितने भी मार्ग या साधन हैं वे सभी अध्यात्म के अंतर्गत समाहित हो जाते हैं। पाश्चात्य संस्कृति में स्व-प्रबंधन (Personal management) मनोविज्ञान का आधुनिकतम विकास है। यह विकास मानव संसाधन आंदोलन का परिणाम है।

1.3.1 मानव संसाधन आंदोलन

मानव संसाधन आन्दोलन का स्रोत अस्तित्ववादी दर्शन एवं मानवतावादी मनोविज्ञान है। यही स्व-प्रबंधन का भी आधार है। यह आन्दोलन सन् 1960 के आस-पास अमेरिका में प्रारंभ हुआ। मानव संसाधन आंदोलन उन सभी अभ्यास एवं प्रविधियों का उपयोग करता है जो मानव की सुषुप्त क्षमताओं एवं संसाधनों को जागृत करने में सहायक होती हैं। इसके परिणाम स्वरूप मानव अपनी कार्यक्षमता को विकसित एवं अनुभवों को समृद्ध कर सकता है।

इस दृष्टिकोण के अंतर्गत निम्नलिखित शाखाएं उभरकर आईं—

1. व्यक्तिगत वृद्धि और समृद्धि के लिए चिकित्सा अथवा उपचार
2. पारस्परिक सौहार्द एवं अभिव्यक्ति कौशल में संवेदनशीलता (मधुरता) का विकास
3. संतुष्टि

प्रारंभ में यह चिकित्सा मानसिक रूप से बेचैन व्यक्तियों के लिए शुरू हुई। बाद में यह उन सामान्य व्यक्तियों के लिए भी उपयोग में लायी जाने लगी जो अपने आपको अधिक प्रभावी, निष्पत्तिकारक (परिणामदायी) और प्रसन्न व्यक्ति बनना चाहते थे। मनोविज्ञान के क्षेत्र में पिछले कुछ दशकों में यह एक बड़ा परिवर्तन है। यह चिकित्सकों की परिधि (सीमा) से निकलकर आम व्यक्ति तक पहुंचा है जहां कुछ लोग समूह में इस बात की चर्चा करते हैं कि व्यक्ति स्वयं, स्वयं की सहायता कैसे करे?

1.3.2 मानवतावादी मनोविज्ञान

मानवतावादी मनोविज्ञान को मनोविज्ञान के इतिहास में तीसरी शक्ति कहा जाता है। इसका जन्म 1950 के आसपास हुआ। इसका विकास मनोविज्ञान में विशेष रूप से निराशावादी और नियतिवादी अवधारणाओं के विकल्प के रूप मे हुआ। फ्रायड के मनोगतिकी (Psychodynamic) के सिद्धान्त ने मानव मन के निषेध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ात्मक (निराशावादी) पक्ष को अधिक उभारा। इसी तरह वॉटसन के व्यवहारवादी मनोविज्ञान के सिद्धान्तों ने मानव को बाह्य परिस्थितियों का खिलौना मात्र साबित किया। इससे नियतिवादी अवधारणाओं को बल मिला। मानवतावादी मनोविज्ञान के प्रारूप के अनुसार मनुष्य मौलिक मनोवृत्तियों का दास मात्र नहीं है और न वह परिस्थितियों के हाथों में कठपुतली ही है। मनुष्य एक स्वतंत्र प्राणी है, स्वभावत: वह अच्छाई और दिव्य गुणों से भरा हुआ है। उसमें स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता है। वह अपनी आंतरिक क्षमताओं में वृद्धि और विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। सुधार के लिए मेहनत करता है। योजना बनाता है। जीवन को व्यवस्थित करता है जिससे अपनी क्षमताओं का अधिकतम विकास कर सके और अपने इच्छित लक्ष्य द्वारा आत्म संतुष्टि प्राप्त कर सके।

व्यवहार का अध्ययन मानवतावादी मनोवैज्ञानिक भी करते हैं। इस अध्ययन के अंतर्गत वे व्यक्ति के आंतरिक घटक तत्त्व, अंग और प्रक्रियाओं का अध्ययन नहीं करते किंतु वे मनुष्य जीवन के उन अनुभवों का अध्ययन करते हैं जिसे व्यक्ति अपने जीवन के दैनिक वातावरण में अनुभव करता है। इस प्रकार वे मानव व्यवहार का अध्ययन वातावरण एवं सम्पूर्ण जीवन के अनुभवों के संदर्भ में करते हैं। वे व्यवहारवादी मनोविज्ञान के ठीक विपरीत व्यक्ति के स्वयं के अनुभवों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जबकि व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन व्यक्ति के अपने अनुभवों से निरपेक्ष वस्तुनिष्ठ तरीके से करते हैं। ज्ञानवादी मनोवैज्ञानिक व्यवहार के कारणों को विभिन्न ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में खोजते हैं जबकि मानवतावादी मनोवैज्ञानिक इस बात में रूचि लेते हैं कि व्यक्ति आंतरिक ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं से क्या अन्तर्दृष्टि प्राप्त करता है और किस प्रकार के मूल्य उसमें विकसित होते हैं।

मानवतावादी प्रारूप अनुसंधान परक कम है, यह व्यवहार को समझने के लिए एक सिद्धान्त के रूप में विकसित नहीं हुआ, परन्तु यह एक तरीका है जिसका उद्देश्य सामान्य आदमी की सहायता करना है जिससे वह अपनी क्षमताओं के विकास एवं लक्ष्य प्राप्ति द्वारा जीवन को अधिक समृद्ध और संतोषजनक रूप से जी सकें। इस दृष्टिकोण ने मनोविज्ञान के अंतर्गत एक नये वर्ग को जन्म दिया और विभिन्न प्रकार के स्व-विकास (Self development) के वर्ग 1960 और 70 के दशक में उभरकर के आये। इस वर्ग में तीन मुख्य योगदाता रहे हैं—कार्ल रोजर, रोलोमे और अब्राहम् मास्लो। रोजर ने स्व-विकास की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक वृद्धि और स्वास्थ्य की तरफ व्यक्ति की स्वाभाविक वृत्ति (Natural tendancy) और विधायक-स्वधारणा के महत्त्व पर बल दिया। रोलेमो प्रथम मनोवैज्ञानिक था जिसने व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में चिंता की प्रक्रिया पर व्यापक अन्वेषण किया। उसने अस्तित्ववादी दर्शन के अनेक पक्षों का इस नये मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ समन्वय स्थापित किया। अस्तित्ववादी दर्शन इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति स्वतंत्र निर्णय लेने और स्वतंत्र इच्छा शक्ति से सम्पन्न प्राणी है। जिसके पीछे कोई तर्क या उद्देश्य हो, यह जरूरी नहीं। मास्लो ने स्व-साक्षात्कार या स्व-अनुभूति की आवश्यकता को प्रतिपादित किया और स्वानुभूति सम्पन्न व्यक्तियों की विशिष्टताओं का अध्ययन किया।

मानवतावादी दृष्टिकोण मनोविज्ञान के क्षेत्र का विस्तार विज्ञान की परिधि से परे भी करता है। वह अपने में उन महत्त्वपूर्ण तथ्यों का समावेश करता है जो साहित्य, कला और इतिहास से उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार से मनोविज्ञान एक परिपूर्ण विद्याशाखा बन जाती है। वह अनुभवात्मक और प्रयोगात्मक पद्धति में संतुलन स्थापित करता है। यह एकीकरण दो विपरीत ध्रुवों विज्ञान और मानविकी के मिलन की आशा को जगाता है।

1.3.3 मानवतावादी सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को समग्र (Holistic), अवधारणात्मक (Dispositional), प्रक्रियात्मक (Phenomemological) और अस्तित्ववादी (Existential) कहा जाता है। यह सिद्धान्त मानव स्वभाव के प्रति निश्चित रूप से आशावादी दृष्टिकोण रखता है। यह सिद्धान्त समग्र है क्योंकि यह व्यक्ति के पृथक व्यवहार को उसके समग्र व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करता है। व्यक्ति को अलग-अलग गुणों के संग्रह के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रूप में नही देखा जाता जैसे कि किसी बर्तन में अलग-अलग मटर के दानों को रखा गया हो। इसके ठीक विपरीत बैलून के अन्दर विभिन्न हल्की गैसों—हिलियम आदि के मिश्रण के रूप मे देखा जाता है। यदि उस बैलून को खुला छोड़ दिया जाए तो वह प्राकृतिक बाधाओ को चीरकर आकाश मे उड़ जाता है।

मानवतावादी सिद्धान्त अवधारणात्मक है क्योंकि यह व्यवहार की दिशा के निर्धारण में मुख्य रूप से व्यक्ति के आंतरिक गुणों के प्रभाव पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत परिस्थितियों को बाधक तत्त्व के रूप में देखा जाता है। जैसा कि बैलून की डोर बैलून को हवा में उड़ने में बाधक बनता है। यदि व्यक्ति को निषेधात्मक एवं बाधक दशाओं से मुक्त किया जाए तो आत्म-साक्षात्कार की प्रवृत्ति व्यक्ति को जीवन में समृद्धि की ओर ले जाने वाली दशाओं के चुनाव के लिए सक्रिय रूप से मार्गदर्शन करेगी। इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि मानवतावादी सिद्धान्त गुण सिद्धान्त (Trait theories) की तरह पूर्व अवधारणात्मक नही है जो कि अपना ध्यान स्थिर विशेषताओं पर केन्द्रित करती है। दूसरी ओर यह मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की तरह भी नहीं है। जो कि अपना ध्यान बचपन के उन अनुभवों पर केन्द्रित करती है जो विकसित होकर बाधक तत्त्वों के रूप में जीवनपर्यन्त चलते हैं। मानवतावादी अवधारणात्मक सिद्धान्त व्यक्ति को एकमात्र आत्म-साक्षात्कार की प्रवृत्ति से भर देती है। जो कि अपनी स्वाभाविक अभिव्यक्ति एक स्वस्थ व्यक्तित्व के रूप में खोजती है।

यह सिद्धान्त प्रक्रियात्मक है क्योंकि यह व्यक्ति के दृष्टिकोण पर बल देता है अर्थात् इसमें व्यक्ति द्वारा सत्य को देखने की अपनी दृष्टि पर बल दिया जाता है, न कि दूसरों के वस्तुष्ठि निरीक्षण पर। यह दृष्टिकोण यहां और अब जैसा कि व्यक्ति के द्वारा वर्तमान को देखा गया है उस पर ध्यान केन्द्रित करता है। अतीत के अनुभव या प्रभाव मात्र इतना ही महत्त्व रखते हैं कि उन्होंने उसे वर्तमान में लाकर के छोड़ दिया।

मानवतावादी सिद्धान्त को रोलोमे (1975) ने अस्तित्ववादी दृष्टिकोण अपनाने वाले सिद्धान्त के रूप में व्याख्यायीत किया उनके अनुसार यह चेतना की उच्च मानसिक प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित करता है जो कि वर्तमान के अनुभव की व्याख्या करते हैं एवं व्यक्ति को प्रतिदिन की चुनौतियों से सामना करने में समर्थ बनाते हैं या उससे प्रभावित होते हैं। यह सिद्धान्त अपने आपमें अद्वितीय एवं विशिष्ट है। क्योंकि यह मानव की स्वतंत्रता पर बल देते हैं। यह विशेषता व्यवहारवादी और मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त से भिन्न है क्योंकि वे नियतिवादी हैं। व्यक्तित्व को समझने का मानवतावादी दृष्टिकोण की यह विशेषता हैं कि इसमें व्यक्तित्व की अखंडता एवं चेतन स्तर के वर्तमान अनुभव पर अत्यधिक बल दिया गया है एवं आंतरिक क्षमताओं में विकास पर ध्यान दिया गया है। मानवतावादी व्यक्तित्व सिद्धान्त के अग्रणी कार्ल रोजर एवं अब्राहम् मास्लो ने व्यक्ति की आत्म साक्षात्कार की मूल प्रवृत्ति पर बल दिया। उनके अनुसार यह प्रवृत्ति विभिन्न विपरित शक्तियो को संगठित करती है ओर उसकी अन्तर क्रिया व्यक्तित्व का सृजन करती है।

इस दृष्टिकोण के अंतर्गत, जैविक और सीखी हुई वृत्तियां स्वानुभूति आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य की तरफ विकसित और परिवर्तित होती रहती है और यही व्यक्ति के व्यवहार के लिए अभिप्रेरणा बनती है। आत्म-साक्षात्कार और अपनी अर्हताओं की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति की आन्तरिक अभीप्सा, संरचनात्मक और दिशादर्शन करने वाली वह शक्ति है जो व्यक्ति के अच्छे व्यवहार और जीवन की समृद्धि को पुष्ट करती है।

1.3.4 मानवतावादी सिद्धान्त की समीक्षा

मानव के दिव्य स्वरूप को प्रगट करने वाले इस सिद्धान्त की आलोचना करना कठिन है। अपनी क्षमताओं के विकास और वृद्धि की प्रेरणा के महत्त्व से किसे आपत्ति हो सकती है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों को इस बात से आपत्ति है कि मानवतावादी सिद्धान्त अस्पष्ट है, उसकी कोई स्पष्ट परिभाषा नही है। आत्म-बोध का वास्तविक अर्थ क्या है? क्या यह जन्मजात प्रवृत्ति है या संस्कृति द्वारा निर्मित। मानवतावादी सिद्धान्त मनुष्य की विभिन्न विशेषताओं की भिन्नता का कारण बताने में असमर्थ है। अत: यह विभिन्नताओं को समझाने का सिद्धान्त नही है बल्कि मानवतावादी सिद्धान्त मानव के स्वभाव और सामान्य गुणों का सिद्धान्त है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि यह सिद्धान्त जिस सामान्य स्तर पर व्यक्ति का विश्लेषण करता है वह मनोविज्ञान के अनुसंधानात्मक मूल्य को कम करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि आचरण और अनुभव के पीछे कारण (स्रोत) के रूप में स्व की भूमिका पर विशेष बल देना यह दर्शाता है कि मानवतावादी मनोवैज्ञानिक आचरण (व्यवहार) को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण वातावरणगत कारकों को नजरअन्दाज करते है।

मनोविश्लेषणात्मक मनोवैज्ञानिक चेतन स्तर के वर्तमान अनुभवों पर अत्यधिक बल देने की मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों की प्रवृत्ति की आलोचना करते हैं। इस दृष्टिकोण में अचेतन स्तर की शक्ति की उपेक्षा की गई है। अचेतन स्तर में रहे हुए अन्तर्द्वंद्व और उनसे निपटने के लिए आत्मरक्षा की प्रणाली की व्याख्या सही तरीके से केवल चेतन स्तर की प्रक्रिया के आधार पर नहीं की जा सकती है।

इस सिद्धान्त की अन्य आलोचनाएं इस प्रकार हैं—

1. यह व्यक्तित्व विकास के पक्ष एवं व्यक्ति के अपने इतिहास और उसके जीवन पर प्रभाव की उपेक्षा करती है।

2. यह व्यक्तित्व सिद्धान्त की जटिलताओं को अति सामान्यीकरण करती है और केवल आत्म-साक्षात्कार की प्रवृत्ति पर आधारित कर देती है।

3. यह सिद्धान्त यह बताने में असमर्थ है कि किसी विशेष परिस्थिति में व्यक्ति का व्यवहार क्या होगा?

4. यह सिद्धान्त एक 'स्व' की परिकल्पना को प्रस्तुत करता है जो स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। अनुसंधाता के लिए यह बात विश्वसनीय नहीं लगती।

बोध प्रश्न 1:

---

1. स्व-प्रबन्धन क्या है?
2. जीवन में स्व-प्रबन्धन की आवश्यकता को बताइए।
3. मानवतावादी सिद्धान्त की समीक्षा किजिए।

1.4 स्व-प्रबन्धन की अवधारणाएं

स्व-प्रबन्धन को समझने के लिए कुछ शब्दों के अर्थों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है, जैसे—स्व, मानव स्वभाव, मानव क्षमताएं, प्रबन्धन, स्व-प्रबन्धन आदि।

1.4.1 स्व

अध्यात्म के क्षेत्र में स्व का अर्थ जीव, आत्मा, पुरुष जैसे पदों से लिया जाता है। मानव आत्मा या पुरुष शब्द से उसके साथ नित्यता और पुनर्जन्म की बात भी बराबर जुड़ी हुई है। पुनर्जन्म का हेतु कर्म एवं तृष्णा को माना गया है। कर्म नाश या तृष्णा क्षय की साधना ही अध्यात्म का चरम लक्ष्य है। इससे आत्मा अपने पूर्ण विकास पर जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर स्व-स्वरूप में स्थित हो जाती है। स्व-प्रबन्धन में 'स्व' का सम्बन्ध आत्मा या मानवात्मा जैसे पदो से नहीं है और न ही त्रैकालिक नित्यता से ही इसका कोई सम्बन्ध है। स्व-प्रबन्धन का सम्बन्ध वर्तमान जीवन में असफलता एवं अशान्ति जैसी समस्याओं से जुड़ा हुआ है। असफलता एवं अशान्ति का मूल कारण दोनों ही क्षेत्रों में स्वयं के प्रति अज्ञान एवं तृष्णा या अनियंत्रित इच्छाओं को माना गया है। अध्यात्म के क्षेत्र में तृष्णाओं का संयम करते हुए तृष्णाओं का क्षय अभीष्ट है। स्व-प्रबन्धन के क्षेत्र में भी स्व-बोध के साथ तृष्णा या इच्छाओं को समझकर अनावश्यक इच्छाओं को छोड़ने या कम से कम स्थगित करने एवं प्राथमिकताओं के निर्धारण पर बल दिया जाता है। **यहां पर** 'स्व' से तात्पर्य स्वयं की इच्छाओं, कामनाओं, भावनाओं, वासनाओं, अनुभूतियों, योग्यताओं, अक्षमताओं, आदि के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समुच्चय से है। 'स्व' की विशिष्टताओं को समझने के लिए 'मानव आत्मा' जैसे पदों पर बल न देकर 'मानव-स्वभाव' को समझने पर बल दिया गया है।

1.4.2 मानव-स्वभाव

मानव का स्वभाव क्या है? क्या मानव का स्वभाव भगवान् महावीर या महात्मा बुद्ध की तरह करुणामय और कल्याणकारी है या पशु के समान स्वार्थी और दूसरों को पीड़ा देने वाला है? क्या समाज मानव की बुरी वृत्तियों पर नियंत्रण करता है या अच्छाइयों को विकृत करता है? मनोविज्ञान का यह मूलभूत प्रश्न है कि मानव का स्वभाव क्या है? मानव क्या कर सकता है? क्या है? और क्या बन सकता है? मानव पर समाज का प्रभाव लाभदायक है या हानिकारक? क्या मानव अतीत से प्रतिबद्ध है या समाज के प्रतिबन्धों से नियंत्रित है?

मानव स्वभाव एक पहेली है, रहस्य है। इसका उत्तर एकांगी दृष्टिकोण से नही दिया जा सकता। इसके लिए हमें अनेकान्त दृष्टि से विचार करना होगा। कुछ चिंतकों (दार्शनिक थोमस् होप्स) का विचार है कि मनुष्य गलती नहीं करता बल्कि वह स्वभाव से ही बुरा है। प्रबल नियंत्रक शक्ति के अभाव में उसका काम ही है दूसरो को पीड़ा पहुंचाना और विनाशकारी कार्यों में भाग लेना है। यदि मानव-स्वभाव मूलभूत रूप से बुरा है तो प्राय: वह अच्छा कैसे कर लेता है? दूसरे का भला, नि:स्वार्थ सहयोग व सर्वहितकारी कार्य कैसे कर लेता है? उन चिंतकों का मानना है कि यद्यपि मानव स्वभावत: अपनी मौलिक वृत्तियों, संज्ञाओं और कामनाओं से प्रेरित होते हैं पर वे सम्यक् शिक्षा के द्वारा दायित्वशील और कानून का सम्मान करने वाले अनुशासित नागरिक बन जाते हैं। सुदृढ़ और प्रभावी अधिकारी मानव व्यवहार को नियंत्रित करने में समर्थ हो जाते हैं।

इसके ठीक विपरीत दृष्टिकोण यह है कि मानव स्वभावत: अच्छा है किंतु सामाजिक वातावरण, बाह्य-परिवेश व वातावरण के कारण वह विकृत बन जाता है। मानव स्वभाव के ये दो पक्ष उभरकर सामने आते हैं। अनेकान्त दृष्टि से विचार करें तो मानव में अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के संस्कार होते हैं। वे संस्कार बाह्य-वातावरण के अनुरूप विकसित भी हो सकते हैं और विकृत भी। बाह्य वातावरण के प्रभाव के बावजूद भी प्रत्येक मानव में स्वतंत्र निर्णय की यह क्षमता है कि वह संत बने या शैतान, परमार्थी बने या स्वार्थी, करुणाशील बने या क्रूर। मानव असीम अर्हताओं से सम्पन्न है। उसमें जन्म से ही सीखने, सामंजस्य स्थापित करने, समायोजन करने एवं निरंतर परिवर्तन की क्षमता है। वह नई संभावनाओं को खोजते हुए उसे योजनाबद्ध क्रियान्वित कर सकता है।

1.4.3 मानव क्षमता

मानव ने अपनी अद्भुत क्षमता से भौतिक वस्तुओं, प्रकृति और पशुओं को अपने नियंत्रण में किया। उसने अपने शासन का विस्तार पृथ्वी के ऊपर आकाश में और नीचे समुद्र तक कर लिया। यह अवस्था मानव ने नई चीजों को सीखने, पुरानी चीजों को याद रखने, तर्क, अनुसंधान और योजना बनाने की शक्ति के कारण प्राप्त की है। मानव की देखने, जानने और कार्य करने की क्षमता उसे असंख्य तरीकों से कष्ट को दूर करने, प्रसन्नता को प्राप्त करने और वातावरण को अपने अनुकूल बनाने में सक्षम बनाती है।

मानव में एक नही, अनेक अद्वितीय क्षमताएं हैं। उनका विकास साधक भी हो सकता है एवं बाधक भी। इन क्षमताओं का विकास किस दिशा में होगा, वह इस बात पर निर्भर है कि आंतरिक संस्कार या भाव जगत् की अन्त:क्रिया बाह्य जगत् के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश से किस प्रकार होगी। मानव शिशु जैसे-जैसे विकास करता है उसके सामने सांस्कृतिक व सामाजिक परिवेश कुछ अवसर उपलब्ध करवाता है। इससे उसकी कुछ क्षमताओं की अभिव्यक्ति की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। मानव के अतीत के संस्कार बीज रूप में होते हैं, परिवेश खाद और पानी रूप में, जो विकास के लिए अवसर प्रदान करता है। संस्कार और परिवेश के परे मानव में एक अद्भुत तीसरी शक्ति है। वह तीसरी शक्ति है किसी भी क्षण परिवर्तन, संशोधन व परिष्कार करने की संकल्प शक्ति। फिर चाहे कैसा भी परिवेश या संस्कार हो। मानव क्षमताओं के साधक व बाधक विकास को निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्षमता	साधक	बाधक
1. स्मृति	अतीत की गलतियों से सीखना, धारणाओं (प्रत्यय) का विकास और उपयोग, वर्तमान को अतीत से जोड़ना, अतीत और वर्तमान के अनुभवों का भेद करना	अप्रिय स्मृतियों का प्रवाह। अतीत के अन्तर्द्वंद्व एवं दु:खद घटनाओं से पीड़ित होना। अतीत की प्रतिबद्धता के कारण सहज व्यवहार का न होना। अत्यधिक दु:खी एवं खोया-खोया रहना।
2. काल का अवबोध	इतिहास का विकास एवं स्व की निरंतरता का अनुभव। वर्तमान व्यवहार को भविष्य से जोड़ना, क्षणिक और नित्य का भेद करना।	भय, परिवर्तन एवं अनजान भविष्य का भय, अतीत में रहना, दोषी अनुभव करना, चिंता, इच्छाओं की अतृप्ति से निराशा, भूत-भविष्य पर ध्यान, वर्तमान की उपेक्षा।
3. कल्पनाशक्ति अनजान वस्तुओं के संयोग की क्षमता।	घटना के अनुभुति के बिना उसकी व्ल्पना करना एवं निर्माण करना, आंकड़ों का सामान्यीकरण करना, सिद्धान्त का निर्माण करना, परिकल्पना बनाना।	गलत संयोजन करना, अपने और दूसरों के बारे में गलत धारणा बनाना, आग्रही और भ्रान्त चिंतन विकसित करना।
4. अवसरों को देखने की क्षमता	प्रतिबद्धता से मुक्त स्वतंत्रता का भान, दायित्वबोध, आशा, भविष्य निर्माण की क्षमता	अन्तर्द्वंद्व और अनिर्णय का अनुभव, क्रियान्विति की समस्या से पीड़ा।
5. दायित्व और आत्मनिरीक्षण की क्षमता	उपलब्धि का गर्व, धैर्य, कठिन कार्य करने का साहस अपने कार्य का दूसरे पर प्रभाव के प्रति जागरूकता	अपूर्णता की अनुभूति, वर्तमान मानदण्डों के अनुरूप न जीने का अपराधबोध या दूसरों के प्रति अपराध का बोध, बाधाओं से बाधित अनुभव करना।
6. स्पर्धा की भावना	अच्छे ढंग से कार्य करना, उच्च मानदण्डों को स्थापित करना, कठोर श्रम से लाभ उठाना, तकनीकी क्षेत्र मे प्रगति करना, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों का उपयोग करना।	असफलता का भय, अपूर्णता की पीड़ा, योग्यता की परीक्षा की चिंता, श्रेष्ठता सिद्ध करना और पराजित करने के लिए प्रयत्न करते रहना।
7. भाषा और प्रतीकों के उपयोग की क्षमता।	सूचना, सुविधा, प्रसन्नता, योजना और सामाजिक नियंत्रण के लिए अपनी बात को दूसरों तक पहुंचाना।	अफवाह, मिथ्या धारणाओं को प्रसारित करना और उलझना, सच्ची बात को छिपाना, प्रतीक को ही सत्य मान लेना।
8. सामाजिक प्रमाण को मानना।	सामूहिक मानदण्डों का अनुकरण मूल्यों को सीखना और हस्तांतरित करना, सहयोग करना, समुदाय का निर्माण करना।	अन्धानुकरण, नवीनता का अस्वीकार, स्वयं में और दूसरों में सृजनात्मक शक्ति का ह्रास होना।
9. प्रेम, दया	करुणा की अनुभूति, दूसरों की स्वतंत्रता और वृद्धि को संपोषित करना, सहयोग देना, प्रोत्साहित करना, दूसरों को सुविधा प्रदान करना वांछित और विशिष्टता की अनुभुति करना।	ईर्ष्या, प्रतिशोध, दूसरों की स्वतंत्रता को सीमित करना, प्रेम और सहानुभूति के अभाव में अवसादग्रस्त और आत्महत्या की भावना आना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.4.4 प्रबन्धन

इस शब्द का उपयोग अधिकतर औद्योगिक जगत् में किया जाता है। इसका सामान्यतया अर्थ यह किया जाता है कि प्रबन्धन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सीमित संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जाता है। प्रबन्धन की पुस्तक 'Personal/Human Resource Management' में प्रबन्धन की परिभाषा प्रकार है—

Managament is the process of efficiently getting activities completed with and through other people. The management process includes the planning, organizing, leading and controlling activities that takes place to accomplish objectives. (Page-3)

व्यक्तियों के साथ मिलकर उनके द्वारा कार्य को दक्षता से पूर्ण कराने की प्रक्रिया प्रबन्धन है। कार्य की पूर्णता के लिए प्रबन्धन की प्रक्रिया के अन्तर्गत योजना, संगठन, नेतृत्व व नियंत्रण की गतिविधियों को समाहित किया जाता है।

प्रबन्धन की कोई एक निश्चित सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नही होती है। ऐसा कर पाना आसान भी नही है। प्रबन्धन की सभी परिभाषाओं के अंतर्गत सामान्य रूप से तीन बातों का समावेश किया जाता है—

1. लक्ष्य, 2. सीमित संसाधन, 3. व्यक्ति

1. लक्ष्य—शक्ति व क्षमता को एक दिशा में लगाने के लिए लक्ष्य का निर्धारण आवश्यक है। यह सही है कि लक्ष्य या मंजिल के निर्धारण के बिना कोई व्यक्ति कितना भी चले वह प्रगति नहीं कर सकता। केवल गति करना ही प्रगति नही है, प्रगति है लक्ष्य की दिशा में गति करना।

2. संसाधन—संसाधन हमेशा सीमित ही होते हैं। प्रबन्धक का दायित्व होता है कि सीमित संसाधनों में वांछित लक्ष्य की दिशा में कैसे आगे बढ़ें? वह कैसे कुशल हो? कम से कम संसाधन में लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जाए? संसाधन व उपलब्धि के अनुपात को समझ सके व क्रियान्वित कर सके। संसाधनों का समुचित उपयोग व लक्ष्य पर दृष्टि यह प्रबंधक की कुशलता के द्योतक होते हैं।

3. व्यक्ति—संगठन में प्रबन्धन के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों की अपेक्षा होती है। प्रबन्धक किसी भी संगठन में व्यक्तियों के माध्यम से ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। सामुदायिक भावना और नेतृत्व से ही कार्य निष्पत्ति तक पहुंचा जा सकता है। अब तक हमने प्रबन्धन की सामान्य चर्चा की। अब 'स्व' प्रबन्धन की चर्चा की ओर चलें—

1.5 स्व-प्रबन्धन का अर्थ

प्रत्येक प्राणी की जीवन-शैली अलग-अलग है। पशु-पक्षी सभी अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करते हुए अपना जीवन जीते हैं। मनुष्य सर्वश्रेष्ठ व सर्वाधिक विकसित बुद्धि वाला प्राणी है। उसके पास स्वतंत्र इच्छा शक्ति व संकल्प शक्ति के प्रबल शस्त्र हैं। इनके द्वारा वह अपनी शक्तियों के उपयोग की दिशा निर्धारित करते हुए अपने जीवन को व्यवस्थित बनाने का प्रयत्न करता है। मनुष्य में ही वह दुर्लभ क्षमता है जिसके द्वारा वह अपने जीवन के उद्देश्य को निर्धारित कर उसको प्राप्त कर सकता है।

अपने जीवन को संतुलित एवं व्यवस्थित बनाये रखना एक कला है। स्व-प्रबन्धन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन में विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनी शक्तियों का प्रभावी ढंग से नियोजन करता है, दूसरों के प्रति सौहार्दपूर्ण व्यवहार बनाए रखते हुए अपने जीवन को संतुलित एवं व्यवस्थित बनाए रखता है। इससे व्यक्ति के जीवन में संतुष्टि, समृद्धि, सफलता व सम्मान की प्राप्ति होती है।

उपरोक्त परिभाषा से स्व-प्रबन्धन के तीन पक्ष प्रकट होते हैं—संतुलन, व्यवस्थापन एवं नियोजन। स्व-प्रबन्धन का पहला पक्ष है—जीवन में संतुलन बनाए रखना। इसका तात्पर्य है—निवृत्ति और प्रवृत्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का संतुलन, श्रम और विश्राम का संतुलन, पारिवारिक जीवन और आजीविका के क्षेत्र में समय का संतुलन, चिंतन और भावना में संतुलन, तर्क और श्रद्धा में संतुलन, अस्तित्व और कर्त्तव्य का संतुलन।

स्व-प्रबन्धन का दूसरा पक्ष है—व्यवस्थापन, स्वयं का व्यवस्थापन। स्वयं के व्यवस्थापन का तात्पर्य है—आंतरिक जगत् की कामना, भावना, कल्पना, चिंतन और इच्छा का बाह्य जगत् के सम्बन्धों, कार्यक्षेत्रों एवं समाज के साथ सामंजस्य, समायोजन व व्यवस्थापन।

स्व-प्रबन्धन का तीसरा पक्ष है—नियोजन। प्रभावपूर्ण स्व-प्रबन्धन का अर्थ है आंतरिक गतिविधियों एवं सामाजिक प्रवृत्तियों को स्व-बोध की दिशा में नियोजित करना। स्व-बोध का तात्पर्य है अपने आपसे परिचित होना। जो हमारी सच्चाई है उसको सरलता से स्वीकार करना, जो हैं वही होना। अपनी विशिष्ट क्षमताओं का बोध करना। सार्थक लक्ष्य का निर्माण करना एवं उसे प्राप्त करना। यह स्व-बोध जीवन को गहनता, सार्थकता एवं दिशा-बोध से परिपूर्ण बना देता है।

1.5.1 स्व-प्रबन्धन का स्वरूप

स्व-प्रबन्धन के लिए आध्यात्मिक जागरण की अपेक्षा है। अच्छे प्रबन्धन के लिए साहस एवं लचीलेपन की आवश्यकता है। अपने आप से परिचित होकर साहस के साथ स्वयं को जैसा है वैसा ही स्वीकार करने की जरूरत है। इन सब के लिए सर्वाधिक आवश्यक है—निरन्तर जागरूक रहकर अपना निरीक्षण करना।

बाहर में जीना अनिवार्यता है, पर केवल बाहर में जीने से व्यक्ति आत्म संतोष, समाधि व शांति से दूर होता चला जाता है। शांतिपूर्ण जीवन के लिए बाहर एवं भीतर सामंजस्य स्थापित करने की अपेक्षा है। आदर्श एवं व्यवहार में संतुलन आवश्यक है। बाहर में जीते हुए भी आंतरिक अनुसंधान व अपने प्रति जागरूकता आवश्यक है। स्व-प्रबन्धन का मुख्य कार्य है—आंतरिक अपेक्षाओं एवं सामाजिक अपेक्षाओं का कुशल समायोजन एवं सामंजस्य स्थापित करना। इसका तात्पर्य है—व्यक्ति को ऐसे कार्यक्षेत्र के चयन में सहयोग करना जो आंतरिक आवश्यकता और बाह्य सामाजिक अपेक्षा की पूर्ति करता हो।

1.5.2 स्व-प्रबन्धन के पहलू

स्व-प्रबन्धन स्वयं का तथा वातावरण के संपर्क में आने वाले पहलुओं का किया जाता है। मुख्य रूप से स्व-प्रबन्धन के दो पक्ष हैं—

1. आंतरिक पक्ष (स्वयं के साथ), 2. बाह्य पक्ष (पर्यावरण के साथ)।

1. आंतरिक पक्ष—इसके अंतर्गत विभिन्न आंतरिक स्थितियों, मूलभूत आवश्यकताओं, संवेगों, कल्पनाओं, अन्तर अभिव्यक्तियों आदि के साथ समायोजन किया जाता है।

2. बाह्य पक्ष—इसके अंतर्गत परिवार, व्यवसाय (Occupation), समाज आदि के साथ समायोजन किया जाता है।

स्व-प्रबन्धन के आंतरिक पहलू को प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करने के लिए तीन मुख्य बातों पर ध्यान देना जरूरी है—

1. स्वयं की खोज—अर्थात् आत्म विश्लेषण करना, स्वयं के बारे में अधिक से अधिक जानना एवं सार्थक उद्देश्यों का निर्माण करना।

2. बाधाओं, चुनौतियों एवं समस्याओं का प्रभावी ढंग से सामना करना।

3. अपनी क्षमताओं का विकास एवं सार्थक उद्देश्य प्राप्ति में उनका अधिकतम नियोजन करना।

स्व-प्रबन्धन में जीवन को संतुलित बनाने का ज्ञान आवश्यक है। संतुलित क्रिया, शांतिपूर्ण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कार्य, आंतरिक जागरूकता और कार्यों को प्रभावी ढंग से पूर्ण करना आदि स्व-प्रबन्धन के विशिष्ट चरण हैं। एक सफल स्व-प्रबन्धक में उत्साह, लचीलापन, दिशाज्ञान, स्वज्ञान तथा उद्देश्य पूर्त्ति की योग्यता को आवश्यक माना गया है।

1.6 स्व-प्रबन्धन और जीवन विज्ञान

अध्यात्म समग्र जीवन को प्रकाशित करता है। अध्यात्म का मुख्य लक्ष्य है—अपनी खोज करना। अपने आपको समझना। स्व-प्रबन्धन (Self management) की बात अपनी खोज की बात है। इसका विकास पाश्चात्य चिंतन में हुआ है। जीवन विज्ञान के प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार इस पर्सनल मैनेजमेंट और अध्यात्म की व्यवस्था को तुलनात्मक दृष्टि से आमने-सामने रखें तो ऐसा प्रतीत होगा कि अध्यात्म का पुराना चिंतन नए परिवेश, नई भाषा और नए शब्दों में व्यक्त हो रहा है। पाश्चात्य विद्वानों ने सेल्फ मैनेजमेन्ट की बात अध्यात्म के संदर्भ में नहीं की। समाज में, उद्योग व्यवस्था में एक व्यक्ति सफल कैसे हो, इसके लिए सेल्फ मैनेजमेंट की विधि का विकास किया गया। स्व-प्रबन्ध के अध्ययन से जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि इधर से जाए या उधर से, आखिर एक ही जगह पहुंचेंगे। अपने आप तक, आत्मा तक, हर व्यक्ति को पहुंचना है। उस तक पहुंचने का रास्ता खोजें, स्व-प्रबन्धन अपने आप हो जाएगा।

अध्यात्म के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी सम्पूर्ण प्रक्रिया—प्रारंभ से अंत तक—पर प्रकाश डालते हुए बताते हैं—

प्रेक्षा श्रद्धां यायात्—प्रेक्षा श्रद्धा की कोटि में पहुंचे।
श्रद्धा वीर्यं यायात्—श्रद्धा वीर्य की कोटि में पहुंचे।
वीर्यं चरणं यायात्—पराक्रम आचरण की कोटि में पहुंचे।
अन्तर्भावे मे, चिन्तायां मे—मेरे अन्तःकरण में, मेरे चिंतन में।
आचरणे मे, व्यवहारे मे—मेरे आचरण में, मेरे व्यवहार में।
समता भूयात्, समता भूयात्—समता (सन्तुलन) हो, समता (सन्तुलन) हो।
नवसूर्यो मे उदयं यायात्—मेरे जीवन में नया सूरज उगे।
उदयं यायात्—नए प्रभात का उदय हो।
तेजोलेश्या उदयं यायात्—मेरे जीवन में तेजोलेश्या प्रकट हो।
उदयं यायात्—अध्यात्म की किरण फूटे।

प्रेक्षाध्यान पद्धति आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्रक्रिया है। इसके सूत्र हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन, दिल और दिमाग का संतुलन। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का प्रसिद्ध सूक्त है—रहो भीतर, जीयो बाहर। प्रेक्षाध्यान का आदर्श है—'अप्पणा सच्चमेसेज्जा'—स्वयं सत्य की खोज करना। इसका ध्येय है—'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं' अपने आपको जानना। स्वयं के श्वास, शरीर, चैतन्य केन्द्र, लेश्या, विचार आदि को जानना। इसके आगे के सूत्र हैं[1]—

1. स्वयं में आस्था का निर्माण
2. लक्ष्य का निर्माण
3. क्षमताओं का विकास
4. लक्ष्य प्राप्ति में क्षमताओं का नियोजन
5. तनाव मुक्त, संतुलित एवं स्वस्थ जीवन।

अध्यात्म-दृष्टि, आदर्श, ध्येय और चरण आज स्व-प्रबन्धन की भी मुख्य धाराएं हैं[2]—

1. स्वयं की खोज (Self-discovery)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. स्वयं में आस्था का निर्माण (Self-esteem)
3. जीवन में कार्य क्षेत्र का चयन (Direction, career selection)
4. स्वयं की योग्यताओं का विकास (Developing capablilities)
5. स्वयं का अधिकतम नियोजन (Managing effectively)
6. तनावों का कुशल निराकरण (Stress-management)

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार ध्यान करने वाला भी तब तक सफल नहीं होता, जब तक वह स्व-नियोजन करना नहीं जानता। बहुत लोग ध्यान का अभ्यास करते हैं लेकिन सफल नहीं होते। इसलिए कि वे स्व-नियोजन करना नहीं जानते। इसलिए अपेक्षा है कि जो व्यक्ति ध्यान करे, वह उसके साथ-साथ स्व-प्रबन्धन के सूत्रों को भी समझे। कैसे अपनी शक्तियों का तथा जीवन की सारी अवस्थाओं का नियोजन करे जिससे निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

बोध प्रश्न 2:

1. मानव अपनी क्षमताओं का विकास कैसे कर सकता है?
2. स्व-प्रबन्धन का मुख्य कार्य क्या है?
3. प्रेक्षाध्यान का आदर्श क्या है?

1.6.1 स्व-प्रबन्धन के सूत्र

1. प्रथम सूत्र स्व-प्रबन्धन का पहला विषय अपनी खोज या अपने जीवन का नक्शा बनाना है। उसका सूत्र है—मैं कौन हूं (Who am I)। अध्यात्म के ऋषि महर्षि रमण इस सूत्र को बहुत दोहराते थे। उनकी साधना का यह विशिष्ट सूत्र था। स्व-प्रबन्धन का भी पहला सूत्र है—मैं कौन हूं? कहां से आया हूं? और वर्तमान में किस स्थिति में हूं? मुझे कहां जाना है? एक ही सत्य भिन्न भाषा और भिन्न परिप्रेक्ष्य में व्यक्त हुआ है। सभी सफलताओं के केन्द्र में है—अपने आपका निरीक्षण, अपने आपकी खोज।

2. स्व-प्रबन्धन का दूसरा सूत्र है—अपनी धारणाओं को देखना। अपनी आस्था, विश्वास और दृष्टिकोण को देखना। स्वयं अपना मूल्यांकन करना। व्यक्ति विश्वास और धारणा के आधार पर चलता है। यह अच्छा है, ऐसी धारणा या विश्वास बन जाये तो उसे अच्छा मानेंगे। यह बुरा है, यह धारणा बन गई तो उसे बुरा ही मानेंगे। अपने बारे में यह विश्वास या धारणा बन गई, मैं कर सकता हूं तो वह कर भी लेता है। यह धारणा बन गई कि मैं नहीं कर सकता तो वह नहीं कर पाता। अत: स्व-प्रबन्धन का दूसरा सूत्र है—स्वयं की धारणाओं को देखना। अपने में जो है उसे देखना। अपने में जो कमियां हैं, उन्हें भी देखना। अपने में जो अच्छाइयां हैं, उन्हें भी देखना। भगवान् महावीर ने कहा— **'णो हीणे णो अइरित्ते'** अर्थात् न हीन मानो, न अतिरिक्त मानो। यथार्थ का मूल्यांकन करो।

3. तीसरा सूत्र है—अपनी योग्यता का विकास करना। अपनी इच्छा शक्ति, कल्पना शक्ति, चिंतन शक्ति, स्मरण शक्ति और अन्तर्दृष्टि का विकास करना। प्रेक्षाध्यान में कल्पना शक्ति, संकल्प शक्ति आदि के विकास के प्रयोग बताए गये हैं। साथ ही शक्ति के दुरुपयोग न करने पर विशेष बल दिया जाता है। शक्ति का विकास होता है किन्तु वह व्यर्थ में खर्च होती है तो विकसित शक्ति निकम्मी हो जाती है। अत: जिस समय जो काम करना है उस समय वही कार्य करना चाहिए। इसके प्रायोगिक अभ्यास के रूप में भाव-क्रिया के अभ्यास पर बल दिया गया है।

4. चौथा सूत्र है—स्व-नियोजन। अपना नियोजन कैसे करना? अपनी क्षमताओं को वांछित लक्ष्य की प्राप्ति में कैसे नियोजित करना? कुशल नियोजन के अभाव में शक्तियां बिखर जाती हैं। भगवान् महावीर ने एक गृहस्थ के लिए बारह व्रतों की आचार संहिता दी। यह आचार संहिता स्व-नियोजन की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आचार संहिता है। स्व-नियोजन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—अपनी आवश्यकताओं का नियोजन करना। भगवान् महावीर ने इसी आधार पर परिग्रह की सूची दी थी। परिग्रह जरूरी है। धन के बिना काम नहीं चलता। खाना, पीना, कपड़े पहनना, मकान बनाना—ये सारी बातें जरूरी हैं पर इनके साथ अपनी आवश्यकताओं का नियोजन भी अपेक्षित है। व्यक्ति ने भ्रांतिवश आवश्यकता और मानदण्ड—सबको एक मान लिया। वास्तव में आवश्यकता है क्या? इसका चिंतन करें तो अनावश्यक प्रवृत्ति और व्यर्थ शक्ति का अपव्यय बहुत कम हो जाएगा। आज सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि व्यक्ति के पास जो है वह उसका भी सम्यक् नियोजन नहीं कर पाता। फलतः शांति व सफलता कोसों दूर रह जाती है।

पाचवां सूत्र है—बाह्य नियोजन। बाह्य वातावरण, परिवार, मित्र, समाज, संगठन, संस्थान आदि के साथ सार्थक संवाद् व सम्पर्क बनाए रखना। स्वयं सार्थक व्यवहार करते हुए दूसरों से सहयोग लेना एवं अधिक से अधिक सहयोग देना। इन सब कार्यों में आवश्यक है—व्यक्ति में सम्प्रेषण कौशल का विकास। व्यक्ति अपनी बात दूसरों तक कैसे पहुंचाए? उसकी भी एक कला है। दूसरों के साथ व्यवहार कैसे करें? स्व-प्रबन्धन का यह सूत्र व्यक्ति के व्यवहार में प्रतिबिम्बित होता है।

जीवन में अनेक प्रकार के व्यक्ति सम्पर्क में आते हैं। नरम, गरम, सरल, कुटिल, अनाग्रही, आग्रही—इन सबसे शांत रहते हुए कैसे काम लेना है, सहयोग लेना है, सहयोग देना है? यह भी अपने आप में कला है। संगठन की प्रकृति, उद्देश्य व लक्ष्यों के अनुरूप किस प्रकार स्वयं को समायोजित करना? इन सबका बोध जीवन की सफलता के हेतु बनते हैं।

1.7 सारांश

स्व-प्रबन्धन और अध्यात्म को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर कुछ निष्कर्ष उभरकर आते हैं। जीवन का कोई भी क्षेत्र अध्यात्म से अछूता नहीं है। अध्यात्म का उद्देश्य है—शांतिपूर्ण जीवन। स्व-प्रबन्धन का उद्देश्य है— जीवन में है सफलता को प्राप्त करना। अध्यात्म-त्रैकालिक जीवन के संदर्भ में शाश्वत तत्त्व आत्मा को पहचानने की प्रक्रिया है। स्व-प्रबन्धन का दायरा वर्तमान जीवन में उद्देश्यों की प्राप्ति कर सफल होना है। उस सफलता के लिए स्वयं को पहचान कर स्वयं की क्षमताओं का नियोजन करना आवश्यक है।

प्रेक्षाध्यान स्वयं की सुषुप्त शक्तियों के विकास की अचूक पद्धति है। इससे जीवन में शांति व सफलता का मार्ग मिल जाता है। व्यावहारिक जीवन में सम्बन्ध मधुर एवं सौहार्दपूर्ण बनाने में सहायता मिलती है। आंतरिक एवं बाह्य जीवन में संतुलन स्थापित होता है। अनेक लोगों ने इससे लाभ उठाया है। विद्यार्थी वर्ग भी दिये गये प्रयोगों को अजमाकर अपने जीवन में नया उल्लास भर सकते हैं।

स्व-प्रबन्धन के विद्वानों ने भी जीवन में आध्यात्मिक आयाम को अनिवार्य माना है—

"Even those who reject religion must realise that the spiritual or soulful dimension is necessary to maintain health and your full potential"[1]

वे व्यक्ति जो धर्म को अस्वीकार करते हैं उन्हें भी यह जानना चाहिए कि जीवन में स्वास्थ्य एवं शक्ति को अधिकतम मात्रा में बनाये रखने के लिए अध्यात्म या आत्मिक आयाम अनिवार्य है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि आने वाले सौ सालों में चेतना के (भौतिक) विज्ञान की आवश्यकता होगी। चेतना विज्ञान या अध्यात्म नये परिवेश, नई भाषा और नये शब्दों में व्यक्त हो रहा है। उसका एक प्रारूप है—स्व-प्रबन्धन। इसका केन्द्र बिन्दु है—स्वयं के प्रति जागरूकता।

स्व-प्रबन्धन एक ऐसी विद्या है जो जीवन में सफलता, व्यक्तित्व निर्माण, लक्ष्य-प्राप्ति, स्वयं की शक्तियों के बोध एवं अधिकतम उपयोग के लिए आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पाश्चात्य संस्कृति में स्व-प्रबन्धन मानवतावादी मनोविज्ञान का आधुनिकतम विकास है। यह विकास मानव संसाधन आंदोलन का परिणाम है। मानवतावादी मनोविज्ञान को मनोविज्ञान में तीसरी शक्ति कहा जाता है। इसका जन्म 1950 में मनोविज्ञान की निराशावादी और नियतिवादी अवधारणाओं के विकल्प के रूप में हुआ। इसका उद्देश्य सामान्य आदमी की सहायता करना है जिससे वह अपनी क्षमताओं के विकास एवं लक्ष्य-प्राप्ति द्वारा जीवन को अधिक समृद्ध और संतोषजनक रूप में जी सकें। इस क्षेत्र में—कार्ल रोजर, रोलोमे और अब्राहम् मास्लो का विशेष योगदान रहा।

स्व-प्रबन्धन को समझने के लिए स्व, मानव-स्वभाव, मानव क्षमताएं, प्रबन्धन आदि शब्दों को समझना आवश्यक है। यहां 'स्व' का सम्बन्ध स्वयं की इच्छाओं, कामनाओं, भावनाओं, वासनाओं, अनुभूतियों, योग्यताओं, अक्षमताओं आदि से है। मानव स्वभावत: अच्छा भी है एवं बुरा भी। बाह्य वातावरण के अनुरूप वह विकसित भी हो सकता है एवं विकृत भी। मानव में एक अद्‌भुत क्षमता है। वह है स्वतंत्र निर्णय की क्षमता। जिससे वह बाह्य वातावरण के प्रभाव को नकारते हुए स्वतंत्र विकास की राहों में आगे बढ़ सकता है।

'प्रबन्धन' का सामान्य अर्थ यह है कि लक्ष्य-प्राप्ति के लिए अपनी सीमित शक्तियों का अधिकतम उपयोग करना। 'स्व-प्रबन्धन' का अर्थ है कि जीवन में सार्थक लक्ष्य का निर्माण कर उसकी प्राप्ति के लिए। दूसरों के प्रति सौहार्दपूर्ण वातावरण और जीवन में संतुलन को भी बनाए रखते हुए। अपनी शक्तियों को प्रभावी ढंग से नियोजित करना।

जीवन विज्ञान के प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार स्व-प्रबन्धन का विकास पाश्चात्य विद्वानों ने अध्यात्म के संदर्भ में नहीं किंतु उद्योग में सफलता के संदर्भ में किया। व्यक्ति कहीं से चले, आखिर उसे स्वयं तक पहुंचना ही होगा। जीवन विज्ञान प्रेक्षाध्यान के सूत्र हैं—स्वयं सत्य खोजना, स्वयं को जानना, लक्ष्य का निर्माण करना, क्षमताओं का विकास करना एवं उन्हें लक्ष्य-प्राप्ति में प्रभावी ढंग से नियोजित करते हुए संतुलित एवं स्वस्थ जीवन जीना।

1.8 प्रश्नावली

I. निबंधात्मक प्रश्न

1. स्व-प्रबन्धन और जीवन विज्ञान की तुलना करते हुए निबन्ध लिखें।

II. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मानव स्वभाव पर एक सारगर्भित टिप्पणी लिखें।
2. स्व-प्रबन्धन का स्वरूप क्या है?

III. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. स्व-प्रबन्धन की धुरी और केन्द्र बिन्दु क्या है?
2. जीवन में स्व-प्रबन्धन की क्या आवश्यकता है?
3. भारतीय दर्शनों में आत्म-शान्ति के लिए क्या सिद्धान्त है?
4. मानवतावादी मनोविज्ञान का विकास कब और क्यों हुआ?
5. मानवतावादी मनोविज्ञान व्यक्ति का अध्ययन किस रूप में करता है?
6. स्व-प्रबन्धन में 'स्व' से क्या तात्पर्य है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7. प्रबन्धन का सामान्यतया क्या अर्थ किया जाता है?

8. स्व-प्रबन्धन को लागू करने के लिए किन बातो पर ध्यान देना आवश्यक है?

9. पाश्चात्य विद्वानों ने 'स्व-प्रबन्धन' की चर्चा किस संदर्भ में की?

10. बहुत लोग ध्यान करते हैं किंतु वे जीवन में सफल क्यों नही होते हैं?

1.9 संदर्भ पुस्तकें:

1. नया मानव : नया विश्व (तीसरा संस्करण, 1996) — आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ चुरू

2. प्रेक्षाध्यान, मासिक पत्र (सितम्बर-अक्टूबर 1994) — मुनि धर्मेश, आध्यात्मिक भौतिक संतुलन

3. John Mulligian, Personal management (1988), sphere Books ltd. London

4. Zibardo, Psychology and Life

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–2 स्व–प्रबन्धन से जुड़े विभिन्न आयामों का अध्ययन

संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 जीवन के रेखाचित्र

- 2.2.1 स्व–जीवन के रेखाचित्र
- 2.2.2 अभ्यास

2.3 तुम कौन हो?

- 2.3.1 वृक्षावली लेखन
- 2.3.2 आत्म–निरीक्षण करें

2.4 तुम कहां से आये हो?

- 2.4.1 मूल का रेखांकन
- 2.4.2 मूल की खोज
- 2.4.3 जीवन लिपि/जीवन के आलेख
- 2.4.4 आत्म निरीक्षण करें
- 2.4.5 अभ्यास करें

2.5 तुम कहां जा रहे हो?

- 2.5.1 दिशा का चुनाव
- 2.5.2 विकास का मापन
- 2.5.3 समय/शक्ति का मापन
- 2.5.4 आत्म–निरीक्षण करें
- 2.5.5 अभ्यास करें

2.6 आपको कौन रोक रहा है?

- 2.6.1 बाधाओं की पहचान
- 2.6.2 अभ्यास करें
- 2.6.3 आत्म–निरीक्षण

2.7 आप वहां कैसे पहुंचेंगे?

- 2.7.1 ऊर्जा क्षेत्र का विश्लेषण
- 2.7.2 अभ्यास करें

2.8 वहां पहुंचने के लिए हमे क्या–क्या सहयोग चाहिए?

- 2.8.1 व्यक्तिगत संसाधन
- 2.8.2 मानव संसाधन
- 2.8.3 वस्तुगत संसाधन
- 2.8.4 अभ्यास करें
- 2.8.5 आत्म–निरीक्षण करें

2.9 वहां पहुंचने पर कैसा लगेगा?

- 2.9.1 लक्ष्य की रूपरेखा
- 2.9.2 आन्तरिक प्रतिरोध का सामना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.9.3 लक्ष्य का अन्तर्दर्शन
2.9.4 अभ्यास करें
2.10 सारांश
2.11 प्रश्न
2.12 संदर्भ पुस्तकें

2.0 प्रस्तावना

अध्यात्म का प्रारंभ स्वयं के परिचय से होता है। ऋषि बादरायण ने ब्रह्मसूत्र में स्वयं के बारे में बोध कराते हुए कहा—'अहं ब्रह्मास्मि'। भगवान् महावीर ने आचारांग सूत्र में सबसे पहले इन प्रश्नों को उठाकर समाहित किया—'मैं कहां से आया हूं? मुझे कहां जाना है? मैं कौन हूं?' अध्यात्म का क्षेत्र हो या स्व-प्रबन्धन का, सबसे पहले स्वयं का बोध आवश्यक है। इसके बिना व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास और जीवन में सफलता, समृद्धि और शांति की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अध्यात्म और स्व-प्रबन्धन की कार्य-प्रणाली में काफी समानता होते हुए भी कुछ मौलिक अन्तर भी हैं। अध्यात्म का मूल लक्ष्य परम शांति है जबकि स्व-प्रबन्धन का मूल लक्ष्य वर्तमान जीवन में सफलता की प्राप्ति है। अध्यात्म का साधक आत्मा पर ध्यान केन्द्रित करते हुए अपनी यात्रा प्रारंभ करता है। स्व-प्रबन्धन के अभ्यासकर्त्ता, प्रबंधक गण, वर्तमान जीवन के अनुभवों का विश्लेषण करते हुए भावी जीवन के लक्ष्य एवं उसकी सफलता पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। सामान्य व्यक्ति के लिए जीवन में सफलता एवं शांति दोनों आवश्यक हैं। अत: साधक को जीवन में सफल होने के लिए स्व-प्रबन्धन का ज्ञान आवश्यक है एवं प्रबन्धक के जीवन में शांति के लिए अध्यात्म का।

अध्यात्म का चरम लक्ष्य है—अपने मूल स्वरूप/अस्तित्व में लौटना। जैन दार्शनिकों ने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नौ तत्त्वों पर विचार किया है—

1. जीव—व्यक्ति के अपने मूल अस्तित्व के प्रश्न पर विचार।
2. अजीव—व्यक्ति के मूल अस्तित्व के अतिरिक्त अस्तित्व पर विचार।
3. पुण्य—व्यक्ति के जीवन में सुख और तृप्ति कारक तत्त्वों पर विचार।
4. पाप—व्यक्ति के जीवन में दु:ख और असंतोष कारक तत्त्वों पर विचार।
5. आश्रव—व्यक्ति के जीवन में अपने अस्तित्व को समझने एवं प्राप्त करने मे बाधक तत्त्वों पर विचार।
6. संवर—व्यक्ति के जीवन मे अपने अस्तित्व के समझने एवं प्राप्त करने मे बाधक तत्त्वो को रोकने पर विचार।
7. निर्जरा—व्यक्ति के जीवन में अपने अस्तित्व को प्राप्त करने में सहायक तत्त्वों पर विचार।
8. बन्ध—व्यक्ति के जीवन में अस्तित्व की विस्मृति कराने वाले तत्त्व पर विचार।
9. मोक्ष—व्यक्ति के चरम लक्ष्य एवं उसके स्वरूप पर विचार।

स्व-प्रबन्धन के अंतर्गत भी जीवन-यात्रा में सफल होने एवं लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कुछ मौलिक प्रश्नों पर विचार किया गया है, जिसका अध्ययन इस पाठ में करने जा रहे हैं।

2.1 उद्देश्य

इस पाठ में आप जान पाएंगे कि—

1. मैं कौन हूं?
2. मैं कहां से आया हूं?
3. मैं कहां जा रहा हूं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. मुझे कौन रोक रहा है?

5. मैं वहां कैसे पहुंचूंगा?

6. मुझे वहां पहुंचने के लिए कैसा सहयोग चाहिए।

7. वहां पहुंचने पर कैसा लगेगा?

2.2 जीवन के रेखाचित्र

स्व-प्रबन्धन में अपने आपसे परिचित होने के लिए रेखाचित्रों का उपयोग किया गया है। ये रेखाचित्र आत्मविश्लेषण के साधन हैं। वे जीवन को विभिन्न संदर्भों में देखने का अवसर उपलब्ध करवाते हैं एवं जीवन की सीमाओं को रेखांकित करते हैं। संक्षेप में कहें तो वे स्वयं के जीवन से परिचित करवाते हैं।

स्व-जीवन के रेखाचित्रों को बनाने से अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य को जोड़ने में सहायता मिलती है। अपने अस्तित्व के विभिन्न स्तर—शरीर, मन, भाव और चेतना को संयोजित किया जा सकता है। जीवन के किसी भी पक्ष का सूक्ष्मता से विश्लेषण व परिचय करना आसान हो जाता है।

इन रेखाचित्रों से स्वयं के प्रति जागरूक होने में मदद मिलती है। इनके द्वारा व्यक्ति अपनी अच्छाइयों एवं कमजोरियों के प्रति जागरूक हो सकता है। अच्छाइयों को बढ़ाने एवं कमजोरियों को दूर करने के लिए समुचित योजना बना सकता है।

इन रेखाचित्रों के समुचित उपयोग के लिए इनके निर्माण पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इसका पूरे पाठ में 'अभ्यास' एवं 'आत्म-निरीक्षण' के अंतर्गत उल्लेख किया गया है। इनको बनाते समय 'स्वयं' के जीवन को केन्द्र में/ध्यान में रखकर तदनुरूप विकसित करना है।

इस पद्धति को 'जोन हीरोन' से लिया गया है। ये रेखाचित्र व्यक्ति के वर्तमान जीवन को अतीत से जोड़ते हुए भविष्य में ले जाते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों को वर्तमान से जोड़ते हैं तथा भावी संभावनाओं, योग्यताओं और अर्हताओं को उजागर करने में सहायक बनते हैं।

2.2.1 स्व-जीवन का रेखाचित्र

जीवन के किसी एक पक्ष या समग्र पक्षों के अनुसंधान के लिए इन रेखाचित्रों का उपयोग किया जा सकता है। इन रेखाचित्रों का क्रम इस प्रकार है—

1. मैं कौन हूं?

2. मैं कहां से आया हूं?

3. मुझे कहां जाना है?

4. मुझे कौन रोक रहा है?

5. मैं वहां किस प्रकार जा सकता हूं?

6. वहां पहुंचने के लिए किस प्रकार के सहयोग की आवश्यक होगी?

7. वहां पहुंचने पर कैसा लगेगा?

आगे इन रेखाचित्रों के प्रत्येक पक्ष पर प्रकाश डाला जायेगा—

1. "मैं कौन हूं?" यह अपने आपके परिचय से सम्बंधित है। यह रेखाचित्र आपके जीवन के विभिन्न पक्षों एवं उन पर लगने वाली शक्ति व समय को रेखांकित करता है।

2. "मैं कहां से आया हूं?" यह रेखाचित्र आपके ऐतिहासिक घटनाओं या पूर्व वृत्त की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. ''मुझे कहां जाना है?'' इस रेखाचित्र द्वारा आपकी क्षमताओं को विकसित करने, मार्ग और मंजिल को प्रकाशित करने, लक्ष्य की व्याख्या करने एवं मार्गदर्शक को स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

4. ''मुझे कौन रोक रहा है?'' यह रेखाचित्र व्यक्ति के विकास में आने वाले बाधक तत्त्वों को दर्शाता है जो लक्ष्य की दिशा में विकास को अवरुद्ध करते हैं।

5. ''मैं किस प्रकार वहां पहुंच सकता हूं?'' इस रेखाचित्र के द्वारा लक्ष्य तक पहुंचने की प्रक्रिया के निर्धारण का प्रयास है। यह अपनी यात्रा की रूपरेखा बनाने का प्रयास है।

6. ''वहां पहुंचने के लिए किस किस प्रकार के सहयोग की आवश्यकता होगी?'' यह रेखाचित्र आपकी आवश्यकताओं, जरूरतों, आवश्यक सहयोग को रेखांकित करता है। जो वहां पहुंचने के लिए यात्रा में आवश्यक है। इससे स्पष्ट होता है कि किन-किन योग्यताओं को विकसित करना है। किन-किन गुणों को विकसित करना है, किन-किन व्यक्तियों के सहयोग की अपेक्षा होगी?

7. ''वहां पहुंचने पर कैसा लगेगा?'' यह मंजिल की काल्पनिक तस्वीर है जिसे हम इस यात्रा के अन्त में देखना चाहते हैं, पाना चाहते हैं। यह अपने लक्ष्य को विस्तार से समझने व पहचानने में मदद करता है। यह हमारी भावना, संवेदना व इच्छा को जागृत करता है। इस प्रकार यह हमारी उस शक्ति को जागृत करता है जो क्रियान्विति के लिए प्रेरित करता है।

2.2.3 अब इसका अभ्यास करें

सात खाली कागज और रंगीन पेंसिलें लें। शांति से शिथिल व आरामदायक स्थिति में बैठें। धीमा व लम्बा श्वास लें, छोड़ते समय शारीरिक व मानसिक तनाव को भी विसर्जित करें, अनेक बार करें।

अब क्रमशः जीवन-रेखाचित्र के प्रत्येक पहलू पर ध्यान केन्द्रित करें। ध्यान केन्द्रित करते समय उभरने वाले शब्द, कल्पना, भाव या विचारों को देखें।

प्रत्येक प्रश्न पर पांच मिनट लगायें। अब जो आपने देखा है उसको लिख लें। रेखचित्र बना दें। यदि आप बिल्कुल न कर पा रहे हों तो जो भी प्रश्न आप पहले कर सकें, उसको करें। इस प्रकार क्रमशः सभी को, प्रत्येक प्रश्न को पूरा कर लें।

आपने अपने बारे में क्या जाना है? क्या खोजा है? क्या आप और जानना चाहेंगे? यदि हां, तो आप आगे आने वाले शीर्षकों के माध्यम से और अधिक विकसित कर सकते हैं। इसकी परिणति आपकी अपने प्रति जागरूकता एवं जीवन की दिशा की स्पष्टता के रूप में होगी।

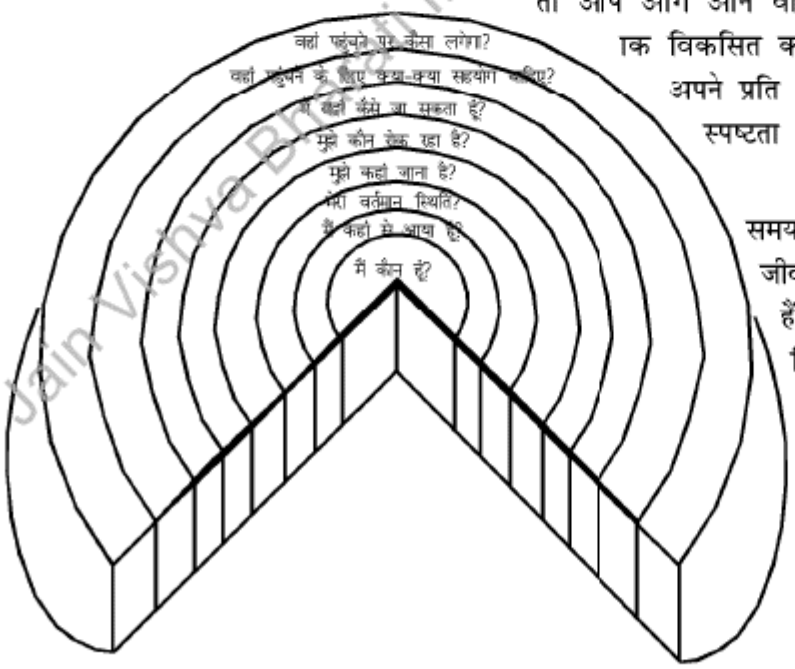

अपने वर्तमान स्थिति का अंकन करते समय यह जानना चाहेंगे कि आप अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से कितने संतुष्ट हैं। यह भी निर्णय करना होगा कि किन-किन क्षेत्रों में कितने सक्रिय हैं? क्या आप उस क्षेत्र से प्रसन्न, संतुष्ट हैं या परिवर्तन करना चाहते हैं? इसके लिए रेखाकंन आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.3 तुम कौन हो?

यदि आपको यह प्रश्न पूछा जाए कि तुम कौन हो? तो संभवतया आपका उत्तर आपका नाम होगा। यह आपकी पहचान का एक प्रतीक है। यदि दुबारा यही प्रश्न पूछा जाये तो शायद उत्तर और गंभीर होगा। उसमें आप अपनी राष्ट्रीयता, सामाजिक स्तर, अपना कार्य और उपलब्धि भी बतायें।

ये सब आपकी बाह्य पहचान है। यह प्रश्न पुनः पूछे जाने पर आपकी पहचान के आंतरिक पक्ष पर भी ध्यान आकर्षित हो सकता है, जैसे आपके विश्वास, मूल्य, अभिरूचियां, चिंताएं और जीवनगत आकांक्षाएं। इस प्रश्न को निरंतर पूछा जाए जब तक कि सारे उत्तर समाप्त न हो जाएं और मात्र शब्दातीत अनुभव शेष न बच जाए। वह संभवतया आपका निकटतम उत्तर होगा जहां आप पहुंच सकते हैं। आप वास्तव में जो हैं उसका इस प्रकार आमना-सामना, सभी शब्दों के तमगों से मुक्त, प्रायः एक शक्तिशाली अनुभव है, जिसको शब्दों में बांधना एवं सम्प्रेषित करना कठिन है।

विभिन्न प्रकार के व्यक्ति अपनी पहचान विविध रूपों में अभिव्यक्त करते हैं कुछ लोग अपने कपड़ों से, कुछ अपनी सम्पदा से, कुछ अपने व्यसवसाय से, कुछ अपने वाहन से। अधिकांश व्यक्ति अपनी पहचान को बाहर के परिप्रेक्ष्य से जोड़ते हैं। बहुत कम व्यक्ति अपनी पहचान को आंतरिक स्रोतों से प्राप्त करते हैं।

आपकी पहचान के इन आंतरिक स्रोतों का ज्ञान ही आपको स्व-जागरूकता और स्व-बोध से जोड़ते हैं। आपके विश्वास, मूल्य, इच्छाएं एवं आकांक्षाएं—ये आंतरिक स्रोत आपको अपने वास्तविक रूप (Self-Image) से जोड़ते हैं।

2.3 वृक्षावली लेखन (Branch patterns)

अपने बारे में जो आप जानते हैं, उस आंतरिक और सामाजिक पहचान को रेखांकित करने का एक उपयोगी तरीका है— वृक्षावली लेखन। इसमें संभावित सभी समाधानों को केन्द्रीय समस्या से जोड़ते हैं। प्रत्येक समाधान को और अधिक शाखा- प्रशाखाओं से विस्तार दिया जा सकता है। वे उस समाधान के भेद-प्रभेद को सूचित करते हैं। मस्तिष्क को झकझोरने और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के प्रति अपनी जागरूकता को बढ़ाने में इस प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है।

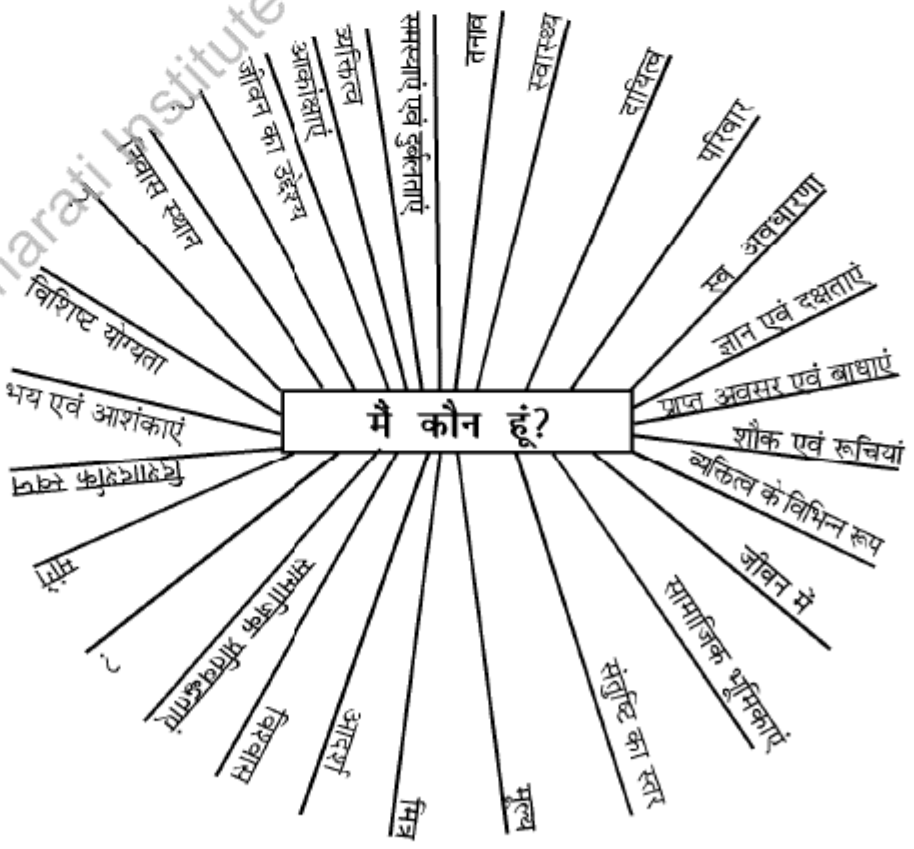

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्व निर्देशित कल्पना (Guided imaging)-यह अपने आपको समझने के लिए एक और उपाय है। यह अपनी आंतरिक सामग्री या व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों को समझने में सहायक होता है। इसमें स्व-निर्देशित कल्पना का साक्षात् अनुभव किया जाता है। इससे आंतरिक भूमिकाओं (Internal roles) जो कार्य के समय या मनोरंजन के समय उभरती हैं, जैसे—समालोचक, स्वप्नद्रष्टा, उपकारी, सेवाभावी, पुत्र, पिता आदि का समावेश होता है।

2.3.2 आत्म निरीक्षण करें

आंतरिक जगत् को जानने के लिए स्वयं प्रयोग करें। ध्यान में बैठें। कल्पना करें कि आप प्रात: उठकर घर के दरवाजे से चल पड़ें। बाहर आयें। जाने-पहचाने रास्तों को छोड़कर अनजान गांव की तरफ जाने वाले नये रास्ते पर निकल गये। रास्ता खेत, खलिहानों से गुजरता हुआ जंगल की ओर आपको ले गया। वहां मंद-मंद प्रकाश में एक सुन्दर महल दिखाई दिया।

महल के दरवाजे पर आप पहुंचते हैं। दरवाजे पर कुछ संकेत हैं, उसको पढ़ें। भीतर जायें। कुछ समय बितायें। अन्दर देखें क्या है? लोगों से मिलें। कौन हैं? जब अच्छी तरह से बारीकी से देख लें, मिल लें तो बाहर आ जायें। दरवाजे को देखें—दरवाजा खुलता है। एक-एक व्यक्ति आपसे मिलते हैं। अपनी अनुभूति और प्रतिक्रियाओं को पकड़े।

सबसे मिलने के बाद धीरे-धीरे जंगल से लौटकर रास्ते को पकड़कर वापस आ जायें। कुछ समय के लिए अनुचिंतन करें, आपने क्या देखा? क्या अनुभव किया? सबको एकत्रित करें, जो आपने खोजा है।

अपने अनुभवों को लिखने या रेखांकित करने के लिए कुछ समय लगावें। जंगल में 'महल' आपके 'स्व' का प्रतीक है एवं उसके निवासी आपके आंतरिक जगत् के तत्त्वों का प्रतीक हैं।

आप उनसे किस प्रकार मिले? वे आपसे क्या कह रहे थे? क्या वे परिचित थे? महल में वातावरण कैसा था? क्या वहां अनेक कमरे थे? क्या यहां कुछ असामान्य बात थी? ये सब बातें तुम्हारे बारे में क्या बताती हैं? अपने आंतरिक तत्त्वों/समुदाय से किस प्रकार के सम्बंध को दर्शाती है। क्या वहां कुछ ऐसा है जिसको आप बदलना चाहते हैं?

2.4 तुम कहां से आये हो?

अपने आपको जानने का तात्पर्य है—अपने अतीत को जानना अर्थात् उन सबको जानना जो भी आज तक हमारे साथ जीवन में घटित हुआ है। उन मुख्य घटनाओं, उपलब्धियों, निर्णयों और प्रभावों का रेखांकन, जो आज हम हैं, उसे समझने में सहयोगी बनते हैं।

2.4.1 मूल का रेखांकन

अपनी पृष्ठभूमि या अतीत का रेखांकन इस बात को समझने में सहयोगी होगा कि 'आज जो हम हैं' वह मात्र संयोग नहीं है। हमारा जीवन अनेक बातों से प्रभावित है। इससे भविष्य में अपने जीवन निर्माण के लिए हम प्रभावशाली निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं। अतीत से जो कुछ प्राप्त हुआ है—कमियां या विशिष्टताएं, दु:ख या सुख, सबलता या दुर्बलता, उन सबसे परिचत हो सकेंगे। यह ध्यान देने की बात है कि यह रेखांकन अपने दायित्व से बचने या अपने भाग्य या दुर्भाग्य को दूसरों पर थोपने का प्रयत्न नहीं है। पर अतीत के प्रकाश से वर्तमान को प्रकाशित कर भविष्य के दायित्व को स्वीकार करने की योग्यता को प्राप्त करना है।

2.4.2 मूल की खोज (Discovering your roots)

अपने अतीत को समझने से जीवन के विभिन्न संकल्प एवं निर्णयों को समझने एवं उनसे मुक्त होने में सहायता मिलेगी। जीवन के विकास क्रम में हो रहे रचनात्मक प्रभाव एवं उनके अन्तर्निहित या

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सम्बंधित उद्देश्यों का रेखांकन अपने वास्तविक स्वरूप को समझने में सहयोगी होगा। वह उस स्वरूप से भिन्न होगा, जो दूसरे लोग हमें समझते हैं या हमसे चाहते हैं।

स्वतंत्र व्यक्ति होने का तात्पर्य है कि इस अतीत की पृष्ठभूमि से अपने को भिन्न करना एवं स्वयं के स्वरूप को पहचानना। यह हमारे लिए आनन्ददायी या दुविधाजनक हो सकता है। उससे अपने आपको अलग करने की हमारी इच्छा नहीं भी हो सकती है। उससे अलग होने पर हम अपने आपको असहाय भी महसूस कर सकते हैं। हो सकता है यह अतीत हम पर बहुत ज्यादा हावी हो पर कोमलता एवं मृदुता से अपने आपको अपनी पृष्ठभूमि से भिन्न करना स्वयं के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए बहुत आवश्यक है।

2.4.3 जीवन लिपि/जीवन के आलेख (Your life scripts)

यह लग सकता है जीवन के प्रारंभिक क्षणों में अनेक चुनाव व निर्णयों पर हमारा नियंत्रण या प्रभाव नहीं रहा। उस समय वे निर्णय उपयोगी रहे थे किंतु वे ही आज बाधक बन रहे हैं।

इन निर्णयों एवं उनके पीछे की भावना, दृष्टिकोण व विश्वासों को जानना है। यह बोध अपने वर्तमान के व्यवहार पर नियंत्रण करने में सहयोगी होगा।

वे संकल्प या निर्णय, जिन्हें हम जीवन लिपि कहते हैं (अध्यात्म की भाषा में वे कर्म कहलाते हैं) वे हमारी चेतना में जीवंत रहते हैं। जब तक हम उनकी संभाल नहीं करते वे शक्ति प्रदान कर सकते हैं या शक्तिहीन भी बना सकते हैं। यदि हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इस जीवन-लिपि का पुनर्मूल्यांकन करना होगा। नये संरचनात्मक लिपि के द्वारा उन्हें बदलना होगा।

2.4.4 आत्म निरीक्षण करें

एक कागज लें। उस पर एक किनारे से दूसरे किनारे तक सीधी रेखा खींचें। यह सीधी रेखा इस जीवन के प्रारंभ से अंत तक के समय को दर्शाती है। लम्बवत्, ऊर्ध्व-अधो रेखाएं शारीरिक, मानसिक व भावात्मक दशा को दर्शाती हैं। विधायक दशाओं के लिए ऊपर रेखा खींचें एवं नकारात्मक दशा के लिए नीचे। कालक्रम से अपने जीवन की मुख्य घटनाओं को चिन्हित करें एवं देखें कि अपनी स्थिति किस प्रकार उभरती है।

इन स्थितियों में परिवर्तन का अवलोकन करें। यह देखें कि वे कैसे उत्पन्न हुईं? उनसे हमारे दृष्टिकोण व भावनाओं में क्या परिवर्तन आया? क्या वे दृष्टिकोण आज भी उपयोगी हैं या उनमें परिवर्तन की अपेक्षा है।

इन स्थितियों की स्पष्टता व जीवंतता के लिए अपने मित्रों से परामर्श व चर्चा करने की भावना आप में हो सकती है। अपनी भावनाओं को आदर देने वाले मित्र से चर्चा करना, अपने बारे में जानने का एक सर्वोत्तम साधन है। उनका चिंतन व सुझाव बहुत मूल्यवान हो सकता है। इस स्तर पर अपने

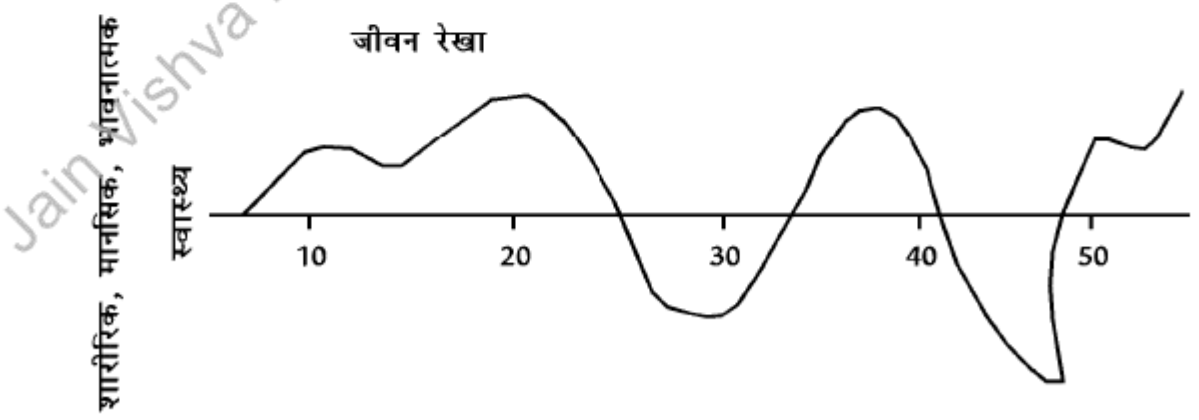

अनुभवों में मित्र को भागीदार बनाना मैत्री को अधिक सघन बनाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.4.5 अभ्यास करें

''मैं कहां से आया हूं'' इस प्रश्न से सम्बंधित घटनाएं, निर्णय आदि को इसके चारों ओर शाखा-प्रशाखाओं में लिखते चले जाएं।

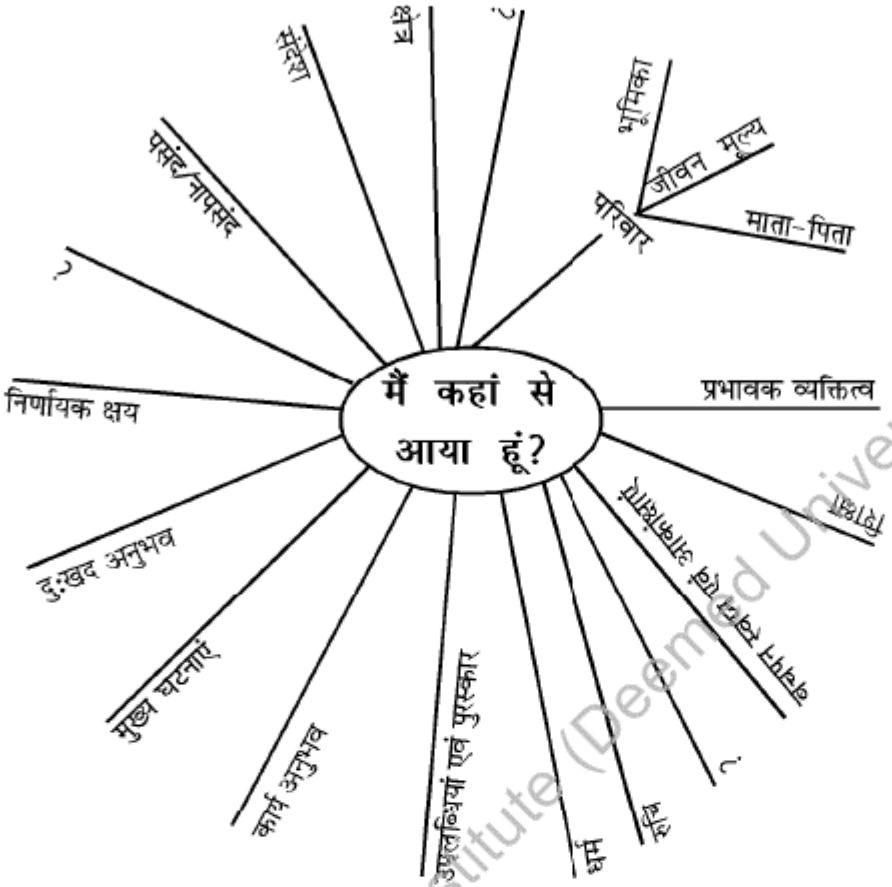

एक-एक घटना और अनुभव को लें। उसका पूरा अनुभव करें, मानो कि वह आपके सामने घटित हो रही है।इससे घटना की स्मृति तरोताजा हो जाएगी। इस घटना से अन्तर्वार्तालाप करें। समर्थन करें। उसके विपरीत अन्दर से आने वाले विचारों को सुनें। अनुभव करें उस समय आपने क्या निर्णय लिया। क्या वे निर्णय अभी भी आपके जीवन में कार्य कर रहे हैं? क्या वे निर्णय वर्तमान जीवन में सहयोगी बन रहे हैं या बाधक?

इस अभ्यास को अपने सहध्यामित्र के साथ भी किया जा सकता है। इस अभ्यास में जितनी अधिक घटनाओं का समावेश होगा, जितना अधिक अनुचिंतन होगा उतना ही लाभ होगा।

इसका उद्देश्य यह है कि अतीत के अपूर्ण कार्य या निर्णय को पूरा करना या समाप्त करना।जिससे हमारी शक्ति और एकाग्रता उन संकल्प-विकल्पों से मुक्त होकर हमारी वर्तमान की गतिविधियों एवं जीवन यात्रा के लिए उपयोगी बन सके।

2.5 तुम कहां जा रहे हो?

इस वर्तमान जीवन-यात्रा में ''मैं कौन हूं?'' इसको जानने के बाद यह भी आप जानना चाहेंगे कि ''आप कहां जा रहे हैं?'' बहुत व्यक्ति एक साथ अनेक दिशाओं में शक्ति लगा देते हैं अत: उनकी प्रगति कठिन हो जाती है। प्रगति के लिए जीवन की सही दिशा को जानना आवश्यक है। वह दिशा जहां हमारे अन्तर्द्वन्द्व एवं परिस्थितिगत दबाव समाहित हो सके, जहां हमारी इच्छाओं का सम्मान हो सके, जहां निर्बाध प्रगति को प्रोत्साहन मिले। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह भविष्य की दृष्टि के पीछे मूल भावना को खोजे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.5.1 दिशा का चुनाव

एक विकल्प के चयन का अर्थ है अनेक विकल्पों का विसर्जन। क्या आप जीवन में विकल्प के चयन या निर्णय लेते समय चिंतित होते हैं। यदि हां तो शायद आप सभी विकल्पों या रास्तों को खुला रखना चाहते हैं। इसका परिणाम यह होता है आपके निर्णय की शक्ति पंगु हो जाती है। आपकी प्रगति रुक जाती है।

व्यक्ति के जीवन में अनेक विकट क्षण आते हैं। मनुष्य जीवन की अनेक अवस्थाएं हैं—शिशु, बालक, युवक, प्रौढ़ एवं वृद्ध अवस्था। ये अवस्थाएं जीवन के वे क्षण हैं जहां मूल्यों को, इच्छाओं को स्पष्ट करने की जरूरत होती है। उन्हें अपने भविष्य की दृष्टि, जीवन और कार्ययोजना से जोड़ने की अपेक्षा होती है।

यदि हम अपने जीवन में प्राथमिकताओं को निर्धारित कर लेते हैं या यह निर्णय कर लिया कि मुझे कहां जाना है, यदि वह निर्णय अपने व्यक्तित्व के अनुकूल संवादी है तो उपस्थित विकल्पों का विसर्जन कम कठिन होगा। विकल्पों या अन्य राहों के त्यागने का भय यह दर्शाता है कि आपको पता ही नहीं है कि आप कहां जा रहे हैं।

''मुझे कहां जाना है?'' यह जानने के लिए इस तथ्य को जानना आवश्यक है कि ''मैं कहां हूं?'' अर्थात् इस बात को अवश्य जानना होगा कि हमारे आरोहण का लक्ष्य बिन्दु क्या है? वर्तमान की स्थितियों को स्पष्ट करने से कम से कम हमें यह ज्ञान अवश्य होगा कि ''मैं कहां हूं?'' इसका भी पता लगेगा कि मैं जहां होना चाहता हूं, वहां हूं या नहीं या अन्य कहीं हूं।

2.5.2 विकास का मापन

अपने विकास के अंकन के लिए एक बड़े कागज पर तालिका बनाएं। तालिका के एक तरफ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को लिखें, शीर्षक लिखें।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए लिखें—आप कितने सक्रिय हैं। आप वर्तमान की स्थिति से कितने संतुष्ट हैं। इस प्रकार उत्तर का विस्तार करें।

अन्त में इस बात को पहचानें कि उसमें आप किस प्रकार का परिवर्तन चाहते हैं। जीवन क्षेत्रों का वर्गीकरण अपने जीवन की अपेक्षानुसार कर सकते हैं।

यह आवश्यक है कि समग्रता से जीवन के सभी क्षेत्रों का स्पर्श करें। इससे आपको जीवन के निष्क्रिय क्षेत्रों का भी बोध होगा एवं नई संभावनाओं का पता लगेगा।

स्वास्थ्य	शिक्षा	अध्यात्म	व्यवसाय	समाज	परिवार
सक्रिय निष्क्रिय संतोषजनक असंतोषजनक परिवर्तनीय					

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)/Ladnun

2.5.3 समय/शक्ति का मापन

समय व शक्ति के उपयोग को मापने के लिए एक सामान्य तालिका बनाएं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के सामने नियोजित समय को लिखें। इससे आपको पता चलेगा कि जीवन का कौन-सा क्षेत्र आपको स्फूर्ति देता है, शक्ति प्रदान करता है एवं कौन-सा क्षेत्र आपको थकाता है, शक्ति ह्रास करता है।

इसके बाद एक और तालिका बनाएं जिसमे आप अपने इच्छानुसार समय को नियोजित करें। समय नियोजन में अपनी प्राथमिकताओं पर ध्यान दें। इससे आपको यह भी ज्ञात होगा कि जीवन के किस क्षेत्र मे समय को बढ़ाने की अपेक्षा है और जीवन के किस क्षेत्र से समय को घटाने की जरूरत है।

2.5.4 आत्म-निरीक्षण करें

प्राथमिकताओं को निर्धारित करने का उपयोगी उपाय यह है कि आप कल्पना करें कि मुझे मात्र एक वर्ष जीना है। इस वर्ष के समय व शक्ति का उपयोग किस प्रकार करना है। उन कार्यों को अपने आप करते हुए अनुभव करें। उनकी अनुभूति करें।

अब मात्र छः महीने जीने के लिए शेष हैं। अब एक सप्ताह मात्र है। अब गौर करें कि आपकी प्राथमिकताएं व अनुभूतियां किस प्रकार बदल रही हैं। आपने अपनी प्राथमिकताओं एवं मूल्यों के बारे में क्या सीखा है? क्या इन प्राथमिकताओं व मूल्यों को जीवन में निर्णय करते समय सही स्थान दे सकते हैं?

2.5.5 अभ्यास करें

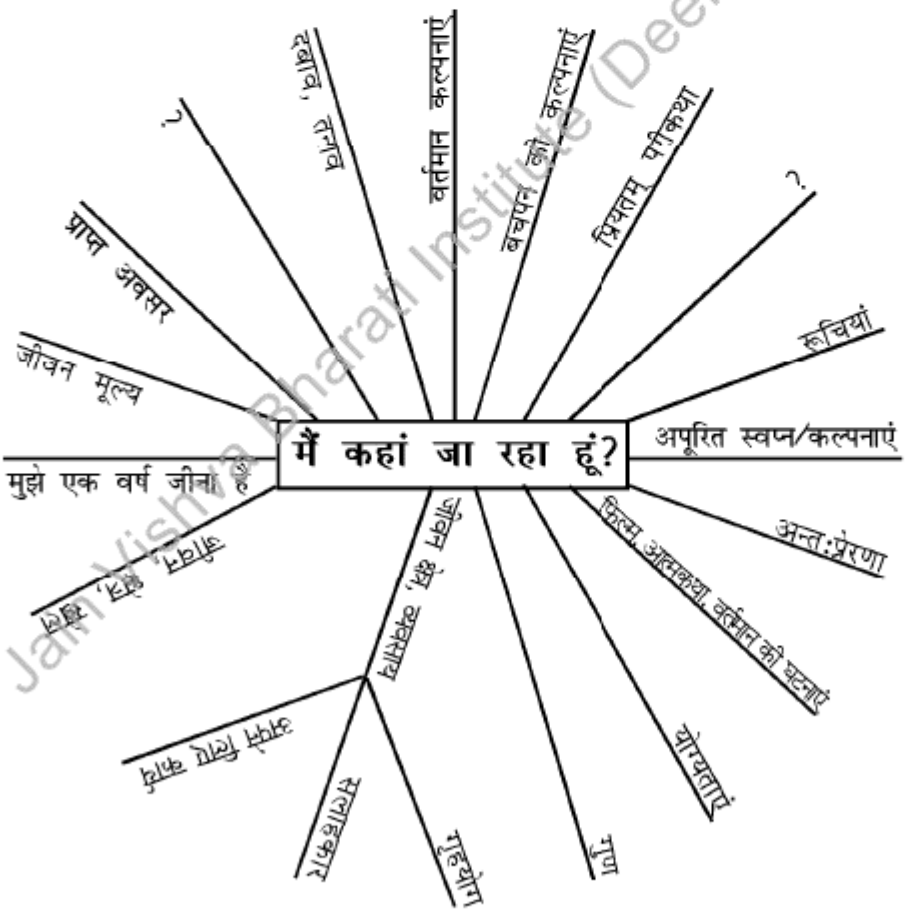

"मैं कहां जा रहा हूं" इस प्रश्न के समाधान मे विभिन्न दृष्टियो से आने वाले समाधानो को वृक्षाकार रूप में लिखें। अपनी अपेक्षाएं, अन्तःप्रेरणाएं, आकांक्षाएं, व्यवसाय इन सबको लिखे। इसके साथ संभावित अवसर, बचपन के आदर्श, प्रतीक, स्वप्न, कल्पनाएं, रूचियां, रूचिकर आत्मकथाएं, पुस्तकें आदि सभी को लिखें। उनको भी लिखे जो आपको आनन्द प्रदान करते हैं। इन तथ्यों के मध्य सम्बन्धों को खोजें एवं पता लगायें कि ये तथ्य आपको किस दिशा की ओर प्रेरित कर रहे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यदि आपको दिशा- बोध हो जाये या आपको दिशा-बोध खोजना पड़े तो इन बिन्दुओं पर विचार करें-

* प्रत्येक अवसर का मूल्यांकन करें।

* उसके पक्ष -प्रतिपक्ष, लाभ-हानि पर विचार करें।

* उसके महत्त्व को पहचानें।

* उसकी प्राप्ति के लिए भीतर की अन्त:प्रेरणा की न सघनता है या नही, इस पर विचार करें।

यदि आपको बहुत सारी दिशाएं दिखाई पड़े तो उसके पारस्परिक सम्बन्धों को जोड़ना होगा। आपको प्राथमिकताओं का निर्धारण करना होगा। उनमें से कुछ को तात्कालिक रूप से निलम्बित करना होगा, छोड़ना होगा।

2.6 आपको कौन रोक रहा है?

नई दिशा में जाने का व्यक्तिगत संकल्प व निर्णय अनेक चुनौतियों और बाधाओं को निमंत्रण है। इन चुनौतियों एवं बाधाओं को पार कर ही मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। ये बाधाएं अतीत से सम्बंधित हो सकती है या लक्ष्य प्राप्ति की यात्रागत भविष्य में आने वाली चुनौतियों का संकेत। ये बाधाएं हमें ज्ञात और स्पष्ट हो सकती हैं या अज्ञात और अस्पष्ट भी।

इन बाधाओं के प्रति जागरूक होकर हम उनसे निपटने का कोई उपाय ढूंढ़ सकते हैं। कुछ लोग क्रूर तरीके अपनाते हैं, कुछ लोग उन्हें छिपाने का प्रयत्न करते हैं, कुछ सीधा सामना करते हैं और कुछ उनसे बचना चाहते हैं। इन बाधाओं को पार पाने की आपकी योग्यता ही आपकी लक्ष्य प्रतिबद्धता अन्त:प्रेरणा और कौशल का मापदण्ड है।

कुछ व्यक्ति विकास के बाधक तत्त्वों को आसानी से पहचान लेते हैं, कुछ नहीं पहचान पाते हैं। कुछ व्यक्ति समझते हैं कि वे जानते हैं किन्तु वास्तव में जानते नहीं। कुछ जानते हैं तो उनकी वास्तविकता को अनुभव नहीं कर पाते। बहुत सारे लोग इसके बारे में अस्पष्ट होते हैं। वे इसको स्पष्ट नहीं कर पाते, फलत: इसका उपयोग भी नहीं कर पाते हैं।

2.6.1 बाधाओं की पहचान

जब बाधाओं के प्रति आप जागरूक हैं और उसे अभिव्यक्त कर सकते हैं तब वृक्षाकार लेखन में समस्याओं की अभिव्यक्ति बहुत सहयोगी बनती है। इससे उस पर विचार-विमर्श व समस्या समाधान में सहयोग मिलता है।

बाधाओं की अभिव्यक्ति कभी-कभी स्पष्ट रूप से करने में कठिनाई होती है। वह हमारे ध्यान में ही नहीं आ पाती है। उसको ध्यान में लाने के लिए निम्नलिखित प्रयोग करें।

2.6.2 अभ्यास करें

बाधाओं की पहचान का सरलतम् तरीका यह है कि जो बाधाएं हमारे ध्यान में आ रही हैं उनको लिखते चले जाना। उनको वृक्षाकार रूप में लिखने से विकास यात्रा में उनके अवरोधों के आपसी सम्बंधों का भी ज्ञान हो जाता है।

बाधाओं की पहचान जितनी अधिक सटीक और स्पष्ट होगी उतनी ही उसको सुलझाने के लिए सहयोग मिलेगा। ''समाधान-चक्र'' का उपयोग किया जा सकेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

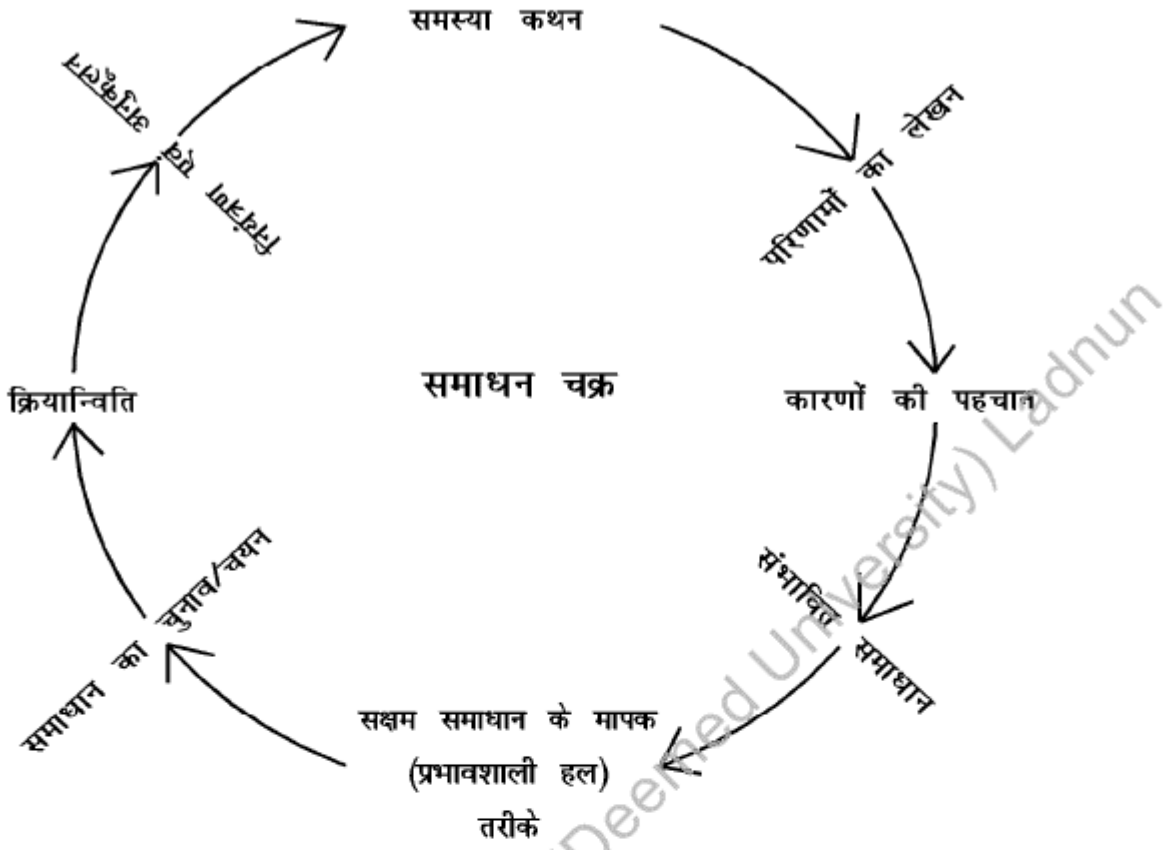

जिन बाधाओं का आप सामना कर रहे हैं वह आपके जीवन में आई हुई बाधाओं से अनेक अर्थों में समान भी हो सकती है। यह आपको शायद ख्याल भी न हो कि ये बाधाएं आपके ही विचार व व्यवहार के कारण पैदा हुई है।

2.6.3 आत्म-निरीक्षण

दीवार की ओर मुंह करके आसन पर बैठें। कल्पना करें कि वह दीवार तुम्हारी बाधा है। (कल्पना के लिए आंखें बन्द करने से सुविधा हो तो आंखें कोमलता से बन्द कर लें।) प्रयत्न करें यदि आप बाधा की कोई तस्वीर दिमाग में बना सकें।

यह तस्वीर कैसी लगती है। उदाहरण स्वरूप —उसके रंग, रूप, आकार की कल्पना करें। कुछ देर तक बारीकी से प्रत्येक जानकारी का अनुभव करें। क्या यह कोई व्यक्ति है? वस्तु है? या विचार है? उस बाधा को देखते हुए अपने भीतर उठने वाले भाव, दृष्टिकोण और विचार को अनुभव करें।

अब आप स्वयं बाधामय बन जायें। उसको आसन पर बिठा लें और आप उसके सामने दीवार की तरफ बैठ जायें। ऐसी कल्पना करें। अब इस प्रकार स्वयं का बाधा बनने पर आपको कैसा लगता है। आप इसके बारे में क्या सोच रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं। जो आपके सामने आसन पर बैठा है उसके प्रति आपका दृष्टिकोण क्या है? क्या आप उसे पसन्द करते हैं या नापसन्द। बाधा के रूप में आप बतायें कि जीवन में आपका क्या प्रयोजन है?

एक बार यदि आपने बाधा को अन्दर से पहचानने के लिए समय लगाया तो वह आपसे वार्तालाप (अन्तर्वार्तालाप) करने लगेगा। 'बाधा' क्या कहना चाहती है? क्या यह कहना चाहती है कि रुक जाओ, इस दिशा में मत जाओ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

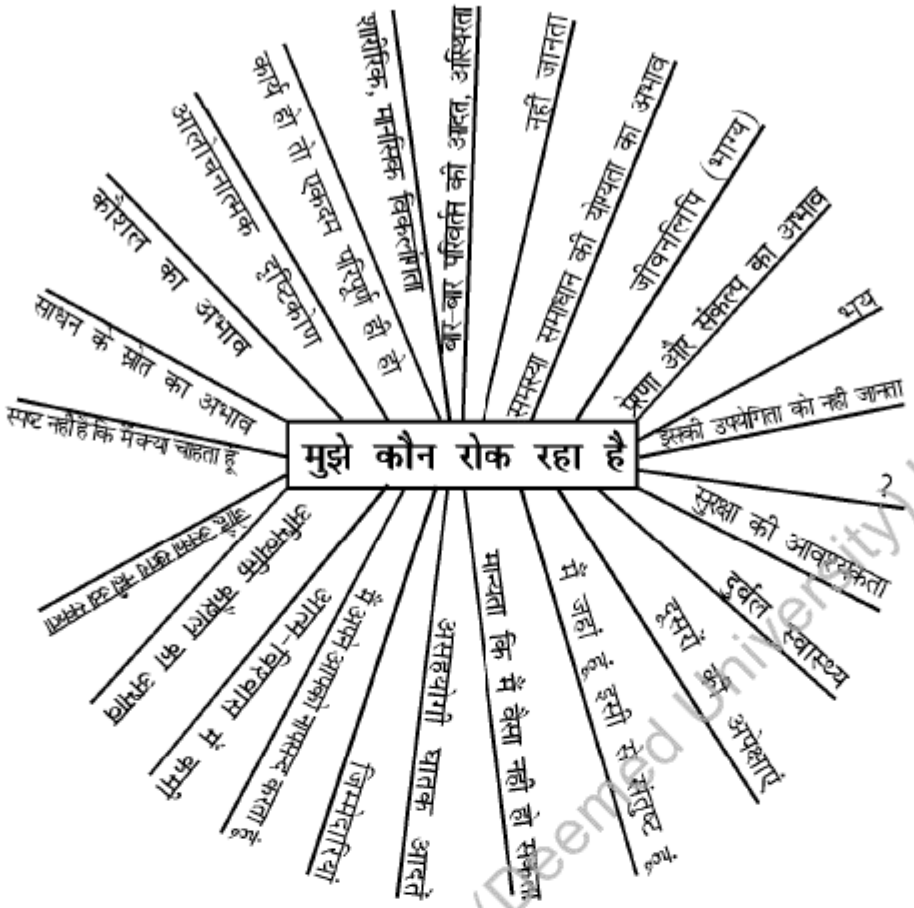

बाधा को अधिक से अधिक अभिव्यक्ति का अवसर दो। फिर तुम कल्पना लोक में अपना आसन ग्रहण करो और उसको उत्तर दो। इस प्रकार पुनः-पुनः उसको आसन पर बिठाकर और स्वयं आसन पर बैठकर संवाद स्थापित करो। प्रत्येक को अपनी इच्छा, सहमति या असहमति को प्रस्तुत करने दो। देखो यदि दोनों ही अपनी इच्छा पूर्त्ति के लिए अपनी राह निकाल सकें, आपस में वार्तालाप कर सकें, आपस में वार्ता कर सकें।

यदि आंतरिक बाधा है तो उसकी वार्ता अपने साथियों और बच्चों से कराना भी उपयोगी होता है। इस परीक्षण का परिणाम बहुत आश्चर्यजनक हो सकता है, यह आपके भीतर बाधा को नये ढंग से प्रकाशित करेगा और उसके समाधान के मार्ग को प्रशस्त करेगा।

2.7 आप वहां कैसे पहुंचेंगे?

सुव्यवस्थित योजना के अभाव में अनेक अच्छे निर्णय क्रियान्वित नहीं हो पाते हैं। हमारे पास अनेक अच्छे विचार होते हैं। हम बिना किसी योजना के सीधे कार्य प्रारंभ कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि हमें कार्य बहुत असंभव लगने लगता है और अनुभव होता है कि कार्य के लिए अपेक्षित समय, शक्ति व प्रेरणा की वास्तव में कमी है। इस समस्या का समाधान यह है कि कार्य प्रारंभ करने से पहले सावधानी पूर्वक सुव्यवस्थित योजना तैयार कर लेना।

योजना तैयार करने के कार्य को कुछ चरणों में बांटना होगा—

1. हमें पहला कार्य यह करना होगा कि हम पता लगायें कि हम जहां हैं और वहां से जहां जाना चाहते हैं, वहां कैसे पहुंचेंगे?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. दूसरा, पूरी योजना को छोटे-छोटे खण्डों में बांटना होगा।
3. योजना के खण्डों को क्रमानुसार सुव्यवस्थित करके उसे पूरा करने का समय व आवश्यक अवधि का उल्लेख करना होगा।
4. निर्णय को सफलता से निष्पन्न करने के लिए क्या-क्या संसाधन व सहायता अपेक्षित होगी।

2.7.1 ऊर्जा क्षेत्र का विश्लेषण (Force field Analysis)

हम वहां कैसे पहुंचें? इसका रेखाचित्र समाज विज्ञानी कुर्ट लेविन ने इस प्रकार सुझाया है—उनके अनुसार हम हमेशा साम्य अवस्था (Equilibrium) को बनाये रखते हैं। वह अवस्था स्थिर ही क्यों न हो? यह साम्यावस्था दो विपरीत दिशाओं से लगने वाली ऊर्जा या शक्तियों के संतुलन के कारण है। शक्ति क्षेत्र का विश्लेषण अनुकूल और प्रतिकूल शक्तियों के रेखाचित्र बनाने में सहायता करता है। खड़ी लकीरों की लम्बाई उसकी शक्ति को दर्शाती है।

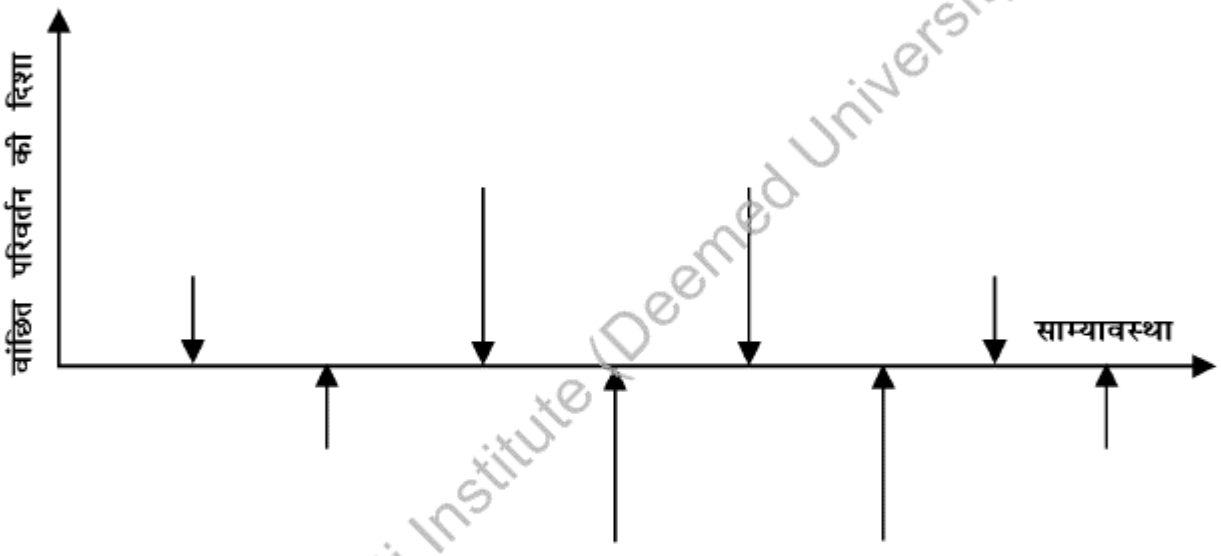

अपेक्षित दिशा में बढ़ने के लिए अनेक विकल्प हैं—

* अनुकूल शक्तियों को विकसित करें।
* दोनों को एक साथ करें।
* प्रतिकूल शक्तियों को कम करें।
* नई शक्तियों का उपयोग करें।
* परिवर्तन के दबाव को कम करें। हो सकता है आपकी अत्यधिक आकांक्षा भी प्रतिकूल पड़ती है।

2.7.2 अभ्यास करें

मैं वहां कैसे पहुंचूं? इस पर चिंतन करें। इस प्रश्न को केन्द्र में रखकर इसके चारों ओर रेखाएं बनाएं एवं उभरने वाले समाधान को लिखें। संभावित सभी समाधानों की कल्पना करें। वे यथार्थ हो या अयथार्थ। एक बार उन्हें लिख लें। बाद में उनको व्यावहारिक रूप देने पर विचार करें। अनेक बार अयथार्थ बातें भी प्रभावी समाधान खोजने की दिशा में महत्त्वपूर्ण साबित होती हैं। बाद में संभावित समाधानों को अपने विश्वास, मूल्य, आस्था, बाधाएं, सीमाएं आदि के संदर्भ में देखें। इससे आप एक ऐसे समाधान पर पहुंचेंगे जो सभी दृष्टिकोण से समन्वित होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

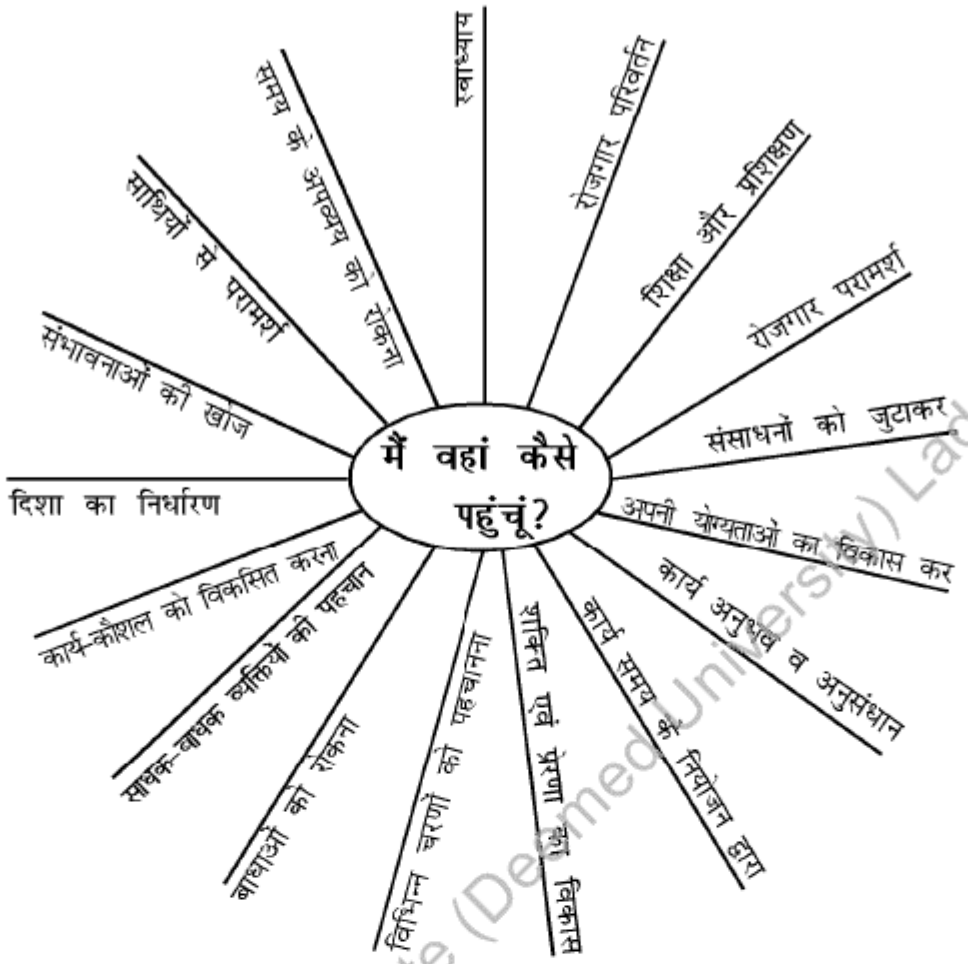

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बोध प्रश्न :

1. स्व-जीवन का रेखाचित्र से क्या तात्पर्य है।
2. 'मै कहां से आया हूं' से सम्बन्धित घटनाओं का रेखाचित्र बनाएं।
3. अपने विकास का मापन कैसे करेंगे?
4. 'मुझे कौन रोक रहा है' के लिए स्वयं का आत्म-निरीक्षण करें।

2.8 वहां पहुंचने के लिए हमें क्या-क्या सहयोग चाहिए?

नये कार्य को प्रारंभ करते समय हमारे पास सही साधन होने चाहिए। सही साधनों के अभाव में कार्य पूरा नहीं हो पाता है। अनेक बार कार्य को छोड़ना पड़ता है या देर हो जाती है।

अत: हमें अपने संसाधनों का रेखाचित्र बना लेना चाहिए। कौन-से साधन हमें कार्य प्रारंभ करने के पूर्व आवश्यक होंगे और कौन-से साधन कार्य के समय आवश्यक होंगे? हम अपने आवश्यक साधनों को तीन भागों में बांट सकते हैं—

1. व्यक्तिगत संसाधन
2. मानव संसाधन
3. वस्तु सम्बंधी

2.8.1 व्यक्तिगत संसाधन

व्यक्तिगत संसाधन की पहचान स्व-मूल्यांकन द्वारा किया जा सकता है। स्व-मूल्यांकन के अन्तर्गत आप अपने बारे में अपने मित्रों से तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

इस स्व-मूल्यांकन में अपनी योग्यता, ज्ञान, कौशल, मूल्य, आस्था, विश्वास, दृष्टिकोण, आकांक्षाएं आदि सभी बातों का समावेश अपेक्षित होगा।

अपनी वर्तमान क्षमताओं की तुलना अपेक्षित साधनों से करनी होगी क्योंकि इनकी आवश्यकता हमें लक्ष्य तक पहुंचने एवं वहां पर स्थिर रहने के लिए है।

यह तुलना उन बातों को भी स्पष्ट करेगी जिनकी अपेक्षा हमें कार्य प्रारंभ करने के पूर्व एवं कार्य के दौरान होगी।

2.8.2 मानव संसाधन

सफलता के लिए मानव संसाधन की अत्यन्त अपेक्षा होती है। कार्य के दौरान अनुभवी मित्र, पथ-दर्शक या गुरु की आवश्यकता होती है जो कार्य में आपके उत्साह को बनाये रख सके। कार्य के मूल्यांकन के लिए मित्रों की समालोचना उपयोगी हो सकती है। वे आपके विचारों को धैर्य से सुनकर रचनात्मक सुझाव व समालोचना कर सकते हैं।

किसी बड़े कार्य के लिए पारिवारिक सम्बंधियों के सहयोग की भी अपेक्षा रहती है। परिवार के अतिरिक्त भी सही सूचना व ज्ञान प्राप्त करने के लिए अन्य लोगों की सहायता की भी आवश्यकता हो सकती है। परामर्शवादी संस्थाओं के सहयोग का भी उपयोग किया जा सकता है। ऐसे व्यक्तियों का चुनाव करें जो आपकी भावनाओं के अनुरूप आपके साथ चल सकें। आपको वात्सल्य पूर्वक मार्गदर्शन दे सकें।

2.8.3 वस्तुगत संसाधन

इस प्रकार के संसाधनों में मुख्य रूप से आर्थिक साधन व उपकरणों का समावेश होता है। समय एवं अवसर की उपलब्धता पर भी ध्यान देना होता है। अपनी क्षमताओं को पूरा उपयोग करने के लिए सम्पूर्ण साधनों पर ध्यान देना आवश्यक है। यह कहना उचित नहीं होगा कि हमारे पास संसाधन नहीं है एवं हाथ पर हाथ धरकर बैठ जायें।

2.8.4 अभ्यास करें

रेखाचित्र बनाएं, रेखाचित्र के केन्द्र में लिखें—'वहां तक पहुंचने के लिए क्या साधन अपेक्षित होंगे।' केन्द्र से शाखा-प्रशाखाओं को निकालें। शाखा-प्रशाखाओं में उन व्यक्तियों को लिखें, जो आपसे सम्बंधित हैं, उनको आपसे अपेक्षा क्या है और आपकी उनसे अपेक्षाओं को भी लिखें। आप जो जीवन में परिवर्तन लाना चाहते हैं, वह उन अपेक्षाओं को प्रभावित कर सकती है, अपनी प्रतिबद्धता एवं अपेक्षाओं को स्पष्ट करने से, उन लोगों से बातचीत करने, सहयोग लेने और आपसी समझ को बढ़ाने में सुविधा होगी। जिन व्यक्तियों को आपने रेखाचित्र में लिखा है, वह आपको क्या और किस प्रकार का सहयोग दे सकते हैं। उदाहरण के लिए—क्या वे आपके आंतरिक जीवन में सहयोग दे सकते हैं? या बाह्य क्रिया-प्रक्रिया में? क्या वे लोग वह सहयोग दे सकते हैं, जो आप चाहते हैं या आपको सहयोग कहीं अन्य खोजना होगा?

2.8.5 आत्म-निरीक्षण करें

रेखाचित्र बनाएं, उसमें आवश्यक साधनों के बारे में लिखें, उनमें से कौन-से अत्यावश्यक है उनको भी चिह्नित करें, अभी आपके पास क्या है और किसकी तुरंत जरूरत होगी तथा किसकी बाद में जरूरत होगी?—समालोचना के लिए अपने मित्र या विशेषज्ञ की राय लें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

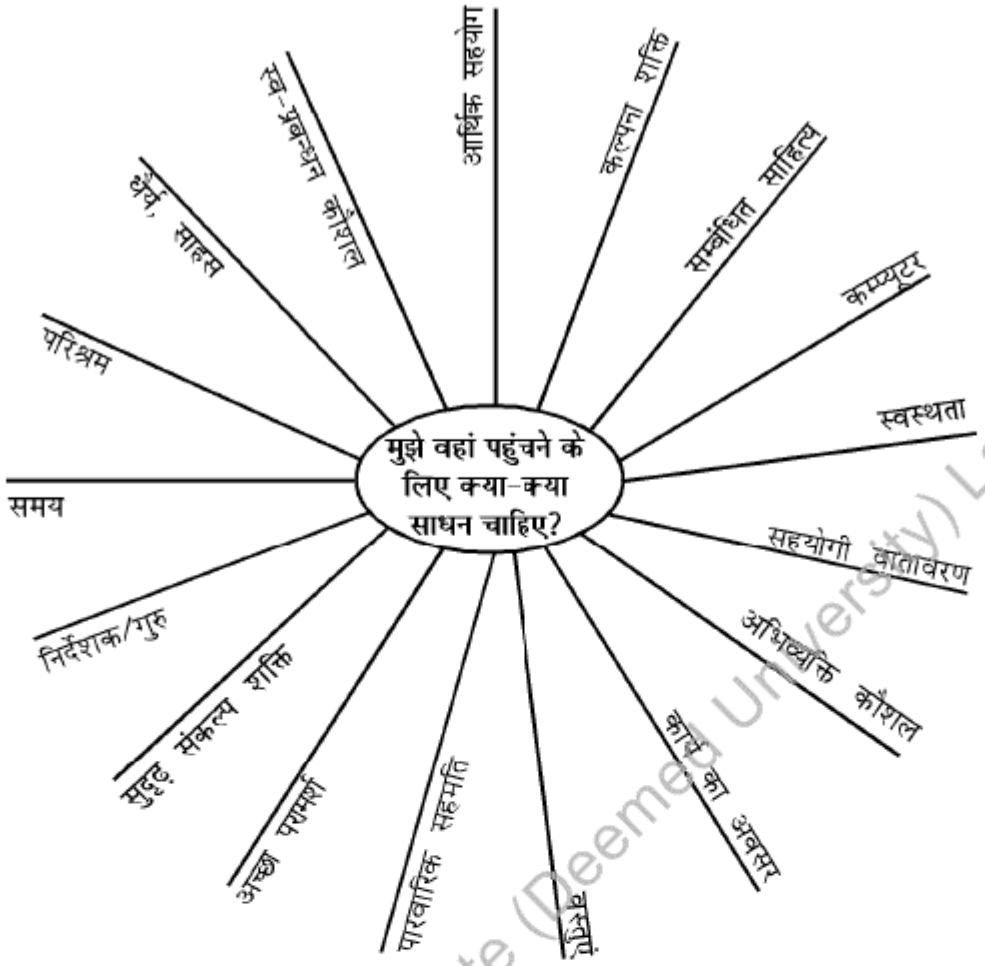

2.9 वहां पहुंचने पर कैसा लगेगा?

जीवन में अपने लक्ष्य का स्पष्ट बोध आवश्यक है। हम जो पाना चाहते हैं उसकी स्पष्ट तस्वीर हमारे मस्तिष्क में होनी चाहिए। जिसको पाने के लिए हम अपनी पूरी शक्ति लगाने जा रहे हैं, उसका स्पष्ट-बोध या आंकलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भवन-निर्माता जिस प्रकार भवन निर्माण से पूर्व भवन का स्पष्ट प्रारूप, रूपरेखा को तैयार कर लेता है, वैसे ही लक्ष्य प्राप्ति में पुरुषार्थ से पूर्व लक्ष्य का स्पष्ट बोध महत्त्वपूर्ण है।

लक्ष्य के स्पष्ट बोध से तीन प्रयोजन पूरे होते हैं—

1. इससे कार्य योजना में आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन किये जा सकते हैं।
2. आने वाली बाधाओं, कठिनाइयों व चुनौतियों को पहले से ही भांपना आसान हो जाता है।
3. यह लक्ष्य-प्राप्ति तक उत्साह को पैदा करता है एवं रूचि को बनाये रखता है।

आपको भी अपने लक्ष्य को स्पष्ट करने की आवश्यकता है—

2.9.1 लक्ष्य की रूपरेखा

यदि अब तक पीछे की रूपरेखाएं आपने तैयार कर ली हैं तो आपको आपकी भावी दिशाओं, आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों और वहां पहुंचने की प्रक्रियाओं का अंदाज लग गया होगा अथवा यह भी हो सकता है कि जहां जाना है या जिसे प्राप्त करना है, वह अभी भी स्पष्ट नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपेक्षा यह है कि आपको अपने अतीत को समन्वित करना है एवं भविष्य की रूपरेखा को यथार्थ के धरातल पर देखना है, निर्माण करना है। यह रूपरेखा आपको अपनी मंजिल की दिशा में आगे बढ़ाएगी। जैसे-जैसे आप अपनी भावी रूपरेखा पर ध्यान केन्द्रित करेंगे यह आपकी अन्त:प्रेरणा व शक्ति को जगाएगी। आगे बढ़ने की इच्छा व भावना को सक्रिय करेगी।

यह आवश्यक है कि नियमित रूप से प्रतिदिन कुछ समय 'लक्ष्य की रूपरेखा' एवं उसके परिणामों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए निकालें। इस ध्यान से आपके लक्ष्य का संकल्प व इसके प्रति समर्पण सुदृढ़ होगा। आपकी स्थिति मजबूत होगी। उस दिशा में प्रगति में तीव्रता आएगी।

2.9.2 आंतरिक प्रतिरोध का सामना

अपने भीतर लक्ष्य के प्रतिकूल विचार या संशय होने पर लक्ष्य को स्थिर रखना कठिन हो जाता है। अत्यधिक भय एवं प्रतिरोध की स्थिति में लक्ष्य की रूपरेखा बिखर जाती है। ऐसी स्थिति में यह अपेक्षित है कि प्रतिकूल विचारों को देखें, समझें व उन्हें समाहित करें।

प्रतिकूल विचारों को दबाने, उपेक्षा करने या अपने लक्ष्य को स्वयं अपने ऊपर थोपने से भी भीतर विस्फोटक स्थिति बन सकती है। जब भी प्रतिकूल विचारों का सामना हो तो उनसे लड़ना नहीं चाहिए बल्कि द्रष्टाभाव से उन्हें भी स्वीकार करना चाहिए। जीवन में परिवर्तन लाना या अज्ञात दिशा में बढ़ना भयानक एवं चुनौतीपूर्ण होता है। अत: यदि आने वाली कठिनाइयों को जानते हैं एवं उनको झेलने के लिए तैयार रहते हैं तब उनके आने पर हमे उतनी निराशा नही होगी। हमारा उत्साह खण्डित नही होगा।

लक्ष्य-निर्माण एवं उसकी प्राप्ति तक यदि हम अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट एवं खुला रखेंगे तो मार्ग में आने वाले संशय, कठिनाइयां एवं बाधाएं स्वत: समाहित होती जाएंगी। इसके लिए आवश्यक है कि हम धैर्य और निरन्तरता को बनाए रखें। संशय एवं प्रतिरोध को अपने ऊपर हावी न होने दें। उनका भी हम अपने लक्ष्य की दिशा में प्रगति के लिए लाभ उठाएं।

2.9.3 लक्ष्य का अन्तर्दर्शन

आपने अब तक जीवन के विभिन्न नक्शों का निर्माण किया है। जब लक्ष्य के अन्तर्दर्शन का अभ्यास करेंगे तो जीवन के इन विभिन्न नक्शों का पुन:-पुन: अवलोकन होगा। लक्ष्य का अन्तर्दर्शन लक्ष्य प्राप्ति हेतु आपकी मानसिकता को सुदृढ़ करेगा।

लक्ष्य के अन्तर्दर्शन के समय अपने लक्ष्य का साक्षात्कार करें। उसे अपनी अन्तर्दृष्टि से, कल्पना द्वारा विविध रंगों से रंग दें। उसको गतिशील चलचित्र की तरह घटित होता देखें। उसके आकार को कभी छोटा करें, कभी बड़ा करें। जितने तरीकों से उसका विस्तार कर सकें उतना करें। अन्तर्दर्शन के अतिरिक्त दैनिक डायरी में लक्ष्य से सम्बद्ध प्रतिदिन के विचारों को लिखें, अपने स्वप्नों की व्याख्या करें, महान् व्यक्तियों की जीवनियों को पढ़ें। इन प्रक्रियाओं को अन्तर्दर्शन के अभ्यास के पश्चात् प्रतिदिन करें।

अपने लक्ष्य के प्रारूप एवं रेखाचित्रों को ऐसे स्थान पर भी लगाएं जहां पर आपकी दृष्टि पड़ती रहे एवं वे बार-बार आपको अपने लक्ष्य की याद दिलाते रहें। इस प्रक्रिया से आपको अपनी कल्पना शक्ति का अधिकतम उपयोग करने में मदद मिलेगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.9.4 अभ्यास करें

अपने विचार व योजनाओं को क्रियान्वित करने से पूर्व ध्यान में बैठकर विचार करें कि लक्ष्य-प्राप्ति पर मेरा जीवन कैसा होगा? यदि इससे जीवन में अचानक बहुत बड़ा परिवर्तन लगे तो लक्ष्य को विभिन्न चरणों में बांटें। उन्हें लक्ष्य-बोध के समय अधिक परिष्कृत करें।

अगले चरण में लक्ष्य में निहित कोई असंभव या मिथ्या कल्पना हो तो उसे दूर करें। अपने विश्वस्त मित्र को लक्ष्य की स्पष्टता व प्रतिबद्धता को जांचने के लिए तर्क एवं परीक्षण करने के लिए प्रेरित करें।

अंतिम चरण में, जब आप अपने लक्ष्य के प्रति पूर्णतया आश्वस्त हो जायें तब लक्ष्य की प्राप्ति होने पर कैसा लगेगा? उसकी कल्पना करें। लक्ष्य प्राप्ति के परिणामों की कल्पना को आंखों से देखें। इससे लक्ष्य प्राप्ति हेतु आपके भीतर तीव्र अन्तःप्रेरणा जागृत हो सकेगी। आपकी अन्तःप्रेरणा ही आपको अपने लक्ष्य तक पहुंचाएगी।

2.10 सारांश

स्व-प्रबन्धन में स्वयं के जीवन के बारे में जानने के लिए विभिन्न रेखाचित्रों का उपयोग किया गया है। इस पद्धति का विकास 'जोन हीरोन' ने किया। ये रेखाचित्र अपने जीवन के अतीत, वर्तमान और भविष्य को जोड़ने में सहायक होते हैं।

जीवन से सम्बंधित सबसे पहला प्रश्न है—'मैं कौन हूं?' व्यक्ति के आंतरिक स्रोत—विश्वास, मूल्य, इच्छाएं एवं आकांक्षाएं उसे अपने वास्तविक स्वरूप से जोड़ते हैं। सब उपाधियों से परे शब्दातीत अनुभव, वह निकटतम उत्तर है, जहां हमें अन्ततः पहुंचना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपने आपको जानने का तात्पर्य है—अपने अतीत को जानना। इससे व्यक्ति अतीत के प्रकाश में वर्तमान को समझकर भविष्य के दायित्व को स्वीकार करने की योग्यता प्राप्त करता है।

अनेक व्यक्ति अपने वर्तमान जीवन में एक साथ अनेक दिशाओं में अपनी शक्ति लगा देते हैं अत: उनकी प्रगति रुक जाती है। प्रगति के लिए सही दिशा को जानना आवश्यक है कि 'मैं कहां जा रहा हूं?'। दिशा निर्धारण के लिए एक विकल्प का चयन और अन्य विकल्पों का विसर्जन या स्थगन आवश्यक है। अन्यथा कम से कम प्राथमिकताओं का निर्धारण तो आवश्यक है ही।

नई दिशा में जाने का व्यक्तिगत संकल्प व निर्णय अनेक चुनौतियों और बाधाओं को निमंत्रण है। इन बाधाओं को पार पाने की योग्यता ही आपकी लक्ष्य प्रतिबद्धता, अन्त:प्रेरणा और कौशल का द्योतक है। इन बाधाओं के प्रति जागरूक रहकर ही व्यक्ति उनसे निपटने का कोई न कोई रास्ता निकाल सकता है।

सुव्यवस्थित योजना के द्वारा व्यक्ति अपने निर्णय को आसानी से क्रियान्वित कर सकता है। जिसके अंतर्गत वह अनुकूल शक्तियों को विकसित कर प्रतिकूल शक्तियों को कम कर, नई शक्तियों के विकास पर ध्यान केन्द्रित कर तथा इच्छाओं के दबाव को सीमित करके सफलता प्राप्त कर सकता है।

कार्य को प्रारंभ करते समय आवश्यक संसाधनों का बोध सफलता में उपयोगी होता है। अपनी क्षमताओं के अधिकतम उपयोग के लिए सम्पूर्ण साधनों पर ध्यान देना आवश्यक है।

व्यक्ति जीवन में जो पाना चाहता है यदि उसको उसका स्पष्ट बोध है तब उसके लिए कार्य योजना में परिवर्तन या संशोधन करना, आने वाली बाधाओं को भांपना आसान हो जाता है। इससे लक्ष्य-प्राप्ति तक उसमें उत्साह व अभिरूचि बनी रहती है।

2.11 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वयं की जीवन-यात्रा को समझने के लिए किन-किन रेखाचित्रों का उपयोग किया है और क्यों? विस्तार से प्रकाश डालें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'जीवन लिपि' क्या है? लक्ष्य प्राप्ति में उनकी क्या भूमिका है?
2. सुव्यवस्थित योजना के महत्त्व और चरणों को स्पष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. स्व-प्रबन्धन में स्वयं से परिचित होने के लिए ..... उपयोग किया गया है।
2. सुव्यवस्थित योजना के अभाव में अनेक ..... नहीं हो पाते हैं?
3. मैं कौन हूं? इसका निकटतम उत्तर क्या है?
4. स्वतंत्र व्यक्तित्व का क्या तात्पर्य है?
5. जीवन में प्राथमिकताओं के निर्धारण से क्या लाभ होता है?
6. लक्ष्य-प्राप्ति में आने वाली बाधाओं से कैसे निपटा जा सकता है?
7. अपेक्षित दिशा में बढ़ने के लिए क्या-क्या विकल्प हैं?
8. लक्ष्य में सफलता के लिए आवश्यक साधनों को कितने भागों में बांटा जा सकता है?
9. लक्ष्य के स्पष्ट बोध के क्या लाभ हैं?
10. लक्ष्य के अन्तर्दर्शन से क्या होता है।

2.12 संदर्भ पुस्तकें:

1. आचारांगभाष्यम्—आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं।
2. John Mulligan, Personal Management, 1988, Sphere Book Ltd., London

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-3 आत्म-विश्वास एवं अभिवृद्धि के उपाय

संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2.0 आत्म-विश्वास : अर्थ एवं स्वरूप

- 3.2.1 स्व-दर्शन
- 3.2.2 आत्म-छवि
- 3.2.3 आत्म-हीनता के दुष्परिणाम
- 3.2.4 आत्म-विश्वास के सुपरिणाम
- 3.2.5 स्वस्थ आत्म-छवि या सकारात्मक सोच वालों की विशिष्टताएं
- 3.2.6 अभ्यास

3.3.0 आत्म-विश्वास का स्रोत

- 3.3.1 आत्म-निरीक्षण करें
- 3.3.2 मिथ्या अवधारणाएं या मिथ्या दृष्टिकोण का बनना
- 3.3.3 सही अवधारणाएं
- 3.3.4 आत्म-विश्वास के क्षेत्र

3.4.0 आत्म-विश्वास एवं न्यूनता

- 3.4.1 निषेधात्मक सूचनाएं
- 3.4.2 परिणाम
- 3.4.3 कमजोर आत्म-विश्वासी का व्यवहार
- 3.4.4 आत्म-विश्वास का प्रयास

3.5.0 आत्म-विश्वास में विकास

- 3.5.1 आत्म-अन्वेषण
- 3.5.2 संस्कारों की प्रेक्षा
- 3.5.3 भावनाओं को देखना
- 3.5.4 शरीर को समझना
- 3.5.5 आत्म-विश्वास में अभिवृद्धि के उपाय
- 3.5.6 अभ्यास एवं स्मरणीय बातें

3.6.0 आत्म-विश्वास और पारस्परिक सम्बन्ध

- 3.6.1 अभिव्यक्ति क्षमता को विकसित करें
- 3.6.2 गुरूजनों की सम्मतियां प्राप्त करना
- 3.6.3 आत्म-निरीक्षण

3.7.0 सारांश

3.8.0 प्रश्नावली

3.9.0 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 प्रस्तावना

जीवन विज्ञान के छट्ठे पत्र 'स्व-प्रबन्धन में जीवन विज्ञान' के अंतर्गत आपने पूर्व पाठों में स्व-प्रबन्धन के स्वरूप एवं स्व-जीवन के बोध के बारे में जाना। आशा है कि दिये गये अभ्यासों को भी आपने पूरा किया होगा। इस पाठ में 'बोध' के आगे की बात 'विश्वास' पर चर्चा करेंगे। स्व-ज्ञान से स्वयं पर विश्वास पुष्ट होता है और पुन: विश्वास से ज्ञान। इसी से व्यक्ति सदाचार की दिशा में प्रस्थान करता है। अत: जैनाचार्य उमास्वाति ने मोक्ष मार्ग (शांति मार्ग) के सूत्र की चर्चा करते हुए कहा—''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:'' अर्थात् सम्यग् दर्शन (विश्वास), सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आत्म-विश्वास अर्थात् स्वयं पर विश्वास या स्वयं का विश्वास। विश्वास नई सूचना को ग्रहण करने के लिए छलनी का काम करता है। जो सूचना व्यक्ति के विश्वास के साथ मेल नहीं खाती उसको छांट दिया जाता है। उसे ग्रहण नहीं किया जाता। महत्त्व नहीं दिया जाता। दूसरी ओर जो सूचना या ज्ञान स्वयं के विश्वासों से मेल खाती है उसे आसानी से स्वीकार कर लिया जाता है।

इस प्रकार स्वयं के विश्वास नई सूचनाओं को ग्रहण करने में बाधक या साधक बनते हैं। वैसे ही नये कार्य को करने, सम्बंधों के निर्वाह करने या किसी भी समस्या का समाधान करने में भी स्वयं के विश्वास साधक या बाधक बनते रहते हैं। अत: स्वयं पर विश्वास को कैसे पुष्ट करें? स्वयं के विश्वासों को सकारात्मक कैसे बनाये रखें? प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में सफल होने के लिए इसका बोध आवश्यक है।

वस्तुत: जीवन में घटने वाली किसी भी घटना या परिस्थिति का अपना कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं होता है। व्यक्ति उसे जिस दृष्टिकोण या आस्था से ग्रहण करता है वही उसका मूल्य हो जाता है। एक व्यक्ति के लिए टिकट की लम्बी लाईन में खड़ा होना परेशानी का कारण बन सकता है। वहीं दूसरी ओर दूसरे व्यक्ति के लिए यह एक सामान्य दैनिक घटना भी हो सकती है। अत: हमारे विश्वास, दृष्टिकोण एवं आस्था ही हमारे जीवन को अर्थ प्रदान करते हैं। अत: हम अपने आपको कैसे देखते हैं, स्वयं की क्या व्याख्या करते हैं, उसका हमारे जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति पर बहुत गहरा असर होता है। इस पाठ में हम विस्तार से 'आत्म-विश्वास' के बारे में अध्ययन करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस पाठ में आप विस्तार से जानेंगे कि—

1. आत्म-विश्वास का अर्थ एवं स्वरूप क्या है?
2. आत्म-विश्वास के स्रोत क्या-क्या हैं?
3. आत्म-विश्वास में न्यूनता कब आती है?
4. आत्म-विश्वास में वृद्धि कैसे हो सकती है?
5. आत्म-विश्वास का पारस्परिक सम्बंधों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

3.2 आत्म-विश्वास : अर्थ एवं स्वरूप

आत्म-विश्वास का प्रभाव हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है। अपनी सफलता या असफलता और आपसी सम्बन्धों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। एक सुदृढ़ आत्म-विश्वास से सम्पन्न व्यक्ति के जीवन में प्रसन्नता, संतुष्टि और सार्थक उद्देश्य सहज ही दिखाई देते हैं। स्वयं में सुदृढ़ आत्म-विश्वास स्वयं की उपयोगिता व सार्थकता को समझने से पैदा होती है। जब तक हम स्वयं की सही उपयोगिता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्वयं नहीं समझेंगे तब तक आत्म-विश्वास गहरा व सुदृढ़ नहीं हो सकता। साथ ही अच्छे आत्म-विश्वास के लिए स्वयं की 'आन्तरिक प्रेरणा' का होना एवं उसे समझकर आगे बढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।

आत्म विश्वास क्या है? यहां दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं आत्म और विश्वास। आत्मा का तात्पर्य यहां पर दार्शनिक शब्द 'आत्मा' से नहीं है। यहां इसका अर्थ है—'स्वयं', 'अपना' या खुद से है। हम जैसा भी वर्तमान में स्वयं को अनुभव करते हैं उससे है। विश्वास का अर्थ है—निष्ठा, आस्था, प्रतीति आदि। आत्म-विश्वास का शाब्दिक अर्थ हुआ—स्वयं में आस्था और स्वयं के विश्वास।

आत्म-विश्वास अपने आप पर विश्वास का एक स्तर है। यह स्वयं की स्वीकृति है कि हम अपने आपको कितना स्वीकार करते हैं। अपने भीतर अच्छाई एवं बुराई दोनों के अस्तित्व को जैसा है वैसा स्वीकार करते हैं या नहीं? मानसिक रूप से स्वयं को कितना अच्छा और स्वस्थ अनुभव करते हैं?

आत्म विश्वास का सामान्य अर्थ यह है कि—

1. हम अपने बारे में क्या विश्वास रखते हैं?
2. हम स्वयं के बारे में कैसा अनुभव करते हैं?
3. हमारा स्वयं के प्रति दृष्टिकोण कैसा है?
4. हमारा विश्वास, हमारी धारणाएं क्या-क्या हैं?

आत्म-विश्वास से ही व्यक्ति अपने कार्य के प्रति पूर्ण रूप से जुड़ पाता है एवं सार्थक उद्देश्य की प्राप्ति में सर्वात्मना समर्पित हो जाता है। जब व्यक्ति में स्वयं के प्रति यह विश्वास नहीं होता कि मैं यह कार्य कर सकता हूं। तब तक वह कार्य के लिए प्रयत्न भी नहीं कर सकता है। कार्य-निष्पत्ति के लिए स्वयं पर भरोसा जरूरी है। आत्म-विश्वास का आत्म-छवि, स्वाभिमान, आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान, सम्यक्-दृष्टिकोण आदि शब्दों से बहुत निकटता का सम्बन्ध है।

3.2.1 स्व-दर्शन

बार-बार देखने (दर्शन) व अवलोकन करने से विश्वास बनता है। यदि व्यक्ति से पूछा जाये कि आप अपने आपको कैसे देखते हैं? उस समय संभवतया व्यक्ति मौन रह जाता है या यह बताता है कि मैं कितना लम्बा-चौड़ा हूं, रंग कैसा है, चेहरा कैसा है, आंखें कैसी हैं आदि-आदि। इस प्रकार व्यक्ति अपने बारे में भौतिक दृष्टिकोण से बहुत कुछ बताता है या अपने जीवन-वृत्तान्त, व्यवसाय आदि को बताता है। वास्तव में ये सब अपने यथार्थ स्वरूप को अभिव्यक्त नहीं करते हैं। यदि व्यक्ति गहराई में जाये, प्रेक्षा करे अर्थात् अपनी बाह्य छवि, अपनी कला व योग्यताओं से भी आगे देखें तो वहां उसे मिलेगा स्वयं का अनुभव, स्वयं का वास्तविक बोध एवं उससे उत्पन्न स्वयं पर विश्वास, आत्म-विश्वास। आत्म-विश्वास वस्तुतः स्वयं की उपयोगिता, स्वयं की मूल्यवत्ता, स्वयं के अस्तित्व की यथार्थता का स्वयं के द्वारा मूल्यांकन है। इसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप पर पड़ता है। यह स्वयं द्वारा स्वयं का मूल्यांकन हमेशा, हर कार्य में, हर परिस्थिति में एक जैसा स्थित नहीं रहता। यह बदलता रहता है। हम सामने आने वाले व्यक्ति, घटना, कार्य या परिस्थिति की तुलना में स्वयं को कैसे देखते हैं उसी के अनुरूप हमारे आत्म-विश्वास पर भी असर पड़ता है। वह भिन्न-भिन्न स्थिति में भिन्न-भिन्न हो जाता है।

अच्छा और सुदृढ़ आत्म-विश्वास होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम पूर्ण हो गये हैं या विकास और परिवर्तन की और कोई गुंजाइश नहीं है। इस स्थिति में भी व्यक्ति से त्रुटि हो सकती है, दूसरों की आलोचनाओं को सुनना पड़ सकता है, किन्तु ऐसे अवसरों पर वह निराश और हताश नहीं होता। उससे भी वह कुछ-न-कुछ सीखता है, आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.2.2 आत्म-छवि

आपकी दृष्टि में आप स्वयं को कैसा अनुभव करते हैं, वही आपकी आत्म-छवि है। आपके मानसिक जगत् में स्वयं का मूल्यांकन ही है आपकी आत्म-छवि। यह आत्म-छवि आपके आत्म-विश्वास को बहुत गहरे तक प्रभावित करती है। बचपन से ही हम प्राय: अपने बारे में दूसरों से सुनते हैं, उससे भी हम अपने बारे में धारणाएं बना लेते हैं, इससे एक छवि बन जाती है। उसको बदलना सामान्यत: आसान नहीं होता है।

स्वयं के बारे में नकारात्मक धारणाएं अथवा नकारात्मक आत्म-छवि मानसिक रूप से स्वयं को निष्क्रिय बना सकती है, दूसरे से मेल-जोल बढ़ाने की क्षमता को बाधित कर सकती है। दूसरी ओर स्वयं के बारे में सकारात्मक सोच या सकारात्मक आत्म-छवि मानसिक रूप से व्यक्ति को सक्रिय और मिलनसार बनाने में सहायक होती है।

सकारात्मक आत्म-छवि वाले व्यक्ति अनुभव करते है कि दूसरे व्यक्ति उन्हें चाहते हैं, उनमें योग्यता है, समाज उन्हें स्वीकार करता है। उनके पास कार्यविधा के अनेक विकल्प हैं। वे दूसरों को समझने की क्षमता रखते हैं। इसलिए सकारात्मक आत्म-छविवाले व्यक्तियों का व्यवहार भी उनके अपने अनुभवों के अनुकूल सकारात्मक होता है।

यद्यपि अपनी नकारात्मक छवि को बदलना कठिन है। फिर भी यह असंभव नहीं है, इसे बदला जा सकता है। अनेक उपाय हैं जिनको काम में लेकर नकारात्मक सोच को सकारात्मक सांचे में ढाला जा सकता है। स्वयं के निषेधात्मक विचारों की कैद से उन्मुक्त हो सकते हैं। इसके लिए आवश्यकता है—संकल्प बल और बदलने का विश्वास, कि मैं बदल सकता हूं। इससे आपकी आत्म-छवि सकारात्मक बनेगी। आपका आत्म-विश्वास सुदृढ़ और स्वस्थ बन जायेगा।

3.2.3 आत्महीनता के दुष्परिणाम

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति स्वयं को हीन समझते हैं एवं स्वयं के प्रति सही धारणाएं नहीं रखते हैं उनके लिए—

1. दूसरों से सम्पर्क बनाना कठिन होगा।
2. सही निर्णय लेने और उसे क्रियान्वित करने में अनावश्यक समय और शक्ति बहुत लगेगी।
3. अपने आसपास का वातावरण असुरक्षित और भयावह लगेगा।
4. दूसरों के द्वारा स्वयं की प्रशंसा को भी सही ढंग से लेने में कठिनाई होगी।
5. अधिकांश समय इस चिंता में ही गुजर जाएगा कि दूसरे व्यक्ति हमारे बारे में क्या सोचते हैं?

3.2.4 आत्म-विश्वास के सुपरिणाम

यदि हम स्वयं के बारे में सकारात्मक सोच रखते हैं और स्वयं में अच्छा अनुभव करते हैं, तब—

1. स्वयं में जीवंतता और शक्ति का अहसास होगा।
2. स्वयं की क्षमता में विश्वास रहेगा।
3. स्वयं में विश्वास रहेगा कि मैं समस्या आने पर उसका समाधान कर सकूंगा। अपने से जितना हो सकेगा उसमें कोई कसर नहीं रखूंगा।
4. हमारे पास दूसरों को देने के लिए बहुत कुछ होगा और अपनी प्रशंसा और प्रोत्साहन में भी हम अप्रभावित रह सकेंगे। अपना संतुलन बनाए रख सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. हम दूसरों के सुझावों और प्रतिक्रियाओं को सुनने के लिए खुले रह सकेंगे एवं आलोचनाओं को भी सही ढंग से स्वीकार कर सकेंगे।

3.2.5 स्वस्थ आत्म-छवि या सकारात्मक सोच वालों की विशिष्टताएं

स्वस्थ आत्म-छवि वाले व्यक्तियों में मुख्यतया निम्नलिखित विशिष्टताएं पाई जाती हैं—

1. व्यक्तियों के अपने निश्चित मूल्य और सिद्धान्त होते हैं, जिन पर उनका सुदृढ़ विश्वास होता है। वे हर कीमत पर उनकी सुरक्षा करना चाहते हैं। अति आवश्यक हो तो सोच-समझकर ही परिवर्तन करते हैं।

2. अपने सही निर्णयों को बिना किसी अफसोस या दु:ख के लागू करते हैं यद्यपि वे दूसरों की दृष्टि में ठीक न भी लगे।

3. अपना समय अतीत की भूलों पर गमगीन बनने एवं भविष्य की आशंकाओं में व्यर्थ नहीं करते।

4. वे असफलताओं में भी अपने मनोबल और आत्म-विश्वास को बनाए रखते हैं।

5. दूसरों की योग्यता, पद व प्रतिष्ठा के सामने स्वयं को हीन नहीं समझते। आध्यात्मिकता की दृष्टि से स्वयं को सबके समान समझते हैं।

6. दूसरों की एवं स्वयं की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील और जागरूक होते हैं।

7. दूसरों के अनधिकृत दबाव को अस्वीकार करने में सक्षम होते हैं।

8. दूसरों के प्रति दयालु एवं दूसरों की विशेषताओं को ग्रहण करने में तत्पर रहते हैं।

3.2.6 अभ्यास

ध्यान की मुद्रा में बैठें। धीमा लम्बा श्वास लें। जीवन के उन क्षणों को याद करें—

I. 1. जब आपने अपने आपको उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण पाया (चाहे वे क्षण केवल कुछ समय के लिए ही रहे हों)।

2. अब जीवन के उन क्षणों को भी याद करें जब आपको स्वयं में निरर्थकता का बोध हुआ। दोनों अनुभवों को गहराई से अनुभव करें।

3. अब एक से 10 तक के मापदण्ड की कल्पना करें। एक अंक बिल्कुल निरर्थक और 10 अंक पूर्ण सार्थक का द्योतक है।

4. अतीत के विभिन्न अनुभवों को इस सार्थकता के मापदण्ड से मापें।

5. यह आपको अपनी सार्थकता के किस अवस्था को बताता है?

6. क्या यह आपके अपने कार्यों के प्रति विश्वास को पुष्ट करता है?

क्र. सं.	घटना	मापदण्ड

क्र. सं.	स्व-गुण	स्व-दुर्बलताएं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रयोग:—

II. 1. कल्पना करें कि कोई अदृश्य शक्ति आपके गुणों, आचरणों, दृष्टिकोणों को आपसे बता रही हो। उन्हें आप लिख लें।

2. उन गुणों में से कौन-से गुणों को आप सुनना पसन्द करते हैं एवं किन-किन को नापसन्द करते हैं। किन-किन को स्वीकार करना आसान है और किन-किन को नहीं। यदि उन गुणों को सबके सामने ला दिया जाए तो कैसा अनुभव करेंगे। आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी।

3.3 आत्म-विश्वास का स्रोत

हमारे आत्म-विश्वास का स्रोत हमारी स्वयं की दृष्टि है। कहा भी जाता है, जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि। हम प्राय: अपने दृष्टिकोण से ही स्वयं एवं दूसरों के व्यवहार, आचार और विचार का निर्णय करते हैं। हम अपनी ही धारणाओं और मूल्यों से स्वयं का एवं दूसरों का भी मूल्यांकन करते हैं। सामान्यत: व्यक्ति उन्हीं को मूल्य देते हैं या महत्त्वपूर्ण मानते हैं जिन्हें वे स्वयं अच्छा मानते हैं एवं प्रदर्शित भी करते हैं। दूसरी ओर जिस क्षेत्र को व्यक्ति महत्त्व नहीं देता है उस क्षेत्र में व्यक्ति की प्रगति न भी हो तो उसका उस व्यक्ति के आत्म-विश्वास पर कोई असर नहीं पड़ता है। व्यक्ति जिस क्षेत्र को अच्छा मानता है, मूल्यवान व महत्त्वपूर्ण मानता है, पर उस दिशा में यदि वह आगे नहीं बढ़ पाता है तो उससे उसके आत्म-विश्वास पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

परिस्थिति, तथ्य और मूल्य को सही दृष्टि से आकलन करने से ही आत्म-विश्वास को स्थिर व सुदृढ़ बनाया जा सकता है। आत्म-विश्वास केवल इस पर आधारित नहीं है कि व्यक्ति वर्तमान में कितना अच्छा है बल्कि उससे भी आगे वह इस पर निर्भर है कि व्यक्ति भविष्य में कितना अच्छा बनना चाहता है। कुछ व्यक्ति अपनी सीमा और क्षमता का यथार्थ आकलन कर अर्थात् चादर के अनुरूप अपने पैर पसारते हैं तथा कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो अपनी सीमा और क्षमता को जाने बिना या उपेक्षा कर असंभव ख्याली पुलावों को बना लेते हैं। असीम आकांक्षाओं को एक साथ पाल लेते हैं। इससे उनके आत्म-विश्वास पर अत्यन्त प्रतिकूल असर पड़ता है।

उन व्यक्तियों का आत्म-विश्वास सुदृढ़ बना रहता है जिनके जीवन में संभावनाओं के द्वार खुले रहते हैं। इसी प्रकार जिन व्यक्तियों के जीवन में विकास की संभावनाएं सीमित हो जाती हैं या अवरूद्ध हो जाती हैं, उनका आत्म-विश्वास कमजोर पड़ जाता है। वे हीनभावना से ग्रसित हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में, किसी-न-किसी क्षेत्र में कुछ कमजोरी अनुभव करते हैं एवं कुछ क्षेत्रों में वे अपने आपको सबल व सक्षम पाते हैं। हम अपने जीवन के सक्षम क्षेत्रों, अवसरों, परिस्थितियों, गुणों एवं मूल्यों के सम्यक् आकलन करने से अपने आत्म-विश्वास को स्थिर व सुदृढ़ बना सकते हैं।

3.3.1 आत्म-निरीक्षण करें

ध्यान की अवस्था में अनुचिंतन करें कि—

1. आप स्वयं को कैसा देखना चाहते हैं?

2. आप अपने बारे में क्या पसंद करते हैं एवं क्या पसन्द नहीं करते?

3. अब अपने घनिष्ठ मित्र से अपने बारे में जानकारी प्राप्त करें कि वह किन-किन बातों को पसन्द करता है एवं किन-किन बातों को पसन्द नहीं करता।

इन तीनों की तुलना करें। कितनी समानता एवं असमानता दिखाई देती है। अपने आप में कैसा अनुभव करते हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.3.2 मिथ्या अवधारणाएं या मिथ्या दृष्टिकोण का बनना

सुदृढ़ आत्मविश्वास स्वयं को जैसा है वैसा स्वीकार करने से आता है। स्वयं की अच्छाइयों को समझने एवं उसके विकास की मानसिकता से पैदा होता है। अपने आपको जानना वास्तव में इतना आसान नहीं है जितना हम सोचते हैं। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं हमारी धारणाएं बदलती रहती हैं, दृष्टिकोण बदलते रहते हैं। इस बदलाव में प्राय: हम समाज के साथ अन्त:क्रिया में झूठी अवधारणाएं भी पाल लेते हैं। अपनी कमजोरियों को छिपाकर 'जो नहीं है' उसको भी प्रदर्शित करना शुरू कर देते हैं। प्रदर्शन और यथार्थ में दूरी बढ़ती चली जाती है। हम ऐसा इसलिए करते हैं कि दूसरे लोग हमसे वैसा चाहते हैं, हमसे वैसी अपेक्षा रखते हैं। हम दूसरों को इन्कार नहीं कर पाते। उनको नकार नहीं पाते। यथार्थ को प्रकट नहीं कर पाते। दूसरों का स्नेह व वात्सल्य पाना चाहते हैं एवं इस प्रयास में ऐसा व्यवहार प्रदर्शित करते हैं, जैसा कि हम वास्तव में हैं नहीं। दूसरा कारण यह भी बनता है कि हम अपने जीवन में अनेक बार कुछ विशिष्ट पुरुषों को आदर्श के रूप में स्वीकार करते हैं एवं उन्हीं का अनुकरण (नकल) करना प्रारंभ कर देते हैं। यह जीवन विकास की एक आवश्यकता और अच्छी प्रक्रिया भी है। किन्तु यह प्रक्रिया तब द्योतक बन जाती है जब उनके गुणों एवं क्षमताओं के विकास की प्रबल भावना के बिना केवल नकल की जाती है। इससे आदर्श की प्राप्ति करना असंभव हो जाता है तब हम अपने स्वयं के वास्तविक स्वरूप से कटते चले जाते हैं। यह स्थिति बहुत ही कष्टदायक और असंतोष को पैदा करने वाली होती है।

जब हम यथार्थ से दूर स्वयं को समझे बिना केवल दूसरों की अपेक्षानुसार जीने लगते हैं, केवल दूसरों के मानदण्ड पर खरा उतरना चाहते हैं तब अपने भीतर एक खालीपन होता है कि वास्तव में मैं अनुभव जो चाहता हूं, वह नही कर पा रहा हूं। यह स्थिति व्यक्ति के लिए अत्यन्त पीड़ादायक होती है।

3.3.3 सही अवधारणाएं

बचपन में हमारा 'स्व' एक बीज के रूप में होता है। उसमें विकसित होने की असीम संभावनाएं होती हैं। उसके समग्र विकास के लिए जागरूकता से उसके संरक्षण की आवश्यकता होती है। यह एक बहुत बड़ी सच्चाई है कि वृद्धि और विकास की राह चुनौतियों और खतरों से भरी हुई होती है। अत: उस समय उसकी सार-सम्भाल की अधिक जरूरत पड़ती है।

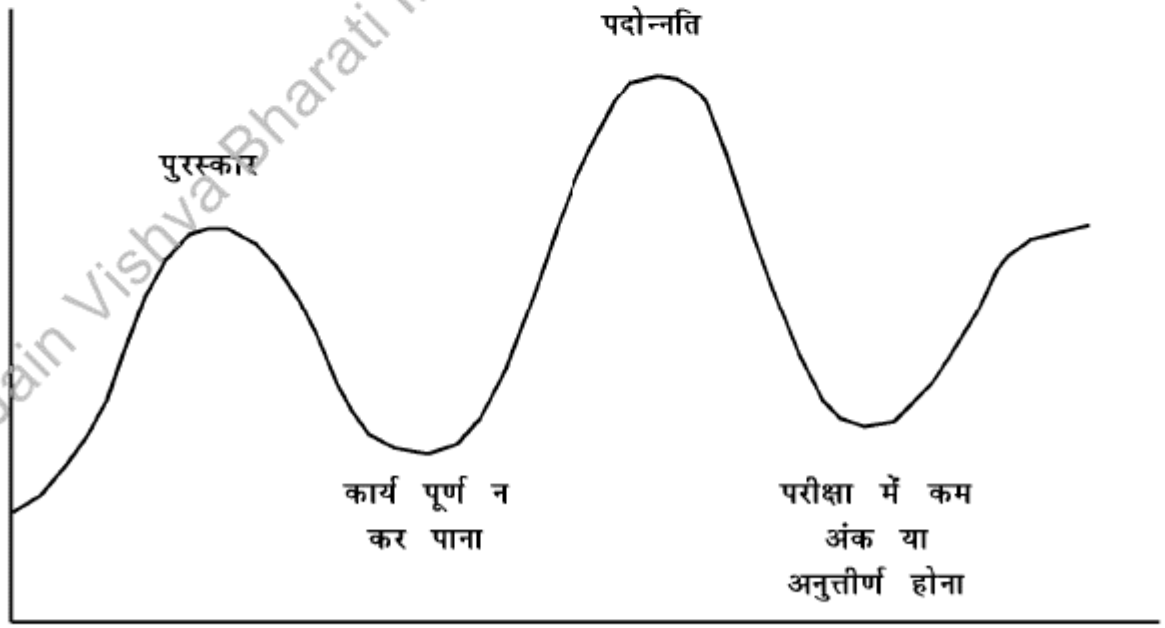

हमारे आत्म-विश्वास का जहां तक प्रश्न है उसकी सुदृढ़ता के लिए अपने 'स्व' को जैसा है, वैसा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्वीकार करना पहली आवश्यकता है। स्वयं को स्वीकार करने से, 'हम जो हैं' अर्थात् जो अच्छाइयां हैं या जो कमियां हैं उसको विकसित करने एवं दूर करने का हमारे भीतर साहस पैदा होता है। हम दूसरों के साथ भी ईमानदारी के साथ स्वयं को प्रस्तुत करने का साहस जुटा लेते हैं। इससे हमें अपने बारे में अधिक से अधिक जानने में सहयोग मिलता है।

इस स्थिति में एक खतरा भी सामने आता है। लोग आपकी कमियों का फायदा उठा सकते हैं। लोग हमें हमारी कमजोरियों के कारण प्रताड़ित कर सकते हैं जिसका हमारे आत्म-विश्वास पर विपरीत असर पड़ता है, हम स्वयं के बारे में उन अवधारणाओं को सही मानकर मिथ्या धारणाएं पाल सकते हैं।

बचपन में हम दूसरों द्वारा हमारे बारे में कहे हुए विचारों को समझने में समर्थ नहीं होते कि वे ऐसा क्यों कह रहे हैं। हम उसे ऐसा समझ लेते हैं कि दूसरे नापसंद करते हैं अत: हम बुरे हैं। ये नकारात्मक विचार हमारे सकारात्मक विचारों पर हावी हो जाते हैं। यदि हम अपनी मिथ्या अवधारणाओं से मुक्त होना चाहते हैं तो उन अतीत की घटनाओं का पुन: अनुभव करें एवं उसकी समीक्षा करें। इससे हमें अपने वास्तविक स्वरूप तक पहुंचने में मदद मिलेगी। इस प्रक्रिया से एक बार तो हमें झटका लगेगा। हमारा आत्म-विश्वास गिरता हुआ दिखेगा। हीनभावना का अनुभव होगा। यह एक अच्छा संकेत है कि हम अपनी मिथ्या अवधारणाओं को देखकर एवं दूर कर अपने वास्तविक स्वरूप तक पहुंच रहे हैं।

3.3.4 आत्म-विश्वास के क्षेत्र

आत्म-विश्वास जीवन के अनेक क्षेत्रों या पक्षों के अवलोकन से विकसित होता है। ये क्षेत्र निम्न है—

1. आन्तरिक मूल्य, सिद्धान्त, पहचान, विश्वास, भावनाएं, धारणाएं आदि।
2. उपलब्धियां, मानसिक क्षमताएं, आर्थिक सम्पदा, भौतिक उपलब्धियां आदि।
3. सामर्थ्य, स्वयं एवं दूसरो की अपेक्षाओं की पूर्ति का सामर्थ्य, कार्यक्षमता, लक्ष्यप्राप्ति, परीक्षा मे सफलता आदि।
4. सामाजिक संबंध, स्नेह, प्रोत्साहन, पुरस्कार आदि।

बोध प्रश्न 1:

---

1. आत्म-विश्वास का सामान्य अर्थ क्या है?
2. आत्महीनता के दुष्परिणाम बताएं।
3. आप स्वयं का आत्म-निरीक्षण कैसे करेंगे?

3.4 आत्म-विश्वास एवं न्यूनता

शैशव अवस्था से युवा अवस्था तक आते-आते असंख्य टिप्पणियां हम अपने बारे में सुन चुके होते हैं। वे टिप्पणियां माता-पिता, अग्रज, गुरूजन, मित्र और सम्बंधियों द्वारा हमें अपने बारे में सुनने को मिलती हैं। वे अनुकूल भी होती हैं एवं प्रतिकूल भी। उनसे अपने बारे में जानने में सहायता मिलती है। इसी से हम अपने बारे में धारणाएं बनाते हैं, इसी से हमारी आत्म-छवि बनती है। हम अपनी अच्छाई के बारे में जानते हैं तो हमारा मनोबल और आत्म-विश्वास बढ़ता है। किन्तु जब अपनी दुर्बलता व अवगुणों के बारे में दुसरों से सुनते हैं, जानते हैं तो हमें बुरा लगता है, हमारा मनोबल प्रभावित होता है।

3.4.1 निषेधात्मक सूचनाएं

जीवन में अनेक अवसर होते हैं। जब हम अपनी दुर्बलताओं से परिचित होते हैं। अनेक बार बचपन में माता-पिता और सम्बंधियों द्वारा अपनी योजना और स्वप्नों की आलोचना सुननी पड़ती है। जो योजनाएं हमारे लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं, वे योजनाएं उन्हें मूर्खता लगती थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

युवावस्था में भी हमें अपनी आलोचनाएं निरन्तर सुननी पड़ती हैं। अपनी योग्यता और क्षमताओं के बारे में दूसरे टिका-टिप्पणी करते रहते हैं। वह हमारे मनोबल को गिराने वाला सिद्ध होता है। दूसरे लोग मनोरंजन के लिए भी दूसरों की कमियों का मजाक उड़ाते हैं। इससे भी व्यक्ति के आत्म-विश्वास पर ठेस पहुंचती है। हम संचार साधनों से भी निषेधात्मक सूचनाओं को एकत्रित करते हैं। व्यक्ति संचार साधनों द्वारा प्रस्तुत आदर्श, आकर्षण, काल्पनिक छवि का शिकार हो जाता है। अपने आप में अपूर्णता और रिक्तता को महसूस करने लग जाता है। अतृप्ति व असंतोष का अनुभव करता है। निषेधात्मक सूचनाओं को बार-बार सुनते-सुनते वे व्यक्ति के विचारों के ही अंश बन जाते हैं। व्यक्ति उन विचारों से भिन्न कभी स्वतंत्र रूप से स्वयं का मुल्यांकन कर नहीं पाता है। ऐसा करने में उसे डर लगता है।

3.4.2 परिणाम

गलत निर्णय-निरन्तर निषेधात्मक टिप्पणियों के सुनने से व्यक्ति अपने वास्तविक 'स्व' एवं अपनी क्षमताओं से कटने लगता है। व्यक्ति की अपनी वास्तविक भावनाएं, आकाक्षाएं और रूचियां दब जाती हैं। वह व्यक्ति स्वयं को गौण कर, अपनी मूल भावनाओं से अनजान होकर दूसरों की अपेक्षाओं के अनुकूल जीने लगता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति अनेक बार माता-पिता, अभिभावक, मित्रगण या संचार संसाधनों से प्रभावित होकर या उन्हें प्रसन्न रखने के लिए कार्यक्षेत्र का चुनाव कर लेता है।

रिक्तता की अनुभूति-यदि व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप के सम्पर्क में नहीं है तो उसे हमेशा कुछ खालीपन का अहसास होता रहेगा। शक्ति व समय की कमी महसूस होगी। स्वयं के संतोष के लिए कुछ करें ऐसा मन में आते हुए भी समय का अभाव सताता रहेगा। या बार-बार परिस्थिति से प्रभावित होकर अशांति का अनुभव करेगा। छोटी-छोटी आसान बातें भी उसे विचलित करती रहेंगी।

असंतोष-अनेक व्यक्ति यह भी अनुभव करते हैं कि उनके पास घर, वाहन, पैसा, सन्तान आदि सब कुछ है फिर भी प्रसन्नता व शांति नहीं है। इसका कारण उन्हें समझ में नहीं आता। उन्हें पता नहीं चलता कि आखिर गड़बड़ कहां है?

उत्साह में कमी-व्यक्ति की अपनी भावनाएं, इच्छाएं, कामनाएं, रूचियां जो दबी रहती हैं वे व्यक्ति को खालीपन का अहसास कराती रहती हैं। इससे अशान्त होकर व्यक्ति उदासीन होने लगता है। दूसरों से भी कटने लगता है। जितना व्यक्ति का आत्म-विश्वास कमजोर होता है उतना ही वह स्वयं के प्रति भी लापरवाह होता चला जाता है। कुछ नया करने का उत्साह समाप्त हो जाता है। नवीनता को स्वीकारने की क्षमता क्षीण हो जाती है।

जीवन में संतोष, शांति व तृप्ति का रहस्य स्वयं को समझने में है। स्वयं की अन्त:भावनाओं को समझकर साहस के साथ समाज व समय के अनुरूप अपनी राह/पथ को खोजने में है। इसी से व्यक्ति में संतुष्टि, आत्म-विश्वास बढ़ता है। जीवन में अनेक बार भावनाओं में भी परिवर्तन आता है। हम उनके प्रति सचेत होकर पहले से ही सावधान हो सकते हैं। परिवर्तन भी कर सकते हैं।

हम जीवन में जहां फिसलते हैं? वहां हमें सावधान रहना चाहिए-

1. प्रत्येक व्यक्ति स्नेह और प्रोत्साहन चाहता है। यदि वह दूसरों की इच्छाओं और अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता है तो वे उसे स्नेह व प्रोत्साहन नहीं देते हैं।

2. ऐसे समय मे व्यक्ति दूसरों से स्नेह व प्रोत्साहन पाने के लिए अपने आपसे समझौता भी कर लेता हैं। तब उसे ऐसा लगता है कि दूसरों का अनुकरण करना अपने आपके साथ जीने से अधिक सरल है।

5. ऐसे समय में व्यक्ति अपने आपको गौण करके दूसरों के पीछे हो जाता हैं। अपने आपको समझने का प्रयास भी छोड़ देता हैं। इससे आत्म-विश्वास व मनोबल टूटता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को अन्त:प्रेरणा व स्वयं की क्षमता के प्रति जागरूक रहना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.4.3 कमजोर आत्म-विश्वासी का व्यवहार

1. ऐसे व्यक्ति दूसरों की पीठ पीछे निंदा करने की आदत पाल लेते हैं।
2. दूसरों की निंदा करना, गल्तियां ढूंढना इनका स्वभाव बन जाता है।
3. वे आग्रही और अहंकारी होते चले जाते हैं। वे सोचते हैं कि वे सब कुछ जानते हैं।
4. ये स्वयं को ऊंचा दिखाने के लिए दूसरों को नीचा दिखाते हैं।
5. ये स्वार्थी और तुच्छ चिंतन रखते हैं।
6. वे अधिकतर भाग्यवादी होते हैं। साहस के साथ निर्णय कर कोई कार्य प्रारंभ नहीं कर पाते। जिम्मेदारी से कतराते हैं।
7. स्वभाव से ईर्ष्यालु होते हैं।
8. सही आलोचना सुनना पसंद नहीं करते। हर चीज के लिए सफाई पेश करते हैं।
9. अकेले रहना इनके लिए कष्टदायक होता है
10. इनके व्यवहार में संगति, एकरूपता व संतुलन नहीं दिखाई देता है।
11. इनके व्यवहार से लोग दूर हटने लगते हैं। ये अकेले पड़ जाते हैं।
12. ये भावुक स्वभाव के हो जाते हैं। छोटी-छोटी बात को भी सहन करना इनके लिए कठिन हो जाता है।

क्र. सं.	सुदृढ़ आत्म-विश्वास वाले	कमजोर आत्म-विश्वास वाले
1.	विनम्रता, अनुशासित और मर्यादाओं का आदर करना।	अहंकारी, उद्दण्ड और मर्यादाओं की अवहेलना करना आग्रही होना।
2.	चरित्र की सुरक्षा करना।	झूठी इज्जत की चिन्ता करना।
3.	सुदृढ़ निर्णय।	भ्रम, असमंजसता व अनिर्णय।
4.	दायित्वशील जिम्मेदारी को स्वीकार करना।	दूसरों को दोष देना।
5.	सबके हित की बात करना।	केवल अपने स्वार्थ की बात करना व लालची।
6.	आशावादी होना।	भाग्यवादी होना।
7.	दूसरों को समझने की कोशिश करना।	स्वयं के लिए दूसरों की परवाह न करना।
8.	सीखने की मनोवृत्ति।	'मैं जानता हूं' की मनोवृत्ति।
9.	संवेदनशीलता व दूसरों की पीड़ा को समझना।	भावुकता एवं छोटी-छोटी बातों में अस्थिर और असंतुलित हो जाना।
10.	एकांतप्रिय होना।	अकेलेपन का बोझ ढोना।
11.	वार्ता एवं संवाद स्थापित करना।	बहस और तर्क-वितर्क करना।
12.	आत्म-गुण अर्थात् स्वयं की योग्यता और क्षमताओं मे विश्वास करना।	भौतिक साधन व धन आदि पर विश्वास करना।
13.	अन्त: प्रेरणा से प्रेरित।	बाह्य कारणों से प्रेरित।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सुदृढ़ आत्म-विश्वास वाले भी कभी-कभी वही व्यवहार करते हुए दिखाई देते हैं, जो कमजोर आत्म-विश्वास वाले करते हैं। किन्तु उनके पीछे कारण अलग होते हैं। सुदृढ़ आत्म-विश्वास वाला व्यक्ति भी अकेला रहता हुआ दिखाई देता है। वह ऐसा इसलिए करता है कि उसे अकेला रहना अच्छा लगता है। दूसरी ओर कमजोर आत्मविश्वास वाला व्यक्ति अकेला इसलिए रहना चाहता है कि उसे भीड़ और समूह में बेचैनी और परेशानी होती है। वह अपने स्वभाव के कारण से भी अकेला पड़ जाता है।

सुदृढ़ आत्म-विश्वास वाले और कमजोर आत्म-विश्वास वाले की तुलनात्मक दृष्टि से विशेषताएं—

3.4.4 आत्म-विश्वासी का प्रयास

उपरोक्त तालिका का उद्देश्य खुद को समझना है न कि स्वयं को दोषी मानना या अपराध-बोध से ग्रस्त होना। यह जरूरी नहीं कि एक व्यक्ति में सभी लक्षण मिलते हों। व्यक्ति अपनी विशेषताओं को समझकर ही अच्छाइयों को विकसित करने एवं कमियों में सुधार लाने के प्रयास में सफल हो सकता है।

सामान्यतया यह देखा गया है कि आत्म-विश्वास से युक्त व्यक्ति निम्नलिखित गुणों में परिपूर्ण बनने का प्रयत्न करता है—

1. **आत्म-ज्ञान (Self-Knowledge)**—अपनी अच्छाई व बुराई को जानने का प्रयत्न करता है।

2. **आत्म-विश्वास (Self-Confidence)**—अपनी क्षमता, योग्यता आदि पर विश्वास करता है।

3. **आत्म-स्वीकृति (Self-Acceptance)**—अपनी अच्छाइयों को स्वीकार करता है। इससे हीन भावना दूर होती है तथा अपनी बुराइयों को भी साहस के साथ स्वीकार करने की क्षमता को प्राप्त कर लेता है।

4. **आत्म-सम्मान (Self-Respect)**—अपनी अच्छाइयों का सम्मान करता है एवं उन्हें विकसित करने का निरन्तर प्रयत्न करता है। उनमें समय व शक्ति का नियोजन करता है।

5. **आत्म-महत्त्व (Self-Worth)**—अपनी क्षमता, योग्यता व अच्छाइयों को महत्त्व देता है। उनकी उपयोगिता एवं अपने महत्त्व को जानता है।

6. **आत्म-अनुशासन (Self-Discipline)**—अपनी कमजोरियों और दुर्बलताओं में शक्ति व समय न लगे, इस पर विशेष अनुशासन करता है। उनमें सुधार का निरन्तर प्रयत्न करता है।

7. **आत्म-संतुष्टि (Self-Satisfaction)**—स्वयं में संतुष्ट व प्रसन्न रहता है। दूसरों के दु:ख-दर्द के प्रति संवेदनशील रहता है। अपने सामाजिक दायित्व एवं कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहता है।

इसके ठीक विपरीत एक कमजोर आत्म-विश्वास वाला व्यक्ति—

1. **आत्म-प्रवंचना (Self-Deceit)**—स्वयं को जानने का प्रयत्न नहीं करता कि मेरे में क्या अच्छाइयां एवं कमजोरियां हैं। अपने आपसे बचने की कोशिश करता है। बुराई करते समय भीतर से आने वाले निर्देशों को अवहेलना कर अपने आपको धोखा देता है।

2. **आत्म-शंका (Self-Doubt)**—स्वयं की अच्छाई एवं कमियों के प्रति अनजान होने से दुर्बलताऐं हावी हो जाती हैं। वह सशंकित रहता है।

3. **आत्म-खंडन (Self-Denial)**—व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं का शिकार होता रहता है। इससे उसका अवचेतन मन अन्दर से उसे नकारता है। फिर भी वह अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता है।

4. **आत्म-ग्लानि (Self-Putdown)**—व्यक्ति अपनी त्रुटियों से दु:खी भी होता है। उसे ग्लानि भी होने लगती है। कभी-कभी यह स्थिति इतनी दयनीय हो जाती है कि व्यक्ति स्वयं के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से घृणा करने लगता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. आत्म-निंदा (Self-Abuse)—कुछ व्यक्ति जब अपनी अच्छाई, योग्यता, क्षमता, अच्छी रूचि आदि को नहीं समझ पाते हैं, केवल बुराई एवं दुर्बलता से ग्रसित हो जाते हैं तो फिर वे स्वयं की ही निंदा करने लग जाते हैं। अवसाद ग्रस्त होने लगते हैं।

6. आत्म-आसक्ति (Self-Indulgence)—अपनी बुराई व दुर्बलता पर नियंत्रण नहीं करने पर शक्ति व समय का नियोजन सही नहीं होता है। जो स्वयं एवं समाज के लिए घातक होता है।

7. अकेलापन—जब व्यक्ति अपने अवगुणों में शक्ति लगाता है तो उसको समाज का सहयोग, पुरस्कार व प्रोत्साहन नहीं मिल पाता है। वह अकेला पड़ जाता है। स्वयं की नजरों में भी गिर जाता है। आत्म-संतुष्टि, प्रसन्नता व शांति को वह कभी भी महसूस नहीं कर पाता है।

3.5 आत्म-विश्वास में विकास

जीवन में विकास के लिए चिंतन के साथ-साथ निर्णय, क्रियान्विति और परिणामों पर ध्यान देना आवश्यक है। किन्तु इस पर अत्यधिक बल देने से एक समस्या खड़ी हो जाती है। वह है अपने आपकी विस्मृति। हम अपने मूल स्वभाव और भावनाओं से कटने लगते हैं। मैं कौन हूं? मैं जीवन में क्या चाहता हूं? अर्थात् कभी-कभी मूल लक्ष्य से विस्मृत होने लगते हैं। जीवन में संतुलन बनाने के लिए अपनी आन्तरिक भावना के प्रति जागरूक रहना जरूरी है जिससे हम अपने मूल स्वरूप और जीवन के मूल लक्ष्य से जुड़े रह सकें।

3.5.1 आत्म-अन्वेषण

आत्म-विश्वास बढ़ाने का पहला चरण है—आत्म-दर्शन अर्थात् अपने आपको देखना। स्वयं में जो कुछ है, अच्छाई या बुराई, उसी रूप में स्वीकार करना। इसका अर्थ यह है कि जो हम वर्तमान में हैं उसकी खोज करना, न कि भविष्य में जो हम बनना चाहते हैं उसकी काल्पनिक उड़ानों में भटकना। हमें अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच सम्बन्धों को खोजने की आवश्यकता है। अतीत के कारण हमने अपने बारे में क्या-क्या अवधारणाएं बना रखी हैं? भविष्य में हम क्या बनना चाहते हैं? एवं वर्तमान में हम स्वयं अपने बारे में कैसा अनुभव करते हैं? इन तीनों के बीच सम्बन्ध क्या है, इसको खोजना आवश्यक है।

उदाहरण के लिए हम प्राय: अपने कार्य में अपने आपको सक्षम व जागरूक पाते हैं। निरन्तर सफलता मिलती रहती है। फिर भी कभी-कभी हम अपने ही कार्य में असफल हो जाते हैं। उसे हम सहज नहीं ले पाते हैं। तब हम असमंजस में पड़ जाते हैं और सोचते हैं कि हमें हमेशा सफल होना चाहिए। जैसे ही यह चिंतन आता है हमारे भीतर यथार्थ और आदर्श का अन्तर्द्वन्द्व शुरु हो जाता है। अर्थात् जो वस्तु-स्थिति है और जो हम भविष्य में होना चाहते हैं, उसके बीच संघर्ष शुरु हो जाता है। यह इसलिए होता है कि जो हम सोच रहे हैं, जो संदेश अपने आपको दे रहे हैं वह हमारी वर्तमान की अनुभूति से भिन्न है। वह यथार्थ नहीं है।

प्राय: प्रत्येक व्यक्ति अपने बारे में संदेश व सूचनाओं को अपने भीतर जाने-अनजाने से प्रेषित करता रहता है। वे सूचनाएं सकारात्मक भी हो होती हैं एवं नकारात्मक भी। वे संस्कार के रूप में हमारे भीतर संचित हो जाती हैं। अधिकतर नकारात्मक संस्कारों का प्रभाव हमारे ऊपर बहुत तीव्र होता है। वे तानाशाह की तरह हमारे ऊपर दबाव बनाते हैं और कार्य को करने के लिए मजबूत करते हैं। वे संस्कार हमें यह अनुभव भी कराते रहते हैं कि तुम यह कर सकते हो, तुम यह नहीं कर सकते। तुम्हें यह करना चाहिए, तुम्हें यह नहीं करना चाहिए आदि-आदि। परन्तु ये संस्कार हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं हैं। प्राय: नकारात्मक संस्कार बार-बार उभरते हैं, जैसे—मेरी स्मृति कमजोर है, मैं याद नहीं कर सकता आदि। एक तरफ हम याद करना चाहते हैं, दूसरी तरफ बार-बार यह अनुभूति होती है कि मैं याद नही कर सकता इससे आन्तरिक संघर्ष होता है, शक्ति का अपव्यय होता है, असंतोष और अप्रसन्नता की अनुभूति होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.5.2 संस्कारों की प्रेक्षा

नकारात्मक संस्कार अपने आप नहीं बन जाते। उनका सम्बन्ध हमारे अतीत से जुड़ा रहता है। वे अतीत के जीवन से सम्बंधित होते हैं। वे संस्कार तब बनते हैं जब कोई घटना घटती है और उससे जुड़ते हैं हमारे संवेग, आचार और व्यवहार। हम अपने काबू से बाहर हो जाते हैं। प्राय: वे संवेग/आवेग और क्रियाएं इतनी सहजता से स्वत: घटित हो जाती हैं कि हमें पता भी नहीं चल पाता। घटना होने के बाद हमें अनुभव होता है कि यह कार्य मैंने पुन: दोहरा दिया। यह मेरे से पहले भी हुआ था। यह कार्य मैं बार-बार क्यों कर लेता हूं? ये विचार और भावनाएं पुन: नये संस्कार के रूप में हमारे भीतर पहुंच जाती हैं।

उदाहरण के लिए बचपन में जब हम अपने बारे में सुनते हैं, चाहे वह प्रत्यक्ष में हो या अप्रत्यक्ष में, कि तुम निकम्मे हो, तुम अपने जीवन में कुछ नहीं कर सकते। इससे हमें दु:ख और पीड़ा (संवेग) की अनुभूति होती है। बड़े होने के बाद भी यही टिप्पणी बार-बार सुनने को मिलती है तो हमें वे सारी स्मृतियां ताजा हो जाती हैं, फिर वे दु:खद और कष्टदायक संवेग जाग जाते हैं। संस्कार पुन: पुष्ट हो जाते हैं।

उपरोक्त स्थिति से निपटने के लिए व्यक्ति अनेक रूपों में प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है। व्यक्ति सामने वाले व्यक्ति पर आक्रामक बन सकता है या अपने बचाव में अनेक बहाने या तर्क प्रस्तुत कर सकता है या बिल्कुल उदास या निराशा हो सकता है। यह भी हो सकता है कि अपनी उपलब्धियों का खूब बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करना प्रारंभ कर दे।

यदि हम अपने बारे में संस्कार रूप में स्थित नकारात्मक टिप्पणियों, सूचनाओं और भावनाओं का परिष्कार नहीं करेंगे तो हम अपने आपको अपनी नजरों में गिरा देंगे। हमें आत्म-हीनता की अनुभूति होने लगेगी। हम दूसरों की सफलता को भी सहन नहीं कर पाएंगे। वे भी हमें काल्पनिक लगने लगेंगी।

अतीत के घातक संस्कारों को तोडने के अनेक उपाय हैं। एक महत्त्वपूर्ण उपाय है उस अतीत की घटना के प्रति जागरूक होना। उसे पुन: अनुभव करना जिसके कारण हमें दु:ख और कष्ट का अनुभव हुआ है। उस घटना पर विचार करें कि किस प्रकार के संवेग जाग रहे हैं? शरीर में क्या परिवर्तन हो रहे हैं? भीतर में क्या प्रतिक्रियाएं हो रही हैं? इस स्थिति को द्रष्टाभाव से प्रेक्षा या अनुभव करने से घातक संस्कारों का प्रभाव क्षीण होने लगता है।

3.5.3 भावनाओं को देखना

घातक संस्कारों को तोड़ने का एक और तरीका है—अपने संवेगों के प्रति जागरूक होना। हमारे भीतर इतनी सूचनाएं हैं कि हम उनको या तो अस्वीकार कर देते हैं या उन पर ध्यान ही नहीं देते हैं। संवेग या आवेश हमारे जीवन को नष्ट करने वाले तत्त्वों में प्रमुख तत्त्व हैं। इससे स्वतंत्र चिंतन की शक्ति कुंठित हो जाती है। हम सही निर्णय नहीं ले पाते हैं। किन्तु हम उठते हुए संवेगों के प्रति जागरूक हो जाऐं तो जीवन के प्रति अद्भुत दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं। नई ऊर्जा प्राप्त कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए किसी शिक्षक ने हमें किसी कार्य को करने का निर्देश दिया। हम उस कार्य को करने में कुछ कठिनाई महसूस करते हैं। किन्तु हमने संकोचवश 'हां' कह दिया। अब कार्य में मन नहीं लगता। करने में कठिनाई हो रही है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम कार्य करना नहीं चाहते या हमें शिक्षक के निर्देश का पालन नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हम अपनी भावनाओं के प्रति जागरूक हो जाऐं और उन्हें स्वीकार करके समझकर अभिव्यक्ति दे सकें तो एक सरल एवं संभव समाधान निकल आता है। यदि हम गुरूजनों के निर्देश में आने वाली मानसिक कठिनाइयों को विनम्रता से अभिव्यक्त कर सकें एवं उनसे समाधान पाने की कोशिश करें तो कोई-न-कोई हल निकल जाता है जिसका हमारे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वास्तविक स्वरूप से, भावना से टकराहट न हो। यदि हम अपनी भावना को न समझें तो अपने ही अस्तित्व से हटकर अन्तर्द्वन्द्व को झेलना पड़ता है। वह आत्म-विश्वास के विकास के लिए अहितकर होता है। भावनाओं को सही ढंग से अभिव्यक्त करने से आत्म-विश्वास अधिक सुदृढ़ बनता है।

3.5.4 शरीर को समझना

शरीर के प्रति भी जागरूकता होना भी संस्कारों को तोड़ने में सहायक होता है। भावों के प्रति जागरूक होने से जिस प्रकार कार्य करने व निर्णय लेने में सहायता मिलती है, वैसे ही शरीर के प्रति जागरूक होने से भी होता है। शरीर में खिंचाव, हल्का दर्द, हल्का ज्वर या अन्य कोई बीमारी हमारे भीतर के अनेक तथ्यों को उजागर करते हैं। हमारी भावनाओं को भी प्रतिबिम्बित करते हैं।

आत्म-विश्वास को बढ़ाने में शरीर के प्रति जागरूकता से भी बहुत सहायता मिलती है। हम शरीर के प्रति कितने जागरूक हैं? हम शरीर की आवश्यकतानुसार खाते हैं या जीभ को संतुष्ट करने के लिए। क्या हम शरीर के लिए योगासनों का अभ्यास करते हैं? क्या हम सम्यक् श्रम करते हैं? जितना हम शरीर की आवश्यकताओं का ध्यान रखेंगे उतना ही हम अपना सम्मान बढ़ाऐंगे। स्वास्थ्य को विकसित कर लेंगे।

अत: हम अपनी भावनाओं और शरीर की आवश्यकताओं को मूल्य दें। उनको महत्त्व दें। यदि हम शरीर की उपेक्षा करेंगे तो अन्तर्द्वन्द्व बहुत बढ़ जायेगा। वह हमारे आत्म-विश्वास के लिए घातक सिद्ध होगा। अपनी भावनाओं और अपने शरीर की आवश्यकताओं का सम्मान करना, स्वयं का सम्मान है, आत्म-सम्मान है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व व अस्तित्व का सम्मान है। उनकी उपेक्षा करना, न समझना, स्वयं का तिरस्कार व अपमान है।

हम स्वयं अपना मित्र बनें। अपनी भावनाओं का ख्याल करें। उनको सुलझाने का प्रयत्न करें। हम अपनी अच्छी बातों को स्वयं महत्त्व दें। प्रोत्साहित करें। उसमें शक्ति व समय का नियोजन करें। इससे आत्म-विश्वास को बढाने में बहुत सहायता मिलेगी।

3.5.5 आत्म-विश्वास में अभिवृद्धि के उपाय

उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त भी 'शिव खेडा' ने अपनी पुस्तक 'जीत आपकी' में अनेक उपायों की चर्चा की है—

1. स्वयं के क्रिया कलापों में सुधार कर तथा सही मूल्यांकन कर आत्म-विश्वास बढ़ाया जा सकता है।
2. अन्य लोगों के द्वारा अपना सही मूल्यांकन एवं अपनी प्रशंसा किये जाने पर या सम्मान दिये जाने पर भी आत्म-विश्वास बढ़ता है। अत: अच्छे लोगों की संगत करें।
3. स्वयं का मूल्यांकन करने की अच्छी आदत का निर्माण कर आत्म-विश्वास को बढ़ा सकते हैं।
4. अपनी कमियों को खूबियों में बदलकर आत्म-विश्वास बढ़ाया जा सकता है। ऐसे लोगों की जीवनी पढ़ें, जिन्होंने हार को जीत में, नुकसान को फायदे में, रास्ते के पत्थरों को सफलता की सीढ़ी में बदल दिया हो। ऐसे लोग मायूसियों और नाकामयाबियों को अपने ऊपर हावी नहीं होने देते।
5. आत्म-विश्वास बढ़ाने के लिए उन लोगों के लिए कुछ करें जो बदले में आपको कुछ भी नहीं दे सकते हैं। बदले में बिना कुछ पाने की भावना के दूसरों की मदद करना किसी भी व्यक्ति में आत्म-विश्वास को बढ़ाता है। 'नेकी कर कुएं में डाल' वाली कहावत इसी सत्य को चरितार्थ करती है।
6. प्रशंसा लेना और देना सीखें। दूसरों की सच्ची प्रशंसा करने का कोई मौका हाथ से न जानें दें। याद रखें कि इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द है—सद्भाव, सच्चाई और ईमानदारी जो आपके अन्दर की छवि को प्रकट करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. जिम्मेदारी को स्वीकार करें (Accept Responsibility)—अपने व्यवहार और काम के लिए जिम्मेदारी को स्वीकार करना चाहिए। बहानेबाजियों से बचना चाहिए। दूसरों को दोष देना बन्द करना चाहिए, तभी उत्पादकता (Productivity) और आत्म-विश्वास में सुधार होगा। व्यक्ति की अनेक जिम्मेदारियां हैं—

- □ खुद के लिए (To Self)
- □ परिवार के लिए (To Family)
- □ दफ्तर के लिए (To Work)
- □ समाज के लिए (To sociey)
- □ वातावरण के लिए (To environment) आदि। इन्हें स्वीकार करना चाहिए।

8. अनुशासन का पालन करें (Practice Discipline)—आत्म अनुशासन हमारे आनन्द को खत्म नहीं करता, बल्कि और भी बढ़ाता है। हम देखते हैं कि प्रतिभा और क्षमताओं के बावजूद भी बहुत लोग नाकामयाब रहते हैं। वे संतुष्ट नहीं होते और अपनी समस्याओं के लिए भाग्य को दोष देते रहते हैं। उनकी ये समस्याएं स्वयं की कमजोरियों पर अनुशासन की कमी के कारण पैदा होती हैं।

9. अपने लक्ष्य तय करें (Set Goals)—सही और साफ प्रकार के बनाये गये लक्ष्य व्यक्ति को एक दिशा दिखाते हैं। लक्ष्य में कामयाब होने पर सन्तोष मिलता है और आत्म-विश्वास बढ़ता है। लक्ष्य प्राप्त कर हम जो पाते हैं वहीं हमें सच्ची खुशी देता है और यही सच्चे अर्थों में हमारा आत्म-विश्वास है।

10. ऊँचे चरित्र वाले लोगों से नाता जोड़ें—ऊँचे नैतिक चरित्र के लोगों के साथ जुड़ने से आत्म-विश्वास बढ़ता है।

11. बाहरी ख्वाबों की अपेक्षा अन्दरूनी शक्ति से चलें—जब तक हम बाहरी बातों को महत्त्व देते रहेंगे तब तक हमारे दु:ख चलते रहेंगे और हम खुद को असहाय पाते रहेंगे। जब तक हम अपने कार्य और व्यवहार की जिम्मेदारी खुद नहीं लेंगे तब तक हममें आत्म-विश्वास नहीं आयेगा। इस दिशा में हमारा पहला कर्म यह पूछना होगा कि—

- □ मैं परेशान (Upset) क्यों हुआ?
- □ मुझे गुस्सा (angery) क्यों आया?
- □ मैं निराश (Depress) क्यों हुआ?

प्रसन्नता अच्छे आत्म-विश्वास का नतीजा है। जीवन में किसी के पास सब कुछ होकर भी यह जरूरी नहीं कि वह प्रसन्न हो। प्रसन्नता आन्तरिक होती है। प्रसन्नता लाने वाली कुछ मानसिक प्रवृत्तियां जो हमारे आत्म-विश्वास को बढ़ाने में सहायक होती हैं—

- □ हर व्यक्ति और हर हालत में अच्छाई ढूंढें।
- □ अपने मापदण्ड (Standard) समझदारी से तय करें।
- □ गलत आलोचना से परेशान न होने की शक्ति बढ़ायें।
- □ हर परिस्थिति का भरपूर आनन्द लें।
- □ रचनात्मक कार्यों में खुद को लगाये रखें।
- □ चीजों पर काबू पाना सीखें। चिंता मग्न न रहें।
- □ अपने और दूसरों के प्रति द्वेषभाव न रखें।

12. खुद को सही स्वत: सुझाव दें (Give yourself positive auto-suggestions)—स्वत: सुझाव हमारे अचेतन मन को प्रभावित करके हमारे आत्म-विश्वास को दृढ़ बनाते हैं। हमारे व्यवहार में हमारा दृढ़ आत्म-विश्वास झलकता है। स्वत: सुझाव हमारे दृढ़ आत्म-विश्वास को प्रभावित करके हमारे व्यवहार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पर असर डालता है। यह हमें आने वाले कल के लिए तैयार करता है और आत्म-विश्वास का रूप लेकर हमारे जीवन में नयी धारणाओं को सुदृढ़ करता है। उदाहरण के तौर पर—

- □ मैं इसे संभाल सकता हूं।
- □ मैं इसे कर सकता हूं।
- □ मैं गणित में अच्छा हूं।
- □ मेरी स्मरणशक्ति अच्छी है।

13. अपनी सारी शक्तियों और कमजोरियों की तालिका बनायें—आत्म-विश्वासी लोग अपनी कमियों को पहचानते हैं, मगर अपनी शक्तियों को बढ़ाते हैं। जब तक हम अपनी शक्तियां पहचानेंगे नहीं तो इन्हें बढ़ाऐंगे कैसे? इस बात पर ज्यादा ध्यान दें कि आप क्या करना और बनना चाहते हैं। यही बात हमारे आत्म-विश्वास को बढ़ाती है।

14. स्व-मूल्यांकन का स्वस्थ स्तर का तात्पर्य यह नहीं है कि वह पूर्ण व्यक्तित्व वाला है और उसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन करने की गुंजाइश नहीं है। इसके बावजूद भी व्यक्ति गलतियां कर सकता है। व्यक्ति को गलतियों के बहाने नहीं ढूंढना नहीं चाहिए चाहे कोई उसके लिए नकारात्मक टिप्पणियां भी क्यों न करे। वस्तुत: व्यक्ति को गलतियों में अपेक्षित सुधार करना चाहिए।

15. जन्म से ही व्यक्ति अपना आत्म-विश्वास सही या गलत बनाने लगते हैं। बचपन से ही दूसरों के बढ़ावे की वजह से हम अपने बारे में कुछ धारणाऐं बना लेते हैं। यही दिशा निर्देशन हमारे आत्म-विश्वास को बढ़ावा देता है और इसका उल्ट भी उतना ही सच है। अर्थात् ऊंचे आत्म-विश्वास वाले मां-बाप अपने बच्चों को सही विचार, अच्छे संस्कार व नैतिक मूल्य और विश्वास देकर दृढ़ आत्म-विश्वास वाला बनाते हैं।

16. कुछ लोग योग्य व संभव उद्देश्यों को चुनते हैं और उनको प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं तो यह प्रक्रिया उनके आत्म-विश्वास को बढ़ाने में सहायक है जबकि कुछ लोग असंभव उद्देश्य बनाते हैं और उनको प्राप्त करने में असफल हो जाते हैं तो उनका आत्म-विश्वास घटना स्वाभाविक है।

17. अच्छे आत्म-विश्वास को प्राप्त करने के लिए शुरुआत आसान कामों से करें। हर एक सफलता के बाद आत्म-विश्वास बढ़ता जाता है, जिससे अगली बार सफल होना आसान हो जाता है। इसी वजह से कोई अच्छा नेता, माता-पिता, अध्यापक या अधिकारी लोगों या बच्चों से काम की शुरुआत आसान कामों से करवाते हैं। प्रत्येक सफल काम के बाद बच्चे का विश्वास और स्वाभिमान का स्तर बढ़ता जाता है। इसके साथ यदि अच्छा प्रोत्साहन जोड़ दिया जाये तो यह अच्छे आत्म-विश्वास का रूप लेना शुरु कर देता है।

3.5.6 अभ्यास एवं स्मरणीय बातें

ध्यान में स्थित होकर उन क्षणों को याद करें जब स्वयं में आपने बहुत अच्छा, प्रसन्न एवं संतोष का अनुभव किया। इसका सम्बन्ध आपके कार्य, योग्यता, परिवार, उपलब्धि या समृद्धि से हो सकता है। इन क्षणों का उपयोग आप किस प्रकार से कर सकते हैं। उस पर विचार करें।

इसी प्रकार अपने जीवन में उन बाधाओं, घटनाओं, निषेधात्मक आदतों का चिंतन करें। इससे आपको कैसा लगता है? उन बाधाओं से अन्तर्वार्तालाप करें। उन्हीं से पूछें। वे क्यों हैं? वे क्या चाहते हैं? उनसे मुक्त कैसे हो सकते हैं? आदि। उसे सुनें व आत्मसात् करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्मरणीय बातें —

1. अपने अच्छे संस्कारों को मजबूत करें। अपने आपको स्वत: सुझाव दें—"मैं जागरूक, बुद्धिमान, विवेकशील एवं सक्षम हूं।" इसे लिखकर ऐसी जगह लगा दें, जहां पर आते-जाते दृष्टि पड़ती रहे।

2. अपने दैनिक गतिविधियों का अवलोकन करें। अच्छी बातों को प्रसन्नता से स्वीकार करें एवं उसके लिए स्वयं को प्रोत्साहित करें।

3. बुरी संगत से बचें। जहां अवगुण आने की संभावना हो तथा आत्म-विश्वास और मनोबल गिरने की संभावना हो।

4. स्वयं की शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक अवस्थाओं एवं आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहें। उनको मूल्य और महत्त्व दें। उनका सम्मान करें।

3.6 आत्म-विश्वास और पारस्परिक सम्बन्ध

हमारे आत्म-विश्वास का हमारे सम्बन्धों पर बहुत असर पड़ता है। यदि हमारा आत्म-विश्वास कमजोर है तो दूसरे व्यक्ति से सम्पर्क करना, संवाद स्थापित करना, मेलजोल बढ़ाना कठिन हो जाता है। यदि सामने वाला व्यक्ति ऐसा चलाकर करना चाहे तो भी आशंकित हो जाते हैं। कतराने लगते हैं।

आत्म-विश्वास कमजोर होने पर दूसरे व्यक्ति आकर्षित नहीं हो सकते। कहा भी गया है कि 'चेहरा चुगली खाता है'। व्यक्ति के चेहरे से ही पता चल जाता है कि व्यक्ति क्या चाहता है। इसका तात्पर्य यह है कि कमजोर आत्म-विश्वास वाले व्यक्ति सामान्यतया मित्र बना नहीं पाते। मित्र बन भी जाये तो मित्रता को बनाये रखना कठिन हो जाता है। यदि व्यक्ति स्वयं अपनी योग्यता और क्षमता का सही मूल्यांकन नहीं करता है तो दूसरों के लिए वैसा करना आसान नहीं होता है। यदि दूसरे व्यक्ति उनकी क्षमता और योग्यता को जान भी ले तो भी उसे जताना सरल नहीं है। सामने वाले को यकायक उस बात पर विश्वास ही नहीं होता कि मेरे में इतनी योग्यता या क्षमता है।

यदि व्यक्ति चाहता है कि मेरे कार्य-क्षेत्र में या व्यवसाय में मेरा सम्मान बढ़े, मेरे विचारों को भी महत्त्व दिया जाये, मेरी भी पदोन्नति हो, मुझे भी जिम्मेदारी सौंपी जाये तो अपने अधिकारियों के सामने आत्म-विश्वास के साथ अपनी योग्यता को प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। संभव है कि अधिकारी आपकी योग्यता को जानते भी हों, फिर भी व्यक्ति को स्वयं में अपनी योग्यता और दायित्व को अच्छी तरह निभाने की क्षमता में विश्वास होना चाहिए।

यदि व्यक्ति अपने आपमें अच्छा अनुभव नहीं करता तब दूसरे व्यक्ति के साथ ईमानदारी के साथ सम्बन्धों का निर्वाह नहीं कर सकता। यदि व्यक्ति अपने बारे में बहुत अधिक चिंतित है तो दूसरों की टिप्पणियों से बहुत जल्दी आहत हो जाता है। इसके ठीक विपरीत यदि व्यक्ति अपने बारे में अच्छा अनुभव करता है तब सम्बन्धों के बारे में भी निश्चिन्त व तनाव मुक्त रहता है। दूसरों की टिप्पणियों से भी घबराता नहीं है उसको सही परिप्रेक्ष्य में लेने व समझने में असुविधा नहीं होती है। उसके विचारों को गंभीरता से सुना जाता है एवं महत्त्व दिया जाता है। जब व्यक्ति स्वयं अपना सम्मान करता है, अपनी क्षमताओं का मूल्यांकन करता है, महत्त्व देता है उसको काम में लेता है तब दूसरे व्यक्ति भी उसको महत्त्व देते हैं, मूल्यांकन करते हैं, सम्मानित करते हैं।

3.6.1 अभिव्यक्ति क्षमता को विकसित करें

सामान्यतया हमें अपने विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति करनी चाहिए। किन्तु जब दूसरों के साथ हमारे सम्बन्ध मधुर नहीं होते हैं तो उनके साथ संवाद स्थापित करना कठिन होता है। हम अपनी इच्छा,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आवश्यकता और भावनाओं को अभिव्यक्ति नहीं दे पाते हैं। इतना ही नहीं, दूसरों से स्वयं के बारे में विचारों को जानने से भी कतराते हैं। मन में भी भय होता है कि दूसरा व्यक्ति कहीं मेरी निन्दा या आलोचना तो नहीं करेगा। इस भय और संकोच के कारण व्यक्ति एक दूसरे के प्रति अपनी सच्ची भावना और सम्मति बताने से कतराते हैं अथवा दूसरे रूप में, अप्रत्यक्ष रूप में या तीसरे माध्यम से पहुंचाने की कोशिश करते हैं जिसका प्रभाव सम्बन्धों पर अनुकूल नहीं होता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भावनाओं का आदर करते हुए एवं दूसरों को ठेस पहुंचाये बिना अपनी बात को कहने की कला अवश्य सीखनी चाहिए।

गुरुजनों की सम्मतियां प्राप्त करना—

स्वयं के बारे में दूसरों की सम्मतियों को जानना आत्म-विश्वास के विकास में सहायक होता है। गुरूजन व गंभीर व्यक्तियों से सच्ची सम्मतियां प्राप्त करना भी कला है। यहां कुछ सूत्रों की चर्चा की जा रही है—

1. अपनी त्रुटि की चर्चा करते हुए उनसे परामर्श लेना।
2. अपनी कमियों एवं दुर्बलताओं के बारे में विनम्रता से पूछना।
3. अपने विकास की दिशा के बारे में सुझाव मांगना।
4. अपने किसी 'कार्य' विशेष के बारे में समीक्षा के लिए निवेदन करना।

बड़ों के मार्ग-दर्शन को धैर्य-पूर्वक सुनने व स्वीकार करने से आत्म-विश्वास बढ़ता है। अपनी कमजोरियों व दुर्बलताओं को दूर करने का रास्ता मिलता है। अपनी अच्छाइयों व विशिष्टताओं को जानने व पुष्ट करने के उपाय भी हस्तगत होते हैं जो आत्म-विश्वास को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

बोध प्रश्न 2:

---

1. कमजोर आत्म-विश्वासी का व्यवहार कैसा होता है?
2. आत्म-विश्वास में विकास किस प्रकार संभव है?
3. *अभिव्यक्ति क्षमता को कैसे विकसित करें?*

3.6.2 आत्म-निरीक्षण

ध्यान में बैठें। विचार करें कि ऐसे व्यक्ति कौन कौन हैं जिनके पास बैठने से आत्म विश्वास बढ़ता है, प्रोत्साहन मिलता है, प्रेरणा मिलती है, सद्गुणों का विकास होता है। उन मित्रों, पारिवारिक जनों, गुरूजनों को याद करें। उनकी सम्मतियों और विचारों को याद करें। उन्हें अपनाएं।

दैनिक जीवन में भी ऐसे व्यक्तियों से सम्पर्क बढ़ायें। आत्म-विश्वास को गिराने वाले व्यक्तियों के सम्पर्क को कम करें।

3.7 सारांश

1. आत्म-विश्वास और कार्यक्षमता का सीधा सम्बन्ध है कि आत्म-विश्वास बढ़ने से कार्यक्षमता और कार्य निष्पत्ति बढ़ती है। आत्म-विश्वास का शाब्दिक अर्थ है-स्वयं में विश्वास और स्वयं के विश्वास से है। सुदृढ़ आत्म-विश्वास स्वयं की उपयोगिता व सार्थकता को समझने से पैदा होता है।

2. बार-बार देखने व अवलोकन से विश्वास पुष्ट होता है। व्यक्ति अपने आपको गहराई में जाकर देखे तो वहां उसे अपना वास्तविक स्वरूप दिखाई देता है। वही पुष्ट होकर आत्म-निष्ठा व आत्म-विश्वास में परिणत हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. जो व्यक्ति स्वयं अपने आपको नहीं देखते केवल दूसरों पर विश्वास करते हैं, वे नकारात्मक बातों को सुनकर अपने बारे में नकारात्मक धारणाएं बना लेते हैं। जिसका प्रभाव उसकी कार्यक्षमता पर नकारात्मक होता है। उसको भी दृढ़ इच्छाशक्ति व संकल्प बल द्वारा बदला जा सकता है।

4. आत्म-विश्वास का मूल स्रोत व्यक्ति की स्वयं की दृष्टि है। जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि। व्यक्ति अपने जीवन के सकारात्मक पक्षों का बार-बार अवलोकन कर अपने आत्म-विश्वास को सुदृढ़ कर सकता है।

5. अनेक बार व्यक्ति दूसरों से प्रभावित होकर उनसे स्नेह व सम्मान पाने के लिए यथार्थ को छूपाकर अयथार्थ व झुठी अवधारणाओं को पाल लेता है। इससे वह स्वयं से कटने लगता है जो अन्ततः उसके लिए बहुत पीड़ादायक साबित होता है।

6. मिथ्या अवधारणाओं से मुक्त होने के लिए उनका पुनः अवलोकन एवं समीक्षा करनी चाहिए। इससे उनसे मुक्त होने में मदद मिलती है।

7. आत्म-विश्वास में न्यूनता के कारण व्यक्ति अनेक बार जीवन में गलत निर्णय कर बैठता है। इससे वे स्वयं में रिक्तता, असंतोष व उत्साह में कमी को महसूस करते हैं।

8. आत्म-विश्वास से सम्पन्न व्यक्ति अनेक गुणों से परिपूर्ण पाये जाते हैं-आत्म-ज्ञान, आत्म-विश्वास, आत्म-स्वीकृति, आत्म-सम्मान, आत्म-महत्त्व, आत्मानुशासन और आत्म-संतुष्टि।

9. आत्म-अन्वेषण, संस्कारों की प्रेक्षा, स्वयं के भाव एवं शरीर के प्रति जागरूक रहकर आत्म-विश्वास बढ़ाया जा सकता है।

10. व्यक्ति के आत्म-विश्वास का पारस्परिक सम्बन्धों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। आत्म-विश्वास से परिपूर्ण व्यक्ति अपने सम्बन्धों के बारे में निश्चिन्त व तनावमुक्त रहता है। दूसरों की आलोचनाओं से घबराता नहीं है, उन्हें भी सही परिप्रेक्ष्य में लेता है।

11. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भावनाओं का आदर करते हुए एवं दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुंचाये बिना अपनी बात को कहने की कला अवश्य आनी चाहिए। यह आत्म-विश्वास को सुदृढ़ एवं स्थिर रखने के लिए आवश्यक है।

3.8 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. आत्म-विकास में वृद्धि के उपायों की चर्चा करें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आत्म-विश्वास को विकसित करने के लिए जीवन के कौन-कौन से क्षेत्र या पक्ष सहायक हो सकते हैं?
2. आत्म-विश्वास से सम्पन्न व्यक्ति में किन-किन गुणों में परिपूर्णता देखी जाती है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आत्म-विश्वास क्या है?
2. अपनी नकारात्मक छवि को कैसे बदला जा सकता है?
3. स्वयं को जैसा है वैसा स्वीकार करने से क्या होता है?
4. आत्म-विश्वास में न्यूनता के मुख्य परिणाम क्या-क्या होते हैं?
5. आत्मानुशासन का तात्पर्य क्या है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. आत्म-प्रवंचना क्या है?

7. चिंतन निर्णय, क्रियान्विति तथा परिणामों पर अत्यधिक बदल देने से क्या समस्या खड़ी हो सकती है?

8. आत्म-विश्वास को बढ़ाने का पहला चरण क्या है?

9. आत्म-विश्वास कमजोर होने पर पारस्परिक सम्बन्धों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

10. गुरूजन व गंभीर व्यक्तियों से सच्ची सम्मति कैसे प्राप्त की जाये?

3.9 संदर्भ पुस्तकें:

1. शिव खेड़ा, (2000, प्रथम संस्करण), जीत आपकी, फुल सर्कल, दिल्ली-32
2. John Mulligan, Personal Management, 1988, Sphere Book Ltd., London.
3. Anthony Robbins, 1986, Unlimited Power, Simon & Schuster Ltd. London.
4. Jock Black, 1994, Mind Store, Thorsons, An imprint of Haper collins publishers.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–4 जीवन वृत्ति विकास : लक्ष्य निर्धारण और प्राप्ति (आधार, प्रक्रिया, कार्ययोजना और जीवन विज्ञान)

संरचना

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 लक्ष्य निर्माण और प्राप्ति

4.2.1 लक्ष्य-निर्माण की आवश्यकता

4.2.2 लक्ष्य-प्राप्ति

4.2.3 लक्ष्य-निर्माण और प्राप्ति : वैज्ञानिक आधार

4.3 लक्ष्य : प्रकार और कार्य योजना

4.3.1 लक्ष्य की विशेषताएँ

4.3.2 लक्ष्य के प्रकार

4.3.3 जीवन उद्देश्य

4.3.4 अल्पकालीन लक्ष्य : जीवन वृत्ति

4.4 लक्ष्य-प्राप्ति की प्रक्रिया और जीवन विज्ञान

4.4.1 अभिप्रेरणा

4.4.2 शिथिलीकरण

4.4.3 एकाग्रता

4.4.4 साक्षात्कार

4.5 लक्ष्य-प्राप्ति और व्यावहारिक अभ्यास

4.5.1 जीवन चक्र

4.5.2 आध्यात्मिक जीवन

4.6 सारांश

4.7 प्रश्न

4.8 संदर्भ ग्रंथ

4.0 प्रस्तावना

मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है क्योंकि उसमें विवेक शक्ति है। इसी के द्वारा वह अपनी जीवन की दिशा का निर्धारण कर सकता है। अपने भाग्य का स्वयं विधाता बन सकता है। जीवन में लक्ष्य का निर्माण कर उसे प्राप्त कर सकता है। किन्तु अधिकांश व्यक्ति अपनी क्षमता से बहुत कम परिचित होते हैं। उसको उपयोग में कैसे लेना? इस बात से भी प्राय: अनभिज्ञ होते हैं। अत: अनेक व्यक्ति लक्ष्य बनाने के बाद भी उसको प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वस्तुत: बहुत कम व्यक्ति अपना लक्ष्य बना पाते हैं। उनमें से भी बहुत कम व्यक्ति उस लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं। लक्ष्य-प्राप्ति के मानवीय रहस्य को न समझने के कारण लक्ष्य-बनाने और उसको प्राप्त करनें में उत्साह नहीं दिखाई देता। लक्ष्य प्राप्ति के रहस्य को समझ लिया जाय तो लक्ष्य बनाना व उसे प्राप्त करना आसान हो जाता है। लक्ष्य बनाने के बाद भी जो लक्ष्य चेतना के सतह पर ही तैरता रहता है उसकी प्राप्ति कठिन हो जाती है। वही लक्ष्य जब चेतना की गहराई में भेज दिया जाता है तब उसकी प्राप्ति आसान हो जाती है।

कोई भी व्यक्ति ऐसी बस या ट्रेन में नहीं बैठना चाहेगा जिसकी मंजिल का पता नहीं हो, किन्तु अधिकांश व्यक्ति जीवन यात्रा में बिना मंजिल के सफर कर रहे हैं। जीवन अमूल्य है। अत: यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए सोचने, समझने और जागरूक होने का समय है। जब तक जीवन का कोइ उद्देश्य या अर्थ नहीं है तब तक जीवन सूना है, रिक्त है। आत्म-संतोष के अभाव में सफलता का कोई अर्थ नहीं है। वह व्यर्थ है। फिर चाहे व्यक्ति के पास कितना ही धन, सम्मान और उपाधियों का अम्बार ही क्यों न हो। जीवन को सार्थक बनाने के लिए उद्देश्य की खोज आवश्यक है। व्यक्ति अपनी आत्मसंतुष्टि और इन्सानियत को बेचकर सारी दुनिया की सम्पत्ति भी प्राप्त कर ले तो उसमें क्या लाभ? उद्देश्यहीन जीवन जीते जी मृत्यु के तुल्य है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को एक सार्थक उद्देश्य की खोज कर उसे प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

जीवन में उद्देश्य की खोज ही सबसे बड़ी चुनौती है। बहुत कम व्यक्ति जीवन में उद्देश्य की खोज कर पाते हैं। अधिकांश व्यक्ति अपने जीवन के दिन गिनते हैं, वे उसका मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं। व्यक्ति अपने जीवन में अपने उद्देश्य को जितना जल्दी खोज ले उतना ही अच्छा है। एक बार उद्देश्य और नैतिक मूल्य स्पष्ट हो जाये तो वैयक्तिक स्वार्थ और सामाजिक दायित्व के मध्य अन्त: संघर्ष में एक नैतिक संतुलन आ जाता है। व्यक्ति में जागरूकता आ जाती है कि कब उसे दृढ़ रहना है और कब उसे सामंजस्य स्थापित करना है? व्यक्ति दूरदर्शी बन जाता है, छोटे, तुच्छ और तुरन्त लाभ के लिए गलत निर्णय के आकर्षण से बच जाता है। सही और दूरगामी निर्णय लेने की क्षमता आ जाती है। स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ की भेद बुद्धि स्पष्ट हो जाती है।

4.1 उद्देश्य

1. लक्ष्य-निर्माण और प्राप्ति का वैज्ञानिक आधार क्या है?
2. लक्ष्य के प्रकार एवं उसकी कार्य-योजनाओं में किन-किन बातों का समावेश होता है?
3. जीवन विज्ञान में लक्ष्य-प्राप्ति के लिए किन-किन अभ्यासों पर बल दिया गया है?
4. लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक करणीय और व्यावहारिक अभ्यास क्या-क्या हो सकते हैं?

4.2 लक्ष्य-निर्माण और प्राप्ति

4.2.1 लक्ष्य-निर्माण की आवश्यकता

जीवन में लक्ष्य-निर्धारण की आवश्यकता अनेक बार होती रहती है। मुख्य रूप से यह जीवन के उस अवस्था में विशेष रूप से होती है जब व्यक्ति बाल अवस्था से युवावस्था की ओर बढ़ता है तथा उसे कार्य क्षेत्र, व्यवसाय या रोजगार का उसे चुनाव करना होता है। यह चुनाव व्यक्ति स्वयं पहल करके करे या परिस्थिति, वातावरण, सामाजिक, परिवारिक परिवेश तथा भाग्य भरोसे अपने आपको छोड़ दे। यह जीवन का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। व्यक्ति कौन-सा रास्ता लेना चाहता है? यदि उसे यह विश्वास है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है और वह स्वयं अपने भविष्य-निर्माण की जिम्मेदारी और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तरदायित्व को ले सकता है, तो उसे अपने लक्ष्य-निर्माण और उसकी प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। उसे अपनी क्षमाओं और संभावनाओं के विकास की अन्त:दृष्टि प्राप्त करनी होगी।

अनेक व्यक्ति अपने जीवन में, अपने कार्य क्षेत्र में पर्याप्त उपलब्धि हासिल करने पर भी अचानक रिक्तता का अनुभव करने लग जाते हैं। यह रिक्तता उस समय और अधिक सघन हो जाती है जब उन्नति के अवसर हाथ से निकल जाते हैं। परिस्थिति और वातावरण की प्रतिकूलता हावी हो जाती है। ऐसे व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को देखते हैं तो उन्हें वे सफल दिखाई देते हैं। प्रसन्न और परिपूर्ण दिखाई देते हैं। भले ही दूसरे व्यक्ति ऐसा स्वयं अनुभव न करते हों। कुछ व्यक्ति अपने वर्तमान व्यावसायिक जीवन में सफलता व उपलब्धि को प्राप्त कर लेने पर भी संतुष्ट नहीं दिखाई देते। वे भी जीवन में परिवर्तन चाहते हैं। हो सकता है ऐसे व्यक्ति जीवन में जिस लक्ष्य और उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते हों, वह प्राप्त नहीं कर पाये हों। किसी भी रूप में हो, चाहे जीवन के प्रारंभ में नयी शुरुआत करनी हो या जीवन के मध्य में कार्यक्षेत्र परिवर्तन हेतु नयी दिशा का चयन करना हो व्यक्ति स्वतंत्र है कि स्वयं को परिस्थितियों के भरोसे छोड़ें या स्वयं पहल करके निर्णय करें। जब सारे विश्व में तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं, नई तकनीकी विकास ऊंचाइयों को छू रहे हैं, कार्यशैली में तेजी से बदलाव आ रहा है, तो प्रत्येक व्यक्ति को गंभीरता से चिंतन करने की आवश्यकता है कि वह कहां जा रहा है? आगे बढ़ने के लिए उसे सभी संभावनाओं पर ध्यान देना होगा। अपनी क्षमताओं को अपेक्षानुसार पुन: प्रशिक्षित भी करना होगा।

4.2.1.1 नवीन प्रशिक्षण

जीवन-विकास का सबसे उत्तम एवं सरल उपाय है कि निरन्तर नये-नये ज्ञान की प्राप्ति करते रहना। इस प्राप्ति में कोई आयु सीमा बाधक नहीं बनती है। ज्ञान स्वयं प्रकाशक होता है। दु:ख से मुक्त करने वाला होता है। कहा भी गया है—'ऋते ज्ञानात् न मुक्ति:'। ज्ञान के बिना दु:ख-मुक्ति संभव नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को दो प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है। एक वह जो उसके कार्यक्षेत्र या आजीविका क्षेत्र के लिए सक्षम बनाए। दूसरा वह जो उसे जीवन को सही ढंग से जीना सीखाए।

वर्तमान युग में शिक्षा की अवधारणा में भी बदलाव आया है। आज शिक्षा को जीवन पर्यन्त ग्रहण की जाने वाली प्रक्रिया माना जाने लगा है। अब शिक्षा केवल विद्यालयी आयु तक सीमित नहीं है। इसी कारण हजारों परिपक्व आयु के विद्यार्थी स्नातक व स्नातकोत्तर पत्राचार पाठ्यक्रम में भाग लेते हैं। आप केवल इतना-सा चिंतन अवश्य कर लें कि जो शिक्षा या प्रशिक्षण मैं प्राप्त करने जा रहा हूँ उसका मेरे जीवन या कार्यक्षेत्र में किस प्रकार से उपयोग हो सकता है। आगे बढ़ना है तो निरन्तर सीखने की ललक को बनाये रखना है। अपने कार्यक्षेत्र एवं जीवन से सम्बन्धित ज्ञान व अभ्यास को सीखते रहना है।

4.2.1.2 योजना की आवश्यकता

यदि व्यक्ति अपने जीवन निर्माण की जिम्मेदारी स्वयं लेना चाहता है तो उसे योजना बनानी होगी। अधिकांश व्यक्तियों के पास योजना बनाने की क्षमता होती है। वे लक्ष्य और संसाधन के अनुरूप अपने घर व ऑफिस के कार्य व खर्चों की कुशल योजनाएं बना लेते हैं। किन्तु इसका उपयोग अपने जीवन निर्माण हेतु कम ही करते हैं। जीवन-निर्माण की योजना की पहली आवश्यकता है इस आशय को स्पष्ट करना कि हम चाहते क्या हैं? हमारे दीर्घकालीन उद्देश्य और अल्पकालिक लक्ष्य क्या हैं? उसी के अनुरूप वहाँ तक पहुंचने के लिए योजना को विकसित करना होगा।

यदि आप अपने लक्ष्य को बनाना चाहते हैं एवं उसकी योजना को मूर्त रूप देना चाहते हैं तो अपनी योग्यताओं और क्षमताओं को ध्यान में रखना होगा। अपेक्षानुसार उन्हें विकसित करना होगा। साथ ही इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बात का भी ध्यान देना होगा कि आप किस वातावरण में कार्य करना पसंद करेंगे। लक्ष्य-निर्माण और योजना बनाने में अधिकांश व्यक्ति जिस कठिनाई का अनुभव करते हैं वह है प्रारंभ कहां से करें? इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए अनेक उपाय हैं, जिस पर आप विचार कर सकते हैं।

□ पिछले अध्याय के अभ्यास में जहां हमने अपनी अतीत की यात्रा की है उसे देखने से हमें अपने अनुभवों और उपलब्धियों को समझने व भावी निर्णय की अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

□ वर्तमान जीवन के अवलोकन से कार्य की प्राथमिकता, योग्यता और मूल्यों को समझने में सहायता मिल सकती है।

□ 'मैं कहां जा रहा हूं' इस अभ्यास (जो पूर्व में किया जा चुका है) के अवलोकन से भविष्य की वास्तविक दृष्टि, कल्पना, सुषुप्त क्षमता और यथार्थ परक रणनीति और योजना बनाने में सहायता मिल सकती है। वर्तमान में किये जा रहे प्रत्येक कार्य की समीक्षा लक्ष्य के साथ की जा सकती है।

यदि एक बार हमने व्यवस्थित रूप से उपरोक्त तथ्यों पर विचार कर लिया है तो हमारे सामने अपने भविष्य की स्पष्ट तस्वीर, विद्यमान सभी संभावनाएं, अल्पकालीन लक्ष्य व दीर्घकालीन उद्देश्य आदि निर्धारित हो जायेंगे। यह अन्तर्दृष्टि आपके विकास के नये द्वारों को खोलेगी जिसके प्रति आप अपने आपको पूर्ण समर्पित पायेंगे। नई आशा और उत्साह का संचार आप में होगा। आने वाली बाधाओं को चीरकर लक्ष्य प्राप्ति के साहस से भरपूर अपने आपको पायेंगे।

यह याद रखना चाहिए कि जीवन एक पगबाधा दौड़ है। इसे जीतने के लिए अनेक बाधाओं को चीरना एक अनिवार्यता है। व्यक्ति चाहें तो इन बाधाओं को विकास के अवसरों में बदल सकता है। यह कभी नहीं सोचे कि जो वर्तमान में उपलब्ध है वह सब अपर्याप्त व असंतोषजनक है। हमेशा विकास की भावना के साथ संतुलन रखते हुए उमंग व जोश से आगे बढ़ते रहना है।

4.2.2 लक्ष्य-प्राप्ति

लक्ष्य-प्राप्ति सफलता का द्योतक है। सफलता का शाब्दिक अर्थ है जिस लक्ष्य को बनाया था उसको प्राप्त कर लेना। जो बीज बोया था उसकी फसल प्राप्त कर लेना। फल प्राप्त कर लेना अर्थात् सफल होना। जीवन में सफलता का अर्थ भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकता है क्योंकि सबका लक्ष्य अलग-अलग होता है। उसको प्राप्त कर लेना ही उनके लिए सफलता है। Mind Store में Jack Black ने सफलता को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि मेरे लिए सफलता का तात्पर्य यह है कि जीवन में संतुलन बनाये रखते हुए व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला अच्छे से अच्छा प्रयास ही सफलता है।

सफल व्यक्तित्व में अनेक लक्षणों का समावेश होता है—समर्पण, अभिप्रेरणा, दृढ़ संकल्प, आत्म-विश्वास एवं दिशा-बोध। इसी प्रकार असफल व्यक्तित्व भी अनेक लक्षणों से अभिव्यक्त होता है—आत्म-विश्वास में कमी, शक्ति का अभाव, एकाकीपन, अवसाद, असहायता, उदासीनता। सफलता का मूल हार्द है—निर्णय करके उसके प्रति पूर्ण समर्पित हो जाना। सफलता एक दिन में नहीं मिल जाती है। लम्बे संघर्ष एवं धैर्य की जरूरत पड़ती है। निर्णय लेना बीज बोने के समान है। बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक धैर्य, परिश्रम, सुरक्षा और निरन्तर जागरूकता की जरूरत होती है। जो समर्पण से ही संभव है।

एक किसान बीज बोने से पहले जमीन को साफ करके हल जोतता है, फिर उसमें बीज बोता है। खाद और पानी से उसका पोषण और सिंचन करता है। बीज से अंकुर फूटते हैं। अनावश्यक घास-फूस भी पैदा होती है। किसान उनको हटाने का निरन्तर प्रयत्न भी साथ-साथ करता रहता है। महीनों के परिश्रम के बाद फसल लहलहाने लगती है। अनेक बार अतिवृष्टि या अनावृष्टि से फसल नष्ट भी हो जाती है फिर भी किसान कभी निराश नहीं होता है। असफलता से घबराकर हाथ पर हाथ धरकर नहीं बैठता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। वे अपना कर्त्तव्य करते चले जाते हैं। सफलता और असफलता जीवन के अंग हैं। उसे समभाव से लेना चाहिए। सफलता अनेक असफलताओं की बलिवेदी पर खड़ी होती है। समता का विकास करना चाहिए।

अर्ल नाइटिंगेल ने सफलता की परिभाषा देने की कोशिश की है। उनके अनुसार "निरन्तर मूल्यवान लक्ष्य-प्राप्ति का नाम ही सफलता है।" यहां सफलता एक यात्रा है न कि मंजिल, जहां जाकर व्यक्ति रूक जाये। अत: यहां निरन्तर (Progressive) का तात्पर्य है—एक के बाद दूसरा एवं दूसरे के बाद तीसरा लक्ष्य प्राप्त करते रहना।

मूल्यवान (Worthy) का तात्पर्य नैतिक मूल्यों से है। व्यक्ति किस दिशा में जा रहा है? सही दिशा में या गलत दिशा में? सफलता की यात्रा कितनी अच्छी होगी? यह व्यक्ति के लक्ष्य की मूल्यवत्ता पर निर्भर है।

लक्ष्य-प्राप्ति (Realisation) का अर्थ है—अनुभूति करना। लक्ष्य प्राप्त होने का अनुभव करना।

4.2.2.1 सफलता के चार लक्षण—

सफलता के कारक तत्त्वों के अन्तर्गत् अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग संख्या प्रस्तुत की है। विद्वान जेक ब्लेक ने सफलता के लिए चार लक्षणों पर बल दिया है—

1. शक्ति या उत्साह, 2. विधायक दृष्टिकोण, 3. साहस, 4. मानसिक क्षमता का पूरा उपयोग।

1. शक्ति या उत्साह—सफल व्यक्तियों में भरपूर शक्ति होती है। वे कठोर परिश्रम करते हैं। उसी के सहारे वे जीवन की नई-नई चुनौतियों का निरन्तर सामना करते रहते हैं। चुनौतियों के सामने आते ही जिस कठिनाई को व्यक्ति महसूस करते हैं वह है—दबाव और तनाव। व्यक्ति यदि इस दबाव और तनाव का सामना करना सीख ले तो वह जीवन में नई-नई चुनौतियों को आसानी से स्वीकार कर सकता है। भरपूर ऊर्जा व शक्ति को बनाये रख सकता है। सफलता की नई ऊंचाइयों को छू सकता है। जीवन विज्ञान के अन्तर्गत विद्यार्थियों को कायोत्सर्ग का प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे व्यक्ति तनाव और दबाव का कुशलता से निराकरण कर सकता है।

2. विधायक दृष्टिकोण—विधायक दृष्टिकोण का तात्पर्य है कि जीवन में जो पवित्र उद्देश्य एवं लक्ष्य बनाया है उसी के बारे में सकारात्मक विचार करना, उसे ही पुष्ट करना न कि बाधाओं के प्रति सोच-सोच कर दु:खी और निराश होना। हमारी दृष्टि लक्ष्य पर रहे एवं तुरन्त लाभ के लिए जीवन मूल्यों से समझौता न किया जाए। दृढ़ता एवं स्वत: सुझाव के द्वारा लक्ष्य को पुष्ट करना, स्वयं को प्रोत्साहित करना, आशावादिता, सक्रियता और समाधान परक चिंतन करते रहना विधायक दृष्टिकोण के मुख्य अंग हैं।

3. साहस—सफलता का अर्थ है कि छोटे-छोटे भागों में, छोटी-छोटी सफलता को प्राप्त करते चले जाना। आगे-से-आगे नयी ऊँचाइयों पर आरोहण करना। छोटा चिंतन और भय से व्यक्ति जहां है वहीं रूक जाता है। साहसी व्यक्ति ही नई चुनौतियों को स्वीकार करके पहाड़ी ऊँचाइयों पर आरोहण कर सकता है। यथार्थ में सफल व्यक्ति भी वही है जो अधिक से अधिक समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखता है। जीवन यात्रा में अवरोध, रूकावटें, बाधाएं आदि आना एक अनिवार्य घटना है। भय से व्यक्ति उन्हें पार नहीं कर पाता है। निर्भीक व्यक्ति उनको अवरोध नहीं मानकर; अवसर और चुनौती मानते हुए स्वीकार करता है। आगे बढ़ने के लिए सुविधावादी दृष्टिकोण, छोटे चिंतन एवं अनावश्यक भय की दीवारों को तोड़ गिराना आवश्यक है। ये हमें अपने ही भीतर कैद कर देते हैं, बांध देते हैं। इन सबको तोड़कर एक विराट और महान ध्येय की ओर सतत् बढ़ते रहना सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

4. मानसिक क्षमता का पूरा उपयोग—सफलता का चौथा लक्षण है—मानसिक क्षमता का पूरा उपयोग करना। मानव मस्तिष्क के दो भाग हैं—दायां एवं बायां। दोनों के अपने-अपने महत्त्वपूर्ण एवं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशिष्ट कार्य हैं। मस्तिष्क का बायां भाग तर्क, विश्लेषण, गणित आदि शक्तियों से सम्पन्न होता है। मस्तिष्क का दायां भाग कला, अन्तर्दृष्टि, कल्पना आदि शक्तियों से सम्पन्न होता है। इन दोनों भागों का जो पूरा उपयोग कर पाते हैं वे सफलता के शिखर पर आसानी से आरोहण करते हुए दिखाई देते हैं।सफल व्यक्ति अपने दबाव और तनाव का सफलता से निराकरण करते हैं तथा शक्ति से परिपूर्ण रहते हैं। सकारात्मक सोचते हैं। नई चुनौतियों को स्वीकार करते हुए नये-नये लक्ष्यों का निर्माण करते हैं।

4.2.3 लक्ष्य-निर्माण और प्राप्ति : वैज्ञानिक आधार

लक्ष्य-निर्धारण और उसकी प्राप्ति का आधार मानसिक जगत् है। कहा भी जाता है मन के जीते जीत है और मन के हारे हार। आधुनिक अनुसंधान ने मन और मस्तिष्क की असीम शक्ति और संभावनाओं को उजागर किया है। मनोविज्ञान के अनुसार अचेतन मन की शक्ति चेतन मन की अपेक्षा बहुत अधिक है। शरीर विज्ञान के अनुसार मस्तिष्क दो भागों में विभक्त है—दायें एवं बायें। बायें मस्तिष्क का कार्य तर्क प्रधान है तथा दायें मस्तिष्क का कार्य अन्तर्दृष्टि प्रधान। लक्ष्य निर्माण का कार्य तर्क प्रधान है इसलिए यह बायें मस्तिष्क तथा चेतन मन का कार्य है। लक्ष्य-प्राप्ति का सम्बन्ध अचेतन मन की शक्ति व दांयें मस्तिष्क की अन्तर्दृष्टि प्रधान कार्य से है। चेतन मन एवं अचेतन मन तथा बायें मस्तिष्क एवं दायें मस्तिष्क दोनों के सम्यक् उपयोग से लक्ष्य का निर्माण और उसकी प्राप्ति सरलता से संभव हो जाती है।

आइन्सटीन नामक वैज्ञानिक ने अपने अध्ययन में यह पाया कि जो मस्तिष्क के एक भाग की विशेषता में दक्ष होते हैं वे अधिकांशतया मस्तिष्क के दूसरे भाग की शक्तियों को काम में नहीं ले पाते हैं। उन्होंने यह भी पता लगाया कि दूसरे भाग को, जो लगभग निष्क्रिय रहता है, काम में लेने से, सक्रिय भाग के साथ धीरे-धीरे सक्रिय बनाने से व्यक्ति की सम्पूर्ण क्षमताओं में सुधार आता है, विकास होता है। जीवन में जिन व्यक्तियों ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की है उन्होंने मस्तिष्क के दोनों भागों को काम में लिया है। हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति अधिकांशतया मनुष्य के बायें भाग—तर्कशक्ति, गणित, विज्ञान आदि के विकास पर बल देती है। इससे मनुष्य के दूसरे भाग का विकास नहीं हो पाता है। उससे कल्पना शक्ति व अन्तर्दृष्टि का विकास नहीं हो पाता है। जितने भी महत्त्वपूर्ण व नये आविष्कार हुए हैं उनमें अन्तर्दृष्टि के विकास का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हमें अपने मस्तिष्क के दोनों भागों का उपयोग करना है।

1970 के आसपास यह माना जाता था कि मनुष्य अपनी क्षमता का 20 प्रतिशत भी उपयोग नहीं कर पाता है। 1980 में यह माना जाने लगा कि मनुष्य अपनी क्षमता का 10 प्रतिशत भी उपयोग नहीं कर पा रहा है। 1990 में मस्तिष्क-विज्ञान की बढ़ती जानकारियों के बाद यह माना जाने लगा कि मनुष्य अपनी क्षमता का एक प्रतिशत के कुछ अंश से ज्यादा उपयोग नहीं कर पा रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपने जीवन में कितना भी सफल हो वह अपनी क्षमता का उपयोग बहुत कम कर पाता है। व्यक्ति अपने दोनों मस्तिष्क को काम में लेने लग जायें तो उसकी क्षमताओं की अभिव्यक्ति में अद्भुत परिवर्तन आ जाएगा। जीवन विज्ञान का उद्देश्य यही है कि विद्यार्थी के मस्तिष्क के दोनों भागों का विकास हो। वह अपनी क्षमता से परिचित हो एवं अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में उसका अधिक से अधिक उपयोग कर सके।

लक्ष्य-प्राप्ति के लिए अपने स्वरूप को जानना आवश्यक है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार हमारा मन मुख्यतया दो भागों में विभक्त है—चेतन मन एवं अचेतन मन। चेतन की अपेक्षा अचेतन मन बहुत शक्तिशाली होता है। चेतन मन हिमखण्ड के समान है जिसका केवल दस प्रतिशत भाग समुद्र के ऊपर दिखाई देता है। शेष नब्बे प्रतिशत भाग पानी के भीतर रहता है। यह भाग अचेतन मन के समान है। अचेतन मन की शक्ति असीम हैं। इसकी शक्तियों को काम में लेने के लिए अपने लक्ष्य को अवचेतन मन तक पहुंचाना होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अवचेतन मन तक अपने लक्ष्य को पहुंचाने के लिए मस्तिष्क की कार्यप्रणाली पर संक्षेप में पुनः विचार करना उपयुक्त होगा। हमारा मस्तिष्क का ऊपरी भाग (Neocortex) दो भागों में विभक्त है—दायां मस्तिष्क एवं बायां मस्तिष्क। जैसा कि पूर्व में विचार किया गया कि बायां मस्तिष्क उन कार्यों में विशेष दायित्व निभाता है जो भाषा, तर्क एवं गणित से सम्बंधित है। दायां मस्तिष्क विशेष रूप से कल्पनाशीलता, कला, सृजनात्मकता एवं अन्तर्दृष्टि के कार्य में अपनी विशेष भूमिका निभाता है। यह भी माना जाता है कि दायां मस्तिष्क व्यक्ति के अचेतन मन की शक्तियों से जुड़ा हुआ है। दाएं मस्तिष्क को सक्रिय करने से व्यक्ति अचेतन मन से सम्पर्क कर सकता है।

दायें मस्तिष्क को सक्रिय कैसे करें? आधुनिक शोधों से यह प्रमाणित हो चुका है कि जिस प्रकार हमारा हृदय धड़कता है, वैसे ही हमारा मस्तिष्क भी निरन्तर प्रकम्पित होता है। इन प्रकम्पनों को प्रति सैकण्ड में होने वाली आवृत्ति से मापा जाता है। पूर्ण जागृत अवस्था, इन्द्रियों की सक्रियता एवं चिंतन की अवस्था में मस्तिष्क में प्रकम्पन की आवृत्ति 13 से 20 बार प्रति सैकण्ड होती है। वैज्ञानिक इसे बीटा स्तर के नाम से पुकारते हैं। जब निद्रा आरंभ, शिथिलता एवं विश्राम की अवस्था होती है तो मस्तिष्क मन्द गति से प्रकम्पित होता है। उस समय प्रकम्पन की आवृत्ति 8 से 12 प्रति सैकण्ड होती है। इसे अल्फा स्तर कहा गया है। इससे भी मन्द 4 से 7 आवृत्ति सैकण्ड रहती है जो गहरी निद्रा अवस्था में उपलब्ध होती है, इसे थीटा स्तर कहा गया है। इससे भी मंद 0-4 तक की आवृत्ति को डेल्टा स्तर कहा गया है।

दायें मस्तिष्क का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के अचेतन मन के साथ है। मस्तिष्क के अल्फा अवस्था में दाऐं मस्तिष्क का अधिक उपयोग होता है। वह अधिक सक्रिय रहता है। इस स्तर पर कल्पना शक्ति व साक्षात्कार करने की शक्ति जागृत रहती है। यदि व्यक्ति को लक्ष्य-प्राप्ति के लिए अचेतन मन की शक्तियों का उपयोग करना है तब उसे सलक्ष्य मस्तिष्क के अल्फा स्तर को सक्रिय करना होगा। कल्पना शक्ति तथा साक्षात्कार करने की शक्ति का विकास करना होगा।

मस्तिष्क के अल्फा स्तर को सक्रिय करने के लिए कायोत्सर्ग की प्रक्रिया बहुत सहयोगी बनती है। अनुसंधानों से यह पाया गया कि कायोत्सर्ग में व्यक्ति के मस्तिष्क की अल्फा तरंगें सक्रिय हो जाती हैं। इस स्थिति में दायां मस्तिष्क भी सक्रिय हो जाता है। इस स्तर का उपयोग व्यक्ति लक्ष्य-प्राप्ति में कर सकता है। इस अवस्था में लक्ष्य की शब्दावली पर एक एकाग्र होकर मानसिक उच्चारण व साक्षात्कार करने से वह अचेतन मन के स्तर तक पहुंच जायेगा। लक्ष्य के साथ अचेतन की शक्ति जुड़ जायेगी। समस्त शक्ति एक दिशागामी होकर लक्ष्य को साकार बनाने में स्वतः सहयोगी बन जायेगी।

4.3 लक्ष्य : प्रकार एवं कार्य योजना

लक्ष्य-निर्माण करना जीवन में एक बहुत कठिन व चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसके लिए विभिन्न प्रयासों की आवश्यकता होती है। सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति में अनेक प्रकार की इच्छाएं होती हैं। वे इच्छाएं व्यक्ति में दबाव उत्पन्न करती हैं, जिससे उनको पूरा किया जा सके। अतृप्त इच्छाएं असंतोष पैदा करती हैं। अत्यधिक इच्छाओं का दबाव व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द्व भी पैदा कर सकता है जो अन्ततः व्यक्तित्व विघटन के रूप में सामने आ सकता है। लक्ष्य-निर्माण का अर्थ है अपनी इच्छाओं में से कुछ को महत्त्व देते हुए उसे विकसित करने का पूर्ण प्रयत्न करना। शेष इच्छाओं का त्याग कर देना या गौण कर देना या सीमित कर देना जिससे हमारी शक्ति अनावश्यक दिशा में नष्ट होने से बच सके।

4.3.1 लक्ष्य की विशेषताएं

लक्ष्य-निर्माण का अर्थ है कि गंतव्य का निर्धारण करना। गंतव्य निर्धारण के साथ अनेक बातें भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निश्चित हो जाती हैं। व्यक्ति जब ट्रेन की टिकिट खरीदता है तो उस पर यह भी निश्चित हो जाता है कि व्यक्ति—

1. यात्रा कहां से प्रारंभ करेगा?
2. उसका मूल्य क्या है?
3. वह कहां जायेगा?

व्यक्तियों से जब लक्ष्य के बारे में पूछा जाता है तो उनका उत्तर अस्पष्ट होता है, जैसे—मैं सफल होना चाहता हूं, प्रसन्न रहना चाहता हूं, अच्छा जीवन जीना चाहता हूँ आदि। ये सब यहीं तक रूक जाते हैं। ये सभी मात्र स्वप्न हैं। इनमें से कोई भी स्पष्ट नहीं है। स्पष्टता और निश्चिंतता लाने के लिए श्री शिव खेड़ा ने अपनी पुस्तक 'जीत आपकी' में बताया है कि लक्ष्य (SMART) में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए—

1. S. - Specific (स्पष्ट)—उदाहरण के लिए जैसे "मैं वजन घटाना चाहता हूं" यह सिर्फ एक इच्छा है। यह लक्ष्य तब बनता है जब हम यह तय कर लेते हैं, "मैं 90 दिनों में दस किलो वजन कम करूंगा।" इसी प्रकार एक बालक सोचता है कि "मुझे डॉक्टर बनना है"। यह सिर्फ इच्छा है। यह लक्ष्य तब बनता है जब व्यक्ति यह निश्चित करता है कि "मैं डॉक्टरी में प्रवेश के लिए 12वीं कक्षा में 90 प्रतिशत अंक लाऊंगा।"

2. M. - Measurable (मापा जा सके)—अर्थात् लक्ष्य की दिशा में प्रगति को मापा जा सके। यदि लक्ष्य को मापा नहीं जा सकता तो उसे प्राप्त भी नहीं किया जा सकता। मापना ही वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रगति या अवरोध का बोध किया जाता है।

3. A. - Achievable (पाने योग्य हो)—पाने योग्य से तात्पर्य है कि उसे प्राप्त किया जा सकता है। वह कठिन एवं चुनौतीपूर्ण तो हो सकता है किन्तु असंभव नहीं। असंभव लक्ष्य निराशा और हताशा को बढ़ाता है। आत्म-विश्वास और मनोबल को तोड़ता है।

4. R. - Realistic (यथार्थ)—लक्ष्य यथार्थ होना चाहिए। कोई सोचे कि मैं 30 दिनों में 30 किलो वजन कम कर दूंगा। यह वास्तविकता से परे है। इसी प्रकार कोई सोचे मैं सभी विषयों में 100 प्रतिशत अंक लाऊंगा, यह भी अवास्तविक है।

5. T. - Timebound (समयबद्ध)—कार्य के प्रारंभ और अन्त का एक निश्चित समय होना चाहिए।

4.3.2 लक्ष्य के प्रकार

कुछ पाश्चात्य लेखकों ने लक्ष्य को मुख्य रूप से दो ही भागों में बांटा है—अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लक्ष्य। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में लक्ष्य को चार भागों में बांटा जा सकता है—

1. चरम लक्ष्य
2. दीर्घकालिक लक्ष्य
3. अल्पकालिक लक्ष्य
4. तात्कालिक लक्ष्य

1. चरम लक्ष्य—ये लक्ष्य न होकर जीवन के ध्येय कहलाते हैं। जीवन का भी ध्येय अवश्य होना चाहिए। इसके अभाव में व्यक्ति का दृष्टिकोण बहुत छोटा हो जाता है। व्यक्ति का जीवन केवल लक्ष्य तक सीमित रह जाता है। वह जीवन के उद्देश्यों को भूल जाता है। भारतीय संस्कृति में जीवन का परम लक्ष्य या ध्येय मोक्ष या परम शांति को माना गया है। अपनी क्षमताओ का पूर्ण विकास माना गया है। जीवनमें शांति तभी मिल सकती है जब व्यक्ति अपने जीवन को संयमित व संतुलित बनाये। ध्येय के अनुरूप उद्देश्य एवं लक्ष्यों को छोटे-छोटे भागों में बांट लेने से उसे प्राप्त करने व ध्यान केन्द्रित करने में आसानी हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. दीर्घकालीन लक्ष्य—इसका समय कितना हो, यह कहना कठिन है फिर भी 5 साल से लेकर जीवन पर्यन्त हो सकता है। एक व्यक्ति जीवन में शांति के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में बढ़ना चाहता है तो उसे भी जीवन में कुछ-न-कुछ करने के लिए अपना उद्देश्य स्पष्ट करना ही पड़ेगा। वह यदि यह निश्चित करता है कि मुझे मानवता की सेवा करते हुए अच्छा जीवन जीना है। संयमित व संतुलित जीवन जीना है। यह उसका दीर्घकालीन लक्ष्य हो जाता है। यह उसका जीवन-उद्देश्य बन जाता है।

3. अल्पकालीन लक्ष्य—मानवता की सेवा और शांति के उद्देश्य को सामने रखने वाले को भी कार्यक्षेत्र का चुनाव करना होता है। व्यक्ति मानवता की सेवा अनेक रूपों में कर सकता है। उसके लिए वह जीवन के किसी भी क्षेत्र (कैरियर) का चुनाव कर सकता है। उनमें से एक का चुनाव करना आवश्यक होगा। व्यक्ति चुनाव करता है कि ''मैं पांच सालों में डॉक्टर बनकर मानवता की सेवा में अपने जीवन को लगाऊंगा''। यह उसका अल्पकालीन लक्ष्य हो जाता है। इसके निर्माण के लिए अनेक चरणों से गुजरने की आवश्यकता होती है।

4. तात्कालिक लक्ष्य—यह लक्ष्य वर्तमान काल में सम्बंधित होता है। दीर्घकालीन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वर्तमान में व्यक्ति को क्या-क्या करना है? किन-किन चुनौतियों का सामना करना है? उपरोक्त लक्ष्य के संदर्भ में देखें तो बालक दसवीं में ही यह निर्णय करता है कि ''मुझे डॉक्टरी में प्रवेश के लिए 2 सालों में 12वीं की परीक्षा में 85 प्रतिशत अंक से उत्तीर्ण होना है।'' यह उसका वर्तमानकालिक लक्ष्य हो सकता है। यह उसके लिए बड़ी चुनौती है। इसी प्रकार जीवन की किसी भी अवस्था में समस्याएं आ सकती हैं। उसका उसे तत्काल समाधान खोजना होता है। प्रत्येक समस्या या चुनौती तात्कालिक लक्ष्य बन जाती है।

उपरोक्त लक्ष्य-निर्माण की विवेचना जितनी सरल दिखाई देती है वह सामान्यतया जीवन व्यवहार में उतनी सरल नहीं होती।इसके लिए निरन्तर पुरुषार्थ व अन्त:प्रेरणा की आवश्यकता पड़ती है।इसके लिए बाह्य वातावरण,पारिवारिक परिवेश व सामाजिक स्थितियां भी व्यक्ति के निर्णय में प्रेरक व सहायक होती हैं।

4.3.3 जीवन-उद्देश्य

हजारों वर्षों से भारतीय संस्कृति में जीवन-उद्देश्यों पर गहन-चिंतन व मनन होता रहा है। उसी के अनुरूप जीवन-दर्शन और जीवनशैली का भी प्रतिपादन हुआ। भगवान महावीर ने गृहस्थ के लिए संयमित जीवनशैली का प्रतिपादन किया। यहां जीवन का मुख्य उद्देश्य है—संयम और समता। स्वास्थ्य, धन, परिवार, समाज और जीवन-मूल्यों के प्रति संतुलित दृष्टि और स्वयं के मानदण्ड का निर्माण प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक अपरिहार्य आवश्यकता है। इसी से सफलता के वटवृक्ष का बीजारोपण होता है, सफलता का प्रारंभ होता है। यदि पवित्र उद्देश्य और स्पष्ट दृष्टि जीवन का मार्गदर्शन नहीं करेंगे तो मिथ्या स्वप्न और ख्याली पुलाव ही जीवन के मार्गदर्शक बन जायेंगे। यदि सार्थक मूल्यवान फसल सलक्ष्य नहीं बोई गई तो निरर्थक और मूल्यहीन घास-फूस और कांटे स्वत: पैदा हो जायेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सलक्ष्य प्रयत्न करे। यदि व्यक्ति ने जीवन में सार्थक उद्देश्य और स्पष्ट दृष्टिकोण सलक्ष्य नहीं अपनाए तो निरर्थक और भ्रामक दृष्टिकोण उसका पीछा नहीं छोड़ेंगे। अत: प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि जिसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, उसकी उपेक्षा नहीं करें एवं जिसकी उपेक्षा करनी चाहिए उसी की उपेक्षा करे। अत: जीवन-उद्देश्य के प्रति प्रत्येक व्यक्ति को जागरूक हो जाना चाहिए।

जीवन-यात्रा में प्रयाण के लिए, जीवन में शांति को बनाये रखने एवं परम शांति को प्राप्त करने के लिए जीवन संतुलित होना चाहिए। एक आयाम पर अत्यधिक ध्यान देकर अन्य आयामों को अनदेखा कर देने से जीवन-नैया बीच मझधार में अचानक डगमगा जाती है। ऐसे ही अनेक उदाहरण हमें संसार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में देखने को मिलते हैं। वर्तमान युग का सबसे अंधकारमय पक्ष है—आर्थिक पक्ष को जीवन का अंतिम उद्देश्य मान लेना। 'जीत आपकी' पुस्तक में लेखक ने ऐसे ही कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं—

सन् 1923 में दुनिया के सबसे अमीर व्यक्तियों में से आठ लोग मिले। अंदाजा लगाया गया कि उनकी संपत्ति का जोड़ अमरीकी सरकार की कुल संपत्ति से भी ज्यादा था। इन लोगों से अधिक कौन जानता था कि पैसा कैसे कमाया और जोड़ा जाता है। 25 साल बाद उनके साथ क्या हुआ?

1. सबसे बड़ी स्टील कंपनी के मालिक, चार्ल्स शॉब, उधार की पूंजी पर पांच साल तक जिए और फिर दिवालिया होकर मर गए।

2. सबसे बड़ी गैस कंपनी के प्रेसिडेंट हॉवर्ड हब्सन पागल हो गए।

3. एक बहुत बड़े व्यापारी आर्थर क्यूटन दिवालिया होकर मर गए।

4. न्यूयार्क स्टोक एक्सचेंज के प्रेसिडेंट रिचर्ड वाईटनी को जेल जाना पड़ा।

5. राष्ट्रपति के कैबिनेट सदस्य अल्बर्ट फाल को जेल से इसलिए छोड़ दिया गया जिससे वे अंतिम दिन घर पर बिता सकें।

6. वॉल स्ट्रीट के सबसे बड़े सट्टेबाज जेसी लीवरमोर ने आत्महत्या कर ली।

7. दुनिया के सबसे बड़े एकाधिकार के प्रेसिडेंट इवार क्रूजर ने आत्महत्या कर ली थी।

8. 'बैंक ऑफ इंटरनेशनल सैटलमेंट' के प्रेसिडेंट लियॉन फ्रेजर ने भी आत्महत्या कर ली थी।

ये लोग पैसा कमाने में पारंगत थे किंतु भूल गये कि जीवन को कैसे बनाया जाये। पैसा साधन है साध्य नहीं। जीवन-निर्वाह का साधन है, सब कुछ नहीं। इसको सब कुछ मान लेने से अन्य आयाम धरे रह जाते हैं।

4.3.4 अल्पकालीन लक्ष्य : जीवनवृत्ति (Career)

अल्पकालीन लक्ष्य का सम्बंध मुख्यत: जीवन में कार्यक्षेत्र के चुनाव से है। इसे आज 'केरियर' से जाना जाता है। 'कैरियर' के अनेक अर्थ दिये गये हैं। सामान्य उपयोग में इसका अर्थ है—प्रगति, व्यवसाय या जीवन में व्यक्ति द्वारा प्राप्त विभिन्न पद। अध्ययन की दृष्टि से 'कैरियर' का तात्पर्य है—

'Any work paid or unpaid, persued over an extended period of time, can constitute a career. In addition to formal job work, it may include school work, home making or volunteer work.'

कोई भी कार्य (क्षेत्र), वैतनिक या अवैतनिक, दीर्घकाल तक किया जाता है वह 'कैरियर' की श्रेणी में आ सकता है। इसके अन्तर्गत औपचारिक वैतनिक कार्य के अतिरिक्त स्कूल कार्य, गृहकार्य या स्वयंसेवी कार्य का भी समावेश हो जाता है।

4.3.4.1 कैरियर अवस्थाएं

हम अपने कैरियर के चिंतन का प्रारंभ माध्यमिक या उच्च माध्यमिक शिक्षा से करते हैं। रिटायरमेंट के समय इसको समेट लेते हैं। हम सम्पूर्ण 'कैरियर' को पांच अवस्थाओं में बांट सकते हैं—खोज, स्थापना, मध्यावस्था, उत्तर अवस्था, अवसान।

अ. खोज—इसी अवस्था में व्यक्ति 'कैरियर' के अनेक विकल्पों में से कुछ के चयन पर विचार करता है। हमारे सम्बन्धी, शिक्षक, मित्र, संचार-साधन आदि कैरियर से सम्बंधित अनेक विकल्पों में से एक दिशा में ले जाने में सहायक होते हैं। इसी अवस्था में हम सर्वोत्तम विकल्प की खोज करते रहत हैं। निर्णायक स्थिति तक पहुंचने में पैतृक कार्यक्षेत्र (व्यवसाय या कैरियर), रुचियां, बच्चों से आकांक्षाएं, आर्थिक संसाधन आदि महत्त्वूपर्ण भूमिका निभाते हैं। उसी के अनुरूप व्यक्ति विद्यालयों और महाविद्यालयों में अध्ययन के लिए विचार करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ब. स्थापना-इस अवस्था का प्रारंभ कार्य की खोज और उसकी प्राप्ति से होता है। इस अवस्था में ही व्यक्ति जीवन की वास्तविकता से आमने-सामने होता है। वह नये कार्य को सीखता है। अपने कार्यों से बड़ों को संतुष्ट कर पाता है या नहीं, सफलता या असफलता उसके सामने आने लगती है। यह समय उसके लिए अनेक चिंताओं और अनिश्चिंतताओं से भरा होता है। इसी अवस्था में व्यक्ति से अनेक त्रुटियां भी होती हैं। वह उन त्रुटियों से सीखता है। धीरे-धीरे उस पर नई-नई एवं महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियां आने लगती हैं। यद्यपि इस अवस्था में उसकी पूर्ण कार्योत्पादक क्षमता सामने नहीं आ पाती है। प्रारंभ में सामान्यतया अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य एवं पद नहीं सौंपे जाते हैं।

स. मध्यावस्था (Mid-Career)-इस अवस्था में कैरियर से सम्बंधित समस्याओं को विशेष रूप से अनुभव करना पड़ता है। कुछ लोग अपने कार्यक्षेत्र में विकास करते हैं, कुछ रुक जाते हैं और कुछ कार्यकौशल में गिरावट का अनुभव करते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति को नौसिखिया की तरह नहीं देखा जाता है। उसकी त्रुटियों को गंभीर माना जाता है जिसके लिए उसे बहुत हर्जाना भी भरना पड़ सकता है। यहां व्यक्ति नौसिखिए से जिम्मेदार सदस्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। जो वास्तव में ही समर्पित, जिम्मेदार एवं सफल व्यक्ति के रूप में उभरते हैं उन्हें उसके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियां, पद एवं प्रोत्साहन प्राप्त होते हैं। अन्य व्यक्तियों के लिए यह अवस्था स्वयं के पुनर्मूल्यांकन, नौकरी में परिवर्तन, अपनी प्राथमिकताओं में समायोजन एवं जीवनशैली में परिवर्तन का समय होता है।

द. उत्तर अवस्था (Late Career)-यह उन लोगों के लिए आह्लादक अवस्था होती है जो पूर्व अवस्था में विकास करते हुए आगे बढ़ते हैं। वे अपने कार्यक्षेत्र में बुजुर्ग एवं अनुभवी के रूप में सम्मान प्राप्त करते हैं। इस अवस्था में उनसे नया सीखने या नया करने की अपेक्षा नहीं की जाती। पर उनका मुख्य कार्य नये आने वालों का मार्गदर्शन करना होता है। जिस अनुभव को उन्होंने वर्षों से कार्य के दौरान प्राप्त किया है उसको बांटना उनका मुख्य दायित्व होता है। यही उनसे अपेक्षा भी की जाती है।

जो लोग पूर्व अवस्था में ही स्थिर हो जाते हैं, जिनका विकास रूक जाता है या कार्यक्षमता गिर जाती है उनके लिए यह अवस्था सुखदायक नहीं होती। इस अवस्था में व्यक्ति महसूस करने लगता है कि वह वर्तमान पद पर ही कैद हो गया है। उसकी कार्य के प्रति रुचि कम होने लगती है। अन्य कार्य करने की उसकी इच्छा बलवती बनने लगती है। वह कार्यमुक्ति (Retirement) की प्रतीक्षा करने लगता है।

य. अवसान-अधिकांश व्यक्तियों के लिए अंतिम अवस्था अत्यधिक कष्टदायी होती है। इस समय में उसे कार्य से मुक्त (Retire) होना पड़ता है। यह अवस्था उन लोगों के लिए और भी अधिक कष्टदायी होती है जिन्होंने जीवनभर मेहनत से सफलता के शिखर पर आरोहण किया, नई पहचान बनाई। उसे अब सब कुछ छोड़ना होता है। दूसरी ओर जिन व्यक्तियों ने कार्यक्षेत्र में सामान्य कार्य करते हुए कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त नहीं की है, उनके लिए कष्ट कम होता है। प्रसन्नता का भी विषय हो सकता है कि दूसरों की नजरों में अब महत्त्वहीन होने से बच जाऐंगे।

4.3.4.2 कैरियर अवस्था और आयाम

विभिन्न कैरियर अवस्थाओं के साथ अनेक आन्तरिक और बाह्य आयाम जुड़े हुए होते हैं। इनको संक्षेप में तालिका में दर्शाया गया है-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अवस्था	बाह्य आयाम	आन्तरिक आयाम
खोज	* सम्बंधी, शिक्षक व मित्रों के जीवन्त उदाहरण एवं सुझाव * विद्यालय में सफलता या असफलता, रुचियां, खेल आदि * शैक्षिक दिशा का चयन—सामान्य शिक्षा या प्रोफेशनल शिक्षा	* आत्म-विश्वास का विकास व रुचि का बोध जो आनन्ददायक हो * स्वयं की प्रतिभा व सीमाओं का बोध * इच्छा-शक्ति, लक्ष्य, अभिप्रेरणा, संभावित विकल्प व समर्पण का विकास
स्थापना	कार्य की खोज, कार्य का स्वीकार, अभिमुखीकरण, अतिरिक्त प्रशिक्षण, दायित्व-ग्रहण, अधिकारी व सदस्यों से परिचय, सीखने की अवधि, पूर्ण क्षमता का अभिव्यक्ति-काल, स्थानापन्नता (Transfor) या प्रोन्नति (Promotion)।	वास्तविक दुनियां से सामना, नया कार्य और असुरक्षा की भावना, कार्य की स्वीकृति का निर्णय/अनिर्णय, परीक्षा की घड़ी की अनुभूति, विकास की रणनीति का निर्माण-कड़ी मेहनत, मार्ग-दर्शक की उपलब्धि, संगठन के प्रति समर्पण, योगदान, सफलता या असफलता की भावना, प्रतिकूलता की स्थिति में छोड़ने का निर्णय। संगठन में अपनत्व।
मध्य अवस्था	संगठन के संवेदनशील व महत्त्वपूर्ण दायित्वों को प्राप्त करना। अधिकतम क्षमता की अभिव्यक्ति। नौसिखिए के स्थान पर शिक्षक की भूमिका। विकास के शिखर का स्पर्श एवं स्थायित्व।	* स्व-मूल्यांकन द्वारा अपनी आकांक्षापूर्ति की अवधि। * सुरक्षा एवं आराम की अनुभूति किन्तु विकास में स्थिरता का भय। * नये, कुशल, उत्साही एवं महत्त्वाकांक्षी द्वारा चुनौती। * नये कार्य एवं क्षेत्र की चुनौतियां। * स्वीकार्यता में वृद्धि।
उत्तर अवस्था	विशेषत: निर्णायक कार्यों का दायित्व। प्रशिक्षण की जिम्मेदारी।	कार्य-मुक्ति की तैयारी, उत्साह में कमी, स्व-विकास हेतु नये स्रोतों की खोज।
अवसान	कार्य-मुक्ति की औपचारिक तैयारी एवं कार्यक्रम।	सीमित दायित्व व भूमिका को स्वीकार करने की मानसिकता।

बोध प्रश्न :

1. सफलता के चार लक्षण कौन-कौन से हैं।
2. लक्ष्य के प्रकार बताएं।

4.3.4.3 जीवन-वृत्ति विकास और योजना (Career development & planing)

यह एक वास्तविकता है कि व्यक्ति अपनी छुट्टियों को मनाने के लिए जितना समय योजना बनाने के लिए खर्च करता है उतना समय भी अपने कैरियर की योजना बनाने में खर्च नहीं करता है। जहां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उसे जीवन के महत्त्वपूर्ण चार दशक बिताने हैं। सफल व्यक्तियों के उदाहरण इस बात को दर्शाते हैं कि उनकी सफलता में कैरियर की योजना का बहुत महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। यदि किसी व्यक्ति को अपने कैरियर का विकास करना है तो उसे क्या करना चाहिए? इसका उत्तर है—स्व-मूल्यांकन एवं योजना।

विद्यार्थी जीवन के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है सही कैरियर का चुनाव। विद्यार्थी अक्सर अपने माता-पिता की इच्छा के अनुसार अपने कैरियर का निर्धारण करते हैं। यदि उनकी अभिरुचि व क्षमता उस कैरियर के अनुरूप हो तो उनके कैरियर की नींव मजबूत हो जाती है, परंतु यदि उनके कैरियर में प्रवेश उनकी रुचि व क्षमता पर आधारित नहीं है तो दीर्घावधि में इससे संतुष्टि व प्रसन्नता प्राप्त नहीं होगी। अत: अपनी योग्यता के अनुरूप सही कैरियर का चुनाव करना चाहिए। मात्र इसलिए नहीं क्योंकि अन्य छात्र भी एक कैरियर विशेष का चुनाव कर रहे हैं।

कैरियर प्लानिंग का निर्धारित समय नहीं है, पर विद्यार्थी जीवन में नौवीं कक्षा के बाद सचेत रहना अत्यंत आवश्यक है। यही समय है जब विद्यार्थी अपनी रुचि की तरफ सचेत होता है व अपनी अलग पहचान बनाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में अपना प्रभाव व कौशल दिखाता है। ये क्षेत्र खेल, ड्रामा, भाषण प्रतियोगिता, लेखन आदि हो सकते हैं। अगर विद्यार्थी इस स्तर पर सही दिशा को न जान सकें तो वह आगे भी अपनी अभिरुचि के अनुरूप कैरियर का चुनाव कर सकते हैं।

कैरियर का चुनाव एक व्यापक प्रक्रिया है जिसमें पहला कदम है स्वयं को पहचानना व अपने विकास की दिशा का निर्धारण कर उसके लिए तैयारी करना। दूसरा महत्त्वपूर्ण कदम है—अन्वेषण। अभ्यर्थी को विभिन्न कार्यक्षेत्रों का बारीकी से अध्ययन करना चाहिए तत्पश्चात् कुछ वांछित कैरियर विकल्पों को शार्टलिस्ट कर लेना चाहिए। उन विकल्पों के लिए आवश्यक पात्रता (शैक्षणिक, व्यावहारिक व व्यावसायिक) के विषय में भी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। तीसरा और निर्धारक कदम है उस कैरियर का चयन जो आपके द्वारा तय किए मापदंडों पर खरा उतरता है। चौथा कदम है कैरियर या लक्ष्य को भेदने के लिए एक विस्तृत कार्य योजना तैयार करना। पांचवा, उस कैरियर विशेष के लिए जिन योग्यताओं की आवश्यकता हो उन्हें हासिल करना। छठा कदम है स्वयं की विशेषताओं को पूरी तैयारी व अच्छे ढंग से प्रस्तुत करना।

I स्व-मूल्यांकन—स्वयं का निरीक्षण आपके कैरियर विकल्पों को बढ़ाने में सहायक होता है। आप स्वयं अपनी योग्यताओं, रुचि, गुण, दोष आदि का अध्ययन करें। जब भी आप किसी कैरियर या जॉब विशेष की तलाश करते हैं तो उसके लिए आवश्यक योग्यता व आपके गुणों में समानता होनी चाहिए।

यदि आप नहीं जानते कि कौन-सा कैरियर/नौकरी आपके लिए सही है तो आपके आत्मनिरीक्षण द्वारा इसे तय करना होगा कि आप क्या अच्छा कर सकते हैं व किसी कार्य को करने में आप आनंद पा सकते हैं। आपका चुनाव बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि आप स्वयं को कितनी अच्छी तरह से जानते हैं। इसके लिए आप पहले अपनी 'पर्सनल इन्वेन्टरी' बनाइए। निम्न पक्षों पर ईमानदारी से आत्मनिरीक्षण करें—

(अ) व्यक्तित्व व सोच—विभिन्न गुणों की एक सूची बनाइए, जैसे—बुद्धिमत्ता, निर्णय लेने की शक्ति, सहायक प्रकृति, कर्त्तव्य निष्ठा, सुनियोजित कार्यशैली आदि। जो गुण आप में नहीं हैं (जो आपके अनुसार चयनित कैरियर से संबद्ध है व आप में होने चाहिए)। उनके समक्ष निशान लगाएं। अपने परिवारजनों व मित्रों से भी अपने गुण-दोषों के विषय में पूछिए व अपनी सूची की व्यावहारिकता व वास्तविकता का आकलन करें। इसमें से फिर उन गुणों को छांटिए जिन पर आपको कार्य करना है।

(ब) अभिरुचि—प्रत्येक व्यक्ति की कुछ व्यावसायिक प्राथमिकताएं होती हैं। वोकेशनल इंटरेस्ट या रोजगार-अभिरुचि जॉन हॉलैंड के मूल सूत्र के अनुसार छह प्रकार की होती हैं। आपके अनुसार जो अभिरुचि आपको परिभाषित करे, उसी के अनुसार आप अपने कैरियर को चुनें—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. रियलिस्टिक (वास्तविक)—यह अभिरुचि व्यावहारिक व्यक्तियों के अनुरूप होती है जो अपनी शारीरिक क्षमता से औजारों व मशीनों के साथ काम करना पसंद करते हैं।

कैरियर विकल्प : प्रकृति से संबंधित कार्य, निर्माण, मैकेनिक्स, इंजीनियरिंग, सेना आदि।

2. इन्वेस्टीगेटिव (खोजी)—यह अभिरुचि उन्हे परिभाषित करती है जो वैज्ञानिक व बौद्धिक कार्यों में रुचि लेते हैं। नई जानकारियां, तथ्य, आंकड़े आदि एकत्र करना व उनका विश्लेषण करना इनके मुख्य रुचि क्षेत्र हैं।

कैरियर अवसर : शैक्षणिक अनुसंधान, मेडिकल, कम्प्यूटर संबंधी कार्यक्षेत्र।

3. आर्टिस्टिक (कलात्मक)—जिन लोगों में रचनात्मक अभिव्यक्ति व सौंदर्यबोध होता है वे इस अभिरुचि क्षेत्र में आते हैं।

कैरियर अवसर : कला, संगीत, नाट्यकला, लेखन या म्यूजियम/लाइब्रेरी में।

4. सोशल (सामाजिक)—इस क्षेत्र में वे लोग आते हैं जो अन्य लोगों की सहायता, प्रशिक्षण, विकास आदि में विशेष रुचि रखते हैं। इन्हें समूह में कार्य करना, उत्तरदायित्व बांटना अच्छा लगता है व ये अच्छे वक्ता भी होते हैं।

कैरियर अवसर : शिक्षण, काउंसलिंग, होटल, एअरलाइंस, मनोरंजन।

5. इंटरप्राइसिंग (साहसी)—जो लोग दूसरों को अपने नेतृत्व से प्रभावित करने व अपने विचारों पर उनकी सहमति पाने की कोशिश करते हैं, इस समूह में आते हैं। इन्हें शक्ति और ओहदे में रुचि होती है।

कैरियर अवसर : सेल्स, बिजनेस, मैनेजमेंट, राजनीति अथवा प्रशासनिक सेवा।

6. कन्वेंशनल (परंपरावादी)—जो लोग योजनाबद्ध रूप से कार्य करते हैं व जिन्हे प्रत्येक कार्य को विस्तार से व नियमानुसार करना अच्छा लगता है इसके अंतर्गत आते हैं। ऑफिस के रुटीन कार्य करने में इनकी विशेष रुचि होती है।

कैरियर अवसर : वित्तीय संस्थान, अकांउटिंग संस्थान।

(स) शैक्षणिक, व्यावसायिक व व्यावहारिक योग्यताएं—विभिन्न माध्यमों से प्राप्त की गई जानकारी व शैक्षणिक व अन्य योग्यताओं की एक सूची बनाएं जिसमें आपके स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी आदि संस्थानों से कोर्स, प्रोजेक्ट, थीसिस आदि द्वारा अर्जित ज्ञान के विषय में लिखें।

साथ ही निम्न बिंदुओं पर विचार करें—

1. स्पेशलाइजेशन (विषय)
2. पसंदीदा विषय।

इस सूची का पुनरावलोकन करें व ऐसे पांच क्षेत्रों को चुनें जिनको अपने कैरियर के लिए आप विकसित करना चाहेंगे।

(द) योग्यता व उपलब्धियां—अपनी अभिरुचि के अनुसार अपना कैरियर क्षेत्र चुनने के बाद अपनी विशेष योग्यताओं व उपलब्धियों की सूची बनाएं। उन्हें फिर तीन समूह में विभाजित करें—

1. विशिष्ट योग्यता—चयनित कार्य विशेष को करने के लिए आपमें क्या विशिष्ट योग्यताएं हैं, उनकी सूची बनाएं, जैसे आंकड़ों की समीक्षा, मशीन बनाना, कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग आदि।

2. अभिव्यक्ति कौशल—इस समूह में आपकी भाषायी पकड़ व लेखन, प्रशिक्षण, लायसनिंग, प्रोत्साहित करने की क्षमता आदि शामिल करें।

3. सामान्य गुण—ये गुण साधारणतया सभी कार्यक्षेत्रों में अपेक्षित हैं, जैसे—इनिशियेटिव लेना, समस्याओं को सुलझाना, संगठन क्षमता आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रत्येक समूह में समाहित गुणों को सूचीबद्ध करें व उन गुणों को पहचानें जिन पर आपको मेहनत करनी है।

II. कैरियर अन्वेषण—सेल्फ असेसमेंट के बाद अपनी अभिरुचि के अनुसार विभिन्न कैरियर विकल्पों की सूची बनाएं। उसके बाद उनसे संबंधित रोजगार व उत्तरोत्तर उन्नति के अवसर तथा उसके लिए आवश्यक पात्रता के विषय में जानकारी प्राप्त करें। उस योग्यता/पात्रता को किन शिक्षण/प्रशिक्षण संस्थाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है, उनकी सूची बनाएं। उनकी 'मार्केट स्टेंडिंग' के विषय में भी पता करें।

अपनी क्षमता को निरंतर बढ़ाने का प्रयास करें जिसके लिए आप एकेडमिक एडवाइजर, कैरियर काउंसलर आदि से विचार-विमर्श करें। जॉब व कैरियर संबंधी फेयर, कैरियर वर्कशॉप्स आदि में भाग लेना व किसी पार्टटाइम जॉब द्वारा प्रेक्टिकल एक्सपोजर पाना भी लाभदायक है। अपने चयनित कैरियर से संबंधित अनुभवी व्यक्तियों से विचार-विमर्श करके आप उसके स्कोप, बुनियादी आवश्यकताओं व कैरियर प्लानिंग के विषय में व्यावहारिक जानकारी ले सकते हैं।

III. कैरियर का चयन—उक्त स्रोतों से जानकारी प्राप्त करने के बाद एक निश्चित कैरियर का चुनाव करें जो आपकी योग्यता व अभिरुचि आदि के अनुरूप हो व आपके द्वारा निर्धारित मापदंडों पर खरा उतरता हो।

IV. कार्ययोजना—अपने कैरियर लक्ष्य को निर्धारित करने के पश्चात् उस तक पहुंचने की कार्य योजना बनाएं व उसके क्रियान्वयन के लिए कदम उठाएं।

V. पूर्व तैयारी—आपके द्वारा निश्चित कैरियर में जिन योग्यताओं की आवश्यकता हो उन्हें हासिल करने के लिए उपयुक्त संस्थान चुनें। अपनी क्षमताओं, योग्यताओं, ज्ञान, प्रशिक्षण आदि को कैरियर की आवश्यकता के अनुसार अपडेट करते रहें।

VI. स्वयं को प्रस्तुत करें—कैरियर के अनुरूप विशिष्ट व सामान्य योग्यता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बनें। अपनी क्षमताओं व गुणों को प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त करने का अभ्यास करें।

कैरियर अवसर व स्कोप—वैश्वीकरण की पृष्ठभूमि में रोज नित नए कैरियर विकल्प जन्म ले रहे हैं। इनके विषय में अखबारों, पत्रिकाओं, टेलीविजन व इंटरनेट के माध्यम से जानकारी ली जा सकती है। विभिन्न अवसरों के विषय में पूरी खोजबीन करें। कैरियर के नए क्षेत्र, जैसे—ई-कॉमर्स, बायोटैक्नालॉजी, एन्वायरमेंटल साइंसेज, योग आदि का महत्त्व बढ़ रहा है व कैरियर विकास की संभावनाएं भी इनमें बहुत प्रबल हैं। अपनी क्षमताओं व जॉब/कैरियर की पात्रता की तुलनात्मक विवेचना करें। तत्पश्चात् ही उसकी ओर दृढ़ता से कदम बढ़ाएं क्योंकि सही कैरियर ही आपके सुनहरे भविष्य की गारंटी है।

4.3.4.4 कार्यक्षेत्र में सफलता

नौकरी प्राप्त करने के बाद उसे कायम रखना और लगातार तरक्की करते जाना ही सफलता को दर्शाता है। कार्यक्षेत्र चाहे कोई भी हो, आज के दौर में वही टिक सकता है जो एम्पलॉयर की जरूरत बन सके। अत: कुछ बातों पर विशेष ध्यान दें।

1. ज्ञान बढाते रहें—समय के साथ-साथ सब कुछ बदलता है। काम करने के तौर-तरीके भी बदल जाते हैं। कई नई बातें और नई जानकारियां इसमें आ जाती हैं। बुद्धिमानी इसी में है कि इन नई चीजों को जाना जाए। अपनी जानकारी इतनी बढ़ानी आवश्यक है कि नए दौर में काम करने में कोई परेशानी या असहजता न हो। ऐसा नहीं करने से पेशेगत रूप से आउटडेटेड हो जाने का खतरा बना रहेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. सपने देखें, प्रयास करें—सपने देखना बुरी बात नहीं है। तरक्की के सपने हर कोई देखता है, पर यह कड़वा सच है कि सपनों और हकीकत में एक लंबा फासला होता है। यह फासला तभी दूर हो सकेगा, जब सपनों को सच करने के लिए लगन से कोशिश की जाए। बगैर कोशिश के सपने देखना तकलीफदेह होता है। इससे अंत में खुद को तो पीड़ा होती ही है। दूसरे सफल लोगों को देखकर मन में कुंठा भी पनपने लगती है।

3. पैसे की होड़ से बचें—वेतन की मात्रा अधिकतर युवकों की पहली प्राथमिकता होती है। प्राय: वे दूसरे प्रोफेशनल्स (समान फील्ड के) से इसकी तुलना भी करने लगते हैं। यह बिलकुल गलत है। इस होड़ से बचना चाहिए। इससे पहले यह सोचिए कि वेतन के बदले आप क्या दे रहे हैं अपनी कंपनी को और क्या वह पर्याप्त है? यदि पर्याप्त नहीं है तो पहले यह कोशिश होनी चाहिए कि कम से कम उतना काम जरूर करें, जितना वेतन दिया जा रहा हो। दूसरों के वेतन से अपनी तुलना करना भी ठीक नहीं है। इसके बजाय यह देखें कि वह अपनी कंपनी को ऐसा क्या योगदान दे रहा है जो मुझसे अलग है? उसकी दक्षता क्या है? उसको अपने अंदर लाने की कोशिश करें।

4. समूह भावना—एक संगठन से जुड़ने के बाद आप एक टीम के सदस्य बन जाते हैं। आपकी वैयक्तिकता यहां खत्म हो जाती है। आपके क्रिया कलाप और लक्ष्य दोनों टीम भावना से जुड़ जाने चाहिए। 'किसी तरीके से मेरा काम हो जाए' जैसी भावना को मन से निकालकर पूरी टीम के साथ चलें ताकि बेहतर समन्वय हो सके।

5. बदलाव के लिए अधीर न रहें—बेहतर बदलाव की बात हर प्रोफेशनल सोचता है, लेकिन इसके लिए धैर्य नहीं खोना चाहिए। सबसे पहले जिस कंपनी में जाने की इच्छा रखते हैं, वहां के काम के बारे में जानें। यह देखें कि वहां वर्तमान काम के अलावा नया क्या है, जो आप नहीं जानते। उसे जानने की काशिश करे और खुद को नए काम के हिसाब से पूरी तरह तैयार कर लें। इसके बाद ही नई कंपनी में नई पोजीशन पर जाने की बातें सोचें।

6. हर वक्त तैयार रहें—नियत समय पर काम पर आने और ड्यूटी पूरी कर चले जाने की परंपरा अब खत्म होती जा रही है। बदलते दौर में आपसे किसी भी समय काम लिया जा सकता है, इसे करना आपके लिए जरूरी है। असाइनमेंट पूरा करने के लिए ज्यादा काम करना आपके कैरियर के विकास के लिहाज से भी बेहतर है। इससे जिम्मेदार होने की छवि बनेगी और तरक्की की संभावनाएं बनी रहेंगी।

7. संकट से निबटने की योग्यता—काम से जुड़ी कई जटिलताएं आपके सामने आती रहती हैं। कई काम ऐसे होते हैं, जिन्हें आप नहीं कर पाते। ऐसा झिझक के कारण हो सकता है या फिर योग्यता न होने की वजह से भी। जटिल से दिखने वाले कामों को करने की प्रवृत्ति पैदा करें और झिझक भी दूर करना जरूरी है। ऐसा करके ही कंपनी की जरूरत बना जा सकता है।

8. सीखने की आदत—सीखना दो तरह से होता है। पहला, अपने काम के सिलसिले में और दूसरा इससे अलग हटकर नई बातें। काम के दायरे में आप जितना ज्यादा सीख सकेंगे, उतना ही पुख्ता बनेंगे और आपका आत्म विश्वास मजबूत होगा। दूसरी नई जानकारियां आपको ऑलराउंडर बनने में मदद करती हैं। ऑलराउंडर प्रोफेशनल की किसी भी कंपनी में पूछ बढ़ जाती है और वह तरक्की पाता जाता है।

9. कम्पयूटर नॉलेज आवश्यक—यह युग सूचना तकनीकी (आईटी) का है। कोई भी कार्यक्षेत्र कम्प्यूटर से अछूता नहीं है। कई कंपनियों का काम तो केवल कम्प्यूटर पर ही होता है। ऐसे में कम्प्यूटर ज्ञान होना जरूरी है। यह अलग-अलग कार्यक्षेत्र के लिए अलग-अलग हो सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.3.4.5 समस्या-समाधान

एक बार लक्ष्य बनाने के बाद भी जीवन में निरन्तर आने वाली समस्या या चुनौतियों का सामना करने की योग्यता का विकास करना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में लक्ष्य न भी बना हो तो भी कुछ-न-कुछ समस्याओं से सदैव उसका सामना होता रहता है। उसका सामना कैसे किया जाये? उस हेतु अपनी क्षमता का पूरा उपयोग कैसे हो? मस्तिष्क के बायें एवं दायें दोनों भागों का उपयोग कैसे करें? इसको जानना आवश्यक है? बायें मस्तिष्क के उपयोग के लिए चार चरण हैं—

1. इस बात को स्वीकार करें कि मेरे सामने समस्या है।
2. समस्या का विश्लेषण करें।
3. समाधान हेतु विकल्पों की ओर नजर दौड़ायें।
4. समाधान पर अपनी शक्ति केन्द्रित करें।

1. समस्या को स्वीकार करना—स्व-प्रबन्धन के चिंतक 'समस्या' शब्द के प्रयोग को ही पसन्द नहीं करते हैं। इसकी जगह 'चुनौती' या 'अवसर' शब्द के प्रयोग पर बल देते हैं। भाषा का अपने मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। 'चुनौती' एवं 'अवसर' जैसे शब्दों के प्रयोग से चिंतन को सकारात्मक दिशा मिलती है। 'समस्या' जैसे शब्दों के प्रयोग से ऐसा लगता है व्यक्ति की जीवनयात्रा में अवरोध आ गया है। अत: व्यक्ति 'समस्या' शब्द के स्थान पर 'चुनौती' या 'अवसर' शब्द का प्रयोग करें।

अधिकांशतया व्यक्ति अपने चिंतन को 'समस्या' पर केन्द्रित कर देते हैं। समाधान के विकल्पों पर उसका ध्यान ही नहीं जाता है। वे समस्या को बहुत सूक्ष्मता एवं विस्तार से वर्णन करते हैं। घंटों तक उसके महत्त्व व तात्पर्य पर बोलते रहते हैं किंतु समाधान की बात आती है तो उनका चिंतन आगे नहीं बढ़ पाता है।

'मेरे सामने समस्या है' इस सच्चाई को स्वीकार करना ही पहली चुनौती है। बहुत लोगों को लग सकता है कि इसमें कोई खास बात नहीं है, यह तो बिलकुल सरल है। अधिकांशतया व्यक्ति समस्या के लिए दूसरों को जिम्मेदार ठहराते हैं। उसकी जिम्मेदारी स्वयं पर नहीं लेते हैं। वे दूसरों की ओर अंगुली उठाते हैं। वे भूल जाते हैं कि तीन अंगुलियां उसकी तरफ संकेत कर रही हैं। अनेक बार व्यक्ति समस्याओं को नजर अन्दाज कर देते हैं। उस पर ध्यान देना ही नहीं चाहते या अनमनेपन से टालते रहते हैं।

समस्या के प्रति व्यक्तिगत दृष्टिकोण बदलना चाहिए। अधिकांश व्यक्ति सोचते हैं कि सफलता का अर्थ है—समस्या का न होना। किन्तु सच्चाई यह है कि जहां जीवन है वहां समस्या है, जहां समस्या है वहां जीवंतता रहेगी। इसलिए समस्या को स्वीकार करना चाहिए। उनका अस्तित्व हमारे जीवन में भी है व दूसरे के जीवन में भी सबकी समस्याएं हैं। अत: उन्हें स्वीकार करना चाहिए, उनका सामना करना चाहिए।

अनेक व्यक्तियों के लिए समस्या को स्वीकारना कष्टदायक होता है। वे अपराध बोध से ग्रसित हो जाते हैं कि "मैंने ऐसा किया है"। किन्तु अपनी गलती या जिम्मेदारी स्वीकार करने से हम वास्तव में उससे मुक्त होने के पहले चरण पर आरोहण करते हैं। अत: उसे स्वीकार करना चाहिए।

2. समस्या का विश्लेषण—अपनी समस्या का विश्लेषण करें। अपने आपको स्पष्ट करें। इस समस्या के साथ कौन-कौन जुड़े हुए हैं? कहां घटित हुई? कब घटित हुई? क्यों घटित हुई? कैसे घटित हुई? अपना पूरा ध्यान समस्या के विभिन्न पहलुओं को समझने में केन्द्रित करें। समस्या को अपने ऊपर हावी न होने दें। समस्या के साथ अनेक कष्टदायक पहलू भी हो सकते हैं। उनसे बचने का प्रयास न करके उनका भी सामना किया जाये।

3. विकल्प की खोज—अब समस्या से ध्यान हटायें। समाधान के संभावित विकल्पों पर ध्यान केन्द्रित किया जाये। उन परिस्थिति, व्यवहार और क्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाये जिससे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समाधान संभव हो सकता है। समाधान परक चिंतन करने से कोई-न-कोई एक विकल्प अवश्य मिलेगा, जिससे समाधान हो सके।

4. शक्ति को समाधान पर केन्द्रित करना—एक विकल्प का चुनाव जब समाधान के रूप में कर दिया जाता है तब पूरा ध्यान उस समाधान को क्रियान्वित करने में लगा देना चाहिए। अपने ध्यान को पुन: समस्या पर नहीं जाने देना चाहिए। समाधान को क्रियान्वित करना ही हमारा लक्ष्य बन जाता है। वह ही हमारा परिणाम है जिसको हम चाहते हैं। इसमें केवल बायें मस्तिष्क, चेतन मस्तिष्क का ही उपयोग करेंगे तो सफलता की संभावना क्षीण हो जायेगी। नये विचार व विकल्प नहीं उभरेंगे। पुन: व्यक्ति समस्या ग्रस्त हो जायेगा। सफलता के लिए दांये मस्तिष्क, अन्तर्दृष्टि की क्षमता का उपयोग करना आवश्यक है। जीवन विज्ञान के अभ्यास से व्यक्ति अपनी समस्या के समाधान के लिए बांये मस्तिष्क के साथ अन्तर्दृष्टि के उपयोग में कुशल हो सकता है।

4.4 लक्ष्य-प्राप्ति की प्रक्रिया और जीवन विज्ञान

गुरू ने कौरव-पाण्डवों की तीरंदाजी की परीक्षा रखी। लक्ष्य रखा वृक्ष पर लगी चिड़िया की आंख को बिंधना। गुरु ने एक-एक शिष्य को बुलाकर पूछा कि तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है? किसी ने कहा पत्ते, किसी ने कहा डालियां आदि-आदि। अन्त में अर्जुन आया। उससे भी यही प्रश्न किया गया। उसने कहा मुझे चिड़िया की आंख दिखाई दे रही है। उसने तीर चलाया। सफल हो गया। जीवन में जो व्यक्ति अपनी दृष्टि लक्ष्य पर रखता है, वह सफल हो जाता है। लक्ष्य-निर्माण और उसके प्रति समर्पण से व्यक्ति की सारी शक्तियां संगठित और केन्द्रित हो जाती हैं। शक्ति के केन्द्रीकरण से व्यक्ति सफलता के शिखर का स्पर्श कर लेता है। सूर्य की किरणों से सामान्यतया आग पैदा नहीं होती है। किन्तु उन्हीं किरणों को विशेष कांच के माध्यम से एक स्थान पर केन्द्रित करने से अग्नि पैदा हो जाती है। इसी प्रकार अपनी शक्ति को लक्ष्य के माध्यम से एक बिन्दु पर केन्द्रित करने से जीवन में सफलता के द्वार खुलने लगते हैं। जीवन में सफलता के लिए एकाग्रता का अभ्यास भी बहुत आवश्यक है। जीवन विज्ञान के पाठ्यक्रम में एकाग्रता के व्यावहारिक अभ्यास पर बहुत बल दिया गया है।

जीवन विज्ञान में प्रेक्षाध्यान प्रायोगिक पद्धति है। यह आध्यात्मिक जागरण एवं सम्पूर्ण व्यक्ति विकास की प्रविधियों को अपने आप में समाहित करती हैं। इस पद्धति में लक्ष्य प्राप्ति की प्रक्रिया हेतु चार चरणों के अभ्यास पर विशेष बल दिया गया है—1. अभिप्रेरणा, 2. शिथिलीकरण (कायोत्सर्ग), 3. एकाग्रता एवं 4. साक्षात्कार। लक्ष्य अल्पकालिक हो या दीर्घकालिक इन चारों चरणों के अभ्यास द्वारा उसे अवचेतन स्तर तक पहुंचाया जा सकता है। वह अन्तत: साकार रूप ग्रहण कर लेता है।

4.4.1 अभिप्रेरणा

प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अनेक प्रकार की इच्छाएँ और आकांक्षाएँ होती हैं। किन्तु उन्हें प्राप्त करने की तीव्र अभिप्रेरणा का प्राय: अभाव होता है। अत: वे सब लक्ष्य के स्तर तक नहीं पहुंच पाती हैं। इच्छाओं के साथ समर्पण, दृढ़ निश्चय, अनुशासन और निश्चित समय सीमा जुड़ जाती है तो वहीं इच्छा लक्ष्य में परिणत हो जाती है। वह तीव्र अभिप्रेरणा बन जाती है। अधिकांश व्यक्ति अपनी इच्छाओं को लक्ष्य में बदल नहीं पाते हैं। उनकी शक्तियां संगठित न होकर बिखरी रहती हैं। यह पाया गया है कि मात्र चार प्रतिशत लोग ही लक्ष्य बना पाते हैं, शेष व्यक्ति तो प्रवाह के बहाव में बहते रहते हैं।

येल विश्वविद्यालय में 1953 में एक अनुसंधान किया गया।[1] अन्तिम वर्ष के विद्यार्थियों से साक्षात्कार किया गया। विश्वविद्यालय, शिक्षा, शिक्षक आदि से सम्बंधित अनेक प्रश्न किये गये। साथ में उन्हें एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्नावली भी दी गई। इस प्रश्नावली में उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ प्रश्न भी थे। उसमें एक प्रश्न यह भी था कि 'क्या आपने अपना कोई लक्ष्य बनाया है?' इस प्रश्न का उत्तर केवल दस प्रतिशत विद्यार्थियों ने 'हां' में दिया। एक दूसरा प्रश्न यह भी था कि क्या आपने अपने लक्ष्य को लिखा भी है? केवल चार प्रतिशत व्यक्तियों ने उसका उत्तर 'हां' में दिया।

बीस वर्ष बाद, 1973 में, पुन: इसी प्रकार के अनुसंधान की पुनरावृत्ति उस विश्वविद्यालय में करने की तैयारी हो रही थी। उनमें से एक अधिकारी ने प्रश्न किया कि बीस साल पूर्व जिन छात्रों ने विश्वविद्यालय को छोड़ा है, उनका जीवन स्तर कैसा है? इसका भी हमें अनुसंधान करना चाहिए। इस बात पर सब सहमत हो गये। अधिकांश व्यक्तियों का पता लगा लिया गया। कुछ व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी।

यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जिन चार प्रतिशत व्यक्तियों ने अपने लक्ष्य को लिखा था वे सफलता की दृष्टि से 96 प्रतिशत व्यक्तियों से आगे थे। उनका जीवन संतुलित था। उनकी स्वस्थता, सामाजिकता, परस्परता शेष 96 प्रतिशत से श्रेष्ठ थी। उनकी आर्थिक सुदृढ़ता भी शेष लोगों से अच्छी थी।

लक्ष्यहीनता के कारण—लक्ष्य न बना पाने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

1. निराशावादी दृष्टिकोण—इस दृष्टिकोण के कारण व्यक्ति संभावनाओं को न देखकर केवल बाधाओं को ही देखता रहता है। इससे व्यक्ति लक्ष्य बनाने का साहस नहीं जुटा पाता है।

2. असफलता का भय—अनेक व्यक्ति असफलता के भय से ग्रसित होते हैं। वे सोचते हैं कि यदि कोई निर्णय लूंगा, पूरा नहीं होगा तो लोग क्या कहेंगे? यदि निर्णय लूंगा ही नहीं तो असफल ही नहीं होऊंगा। वास्तव में यह असफलता का ही दृष्टिकोण है।

3. इच्छाशक्ति की कमी—व्यक्ति में अनेक इच्छाएं घूमती रहती हैं। किन्तु कोई भी इच्छा इतनी प्रबल नहीं होती कि उसका वह चयन करके दिशा को निर्धारित कर सके। अत: वह निर्णय लेने व लक्ष्य निर्धारण में सफल नहीं हो पाता है।

4. आत्मविश्वास की कमी—आत्मविश्वास व मनोबल की कमी के कारण व्यक्ति में अपने आप पर भरोसा नहीं होता है। वह अपने सामर्थ्य व योग्यता के प्रति सही दृष्टिकोण नहीं रख पाता है। अपनी क्षमता से अनजान परिस्थितियों के प्रवाह में, बहाव के अनुरूप बहता चला जाता है, स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाता है।

5. लक्ष्य का महत्त्व न समझना—व्यक्ति को लक्ष्य-निर्माण के महत्त्व का बोध न होने से उसके प्रति उत्साह नहीं रहता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति द्वारा या परिवार में कभी लक्ष्य-निर्माण के महत्त्व को समझाया ही नहीं जाता है। इसी का परिणाम है कि अधिकांश व्यक्ति इसके महत्त्व को जान ही नहीं पाते हैं।

6. लक्ष्य-निर्माण व प्राप्ति के उपायों के बारे में अज्ञान—अधिकांशतया शिक्षा पद्धति से लक्ष्य निर्माण की प्रक्रिया और उसके प्राप्ति के उपायों का ज्ञान नहीं मिल पाता है। इसके अभाव में भी व्यक्ति लक्ष्य बनाने का साहस नहीं जुटा पाते हैं।

लक्ष्य-विहीनता के कारणों को दूर कर लक्ष्य-निर्माण की दिशा में व्यक्ति को प्रेरित किया जा सकता है। वह व्यक्ति अपने चेतन मन की तर्कशक्ति का उपयोग कर अपने लक्ष्य का निर्माण कर आगे बढ़ सकता है। एक बार लक्ष्य-निर्धारण करने के बाद संकल्पशक्ति, समर्पण व पूर्ण विश्वास जुड़ जाने पर वह सशक्त आंतरिक अभिप्रेरणा के रूप में व्यक्ति को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। प्रेक्षाध्यान में इसको और अधिक पुष्ट करते रहने के लिए उसे अवचेतन स्तर तक पहुंचाया जाता है।

यदि स्पष्ट 'शब्दावली' में लक्ष्य अवचेतन मन तक नहीं पहुंचता है तो उसकी सफलता के प्रति चेतन मन संदेह उपस्थित करता रहता है जो गति-प्रगति व लक्ष्य-प्राप्ति में सबसे बड़ी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बाधा है। अत: आवश्यक है कि लक्ष्य बनाने के बाद उसे अवचेतन मन तक पहुंचाया जाये जिससे उत्साह व सक्रियता बनी रहे।

4.4.2 शिथिलीकरण

अवचेतन मन तक अपनी बात पहुंचाने के लिए आवश्यक है कि उस समय व्यक्ति पूर्ण तनाव से मुक्त रहे। तनाव की अवस्था में व्यक्ति अपनी चेतना के ऊपरी सतह तक ही रह जाता है। तनाव-मुक्ति या शिथिलता की अवस्था में व्यक्ति का अल्फा स्तर सक्रिय हो जाता है। दायां मस्तिष्क सक्रिय हो जाता है। उस समय चेतन मन शान्त रहता है। अवचेतन मन सक्रिय रहता है। इस स्थिति को कायोत्सर्ग के दैनिक अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है।

4.4.3 एकाग्रता

कायोत्सर्ग की अवस्था में अवचेतन मन से सम्पर्क रहता है उस समय अपने लक्ष्य की 'स्पष्ट शब्दावली' पर ध्यान को एकाग्र किया जाता है। एकाग्रता के साथ उस शब्दावली के बार-बार पुनरावर्तन करने से वह अवचेतन मन तक पहुंच जाता है। अवचेतन मन के पास संदेश पहुंचने के बाद वह अपनी आन्तरिक शक्तियों को लक्ष्य-प्राप्ति में केन्द्रित कर देता है। व्यक्ति चेतन मन की बाधाओं से पार पा लेता है।

4.4.4 साक्षात्कार

शब्दावली के पुनरावर्तन के बाद लक्ष्य को कल्पनाशक्ति के साथ जोड़ा जाता है। लक्ष्य को चल चित्र की भांति पर्दे पर घटित होता देखा जाता है। ऐसा अनुभव किया जाता है कि जो लक्ष्य बनाया है वह घटित हो रहा है एवं घटित हो गया है। उसके परिणामों की स्पष्ट कल्पना चल चित्रों की भांति मानसिक पर्दे पर की जाती है। इस प्रयोग के माध्यम से व्यक्ति लक्ष्य प्राप्ति हेतु अपने दायें मस्तिष्क का भी पूरा उपयोग करता है।

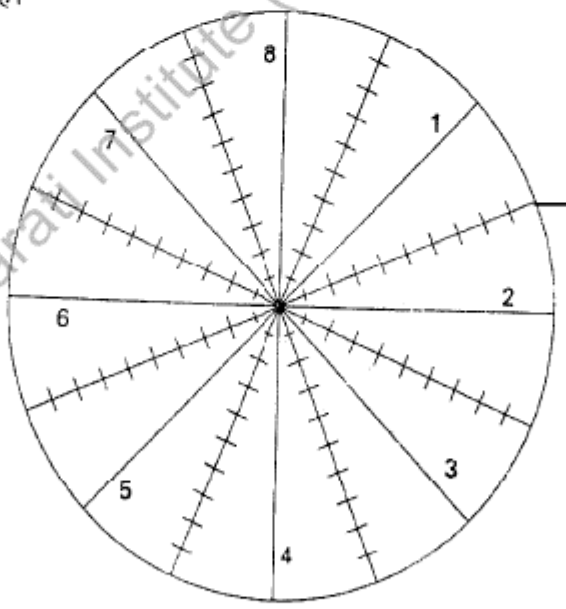

दृढ़ इच्छाशक्ति एवं अभिप्रेरणा के साथ शिथिलीकरण को साधकर दायें मस्तिष्क का उपयोग करते हुए लक्ष्य का साक्षात्कार किया जाये तो ऐसा कोई भी पवित्र लक्ष्य नहीं है जिसे पूरा नहीं किया जा सके। कोई भी बाधा लक्ष्य-प्राप्ति को रोक नहीं सकती। आवश्यकता इतनी सी है कि व्यक्ति स्वयं को जानकर अपनी क्षमताओं का सम्यक् उपयोग करे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.5 लक्ष्य प्राप्ति और व्यावहारिक अभ्यास (Practical Exercise)

लक्ष्य-प्राप्ति के लिए व्यक्ति को व्यावहारिक अभ्यास करना चाहिए। "Mind Store" में लेखक जेक ब्लेक ने कुछ अभ्यास दिये हैं। उनमें से कुछ विद्यार्थी एवं पाठकों के लिए लाभदायक हो सकते हैं।

लक्ष्य निर्माण के बिना जीवन में सफलता या असफलता का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। स्व-प्रबन्धन के विशेषज्ञ जेक ब्लेक के अनुसर 'जीवन में पूर्ण संतुलन के निकटतम पहुंचना' सफलता है।' जीवन में असंतुलन कहां है? उसको जानने के लिए वर्तमान जीवन का अवलोकन अपेक्षित है। वर्तमान जीवन को देखने के लिए पूर्व पाठों में कुछ अभ्यास दिये गये थे। यहां एक ओर अभ्यास दिया जा रहा है जो वर्तमान जीवन में हो रहे असंतुलन को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

4.5.1 जीवन चक्र

जीवन एक यात्रा है। यह यात्रा कैसी चल रही है, उसकी एक झलक आपको 'जीवन-चक्र' के अभ्यास से मिल सकेगी।

अभ्यास-1—एक खाली कागज लें। उस पर एक चक्र बनायें। उसको आठ भागों में विभाजित करें। प्रत्येक भाग के अन्तर्गत मूल्यांकन रेखा बनाएं। 10 भागों में बांट दें। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर विचार करें। उसका अंकन जीवन चक्र में निम्नलिखित प्रकार से करें।

इस अभ्यास में वर्तमान जीवन को आठ भागों में बांटकर देखा गया है। इसके विभाजन को कम-ज्यादा भी किया जा सकता है। वे आठ भाग हैं—पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, वैयक्तिक विकास, स्वास्थ्य, दृष्टिकोण, व्यवसाय या कार्यक्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र, आध्यात्मिक जीवन।

1. पारिवारिक जीवन—जीवन में पारिवारिक जीवन का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक संस्कृति पारिवारिक जीवन को बहुत महत्त्व देती है। विशेषकर भारतीय संस्कृति में और भी अधिक महत्त्व है। पारिवारिक जीवन में पारस्परिक सम्बन्धों की मधुरता या कड़वाहट, दायित्व एवं कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता या लापरवाही, बच्चों या छोटों द्वारा पालन किया जाने वाला अनुशासन या उद्दण्डता, मर्यादाओं के प्रति सम्मान या अवहेलना, बड़ों का छोटों के प्रति स्नेह या उपेक्षाभाव आदि बातें व्यक्ति के पारिवारिक जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। वे व्यक्ति की कार्य क्षमता, प्रसन्नता, संतोष व उत्साह आदि को प्रभावित करते हैं। आप अपने पारिवारिक जीवन अर्थात् अपने पारस्परिक सम्बन्ध, दायित्व, कर्त्तव्य, आदि के प्रति कैसा अनुभव करते हैं उसका स्वयं मूल्यांकन करें। उसके लिए अपने आपको 10 में से कितने अंक प्रदान कर सकते हैं? मान लीजिए आपने इसमें पांच अंक दिये।

2. सामाजिक जीवन—व्यक्ति का जीवन समाज से बहुत प्रभावित होता है। समाज का तात्पर्य है—मित्र, साथ कार्य करने वाले साथी, अधिकारीगण और प्रत्येक व्यक्ति जिनसे व्यक्ति सम्पर्क में आता रहता है। व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता, पीड़ा, दु:ख-दर्द आदि के प्रति कितना जागरूक और संवेदनशील है। वह दूसरों का ध्यान रख पाता है या नहीं, दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान कर पाता है या नहीं? वह केवल लेता ही लेता है या कुछ देता भी है? क्या वह अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर परार्थ की बात भी सोचता है?

इन्हीं बातों से व्यक्ति का समाज में मूल्यांकन होता है। समाज से व्यक्तित्व को सहयोग, सम्मान, प्रोत्साहन, पुरस्कार आदि प्राप्त होता है। इससे उसको आत्म-संतुष्टि होती है। आप अपने आपको सामाजिक जीवन में कितना संतुष्ट अनुभव करते हैं? स्वयं मूल्यांकन करें। इसके लिए आप अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते हैं? मान लीजिए आपने इसमें तीन अंक दिये।

3. वैयक्तिक विकास—जीवन की सफलता का सबसे बड़ा रहस्य है निरन्तर अपनी क्षमताओं के विकास के प्रति जागरूक रहना। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक क्षमताओं के विकास के लिए

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रयत्नशील रहना। मानसिक क्षमताओं का विकास निरन्तर सीखते रहने की भावना से होता है। नई-नई बातों को सीखना। अपने लक्ष्य में सहायक, उद्देश्यपूर्ण जीवन में उपयोगी एवं शांतिपूर्ण जीवन का निर्माण करने वाली नई-नई तकनीक सीखते रहने से व्यक्ति का व्यक्तिगत विकास बढ़ता रहता है। संसार में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनका यह दृष्टिकोण बन जाता है—"मैं सब कुछ जानता हूं"। वे अपने विकास के द्वारों को बन्द कर देते हैं। आप अपने आपको कहां पाते हैं? स्वयं मूल्यांकन करें। 10 में से कितने अंक स्वयं को दे सकते हैं? मान लीजिए इसमें सात अंक दिये।

4. स्वास्थ्य—जीवन की प्रत्येक गतिविधि का आधार अच्छा स्वास्थ्य होता है। इस बात को जानते हुए भी हम में से कितने व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हैं? कहीं हमने ऐसी आदतें तो नहीं पाल रखी हैं जो हमारे स्वास्थ्य के लिए घातक हैं, जैसे मादक पदार्थों का सेवन। क्या हम जीभ के स्वाद के लिए खा रहे हैं या स्वास्थ्य के लिए सात्विक एवं संतुलित भोजन करते हैं? क्या हम श्रम के साथ-साथ विश्राम का संतुलन रखते हैं? क्या स्वस्थ मांसपेशी के लिए नियमित योगाभ्यास करते हैं? क्या हम तनाव से निपटने के लिए कायोत्सर्ग जैसे उपायों को काम में लेते हैं? क्या आप बिल्कुल अस्वस्थ रहते हैं या पूर्ण अस्वस्थ? आप अपनी जीवनशैली से स्वास्थ्य को किधर ले जा रहे हैं? स्वयं मूल्यांकन करें। 10 में से स्वयं को कितने अंक दे सकते हैं? मान लीजिए इसमें छह अंक दिये।

5. दृष्टिकोण—जीवन में व्यक्ति के दृष्टिकोण का बहुत बड़ा महत्त्व होता है? जीवन एक पग बाधा दौड़ है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अनेक बाधाओं को पार कर अपने लक्ष्य तक पहुंचना होता है। कुछ व्यक्ति अपना ध्यान अंतिम मंजिल पर टिकाकर दौड़ते हैं एवं हर तरीके से बाधाओं को पार कर अपनी मंजिल तक पहुंच जाते हैं। वे बाधाओं पर चिंता नहीं करते, रूकते नहीं, परेशान नहीं होते पर हर संभव प्रयत्न से पार करने की कोशिश करते हैं।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक बाधा पर चिंता करने लग जाते हैं, निराश हो जाते हैं और वहीं रूक जाते हैं, आगे नहीं बढ़ पाते हैं। क्या हम जीवन में बाधाओं के बारे में अधिक सोचते हैं या लक्ष्य-प्राप्ति के उपायों पर? क्या हम असफलता पर जल्दी निराश हो जाते हैं एवं प्रयत्न को छोड़ देते हैं या हम असफलता से सीखते हुए निरन्तर आशावादिता के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं? स्वयं अपना मूल्यांकन करें? अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते हैं? मान लीजिए इसमें 4 अंक दिये।

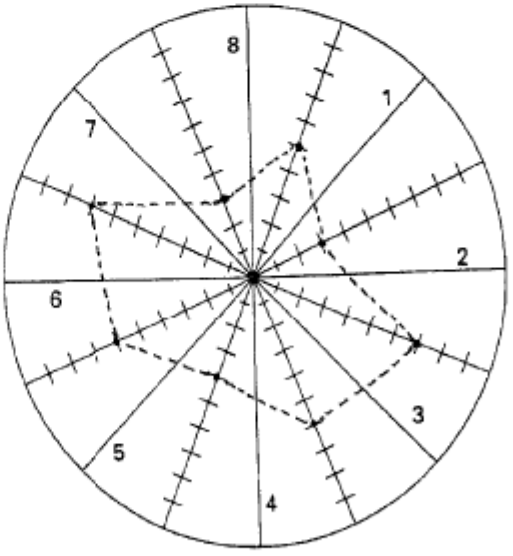

6. कार्यक्षेत्र या व्यवसाय—अधिकांश व्यक्ति का आर्थिक पक्ष व संतुष्टि का आधार उसका कार्यक्षेत्र होता है। जिस कार्य को आप कर रहे हैं क्या उससे आपको संतुष्टि है? क्या आप अपने लक्ष्य को जानते हैं? क्या आपको अपने कार्य में रुचि है? क्या आपको इसको करने में आनन्द व संतोष

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की अनुभूति होती है? क्या आपका अपने कार्य के प्रति पूर्ण समर्पण है? आप स्वयं अपना मूल्यांकन करें? अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते हैं? मान लीजिए इसे छह अंक दिये।

7. आर्थिक जीवन—जीवन संचालन का एक प्रमुख साधन है—अर्थ। आर्थिक अभाव से जीवन की सामान्य आवश्यकताओं को भी पूरा करना कठिन हो जाता है। अर्थ की विपुलता से विलासिता, दुरुपयोग, लालसा, भय व अहंकार जैसी नयी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। आर्थिक जीवन का तात्पर्य यह नहीं है कि हमारे पास धन कितना है? इसका तात्पर्य है धन के प्रति हमारा दृष्टिकोण कैसा है? क्या धन को हम साधन मानते हैं या साध्य? धन का सदुपयोग करते हैं या दुरुपयोग? धन होने के बावजूद भी हम संतुष्ट हैं या असंतुष्ट? हम सुरक्षित अनुभव करते हैं या असुरक्षित? स्वयं मूल्यांकन करें। अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते हैं? मान लीजिए इसमें सात अंक दिये।

4.5.2 आध्यात्मिक जीवन

आध्यात्मिक जीवन का तात्पर्य स्वयं के प्रति जागरूकता से है। कुछ लोग इसको महत्त्व देते हैं, कुछ लोग इससे बिल्कुल अनभिज्ञ होते हैं। आध्यात्मिक जीवन के विकास से व्यक्ति में स्वयं को जानने की जिज्ञासा पैदा होती है। अपनी क्षमताओं के विकास और दुर्बलताओं के नियंत्रण के उपाय हस्तगत होते हैं। क्या हम जीवन के इस पक्ष को भी आवश्यक मानते हैं? क्या उसके प्रति जागरूक हैं? क्या हम प्रयत्नशील हैं? स्वयं अपना मूल्यांकन करें। हम अपने आपको 10 में से कितने अंक दे सकते हैं? मान लीजिए इसमें आपने तीन अंक दिये।

उपरोक्त जीवनचक्र का प्रति दो मास में एक बार मूल्यांकन करें। अब आप सभी क्षेत्रों के अंकों का अंकन जीवन चक्र में करें। जैसे चित्र में दिखाया गया है। क्या इस प्रकार के चक्र से जीवनरथ सहजता से चल सकता है। इस चक्र से आपको अपनी प्रगति एवं संतुलन का बोध होता रहेगा। यह भी पता चलेगा कि किस क्षेत्र पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

जीवन क्षेत्र	अल्पकालिक लक्ष्य	दीर्घकालिक लक्ष्य
पारिवारिक सामाजिक वैयक्तिक विकास स्वास्थ्य दृष्टिकोण व्यवसाय आर्थिक आध्यात्मिक		

अभ्यास 2

उपलब्धियों का मूल्यांकन—अपनी उपलब्धियों का मूल्यांकन नहीं करने से जीवनयात्रा में सहज ही निराशा और उत्साहहीनता का माहौल बन जाता है। वर्तमान में मिल रही छोटी से छोटी उपलब्धि का लेखन और अंकन करें। इससे जीवनयात्रा में आनन्द और प्रसन्नता का माहौल बना रहेगा।

अभ्यास 3

त्याज्य का त्याग—व्यक्ति का जीवन अतीत के बन्धन से बंधा रहता है, वह भविष्य की प्रगति में बाधक बनता है। सप्ताह में एक दिन सभी वस्तुओं का अवलोकन करें। जो छोड़ने या

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हटाने योग्य हैं उन्हें हटा दें। अनावश्यक वस्तुएं अपने जीवन में स्थान घेरते हैं, नवागन्तुक के लिए बाधक बनते हैं। सभी चीजों के अवलोकन से अनावश्यक वस्तुओं के हटाने में सहायता मिलती है। स्वयं में हल्केपन का अहसास होता है। इसी प्रकार जीवन में आपसी सम्बन्धों में जहां कहीं दरारें आ गई हों, उन पर ध्यान दें। आक्रोश और प्रतिशोध की भावना से स्वयं को मुक्त करें एवं सामने वाले को क्षमा करने की आदत डालें। इससे हमारी शक्ति का बहुत बड़ा भाग अपव्यय से बच जायेगा।

क्षेत्र..... दिनांक..... दीर्घकालीन लक्ष्य □ अल्पकालीन लक्ष्य □

संकल्प.....

.....

वर्णन.....

.....

चित्र/रेखाचित्र

हस्ताक्षर

कार्यक्रम दिनांक..... उपलब्धि दिनांक.....

अभ्यास 4

लक्ष्य का निर्माण करें लक्ष्य बनाना आसान नहीं है। अतीत के दबाव एवं वर्तमान की अप्रिय अनुभूतियां भावी निर्णय में बाधक बनती हैं। फिर भी हम आगामी एक वर्ष में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्या परिवर्तन चाहते हैं? हमारी क्या अभिलाषाएं एवं आकांक्षाएं हैं? उनका वार्षिक एवं त्रैमासिक कार्यक्रम बनाऐं। यदि और लम्बा बनाना चाहें तो वह भी आप कर सकते हैं। नीचे दी गई तालिका के अनुसार अपने दीर्घकालीन एवं अल्पकालिक लक्ष्यों को निर्धारित करें।

अभ्यास 5

कार्य योजना—अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कार्य योजना तैयार करें। इससे लक्ष्य-प्राप्ति हेतु शक्तिशाली अभिप्रेरणा जागृत होगी। कमजोर इच्छाशक्ति व अभिप्रेरणा से लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कार्य योजना तैयार करें।

स्वप्न का वर्णन	
स्वप्न का कल से संबंध	स्वप्न का आज से सम्बन्ध
स्वप्न का जीवन से किसी अन्य घटना से संबंध	

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रत्येक लक्ष्य हेतु अलग-अलग पृष्ठ पर उसका स्पष्ट व निश्चित वर्णन करें। उसका संकल्प करें कि मुझे इसे प्राप्त करना है। इससे अचेतन मन को आपकी इच्छा को पूरा करने में आसानी होगी। अस्पष्ट व अनिश्चित लक्ष्य होने से उसको पूरा करना आसान नहीं होता है। उस लक्ष्य का बनाना और न बनाना एक जैसा हो जाता है। लक्ष्य के वर्णन और संकल्प के साथ आपके मस्तिष्क में यदि उसका रेखाचित्र या कोई चित्र हो तो उसको भी आप कार्ययोजना के साथ जोड़ दें। इससे अवचेतन मन तेजी से उसकी प्राप्ति में जुट सकेगा। आप कब तक चाहते हैं उस उपलब्धि की दिनांक भी उस पृष्ठ के अंतिम में लिख देवें। फिर अपने हस्ताक्षर भी करें।

पुनरावलोकन—प्रतिदिन आदत बनाऐं। सोने से पूर्व अपने कार्यक्रम को देखें, ध्यान करें। अपने मानसिक चक्षु के द्वारा अपने भीतर उसका साक्षात्कार करें। एक-एक करके सभी कार्यक्रम पृष्ठों को देखें। प्रतिदिन की आदत बनाऐं। इससे आपके जीवन में स्वत: अनुकूल व्यक्ति, परिस्थितियां व अवसर आते चले जाएंगे। हमारा अवचेतन मन बेतार का संप्रेषक (Wireless Transmitter) है जो स्वत: अपना काम करता है। हमें नियमित रूप से उससे सम्पर्क बनाये रखना चाहिए।

अभ्यास 6

दैनिक डायरी—अपने लक्ष्य से सम्बंधित विचार, सुझाव, कल्पनाऐं हमारे अवचेतन मन से चेतन मन की ओर प्रवाहित होती रहती हैं। उसको तुरन्त लिखने का अभ्यास बनाऐं। यह आपके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

अभ्यास 7

स्वप्न-विश्लेषण—स्वप्न आपके जीवन की घटनाओं का महत्त्वपूर्ण संकेत देता है। प्रात: उठने पर स्वप्न को भी लिखने की आदत डालें। उसका विश्लेषण तुरन्त न करें। सायंकालीन पुनरावलोकन (Review) तक प्रतीक्षा करें। इससे आपको पता चलेगा कि स्वप्न किस घटना की ओर संकेत कर रहा है।

अभ्यास 8

वैचारिक मंथन—प्रात: कार्य प्रारंभ करने से पूर्व लक्ष्य-प्राप्ति हेतु बीस उपाय/विचार लिखने का अपने आपको अवसर दें। इससे आपके अवचेतन मन को अमूर्त्त से मूर्त्त रूप में, लेखनी में आपके सामने उभरने का अवसर मिलेगा। प्रारंभ में हो सकता है कुछ भी विचार न आयें। कुछ दिन बाद स्वत: विचारों का ज्वार एक के बाद एक उमड़ पड़ेंगे। जिससे आप स्वयं आश्चर्यचकित रह जाएंगे। ये विचार आपके लिए बहुत ही मूल्यवान सिद्ध होंगे।

व्यावहारिक अभ्यास का सार-संक्षेप

1. प्रति दो मास में एक बार जीवनचक्र का मूल्यांकन करें। इससे आपके जीवन में संतुलन बना रहेगा। नये लक्ष्यों को बनाना आसान होगा।
2. रात्रि में सोने से पूर्व कार्य-योजना का अवलोकन करें। अचेतन मन तक अपनी बात पहुंचाऐं।
   - ☐ स्वप्न कोई आया हो तो उसका विश्लेषण करें।
   - ☐ स्वयं की उपलब्धियों का अंकन करें।
3. अर्धरात्रि में भी कोई अच्छा विचार आये तो भी उसे लिख लेवें।
4. प्रात: उठकर कार्ययोजना को देख लेवें।
   - ☐ दिनभर का कार्य निश्चित कर लेवें।
   - ☐ लक्ष्य-प्राप्ति हेतु 20 विचारों को लिखने का स्वयं को अवसर दें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. मध्यान्ह में कायोत्सर्ग के लिए समय निकालें।

□ किसी महत्त्वपूर्ण कार्य से पूर्व मानसिक अभ्यास करें।

4.6 सारांश

1. मनुष्य एक विलक्षण प्राणी है। वह चाहे तो स्वयं अपने भाग्य का निर्माण कर सकता है। इसके लिए उसे लक्ष्य-निर्माण कर, योजना बनाकर उसकी प्राप्ति के लिए समर्पित होना आवश्यक है।

2. लक्ष्य-प्राप्ति का अर्थ है—सफल होना। सफल व्यक्तित्व में समर्पण, अभिप्रेरणा, दृढ़संकल्प, आत्मविश्वास एवं दिशाबोध जैसी विलक्षणताएं पाई जाती हैं। वे भरपूर शक्ति, विधायक दृष्टिकोण, साहस से भी सम्पन्न होते हैं। वे अपनी मानसिक क्षमता का अधिकतम उपयोग करने में कुशलता अर्जित करते हैं।

3. मनुष्य के पास असीम क्षमता है। लक्ष्य-निर्धारण और प्राप्ति का आधार मानसिक जगत् है। लक्ष्य-निर्धारण का सम्बन्ध बायें मस्तिष्क के तर्क-प्रधान कार्य एवं चेतन मन से है तथा लक्ष्य-प्राप्ति का सम्बन्ध दायें मस्तिष्क के अन्तर्दृष्टि प्रधान कार्य और अचेतन की अन्तःप्रेरणा से है। जो लक्ष्य केवल चेतन मन तक रहता है व संदेह के रोग से ग्रसित हो जाता है। वह पूरा नहीं हो पाता है। मनुष्य पुनरावर्तन एवं ध्यान द्वारा अपनी अवचेतन मन की क्षमता का उपयोग कर लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

4. लक्ष्य के चार रूप जीवन में प्राप्त होते हैं—1. अन्तिम ध्येय, 2. जीवन का उद्देश्य, 3. जीवनवृत्ति (कैरियर) का चयन, 4. तात्कालिक समस्याओं से सामना एवं उनका समाधान।

5. जीवनवृत्ति (कैरियर) को पांच भागों में बांटा गया है—1. खोज, 2. स्थापना, 3. मध्यावस्था, 4. उत्तर अवस्था, 5. अवसान। कैरियर विकास के लिए सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व है—स्व-मूल्यांकन। जिसके तीन चरण हैं—स्वयं की पहचान, कार्य-क्षेत्र का निर्धारण एवं वास्तविकता का पता लगाना।

6. जीवन विज्ञान में लक्ष्य-प्राप्ति के लिए चार चरणों पर विशेष बल दिया गया है—1. अभिप्रेरणा, 2. शिथिलीकरण (कायोत्सर्ग), 3. एकाग्रता, 4. साक्षात्कार।

7. लक्ष्य-प्राप्ति के लिए कुछ व्यावहारिक अभ्यासों को दैनिक जीवन का अंश बनाना आवश्यक है। जिनमें मुख्य हैं—1. स्व-जीवन चक्र का अवलोकन, 2. उपलब्धियों का मूल्यांकन, 3. अनावश्यक का त्याग, 4. तात्कालिक लक्ष्य और कार्ययोजना का निर्माण, 5. पुनरावलोकन और ध्यान का अभ्यास, 6. दैनिक डायरी लेखन, 7. स्वप्न-विश्लेषण, 8. वैचारिक मंथन।

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. लक्ष्य निर्माण और उसकी प्राप्ति के आधार एवं प्रक्रिया पर प्रकाश डालें।
2. जीवनवृत्ति विकास की अवस्थाओं को समझाते हुए उसके विकास की योजना प्रस्तुत करें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. लक्ष्य-विहीनता के कौन-कौन से कारण हैं?
2. 'कैरियर' का तात्पर्य बताते हुए उसकी अवस्थाओं को स्पष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. यदि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है तो उसे जीवन-निर्माण के लिए क्या करना होगा?
2. सफलता का शाब्दिक अर्थ क्या है?
3. सफल व्यक्तित्व में किन-किन लक्षणों का समावेश होता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. सफलता के चार लक्षण कौन-कौन से हैं?
5. लक्ष्य निर्माण का कार्य ..... मन का कार्य है।
6. लक्ष्य-प्राप्ति का संबंध ..... कार्य से है।
7. लक्ष्य को कितने भागों में बांटा जा सकता है?
8. व्यक्तिगत कैरियर विकास के लिए तीन चरण कौन-कौन से हैं?
9. समस्या-समाधान के लिए किन-किन बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है?
10. वर्तमान जीवन के मूल्यांकन को कितने भागों में बांटा जा सकता है?

4.8 संदर्भ पुस्तकें:

1. शिव खेड़ा, (2000, प्रथम संस्करण), जीत आपकी, फुल सर्कल, दिल्ली-32
2. John Mulligan, Personal Management, 1988, Sphere Books Ltd., London.
3. Jock Black, 1944, Mind Store, Thorsons, An imprint of Harper collins publishers.
4. Arun Zavari & Mayur, Therapeutic thinking.
5. David & Stephen (3rd ed), Personal/Human Resource Management, Prectice Hall of India.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–2 क्षमताओं का विकास

इकाई–5 इच्छा शक्ति (संकल्प शक्ति) और कल्पना शक्ति का विकास तथा प्रेक्षाध्यान

भाग 1

संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 क्षमताएं

- 5.2.1 क्या इन क्षमताओं का विकास कठिन है?
- 5.2.3 क्षमताओं का विकास क्यों?

5.3 संकल्प शक्ति (इच्छा शक्ति) एवं इसका विकास

- 5.3.1 इच्छा शक्ति/संकल्प शक्ति क्या है?
- 5.3.2 इच्छा शक्ति/संकल्प शक्ति के प्रकार
  - 5.3.2.1 कौशलतापूर्ण संकल्प
  - 5.3.2.2 दृढ़ संकल्प
  - 5.3.2.3 आध्यात्मिक या आत्मिक संकल्प
- 5.3.3 विकसित और अविकसित संकल्प
- 5.3.4 विकसित संकल्प वाले व्यक्ति
- 5.3.5 अविकसित संकल्प वाले व्यक्ति
- 5.3.6 स्वपरीक्षण करें
- 5.3.7 संकल्पों का विकास
- 5.3.8 संकल्पों या इच्छा शक्ति को क्रियान्वित करने के स्तर
  - 5.3.8.1 उद्देश्य की स्पष्टता
  - 5.3.8.2 उद्देश्य की प्राथमिकता
  - 5.3.8.3 संयम एवं त्याग
  - 5.3.8.4 दृढता एवं नवीनीकरण
  - 5.3.8.5 योजना
  - 5.3.8.6 क्रियान्विति
- 5.3.9 स्वपरीक्षण करें

5.4 प्रश्नावली

5.5 कल्पना

- 5.5.1 कल्पनाओं के प्रकार
  - 5.5.1.1 पुनरूत्पादक कल्पनाएं
  - 5.5.1.2 रचनात्मक कल्पनाएं
  - 5.5.1.3 निष्क्रिय रचनात्मक कल्पना
  - 5.5.1.4 सक्रिय रचनात्मक कल्पना
- 5.5.2 कल्पना शक्ति के उपयोग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.5.3 कल्पना शक्ति को विकसित करने की विधियां
5.5.4 स्वप्नों से सीखना
5.5.5 कल्पना एवं चिंतन
5.5.6 कल्पना और स्मरण
5.5.7 कल्पना और प्रत्यक्षीकरण
5.5.8 कल्पना एवं प्रतिमा
5.6 प्रश्नावली
5.7 संदर्भ ग्रंथ

5.0 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में हमने स्व-प्रबन्धन कैसे किया जाए इसके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की थी। स्व-प्रबन्धन से जुड़े विभिन्न आयामों का भी अध्ययन किया था। आत्मविश्वास एवं उसकी अभिवृद्धि के उपाय आदि विषयों का अध्ययन किया। इस अध्याय में हम व्यक्ति की क्षमताएं क्या हैं? और इन क्षमताओं का विकास कैसे किया जा सकता है? एवं इनके विकास में प्रेक्षाध्यान की क्या भूमिका हो सकती है? इसका अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त संकल्प या इच्छा शक्ति क्या है? कल्पना शक्ति क्या है? और इसका विकास प्रेक्षाध्यान से किस प्रकार सम्भव है? इसका भी अध्ययन हम इस अध्याय में करेंगे।

5.1 उद्देश्य

1. इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप व्यक्ति की क्षमताओं के बारे में जान पाएंगे।

2. इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह जान पाएंगे की क्षमताओं का विकास करना क्यों आवश्यक है।

3. आप यह भी जान पाएंगे कि इच्छा शक्ति या संकल्प शक्ति क्या है? और इसका विकास किस प्रकार संभव है? इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप इससे सम्बंधित कई प्रश्नों का उत्तर दे पाएंगे।

5.2 क्षमताएं (Capabilities)

मानव स्वभाव से ही नवीन खोज करता रहता है अर्थात् खोजना उसकी प्रवृत्ति है परन्तु किसी भी प्रकार की खोज या कार्य में व्यक्ति अपनी योग्यताओं व क्षमताओं का उपयोग करता है। मानव अपनी क्षमताओं के आधार पर ही विकास करता रहता है। मानवीय क्षमताओं में से कुछ क्षमताएं सामान्य होती हैं और कुछ विशिष्ट। मानव क्षमताएं उसके मनोशरीर के आंतरिक कार्य हैं और प्राय: ये क्षमताएं एक-दूसरे से गुंथी हुई (Intert Wind) होती है। वास्तव में ये क्षमताएं एक तरह से व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक उपकरण या औजार हैं जो उसकी क्रियाओं और विकास को परिष्कृत करते हैं।

व्यक्ति के जीवन में सीखने और जीवन जीने की कला में ये क्षमताएं बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं निभाती हैं। इन क्षमताओं में सात व्यक्तिगत क्षमताएं व्यक्ति के जीवन को आगे बढ़ाने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। ये क्षमताएं हैं—इच्छा शक्ति (Will Power), कल्पना शक्ति (Imagination Power), चिंतन शक्ति (Thinking Power), अनुभव (Experience), अन्तर्ज्ञान शक्ति (Intution Power), संवेदना (Power of Senses) और मेघाशक्ति या स्मरण शक्ति (Memory Power)। प्राय: ऐसा माना जाता है कि इन क्षमताओं को विद्यालयी विषयों को पढ़कर बढ़ाया जाता है। युवावस्था के बाद इन क्षमताओं को बढ़ाया नहीं जा सकता। परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने अब यह स्पष्ट कर दिया है कि मानव अपनी इन क्षमताओं में अभिवृद्धि बाद में भी कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.2.1 क्या इन क्षमताओं का विकास कठिन है?

इन क्षमताओं का विकास या इनकी अभिवृद्धि कठिन तो हो सकती है पर असंभव नहीं है क्योंकि ये शरीर और मन के आन्तरिक कार्य हैं और प्राय: ये क्षमताएं एक दूसरे से जटिल रूप से गुंथी हुई (Intered Wind) हैं। अत: इनमें भेद करना प्राय: कठिन हो जाता है। इनका विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि हम इनमें से प्रत्येक को अच्छी तरह समझें। इन प्रत्येक को अच्छी तरह समझ कर इनका विकास किया जा सकता है और विकास होने पर शारीरिक क्षमताएं पुन: एक दूसरे की पूरक बनकर मनुष्य के विकास में सहायक हो जाती हैं। जिस तरह स्कूटर चलाना सीखने वाला व्यक्ति प्रारंभ में उसके क्लच, ब्रेक, रेस, स्टियरिंग पकड़ना आदि प्रत्येक भाग पर ध्यान देता है। परन्तु स्कूटर चलाना सीख जाने के बाद स्वत: ही सारे भागों पर उसका नियंत्रण हो जाता है और बिना किसी कठिनाई के वह स्कूटर को चला सकता है। ठीक उसी तरह हम इन क्षमताओं की अलग-अलग पहचान कर इनका विकास कर सकते हैं। उनका विकास होने के बाद ये सभी मिलकर एक संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर सकती हैं।

हर किसी व्यक्ति में किसी न किसी प्रकार की योग्यता या क्षमता होती है। परन्तु सम्भवत: यह हो सकता है कि व्यक्ति को उस क्षमता की उपस्थिति का ज्ञान न हो। अत: हमें इन क्षमताओं को पहचानना चाहिए और अपने में ढूंढना चाहिए। जब हमें अपनी क्षमताओं का आभास हो जाए तो उनका विकास करना चाहिए। हम हमारी प्रेरणा, आवश्यकता एवं ऊर्जा के अनुसार तथा इन क्षमताओं के आधार पर अपना जीवन सफल बना सकते हैं।

5.2.2 क्षमताओं का विकास क्यों?

अपने जीवन का विकास करने के लिए योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकसित होना अति आवश्यक है ताकि हम अपने जीवन को सार्थक बना सकें। अपना हर कार्य सुचारू रूप से कर सकें। जैसाकि पूर्व में बताया गया है कि व्यक्ति के विकास के लिए सात व्यक्तिगत क्षमताएं महत्त्वपूर्ण हैं। संकल्प या इच्छाशक्ति बढ़ाकर हम अपने उद्देश्यों को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेते हैं। यहां तक कि संकल्प शक्ति के आधार पर हम ईश्वर प्राप्ति भी कर सकते हैं। कल्पनाशक्ति के विकास से जीवन के कई क्षेत्रों में प्रगति की जा सकती है। हमारी सृजनात्मक स्मृति एवं चिंतनात्मक शक्ति बढ़ाने में कल्पना शक्ति सहायक होती है। कल्पना शक्ति हमारी आन्तरिक दुनिया (Internal World) के विकास में भी सहायक होती है।

मनोविश्लेषक कार्लयुंग के अनुसार चिंतन, अनुभव, संवेदना एवं अर्न्तज्ञान—ये चार क्षमताएं शरीर एवं मन की प्राथमिक क्रियाएं हैं। ये क्रियाएं जगत् को समझने एवं लोगों के साथ सम्बन्ध विकसित करने के लिए बहुत ही सहायक हैं। चिंतन एवं अनुभव जगत को समझने एवं जानने के सम्बंध में उपयोगी हैं। इनसे व्यक्तिगत, उद्देश्यात्मक, भावात्मक जगत् के कार्यों को समझा जा सकता है। संवेदना एवं अन्तर्ज्ञान जगत् से सूचनाएं प्राप्त करने एवं घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण करने के उपाय हैं। पांचों ज्ञानेन्द्रियों से सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है एवं उनका प्रत्यक्षीकरण करके इनका अन्तर्ज्ञान के द्वारा विश्लेषण किया जाता है। अधिकांश लोगों में इन चारों क्रियाओं में से कोई एक क्रिया प्रधान रूप से होती है जबकि अन्य क्रियाएं कमजोर हो सकती हैं। जैसे—हमारा चिंतन प्रभावशाली हो सकता है परन्तु सम्भवत: हमारा अनुभव, संवेदना एवं अन्तर्ज्ञान कमजोर हो सकते हैं।

युंग ने अन्तर्मुखी एवं बाह्यमुखी व्यक्तियों का भी वर्णन किया है। युंग के अनुसार यदि हमें स्व-ज्ञान, स्व-मूल्य आदि बढ़ाने हैं तो इन चारों क्रियाओं को बढ़ाना होगा। हमें हमारी मनोवैज्ञानिकता के आधार पर इन क्रियाओं को समझना चाहिए और यह भी जानना चाहिए कि हमारी बलवती या प्रबल क्रिया कौन-सी है? कौन-सी क्रिया निर्बल या कमजोर है? इस प्रकार का विश्लेषण करके हम इन क्षमताओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के बारे में अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं। यह क्रिया हमारे निर्धारित कार्य, जिसको हम पूर्ण करना चाहते हैं, का सम्पादन करने में सहायक होती है।

व्यक्तियों में इन क्षमताओं का मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से भी पता लगाया जा सकता है और उनकी क्षमताओं के अनुसार उनसे कार्य करवाया जाता है।

स्मृति क्षमता का जीवन विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। अच्छी स्मृति वाला व्यक्ति निश्चित रूप से विशेष व्यक्तित्व गुण वाला होता है। वस्तुओं या घटनाओं या नामों को स्मृति में रखना एक अच्छा गुण है। स्मृतियां धुंधली हो सकती हैं परन्तु समाप्त नहीं होती। दिन-प्रतिदिन के कार्यों में हम कई प्रकार की सूचनाओं को ग्रहण करते हैं और उन्हें स्मृति भण्डार में डाल देते हैं। इन सूचनाओं को हम यदि अव्यवस्थित रूप से ग्रहण करते हैं तो स्मृति भ्रमित हो जाती है या कम हो जाती है। यदि हम सूचनाओं को व्यवस्थित ढंग से ग्रहण करें और इन सूचनाओं पर हम सचेत रहें तो स्मृति कम नहीं हो पाती है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि उपरोक्त क्षमताएं व्यक्तित्व विकास के लिए, जीवन विकास के लिए एवं जीवन्त उद्देश्य प्राप्ति के लिए बहुत ही उपयोगी साधन या उपकरण हैं। इनको विकसित कर हम अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकते हैं।

5.3 संकल्प शक्ति (इच्छा शक्ति) एवं इसका विकास

कई बार हम इस चिंतन से दुविधा में रहते हैं कि हम भाग्य से निर्मित हैं या नहीं? क्या हमारा जीवन और भविष्य और जो कुछ भी हम है जैविक कारकों या सामाजिक कारकों से निर्धारित है? या किसी विशेष शक्ति से नियंत्रित हैं? और क्या हम इनमें परिवर्तन कर सकते हैं? क्या हमारी अभिवृत्ति भाग्यवादी है? क्या हम भाग्य के सहारे ही अपना कार्य करते हैं? क्या हम भाग्य के सहारे जीते हैं? यदि ऐसा है तो हमारे जीवन के विकल्प सीमित हो जाते हैं और तब हम अपने जीवन के एक सीमित क्षेत्र में ही कार्य कर पाते हैं। इसलिए हमें हमारे जीवन के विकास और प्रगति के लिए इन सीमाओं से आगे जाना चाहिए। जीवन के विकास और प्रगति के लिए हमें इच्छा शक्ति या संकल्पों की आवश्यकता होती है। इच्छाशक्ति या संकल्प के बिना जीवन का विकास और प्रगति असंभव है। इच्छा शक्ति यदि दृढ़ है तो मनुष्य कठिन से कठिन कार्य को सम्पन्न कर सकता है और यदि इच्छा शक्ति कमजोर हो तो व्यक्ति सरल कार्यों को भी ठीक ढंग से पूरा नहीं कर पाता और वह हर क्षेत्र में असफल होता रहता है।

यदि हम महान् व्यक्तियों के व्यक्तित्वों का अध्ययन करें तो उनके व्यक्तित्व में जो प्रमुख लक्षण या गुण हमारे सामने आता है वह इच्छा शक्ति या संकल्प शक्ति ही है। महात्मा गांधी ने अपने संकल्प शक्ति या इच्छा शक्ति के आधार पर भारत को रक्तहीन स्वतंत्रता दिलवाई। उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति के आगे अंग्रेजों का शासन टिक नहीं पाया। इच्छा शक्ति के आधार पर ही ऋषि-मुनियों ने साधना और तपस्या की और वे मोक्ष को प्राप्त हुए। दृढ़ इच्छा शक्ति और संकल्पों के कारण ही कई साधकों ने ईश्वर से साक्षात्कार किया या ईश्वर प्राप्ति की।

हमारे सामान्य जीवन में भी यह बात देखने में मिलती है कि दृढ़ इच्छा शक्ति युक्त अथवा संकल्पवान् व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विजयश्री का वरण करता है। वह हर क्षेत्र में सफलता अर्जित करता है। असफलता उनसे कोसों दूर भागती है।

विद्यार्थियों को शिक्षा क्षेत्र में उच्चतम् सफलता, उसकी संकल्प शक्ति के आधार पर किए गये श्रम के कारण ही प्राप्त होती है। इसी भांति व्यापार क्षेत्र में या जीवन के किसी भी क्षेत्र में इच्छा शक्ति से परिपूर्ण व्यक्ति उच्चतम् सफलता प्राप्त करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.3.1 इच्छा शक्ति या संकल्प शक्ति क्या है? (What is Will Power)

इच्छा शक्ति या संकल्प शक्ति के बारे में सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि इच्छा शक्ति किसी कार्य को सम्पन्न करने का दृढ़ निश्चय है। कई लोगों का यह भी मानना है कि इच्छा शक्ति अपने प्रभुत्व को बलपूर्वक बनाए रखते हुए किसी कार्य को सम्पादित करने की क्षमता है। परन्तु यह ध ाारणा आंशिक रूप से सही है और अनुशासन, नियंत्रण एवं प्रभुत्व बनाए रखने तक ही सीमित है।

कई लोग अपने कार्य करने की दिशा को ठीक से नहीं जान पाते हैं अत: उनके द्वारा किए गये कार्य प्रभावशाली नहीं होते। कई लोग अन्तर्द्वन्द के कारण अपनी कार्य ऊर्जा को सही ढंग से व्यय नहीं कर पाते। उनके कार्य करने के तरीकों, इच्छाओं और मांगों के मध्य समन्वय नहीं हो पाता। वे अपने लक्ष्य, क्षमताओं और क्रियाओं के मध्य भी तालमेल नहीं बिठा पाते क्योंकि उनको उनकी क्षमताओं का सही ढंग से ज्ञान नहीं होता और अपनी क्षमताओं पर विश्वास भी नहीं होता अत: वे अपनी इच्छा शक्ति का उपयोग ठीक ढंग से नहीं कर पाते।

इच्छा शक्ति वास्तव में अपनी उस क्षमता का निश्चयपूर्वक उपयोग है जिनको हम भली भांति जान लेते हैं और लक्ष्य साधने में उनका भरपूर उपयोग करते हैं। जब हम अपनी क्षमताओं को सकारात्मक और रचनात्मक रूप से जान लेते हैं और उनका उपयोग अभिष्ट कार्यों के लिए दृढ़तापूर्वक करते हैं तो यह इच्छाशक्ति या संकल्प शक्ति ही कहलाती है।

अत: इच्छा शक्ति या संकल्प शक्ति को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं कि इच्छाशक्ति मन की एक रचनात्मक और सकारात्मक क्रिया है जो हमें अभिष्ट कार्यों को निश्चित रूप से करने और अनिष्ट कार्यों से निश्चित रूप से बचने के लिए प्रेरित करती है और सक्षम बनाती है। यह मन की वह दृढ़ शक्ति है जो अनुकूल व प्रतिकूल, ज्ञात व अज्ञात सभी परिस्थितियों में उचित लगने वाले कार्यों को करने तथा अनुचित लगने वाले कार्यों से बचने में सक्षम बनाती है।

5.3.2 इच्छा शक्ति/संकल्प शक्ति के प्रकार

भिन्न-भिन्न लोगों में इच्छा शक्ति का स्तर भी भिन्न-भिन्न होता है। कई लोग परम दृढ़ संकल्प इच्छा शक्ति वाले होते हैं तो कई मध्यम इच्छा शक्ति वाले होते हैं और कई निर्बल इच्छा शक्ति वाले होते हैं। मनोवैज्ञानिक रॉबर्ट असागियोली ने व्यक्ति में कई प्रकार की इच्छा शक्तियां तथा संकल्प बताए हैं। विशेष रूप से उन्होंने तीन प्रकार के संकल्पों पर अधिक जोर दिया है, ये संकल्प हैं—

1. कौशलतापूर्ण संकल्प, 2. दृढ़ संकल्प 3. आध्यात्मिक या आत्मिक संकल्प।

5.3.2.1 कौशलतापूर्ण संकल्प— व्यक्ति इस प्रकार के संकल्पों से अपने निश्चयों या इरादों को कौशलतापूर्वक पूर्ण करते हैं। हमारी इच्छाओं और भावनाओं को बिना किसी अन्य को क्षति पहुंचाते हुए पूरा करने में ये संकल्प बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व के अनेक पक्षों को परिष्कृत करने में भी इस प्रकार के संकल्प बहुत सहायक हैं। इस प्रकार के संकल्प व्यक्ति की जीवनशैली बदलने, संस्कारों का निर्माण करने और कार्य करने की शैली बढ़ाने में भी सहायक होते हैं। कार्य करना भी एक कला है। किसी कार्य को हम कितनी सावधानी, निर्विघ्नता के साथ एवं सुचारू रूप से कर सकते हैं, यह भी एक कला है। इस प्रकार की कला, योग्यता या क्षमता सभी व्यक्तियों में नहीं होती। परन्तु कौशलतापूर्ण संकल्पों की सहायता से इन संकल्पों में अभिवृद्धि की जा सकती है।

5.3.2.2 दृढ़ संकल्प—इस प्रकार के संकल्पों में व्यक्ति अपनी योग्यताओं और क्षमताओं को भली प्रकार समझकर उनका उपयोग करते हुए असाधारण कार्यों को भी पूर्ण कर लेता है। इस प्रकार के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संकल्पवान् व्यक्ति जुझारू होते हैं और कई प्रकार की आपदाओं, विपत्तियों को पार कर लेते हैं। व्यक्ति असाध्य बीमारियों पर भी दृढ़ संकल्पों के द्वारा नियंत्रण स्थापित कर लेता है। महाभारत की कथानुसार बालक देवव्रत इसी दृढ़ संकल्प के आधार पर भीष्म बने थे।

दृढ़ संकल्प वाले विद्यार्थी निश्चित रूप से अपनी जीवनशैली को बदलकर उत्तम उद्देश्यों की ओर अग्रसर होते हैं तथा लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। दृढ़ संकल्प के बल पर ही एक साधारण भील बालक अपने अभ्यास के द्वारा श्रेष्ठ धनुर्धर बना था। यह एकलव्य की दृढ़ संकल्प शक्ति ही थी जिसने उसे धनुर्विद्या सीखने की प्रेरणा प्रदान की थी।

5.3.2.3 आध्यात्मिक या आत्मिक संकल्प—इस प्रकार के संकल्प व्यक्ति के जीवन का अर्थ एवं उसके उद्देश्यों को समझने तथा उसको पूरा करने में सहायक होते हैं। इस प्रकार के संकल्प व्यक्ति को साधारण इच्छाओं की पूर्ति करने वाली इच्छाओं से ऊपर उठाता है। इन छोटे संकल्पों से व्यक्ति को आगे बढ़ाता है। इन्हीं संकल्पों के आधार पर व्यक्ति को प्राकृतिक स्नेह और सौन्दर्य का ज्ञान होता है। न्याय एवं आत्मसिद्धि की प्राप्ति भी इन्हीं संकल्पों के द्वारा होती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में व्यक्ति का विकास करने, उसको साधना में रत रखने, सिद्धियों की प्राप्ति करने, अपना एवं जनकल्याण करने में ये संकल्प महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

आध्यात्मिक दृढ़ संकल्प की सहायता से साधक चमत्कारी शक्तियों को प्राप्त कर लेता है, जैसे पानी पर चलना, महीनों समाधि में रहना, दीर्घकाल तक आहार न करना एवं शरीर को अदृश्य कर लेना, दृढ़ आध्यात्मिक संकल्प की ही शक्ति है।

5.3.3 विकसित और अविकसित संकल्प (Developed or Strong will and undeveloped or weak will)

जैसाकि हमने पूर्व में स्पष्ट किया है कि व्यक्ति दृढ़ संकल्पों से किस प्रकार अपनी जीवनशैली का निर्माण कर सकते हैं। कई व्यक्ति अपनी जीवनशैली का निर्माण भली प्रकार नहीं कर पाते। क्योंकि उनमें संकल्पों का अभाव रहता है। अत: व्यक्तियों के संकल्पों में दो प्रकार के संकल्प अर्थात् विकसित या सुदृढ़ संकल्प (Strong Will) एवं अविकसित या कमजोर संकल्प (Weak Will) होते हैं। विकसित संकल्पों वाले एवं अविकसित संकल्पों वाले व्यक्तियों में संकल्पों के अनुसार व्यक्तित्व के गुण भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जिनका वर्णन हम आगे कर रहे हैं।

5.3.4 विकसित संकल्प वाले व्यक्ति (Persons of developed will or/strong will)

विकसित या सुदृढ़ संकल्प वाले व्यक्तियों में निम्न गुण होते हैं—

1. ये मानसिक रूप से स्थिर विचार वाले होते हैं।
2. ये गतिशील, ऊर्जा युक्त एवं शीघ्र कार्य करने वाले होते हैं।
3. ये निपुण, नियंत्रित एवं अनुशासित होते हैं।
4. ये एकाग्र एवं चौकन्ने होते हैं।
5. ये दृढ़ निश्चयी होते हैं।
6. धैर्यता इनका प्रधान गुण होता है।
7. किसी भी कार्य को करने में इनकी भूमिका अग्रणी होती है।
8. ये उत्साही एवं निडर प्रकृति के होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9. ये आपसी तालमेल बैठाने में दक्ष होते हैं।
10. संगठनात्मक संरचना में ये दक्ष होते हैं।
11. ये अपने कार्य में डटे रहते हैं और इनमें किसी अनुचित कार्य के प्रति विरोध करने की क्षमता होती है।
12. इनमें आत्म-विश्वास, आत्म प्रेम, आत्मानुशासन होता है।

5.3.5 अविकसित संकल्प वाले व्यक्ति (Persons of undeveloped or weak will)

अविकसित संकल्प वाले व्यक्तियों में निम्न लक्षण होते हैं—

1. मानसिक अस्थिरता रहती है तथा ये अस्थिर विचार वाले होते हैं।
2. ऐसे लोग गोष्ठियों या सभाओं में विचार विमर्श के समय अपनी राय प्रकट नहीं कर पाते तथा चुप्पी साधे रहते हैं।
3. दुर्बल संकल्प वाले लोग अपने अन्तर्मन में अस्थिरता से या अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित रहते हैं।
4. ये लोग अपनी क्रियाओं में भी भ्रमित रहते हैं।
5. ये लोग अपना कार्य समय पर पूरा नहीं कर पाते।
6. ये स्वयं को हीन भावनाओं से ग्रसित पाते हैं।
7. अविकसित संकल्प वाले व्यक्ति स्वयं को थका हुआ अनुभव करते हैं और किसी कार्य की पूर्ति करने में स्वयं को असहाय पाते हैं। आत्मविश्वास आत्मानुशान की कमी होती है।
8. इस प्रकार के लोगों में प्रतिरोध की क्षमता कम होती है।

5.3.6 स्वपरीक्षण करें

अपने दैनिक जीवन में उपरोक्त गुणों के सम्बंधों को देखें तथा ज्ञात करने का प्रयत्न करें की हमारे संकल्प कहां दुर्बल या अविकसित हैं और कहां सुदृढ़ या विकसित हैं।

बोध प्रश्न 1:

---

1. व्यक्तिगत क्षमताएं कौन-कौनसी है?
2. संकल्प शक्ति का क्या अर्थ है?
3. अविकसित व्यक्ति के लक्षण लिखें।

5.3.7 संकल्पों का विकास (Development of will)

संकल्पों का विकास करना एक कठिन कार्य है परन्तु असंभव नहीं है। दुर्बल या अविकसित संकल्प वाले व्यक्ति अपने संकल्पों का विकास सरलतापूर्वक कर सकते हैं। इसके लिए हम कुछ विधियां सुझाते हैं—

1. संकल्पों को सुदृढ़ करने या उनको विकसित करने के लिए सर्वप्रथम हमें छोटे-छोटे संकल्प लेकर उनका विकास करना चाहिए। पहले हम यह सोचें कि किस कार्य से सम्बंधित संकल्प का विकास करना है फिर अपने आपको मानसिक रूप से स्थिर करते हुए धैर्यता के साथ उस संकल्प का विकास करना चाहिए। संकल्पों के विकास में हमें सम्बंधित संकल्पों को विकसित करने में उपयोगी क्षमताओं को जानना चाहिए। तत्पश्चात् इन क्षमताओं का समुचित उपयोग कर अपने संकल्प सुदृढ़ बनाने के लिए काम में लेना चाहिए। यदि क्षमताओं में कुछ कमी है तो पहले इनको विकसित करें। इस विधि से हम अपने संकल्पों को दृढ़ता एवं कलापूर्ण ढंग से विकसित कर सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. अणुव्रत नियमों का पालन करके भी हम अपनी संकल्प शक्ति को बढ़ा सकते हैं। इस विधि में पहले छोटे-छोटे संकल्पों को दृढ़ किया जाता है। फिर संकल्पों के प्रति भावनाओं का अभ्यास करके इनको पुष्ट किया जाता है इस तरह व्यक्ति अपनी संकल्प शक्ति बढ़ा सकता है।

3. प्रतिदिन दो या तीन छोटे संकल्प करें और दिन भर में उनको साधने का दृढ़ निश्चय करें, जैसे ''मुझे अमुक समय से अमुक समय तक निश्चित रूप से अध्ययन कार्य करना है। मुझे सवेरे ठीक चार बजे उठना है।'' इस प्रकार के संकल्प करके इनको पूर्ण करने में दृढ़ निश्चय का प्रयोग करें। इससे संकल्प शक्ति में वृद्धि होती है।

4. नियमित रूप से श्वासप्रेक्षा, प्राणायाम एवं ध्यान का अभ्यास करने से भी संकल्प शक्ति बढ़ती है।

5. संकल्पों को विकसित करने की सबसे सरल एवं प्रभावशाली विधि अनुप्रेक्षाएं हैं। धैर्यता एवं इच्छाशक्ति के विकास की अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास यदि कुछ दिनों तक नियमित रूप से किया जाये तो इच्छा शक्ति या संकल्प शक्ति का द्रुत गति से विकास होता है।

5.3.8 संकल्पों या इच्छा शक्ति को क्रियान्वित करने के स्तर

संकल्पों को क्रियान्वित करने के छः (6) स्तर हैं—

1. उद्देश्य की स्पष्टता,
2. उद्देश्य की प्राथमिकता,
3. संयम एवं त्याग,
4. दृढ़ता एवं नवीनीकरण,
5. योजना तथा
6. क्रियान्विति।

5.3.8.1 उद्देश्य की स्पष्टता—अपने संकल्पों की क्रियान्विति करने के प्रथम स्तर पर हमें अपने कार्य का उद्देश्य स्पष्ट करना चाहिए। अपने स्वयं के मूल्यों के संदर्भ में अपने उद्देश्यों का मूल्यांकन भी करना चाहिए। फिर अपनी प्रेरणा को भी पर्याप्त रूप से शक्तिशाली बनाना चाहिए। जब हमारे उद्देश्य स्पष्ट हो जाएं एवं प्रेरणा भी जाग्रत हो जाए तब अपनी संकल्प शक्ति का सही उपयोग करना चाहिए।

5.3.8.2 उद्देश्य की प्राथमिकता—यदि कई उद्देश्य हों तो विशेष उद्देश्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कई उद्देश्यों की पूर्ति एक साथ करने का प्रयत्न करने से संकल्प शक्ति बिखर जाती है।

5.3.8.3 संयम एवं त्याग—अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संयम का मार्ग अपनाएं अर्थात् लक्ष्य प्राप्ति के लिए धैर्यता के साथ प्रयास करते रहें। अधीरता लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में बाधक है यह व्यक्ति की इच्छा शक्ति को निर्बल कर देती है। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि एक लक्ष्य का निर्माण कर केवल उसी की प्राप्ति हेतु प्रयास किये जाएं। एक से अधिक लक्ष्य होने पर उनकी प्राप्ति संदिग्ध हो जाती है।

5.3.8.4 दृढ़ता एवं नवीनीकरण—अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु दृढ़ निश्चयी होना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर उद्देश्य की पूर्ति हेतु लिए गये पूर्व निर्णयों का नवीनीकरण भी करना चाहिए। इससे उद्देश्य की पूर्ति करने में मनोवैज्ञानिक निश्चितता एवं मनोशक्ति बढ़ती है।

5.3.8.5 योजना—इच्छा शक्ति द्वारा उद्देश्य की पूर्ति के लिए चरणबद्ध योजना बनानी चाहिए और इस योजना में उपयोग में आने वाले विभिन्न घटकों को चरणबद्ध करना चाहिए। इनमें उपयोग होने वाले स्रोतों एवं संभावनाओं का भी पता लगाना चाहिए।

5.3.8.6 क्रियान्विति—उपरोक्त सभी स्तरों की पूर्ति होने के पश्चात् उद्देश्य पूर्ति के लिए अपने संकल्पों का उपयोग करते हुए अपना लक्ष्य प्राप्त करें।

5.3.9 स्वपरीक्षण करें (Test yourself)

1. संकल्पों की विभिन्न अवस्थाओं में अपनी समझ स्पष्ट बनाऐं। कौन-सी अवस्था आपको निश्चितता, दृढ़ता एवं शक्ति देती है? और किस अवस्था में विकास करने की आवश्यकता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं उनके जीवन का अध्ययन करें। उनकी उपलब्धियों एवं कार्यशैली के बारे में जानकारी प्राप्त करें एवं अपने व्यक्तित्व को समक्ष रखकर उनके व्यक्तित्व से तुलना करें।

3. नियमित रूप से प्रात: और सायं का कायोत्सर्ग का अभ्यास तथा इच्छा शक्ति बढ़ाने की अनुप्रेक्षा करें।

5.4.10 प्रश्नावली

I निबन्धात्मक प्रश्न

1. इच्छाशक्ति क्या है? यह कितने प्रकार की होती है, विस्तार से लिखें।
2. विकसित संकल्प एवं अविकसित संकल्प वाले व्यक्तियों के गुणों को लिखें।
3. संकल्प शक्ति बढ़ाने की विधियों को समझाएं।

II लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. मानव क्षमताएं क्या हैं?
2. इच्छा शक्ति या संकल्प शक्ति क्या है?
3. इच्छा शक्तियां/संकल्प शक्तियां कौन-कौन-सी हैं?
4. विकसित संकल्प वाले व्यक्तियों के गुणों को लिखें।
5. अविकसित संकल्प वाले व्यक्तियों के लक्षण लिखें।
6. इच्छा शक्ति बढ़ाने में कौन-कौन सी अनुप्रेक्षाएं करनी चाहिए।

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मानवक्षमताएं मनोशरीर के ..... कार्य हैं।
2. मानव क्षमताएं हैं—(1) 4 (2) 6 (3) 8 (4) 10
3. मनोविश्लेषक कार्लयुग के अनुसार ..... ये चार क्षमताएं शरीर एवं मन की प्राथमिक क्रियाएं हैं।
4. इच्छा शक्ति के विकास के लिए ..... की अनुप्रेक्षा करनी चाहिए।
5. संकल्पों की क्रियान्विति करने के ..... स्तर हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भाग - 2

5.5 कल्पना

कल्पना क्या है (What is Imagination)? कल्पना व्यक्ति की एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें वह अपने अनुभवों के आधार पर मानसिक रूप से नवीन रचना का निर्माण करता है। कल्पना एक मानसिक योग्यता भी है जो हमारे भीतर एक कल्पित प्रतिमा को जागृत करती है या उसका निर्माण करती है और उसके आधार पर हम उसको मूर्त रूप प्रदान करते हैं। कल्पना वास्तविकता से ठीक विपरीत क्रिया है। इस प्रक्रिया से हम एक अलग दुनिया को देखते हैं। जिस वास्तविक दुनिया में हम निवास करते हैं उसके ठीक विपरीत दुनिया को हम कल्पना के द्वारा देखते हैं।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ (Woodworth) ने कल्पना को मानसिक प्रहस्तन (Mental Manipulation) माना है। उनके अनुसार जिस प्रकार हम पुरानी वस्तुओं को नवीन ढंग से सजाकर रखते हैं उसी प्रकार से कल्पना में भी अपने पूर्व अनुभवों को मस्तिष्क में नया रूप देते हैं। कल्पना का सहारा लेकर ही हम कई योजनाओं को सही ढंग से मूर्त रूप देते हैं। इससे हम अपने समय एवं ऊर्जा की बचत करते हैं।

कल्पना और चिंतन दोनों मानसिक क्रियाएं हैं परन्तु इन दोनों क्रियाओं में बहुत अंतर है। चिंतन किसी समस्या के समाधान की मानसिक खोज (Mental Exploration) है। यह किसी समस्या से प्रारंभ होता है और उसमें किसी समस्या का हल खोजा जाता है। हल की खोज शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक होती है। परन्तु कल्पना में हम मानसिक प्रहस्तन करते हैं। जैसे किसी कक्ष में फर्निचर या सज्जा सामग्री सजानी हो तो इसमें कल्पना शक्ति को उपयोग में लाया जाता है क्योंकि इसमें खोजने की कोई बात नहीं है, समस्या भी नहीं है केवल मानसिक प्रहस्तन की आवश्यकता है इसलिए इसमें चिंतन की नहीं अपितु कल्पना की आवश्यकता है। परन्तु किसी कारणवश व्यक्ति स्वयं फर्निचर, साजो-सामान को नहीं लगा सकता तो उसके लिए यह एक समस्या बन जाएगी कि इसे कौन लगाए। ऐसी स्थिति में उसको साजो-सामान लगाने वाले की खोज करनी पड़ेगी। यह खोज यदि मानसिक है तो यह चिंतन की प्रक्रिया है। व्यक्ति मानसिक रूप से उस व्यक्ति की खोज करता है जो साजो-सामान को कक्ष में लगाएगा। इस प्रकार चिंतन एक मानसिक खोज है जबकि कल्पना मानसिक प्रहस्तन। कल्पना स्वतंत्र होती है जबकि चिंतन नियंत्रित मानसिक प्रक्रिया। कल्पना विचारों के स्वतंत्र साहचर्य से होती है जबकि चिंतन के समय विचार साहचर्य नियंत्रित होते हैं। कल्पना में प्राय: कोई लक्ष्य नहीं होता जबकि चिंतन में एक लक्ष्य होता है। कल्पना में हम उन विचारों की कैद से मुक्त रहते हैं जिनसे हम बंधित हो जाते हैं।

कल्पनाएं सृजनात्मक या पुनरावृत्ति मात्र भी हो सकती हैं अर्थात् यह वर्तमान प्रतिमा की पुनरावृत्ति या नया सृजन अथवा पूर्व कल्पनाओं के आधार पर नयी कल्पना के रूप में हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अनेक प्रकार की कल्पनाएं करता है। कल्पनाएं दृश्य के रूप में, श्रवण के रूप में या गतिशील क्रियाओं के रूप में भी होती है। कुछ लोगों में विशेष प्रकार की कल्पनाएं विकसित होती हैं, कुछ कल्पनाएं चाहकर एवं जान-बूझकर की जाती हैं। स्वाभाविक कल्पनाएं चाहकर या जानबूझकर की गई कल्पनाओं से सरल होती हैं। चाहकर की जाने वाली कल्पनाएं बड़ी कठिन होती हैं और ऐसी कल्पनाओं के लिए प्रशिक्षण, संकल्प एवं एकाग्रता की आवश्यकता रहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कल्पना में प्रतिमाओं (Images) का बड़ा उपयोग है। प्राय: कल्पना में प्रतिमा बनाने की क्रिया भी होती है परन्तु प्रतिमा बनाना और कल्पना समानार्थक नहीं है क्योंकि कल्पना में प्रतिमाओं की आवश्यकता तो पड़ती है परन्तु प्रतिमा सदैव काल्पनिक नहीं होती है। यह प्रत्यक्ष अथवा स्मृति की प्रतिमा भी हो सकती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार कल्पना दायें मस्तिष्क (Right Brain) की एक क्रिया है और यह अतार्किक और अभाषित होती है। यह समयाधारित न होकर कालातीत होती है। कल्पना की दुनिया में कल्पित द्रव्य एवं वस्तुएं वास्तव में ऐसी नहीं होती जैसी कि हमें यथार्थ में दिखाई देती है। कल्पना संभावना एवं असंभावनाओं की दुनिया है। यह शक्तिशाली एवं प्रभावशाली है जिससे हमें कई चीजों को सीखने एवं प्रतिमाओं का निर्माण करने में बहुत सहायता मिलती है। यह स्मरण शक्ति एवं मेधा शक्ति की अभिवृद्धि में भी सहायक होती है। कल्पनाओं के आधारपर हम अपनी शारीरिक क्रियाओं को भी बदल सकते हैं। कुछ नवीनतम शोध कार्यों से यह ज्ञात होता है कि कुछ खिलाड़ियों ने कल्पनाओं के आधार पर अपने शरीर की गतियों, मांसपेशीय गतियों को स्वाभाविक रूप से बढ़ाया है। यहां तक कि कई खिलाड़ी कल्पना में ही अपने खेलों का पूर्वाभ्यास करके अपने खेलों का वास्तविक रूप से अच्छा प्रदर्शन करने में सक्षम हुए।

मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिकों ने मानव जीवन में कल्पना का बहुत महत्त्व बताया है। उन्होंने कल्पनाओं को तनाव मुक्ति का एक साधन भी बताया है। उनके अनुसार हम अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति कल्पनाओं के द्वारा कर सकते हैं। मनुष्य में कई बार ऐसी इच्छाएं आती हैं जिनकी पूर्ति वह नहीं कर सकता अथवा समाज जिनकी पूर्ति की अनुमति उसे नहीं प्रदान करता है तो ऐसी स्थिति में इस प्रकार की इच्छाओं से मन में कशमकश होने लगती है और सामाजिक, पारिवारिक तथा अन्य बाहरी दबावों के कारण इन इच्छाओं का दमन कर दिया जाता है। दमन करने पर ये इच्छाएं अचेतन मन में चली जाती हैं और स्वप्न, दिवास्वप्न अथवा अन्य कई उपायों से ये बाहर निकलती हैं। कवि, मूर्तिकार, चित्रकार, उपन्यासकार एवं कहानीकार अपनी अतृप्त इच्छाओं को क्रमश: कविता लिखकर, मूर्ति बनाकर, चित्र निर्माण कर, उपन्यास एवं कहानी लिखकर तृप्त करते हैं।

5.5.1 कल्पनाओं के प्रकार (Types of Imagination)

जैसाकि पूर्व में बताया जा चुका है कि व्यक्ति विभिन्न प्रकार की कल्पनाएं करता है, जैसे दृश्य के रूप में, श्रवण के रूप में, गतिशील क्रियाओं के रूप में, स्वाभाविक या सहज कल्पनाएं तथा जान-बूझकर या चाहकर की गई स्वैच्छिक कल्पनाएं। इन सभी प्रकार की कल्पनाओं को हम दो भागों में बांट सकते हैं। मनोवैज्ञानिक ड्रेवर (Drever) ने कल्पना का वर्गीकरण कुछ इस प्रकार से किया है—

1. पुनरूत्पादक कल्पनाएं (Reproductive Imaginations)
2. रचनात्मक कल्पनाएं (Constructive Imaginations)

5.5.1.1 पुनरूत्पादक कल्पनाएं—इस प्रकार की कल्पनाएं बाह्य निर्देशन से होती है, जैसे कहानियां, सामान्य घटनाएं एवं इतिहास की जीवित घटनाओं को जब हम पढ़ते हैं तो इनमें रचित पात्रों की घटनाएं सजीव कल्पना के रूप में हमारे मस्तिष्क में प्रकट होती हैं।

अत: ये कल्पनाएं पढ़ी हुई कहानियों एवं घटनाओं के कारण हुई। ये कल्पनाएं कहानियां एवं घटनाओं के आधार पर सजीव सी लगती हैं। इनको पढ़ते समय ऐसा लगता है कि जैसे सब कुछ आंखों के सामने ही घट रहा है। तात्पर्य यह है कि बाह्य वस्तुएं, कहानियां अथवा घटनाएं कल्पनाओं का पुररूत्पादक स्वरूप प्रस्तुत करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

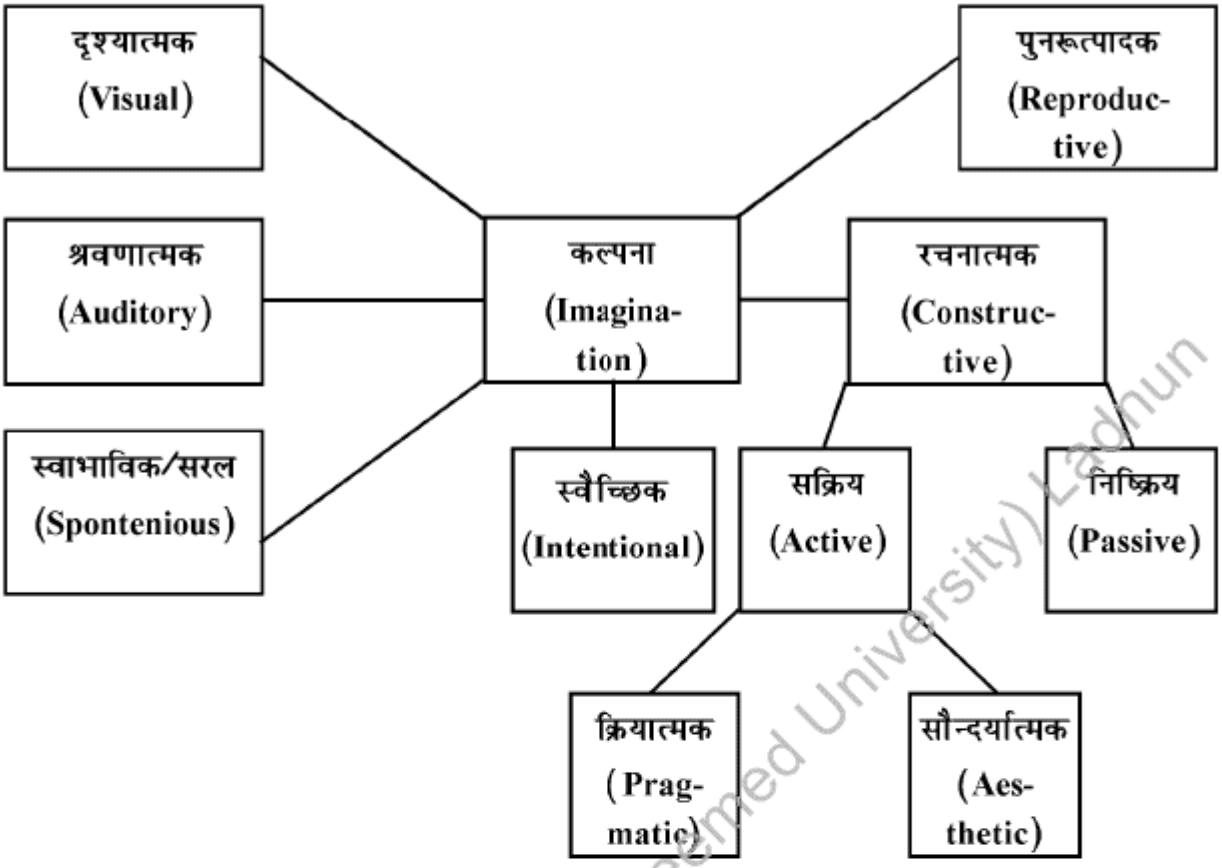

5.5.1.2 रचनात्मक कल्पनाएं—रचनात्मक कल्पनाओं में आन्तरिक निर्देशन मिलता है। जिस प्रकार पुनरूत्पादक कल्पनाओं में कहानियों, घटनाओं आदि का बाह्य निर्देशन मिलता है उसी प्रकार रचनात्मक कल्पनाओं में व्यक्ति की स्वयं की आन्तरिक एवं स्वतंत्र कल्पना होती है। जैसे किसी कथाकार, संगीतकार, कवि, उपन्यासकार एवं मूर्तिकार की रचनाएं रचनात्मक कल्पनाएं होती हैं। रचनात्मक कल्पनाएं भी दो प्रकार की होती हैं।

5.5.1.3 निष्क्रिय रचनात्मक कल्पना—निष्क्रिय रचनात्मक कल्पना को अनियंत्रित कल्पना भी कहा जाता है। इस प्रकार की कल्पना के लिए व्यक्ति को किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता वरन् कल्पनाओं का स्वत: आविर्भाव होता है और वे स्वत: ही विलीन हो जाती हैं। इस प्रकार जब बिना प्रयास के एक के बाद एक कल्पना मस्तिष्क में आती रहती हैं और विलीन होती रहती है तो इन कल्पनाओं का स्वरूप निष्क्रिय हो जाता है। इस प्रकार की कल्पनाओं का हमारी मनोवृत्तियों के साथ बहुत गहरा संबंध रहता है। जैसी हमारी मनोवृत्तियां रहती हैं, वैसी ही कल्पना आविर्भूत होती है। दिवास्वप्न, स्वप्न आदि निष्क्रिय कल्पना के अन्तर्गत आते हैं। वास्तव में ये कल्पनाएं हमारी उन इच्छाओं की संतृप्ति करती है जिनको हम अपने व्यावहारिक जीवन में संतृप्त नहीं कर पाते। स्वप्न भी एक प्रकार की निष्क्रिय कल्पना है जिसमें व्यक्ति अतृप्त इच्छाओं को तृप्त करता है। इस दिशा में फ्रायड (Freud), युंग (Jung) एवं हेडफील्ड (Head Field) आदि मनोवैज्ञानिकों के कार्य उल्लेखनीय है।

5.5.1.4 सक्रिय रचनात्मक कल्पनाएं—ये कल्पनाएं निष्क्रिय कल्पनाओं से विपरीत हैं। इनका उद्देश्य किसी निश्चित ध्येय को लेकर नवीन रचना करना होता है। ये नियंत्रित होती हैं। व्यक्ति पुराने अनुभवों के आधार पर इन कल्पनाओं का सहारा लेकर नवीन रचना करता है। चित्रकारी, कविता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रचना और वैज्ञानिक अन्वेषणों में सक्रिय नियंत्रित कल्पनाओं का विशेष योगदान रहता है। इसी नियंत्रित सक्रिय संरचनात्मक कल्पना के फलस्वरूप नई मशीनों, वाहनों, पुलों आदि का निर्माण होता है। सक्रिय रचनात्मक परिकल्पना दो प्रकार की होती हैं—i. क्रियात्मक, ii. सौन्दर्यात्मक

i. क्रियात्मक—क्रियात्मक कल्पना किसी विशेष कार्यनिर्माण एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अन्वेषण हेतु की जाने वाली सक्रिय रचनात्मक कल्पना का स्वरूप है। जब किसी घटना, तथ्य एवं सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए कल्पना की जाती है तो ये कल्पना सैद्धान्तिक, क्रियात्मक, सक्रिय रचनात्मक कल्पना कहलाती है। जब किसी प्रयोग मे आने वाली वस्तु की रचना के लिए कल्पना की जाती है तो वह व्यावहारिक कहलाती है। जैसे किसी पुल या बांध का निर्माण करने के लिए नक्शा बनाने की कल्पना।

ii. सौन्दर्यात्मक—कला, संगीत, साहित्य आदि के क्षेत्र में जो कल्पना की जाती है सौन्दर्यात्मक कल्पना कहलाती है।। कवि की कविता में की गई कल्पना का उद्देश्य क्रियात्मक न होकर पूर्ण रूप से सौन्दर्यात्मक होता है। इस प्रकार की कल्पनाएं कलात्मक एवं तरंगात्मक भी होती है।

5.5.2 कल्पना शक्ति के उपयोग (Use of Imagination Power)

1. मेधा शक्ति एवं स्मरण शक्ति को बढ़ाने में सहायक होती है।
2. अपनी योजना को सशक्त बनाने में उपयोगी है।
3. नई विषय वस्तुओं के अधिगम (Learning) में सहायक है।
4. नई वस्तुओं के निर्माण में उपयोगी सिद्ध होती है।
5. नहर, पुलों, भवनों, मानचित्रों आदि के निर्माण में बहुत उपयोगी है।
6. साहित्य सृजन तथा लेखन में उपयोगी।

5.5.3 कल्पना शक्ति को विकसित करने की विधियां

1. कल्पना शक्ति को विकसित करने में प्रेक्षाध्यान की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। प्रेक्षाध यान से कल्पना शक्ति का विकास सहज रूप से किया जा सकता है। व्यक्ति मानसिक और शारीरिक रूप से तनाव रहित होगा तो उसमें कल्पना शक्ति उतनी ही बेहतर होगी। कल्पना प्रक्रिया में मानसिक तनाव बहुत बाधक होते हैं। कल्पना प्रक्रिया में मानसिक प्रहस्तन होता है और मानसिक प्रहस्तन सही ढ़ंग से हो इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति मानसिक और शारीरिक रूप से तनाव मुक्त हो। मानसिक और शारीरिक रूप से तनाव मुक्त होने के लिए वैसे तो कई मनोवैज्ञानिक विधियां एवं ध्यान विधियां प्रचलित हैं परन्तु सहज एवं सरल प्रेक्षाध्यान की विधि है। प्रेक्षाध्यान के कुछ विशेष अवयवों का अभ्यास किया जाए तो व्यक्ति में कल्पना शक्ति बढ़ सकती है। प्रतिदिन कुछ समय कायोत्सर्ग तत्पश्चात् श्वासप्रेक्षा और दर्शन केन्द्र पर कुछ समय तक ध्यान करने से व्यक्ति में कल्पना शक्ति एवं अतीन्द्रिय ज्ञान शक्ति का विकास सहज है।

2. किसी वस्तु को एक या दो मिनट तक देखें फिर अपनी आंखें बंद कर लें। अब उस वस्तु को बंद आंखों में मानसिक पटल या मन की आंखों से पुन: देखें। जहां तक हो सके उस दृश्य को मस्तिष्क पटल पर बनाऐ रखें। वास्तव में यह क्रिया कुछ कठिन है परन्तु कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् यह सरल हो जाती है। कुछ लोगों के लिए मानसिक पटल पर उस सम्पूर्ण दृश्य को पुन: बनाना कठिन है किन्तु उस वस्तु के कुछ भाग की वे कल्पना कर सकते हैं। निरन्तर अभ्यास से धीरे-धीरे सम्पूर्ण दृश्य को मस्तिष्क पटल पर बनाने का प्रयत्न कर सकते हैं। कुछ लोग वस्तु दृश्य को मस्तिष्क पटल पर पुन: बना सकते हैं परन्तु उसको अधिक देर तक बनाए रखना उनके लिए कठिन हो जाता है। मानसिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पटल पर वस्तु दृश्य बनाए रखने की योग्यता को नियमित अभ्यास से बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए हमें कड़ा मानस या दृढ़ संकल्प बनाना पड़ता है। इस तरह का अभ्यास प्रारंभ में किसी एक वस्तु को लेकर किया जाता है उसके बाद अभ्यास होने पर वस्तु की सम्पूर्णता को लेकर भी प्रयास किया जाता है।

3. संकेत या चिन्हों का प्रकटीकरण—कई बार ऐसा होता है कि जिस वस्तु के दृश्य को हम काल्पनिक रूप से मानसिक पटल पर देखना चाहते हैं उसके स्थान पर कोई अन्य वस्तु या दृश्य चिन्हित हो जाता है। ये चिन्हित दृश्य किसी पूर्व कल्पना से संबंधित दृश्य का भाग हो सकता है। कोई चिन्ह बहुत होते हैं और वे बार-बार कल्पना के रूप में मानसिक पटल पर बार-बार उभरते रहते हैं। वास्तव में ये चिन्ह व्यक्ति के व्यक्तित्व के किसी गुण के बारे में संकेत करते हैं। अत: इनका विश्लेषण कर इन्हें समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

5.5.4 स्वप्नों (स्वाभाविक कल्पना) से सीखना (Learning From Dream)

दुनियाभर के वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं धर्माचार्य स्वप्नों को बहुत महत्व देते हैं। स्वप्नों का विश्लेषण कर हम अपनी मानसिक स्थिति का पता लगा सकते हैं। कई स्वप्न किसी घटना के बारे में पूर्ण कथन भी करते हैं। ऐसे स्वप्नों को दैविक स्वप्न, दिव्य स्वप्न या परा-स्वप्न (Pera Dream) कहते हैं। ऐसे स्वप्न बहुत ही विकसित चेतना वाले व्यक्तियों को ही आते हैं। स्वप्न से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार से है—

1. स्वप्न स्वाभाविक कल्पना है जो स्वत: कल्पित है। जो दृश्य या संकेत हम स्वप्न में देखते हैं वे किसी न किसी प्रकार से व्यक्ति के व्यक्तित्व व व्यवहार से सम्बंधित होते हैं।

2. स्वप्नों को वर्तमान काल की भाषा में स्वयं से या मित्रों से कहने पर उनसे कई सुझाव प्राप्त हो सकते हैं जिनसे काफी कुछ सीखा जा सकता है।

3. स्वप्न के उन भागों, कथनों तथा दृश्यों को चुनना जो आपको प्रभावित करते हैं। इन दृश्यों और कथनों से आप किस प्रकार प्रभावित हुए? ये दृश्य और कथन आपको क्या बताना चाहते हैं? इनका विश्लेषण कर हम काफी कुछ नवीन बातें सीख सकते हैं।

4. स्वप्न की एक-एक घटना को पुन: स्मृति मे लाते हुए उन्हे याद करे और अपने मानसिक पटल पर लाऐं। इस तरह हम घटना के बारे में अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं और उसके उद्देश्यों को जान सकते हैं।

5. स्वप्न का अंत क्या था और उस स्वप्न से आपने क्या क्या सूचनाएं प्राप्त की।

6. एक पेन और कॉपी सोने के समय अपने समीप रखें और अपने स्वप्न, जो भी आएं, उन्हे लिख ले।

7. इस प्रकार के स्वप्नों एवं उनमें आने वाले संकेतों को लिखने से अपने व्यक्तित्व के बारे में काफी पता चलेगा और इनसे हम काफी कुछ सीख सकेंगे।

5.5.5 कल्पना एवं चिंतन (Imagination and Thinking)

जैसाकि हमने पूर्व में लिखा है कि मानसिक क्षमताएं एक-दूसरे से मिली रहती है या गुंथी हुई रहती हैं। यही बात मानसिक प्रक्रिया में कल्पना और चिंतन के बारे में भी है। मानसिक प्रक्रिया के रूप में कल्पना और चिंतन लगभग समान ही है। कभी-कभी ये दोनों एक-दूसरे से मिली होती हैं और इनमें भेद करना कठिन हो जाता है। परन्तु कल्पना और चिंतन के ध्येय भिन्न-भिन्न हैं। कल्पना द्वारा किसी वस्तु अथवा तथ्य का परिवर्तन, संशोधन और पुर्ननिर्माण किया जाता है। जबकि चिंतन प्रक्रिया इनकी समस्याओं का समाधान करती है। चिंतन की सहायता से कल्पना के स्वरूप का अन्वेषण किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

किसी समस्या का समाधान चिंतन के आधार पर एक विधि से ही होता है जबकि कल्पना के आधार पर अनेक संभावित विधियों से हल करने का प्रयास किया जाता है। चिंतन एक नियंत्रित मानसिक प्रक्रिया है जबकि कल्पना प्राय: अनियंत्रित प्रक्रिया है।

बोध प्रश्न 2:

1. मनोविज्ञान के अनुसार कल्पना का क्या महत्व है?
2. रचनात्मक कल्पनाएं क्या है?
3. कल्पना शक्ति को कैसे विकसित कर सकते है?

5.5.6 कल्पना और स्मरण (Imagination and Memory)

कल्पना और स्मरण में ऐसा लगता है मानों दोनों एक हों। क्योंकि दोनों व्यक्ति के अतीतानुभव पर निर्भर करती हैं। परन्तु वास्तव में ये दोनों प्रक्रियाएं भिन्न-भिन्न हैं। स्मरण में व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों का प्रत्यावाहन करता है। परन्तु जब पूर्व अनुभवों के बीजतत्त्वों से व्यक्ति अपने मन में एक नई रचना करता है तब उसे कल्पना कहा जाता है। अत: कल्पना स्मरण पर निर्भर करती है। कहीं-कहीं स्मरण को भी कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। जैसे कोई व्यक्ति किसी दृश्य का वर्णन करते हुए कुछ अंशों को भूल जाता है। उस स्थिति में वह कल्पना के आधार पर उन अंशों की पूर्ति करता है। परन्तु यह बात सभी जगह उपयोग में नहीं आती। सभी जगहों पर कल्पना की सहायता से विस्मृत अंशों की पूर्ति नहीं हो सकती, जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षा में कल्पना के आधार पर किसी घटना का वर्णन करके सफल नहीं हो सकता।

5.5.7 कल्पना और प्रत्यक्षीकरण (Imagination and perception)

प्रत्यक्षीकरण और कल्पना—दोनों मानसिक प्रक्रियाएं कई अर्थों में समानता रखती हैं परन्तु इसके साथ-साथ ही इनमें भिन्नताएं भी हैं। दोनों प्रक्रियाओं में व्यक्ति के पूर्व अनुभव या अतीतानुभव महत्त्वपूर्ण होते हैं। जिस तरह हमारे प्राभ्यास, मनोवृत्ति, रूचि आदि से प्रत्यक्षीकरण प्रक्रियाओं का निर्धारण करता है उसी तरह कल्पना भी हमारे प्राभ्यास, मनोवृत्ति एवं रूचि पर निर्भर होती है। परन्तु इन दोनों प्रक्रियाओं में काफी भिन्नताएं हैं, जैसे प्रत्यक्षीकरण में हमारी ज्ञानेन्द्रियों के सामने कोई न कोई उद्दीपन उपस्थित रहता है जबकि कल्पना में इस प्रकार के उद्दीपन की कोई उपस्थिति नहीं होती है। इसका तात्पर्य यह है कि कल्पना के अंतर्गत कोई उद्दीपक सामने उपस्थित नहीं होता बल्कि पूर्वानुभव के अंतर्गत ही यह प्रक्रिया होती है। प्रत्यक्षीकरण उपस्थित घटना या वस्तु के बारे में होता है जबकि कल्पना में कोई वस्तु या घटना उपस्थित नहीं होती। कल्पना में सारी बातें वास्तविक नहीं होती जबकि प्रत्यक्षीकरण हमें वास्तविक वस्तुओं का ज्ञान कराता है।

5.5.8 कल्पना एवं प्रतिमा (Imagination and Image)

कल्पना और प्रतिमा—ये दोनों ही मानसिक प्रक्रियाएं हैं। कभी-कभी इन्हें एक प्रक्रिया ही समझ लिया जाता है। कई पक्षों में ये दोनों समान हैं क्योंकि दोनों का प्रमुख आधार पूर्व प्रत्यक्षीकरण है। जिस प्रकार कल्पना बिना पूर्व प्रत्यक्षीकरण के संभव नहीं है, उसी प्रकार प्रतिमा भी प्रत्यक्षीकरण के अंतर्गत आने वाली घटनाओं या वस्तुओं से निर्मित होती हैं। इनमें भिन्नता यह है कि प्रतिमा प्रक्रिया के अन्तर्गत पूर्वप्रत्यक्षीकरण का पुनर्जागरण होता है जबकि कल्पना में व्यक्ति पूर्व प्रत्यक्षीकरण के आधार पर नए भावों की रचना होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.6 प्रश्नावली

I निबन्धात्मक प्रश्न

1. कल्पनाशक्ति क्या है? इसके प्रकारों को विस्तार से समझाइए।
2. कल्पना शक्ति बढ़ाने के उपायों को बताइए।

II लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. कल्पना शक्ति क्या है?
2. कल्पना एवं चिंतन में क्या अन्तर है?
3. कल्पनाओं के प्रकारों को संक्षेप में बताइए।
4. कल्पना एवं स्मरण में क्या अन्तर है?
5. कल्पना एवं प्रत्यक्षीकरण में क्या अन्तर है?

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वुडवर्थ ने कल्पना को ..... बताया है?
2. कल्पनाएं मुख्य दो प्रकार की हैं, ये हैं ..... तथा ..... ।

5.7 संदर्भ पुस्तकें:

1. The Personal Management Hand Book, Johan Mulligann, Human Potential Resource Group University of Surrey.
2. Personality and Transcendental Meditation, B. P. Gaur. A Jainsons Publication, East of Kailash, New Delhi.
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान—डॉ. एस.एन. शर्मा, हरप्रसाद भार्गव, 4/230 कचहरी घाट, आगरा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–6 चिंतन का विकास और संवेगों का नियंत्रण एवं प्रेक्षाध्यान

भाग – 1

संरचना

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 चिंतन

- 6.2.1 चिंतन का स्वरूप
- 6.2.2 चिंतन की परिभाषाएं
- 6.2.3 चिंतन प्रक्रिया के तत्त्व
- 6.2.4 चिंतन, कल्पना और स्मरण
- 6.2.5 चिंतन और स्मरण
- 6.2.6 चिंतन के साधन
  - 6.2.6.1 पदार्थ
  - 6.2.6.2 सम्प्रत्यय
  - 6.2.6.3 प्रतीक और चिन्ह
- 6.2.7 चिंतन के आधार या चिंतन के पीछे दृष्टिकोण
- 6.2.8 चिंतन की आधारभूत दक्षताएं
- 6.2.9 चिंतन का विकास एवं प्रेक्षाध्यान

6.3 प्रश्नावली

6.4 संवेग एवं उनका नियंत्रण

- 6.4.1 संवेग क्या है?
- 6.4.2 भवनात्मक रूप से विकसित या संतुलित व्यक्ति की विशेषताएं
- 6.4.3 अपने संवेगों को पहचानना
- 6.4.4 संवेगों का परिष्करण
- 6.4.5 संवेगाभिव्यक्ति
  - 6.4.5.1 बाह्य परिवर्तन
  - 6.4.5.2 आन्तरिक परिवर्तन
- 6.4.6 संवेगों का नियंत्रण

6.5 प्रश्नावली

6.6 संदर्भ पुस्तकें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.0 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने इच्छाशक्ति (संकल्पशक्ति), कल्पना शक्ति के विकास के बारे में पढ़ा। इन शक्तियों को विकसित करने में प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान की भूमिका के बारे में भी हमने अध्ययन किया। इस अध्याय में हम चिंतन क्या है? चिंतन का स्वरूप क्या है? चिंतन की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परिभाषाएं क्या हैं? चिंतन के तत्त्व क्या हैं? चिंतन का आधार क्या है? और चिंतन प्रक्रिया का विकास प्रेक्षाध्यान से किस तरह सम्भव है? इसका अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में संवेग क्या है? संवेगों का नियंत्रण किस प्रकार

सम्भव है इसके बारे में भी अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त चिंतन शक्ति के विकास एवं संवेगों के नियंत्रण में प्रेक्षाध्यान किस तरह उपयोगी है इसकी व्याख्या भी हम इस अध्याय में करेंगे।

6.1 उद्देश्य

1. इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप चिंतन क्या है? चिंतन के आधार एवं इसकी मौलिक या आधारभूत दक्षताओं के बारे में जान पाएंगे।
2. चिंतन क्षमता की अभिवृद्धि हेतु प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान किस तरह उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं इसके बारे में भी जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
3. इस पाठ के अध्ययन के बाद आप चिंतन प्रक्रिया संबंधी विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के उत्तर दे पाएंगे।
4. इस पाठ में आप संवेगों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. इस पाठ के अध्ययन के बाद भावनात्मक रूप से विकसित या संतुलित व्यक्ति की विशेषताएं एवं संवेगों का परिष्कार किस प्रकार से सम्भव है, के बारे में जान पाएंगे।
6. इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप यह भी जान पाएंगे कि संवेगाभिव्यक्ति (Expression of Emotion) के समय व्यक्ति में किस प्रकार के शारीरिक (बाह्य व आंतरिक) परिवर्तन आते हैं।
7. इस अध्याय के अध्ययन से आप संवेगों का नियंत्रण किस प्रकार सम्भव है? जान पाएंगे।

6.2 चिंतन (Thinking)

6.2.1 चिंतन का स्वरूप

प्राय: सभी प्राणियों में सोचने एवं समझने की क्षमता होती है। मनुष्य बुद्धिबल एवं चिंतन से अन्य प्राणियों से विकसित प्राणी है। सभी मनुष्यों में सोचने एवं समझने की क्षमता समान नहीं होती। किन्हीं में यह क्षमता निम्न स्तर पर होती है तो कई मनुष्यों में यह मध्यम से उच्च स्तरीय होती है। कुछ मनुष्यों में यह क्षमता उच्चतम स्तर तक भी होती है।

चिंतन एक मानसिक प्रक्रिया है और यह शिक्षण, स्मरण, कल्पना आदि मानसिक क्षमताओं से जुड़ी रहती हैं। चिंतन को इन क्षमताओं से पूर्णतया अलग नहीं किया जा सकता। कई लोगों के अनुसार चिंतन प्रक्रिया में हमारा मस्तिष्क सक्रिय रहता है तो कई लोगों का यह मानना है कि मस्तिष्क के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों का भी चिंतन से संबंध है। अन्य मानसिक प्रक्रियाओं की अपेक्षा चिंतन अधिक जटिल प्रक्रिया है और यह प्राय: अतीतानुभूतियों पर निर्भर करता है। अर्थात् चिंतन व्यक्ति के ज्ञानात्मक व्यवहार का जटिल स्वरूप है। चिंतन शक्ति के कारण ही व्यक्ति विज्ञान, तकनीकी तथा अन्य विधाओ का विकास करता है। यह एक ऐसी बौद्धिक क्षमता है जिसका महत्त्व व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। शिक्षा जगत् में भी इसका महत्त्व विशेष है।

अच्छी चिंतन क्षमतावान् व्यक्तियों में यह विशेषता होती है कि वे किसी भी घटना, स्थिति अथवा योजना को समझने एवं उनका विश्लेषण करने में दक्ष होते हैं। चिंतनशील व्यक्तियों में घटनाओं, स्थितियों एवं योजनाओं का विश्लेषण करने तथा अपने मत अथवा अपनी बात को संपुष्टता से एवं स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने की क्षमता होती है। इनके तर्क सटीक एवं स्पष्ट होते हैं। वे दूसरों के तर्कों का प्रत्युत्तर सरलता से दे सकते हैं। चिंतनशील व्यक्ति सरलता से उत्तेजित भी नहीं होते और हर स्थिति तथा परिस्थिति में धैर्यता से विचार करते हैं, वे कुछ विशेष सिद्धान्तों में विश्वास करने वाले होते हैं और उसी के आधार पर घटनाओं का आंकलन करते हैं तथा परिणामों पर विचार करते हैं। प्राय: उनके निर्णय व्यक्तिपरक न होकर वस्तुपरक, निष्पक्ष एवं सैद्धान्तिक होते हैं क्योंकि चिंतक का अपना मूल्य होता है। अच्छे चिंतक यह बताने में भी समर्थ होते हैं कि अनेक सम्भावित समाधानों में उचित समाधान क्या हो सकता हैं? परिणामों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के प्रति उनका दृष्टिकोण प्राय: संतुलित होता है और वे किसी भी घटना के प्रति समभाव रखते हैं। वे घटनाओं को लेकर न तो अत्यधिक उत्साहित या उत्तेजना का प्रदर्शन करते हैं और न ही खिन्नता दिखाते हैं।

चिंतन को हम मानसिक विचार की अवस्था भी कह सकते हैं अर्थात् व्यक्ति की एक विचारशील अवस्था का नाम चिंतन है। विचार का अर्थ है कि विभिन्न दृष्टियों से एक बात को देखने अथवा समझने का प्रयत्न करना। चिंतन के अंतर्गत हम विचार को जांचते हैं, समालोचना करते हैं, उसके प्रति जागरूक होते हैं, तुलना करते हैं, प्रश्न-प्रतिप्रश्न करते हैं, विश्लेषण करते हैं, बार-बार दोहराते हैं और संबंधित बातों को सामने लाने का प्रयत्न करते हैं, इत्यादि।

चिंतन एक जटिल प्रक्रिया है और यह हमारे मस्तिष्क में चलती रहती है। चिंतन में अनेक आन्तरिक क्षमताओं का उपयोग होता रहता है, जैसे—कल्पना, एकाग्रता, जागरूकता, स्मृति, समझ, अवलोकन आदि। ये सभी आन्तरिक क्षमताएं चिंतन की प्रक्रिया में सहभागी एवं सहयोगी बनती हैं। चिंतनशक्ति की स्पष्टता एवं विकास के लिए पृथकता से विचार करना अपेक्षित है।

6.2.2 चिंतन की परिभाषाएं (Definations of Thinking)

कई मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन को कई रूपों में परिभाषित किया है। कॉलिन्ग तथा ड्रेवर के अनुसार ''चिंतन प्राणी का परिस्थिति के प्रति चेतन समायोजन है।''

वुडवर्थ के अनुसार ''चिंतन बाधाओं के निवारण का एक साधन है।''

वारेन के अनुसार ''चिंतन एक विचारात्मक प्रक्रिया (Ideational Activity) है, जिसका स्वरूप प्रतीकात्मक (Symbolic) होता है तथा इसकी उत्पत्ति व्यक्ति के सामने उपस्थित किसी समस्या से या क्रिया से होती है।''

डॉ. एस.एन. शर्मा ने वारेन के द्वारा चिंतन के संदर्भ में दी गई परिभाषा को अपने शब्दों में निम्नानुसार अभिव्यक्त किया है—''चिंतन एक विचारात्मक प्रक्रिया है जिसका स्वरूप प्रतीकात्मक है, इसका प्रारंभ व्यक्ति के समक्ष किसी समस्या अथवा क्रिया से होता है, परन्तु समस्या के प्रत्यक्ष प्रभाव से प्रभावित होकर चिंतन क्रिया अंतिम रूप से सामने सुलझाने अथवा उसके निष्कर्ष की ओर ले जाती है।

चिंतन प्रक्रिया के बारे में मनोवैज्ञानिक हेम्फ्रे ने भी कुछ तथ्य प्रस्तुत किये हैं—

1. व्यक्ति समस्या के समाधान के लिए चिंतन करता है और इस क्रिया मे वह पूर्व अनुभवों का प्रयोग करता है।
2. व्यक्ति की समस्या उसके उद्देश्य तक पहुंचने में बाधा उत्पन्न करती है अत: समस्या के हल के लिए चिंतन की आवश्यकता पड़ती है। इसी परिस्थिति में चिंतन क्रियाशील होता है।
3. चिंतन उद्देश्यपूर्ण होता है और इसमें भाषा अति आवश्यक होती है।
4. समस्या के समाधान में जब चिंतन प्रक्रिया प्रारंभ होती है तो उसमें प्रतिमाऐं आन्तरिक भाषा तथा मांसपेशीय क्रियाएं भी होती हैं।

6.2.3 चिंतन प्रक्रिया के तत्त्व (Factors of Thinking)

मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन के निम्न मुख्य तत्त्व माने हैं—

1. चिंतन के लिए समस्या का उपस्थित होना आवश्यक है।
2. समस्या के हल के लिए एक दिशा निर्धारित करना।
3. उद्देश्यपूर्ण दिशा की ओर अग्रसर होना।
4. प्रयास एवं त्रुटि (Trial and error) विधि का प्रयोग करना।
5. व्यक्ति का क्रियाशील होना।
6. आन्तरिक भाषा का उपस्थित होना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.2.4 चिंतन, कल्पना और स्मरण (Thinking, Imagination and Memory)

चिंतन, कल्पना और स्मरण—तीनों मानसिक प्रक्रियाएं हैं और ये तीनों एक दूसरे की पूरक हैं। तीनों प्रक्रियाएं एक-दूसरे से गुंथी हुई (Inter wind) हैं। परन्तु ये तीनों क्रियाऐं एक नही हैं। चिंतन एवं कल्पना दोनों ही ज्ञानात्मक एवं रचनात्मक प्रक्रियाएं हैं। परन्तु दोनों प्रक्रियाओं में काफी भेद है, जो निम्न प्रकार से है—

1. चिंतन प्रक्रिया तार्किक (Logical) होती है जबकि कल्पना प्रक्रिया में तार्किकता का अभाव होता है।
2. चिंतन प्रक्रिया किसी समस्या के आधार पर उत्पन्न होती है जबकि कल्पना प्रक्रिया अनायास भी हो सकती है।
3. चिंतन प्रक्रिया में मुख्य रूप से समस्या का समाधान किया जाता है जबकि कल्पना प्रक्रिया में किसी परिस्थिति को नवीन रूप दिया जाता है।
4. चिंतन प्रक्रिया चेतन मन से होती है जबकि कल्पना अचेतन रूप में होती है।

6.2.5 चिंतन और स्मरण (Thinking and Memory)

चिंतन और स्मरण दोनों मानसिक प्रक्रियाएं हैं और एक-दूसरे की पूरक है परन्तु इन दोनों प्रक्रियाओं में बहुत भेद भी है, जैसे—

1. चिंतन प्रक्रिया नवीन बातों की ओर ले जाती है जबकि स्मरण प्रक्रिया में पूर्व अनुभवों की स्मृति उभर कर सामने आती है।
2. चिंतन प्रक्रिया का उद्देश्य समस्या का समाधान होता है जबकि स्मरण का उद्देश्य पूर्व अनुभवों का पुन:स्मरण होता है।

3. चिंतन प्रक्रिया में किसी समस्या का समाधान होता है जबकि स्मरण प्रक्रिया पूर्व अनुभवों या पूर्व घटनाओं से संबंधित होती है।

6.2.6 चिंतन के साधन (Materials or Tools of Thinking)

चिंतन प्रक्रिया में तीन उपकरण मुख्य हैं, ये हैं—

1. पदार्थ (Object),
2. सम्प्रत्यय (Concept),
3. प्रतीक या चिन्ह (Symbols or Signs)।

6.2.6.1 पदार्थ (Object)—चिंतन प्रक्रिया में पदार्थ का विशेष स्थान रहता है क्योंकि इसके आधार पर ही चिंतन संभव है। यह पदार्थ मुख्य रूप से वस्तुगत, विशेष अथवा सामान्य या गत्यात्मक गुण वाले हो सकते हैं। चिंतन प्रक्रिया में ये हमारी आंखों के सामने उपस्थित होकर चिंतन प्रक्रिया में सहायक होते हैं या उनका प्रत्यावाहन अथवा कल्पना करके हम उसे चिंतन का उपकरण बना लेते हैं।

6.2.6.2 सम्प्रत्यय (Concept)—चिंतन का दूसरा प्रमुख साधन सम्प्रत्यय है। चिंतन प्रक्रिया का साधन शब्द का सार्थक रूप ही प्रत्यय होता है। किसी शब्द की व्याख्या वास्तव में प्रत्यय की अभिव्यक्ति है। जब हम किसी शब्द की व्याख्या करते हैं तो वह व्याख्या प्रत्यय ज्ञान के आधार पर ही होती है। जब शब्द के बारे में हमारा प्रत्यय ज्ञान सही नही है तो शब्द का अर्थ बताने में हम असमर्थ होते हैं। पदार्थ या वस्तु के संबंध में प्रत्यय निर्माण (Concept formation) एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न-भिन्न हो सकता है। किसी पदार्थ का जो अर्थ हम लगाते हैं अर्थात् प्रत्यय निर्माण करते हैं वैसा ही दूसरे व्यक्ति में हो यह आवश्यक नही है। पदार्थ तथा उससे संबंधित क्रियाओं और गुणों के भी प्रत्यय होते हैं, जैसे पेड़-पौधे,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

फल-फूल, स्थान की दूरी, इत्यादि से संबंधित ज्ञान का रूप प्रत्यय निर्माण ही है। परस्पर वार्तालाप प्रत्यय निर्माण के आधार पर ही सफल संभव हो सकता है परन्तु कभी-कभी आवश्यक नहीं है कि जिस बात का प्रत्यय हमारे मस्तिष्क में हो वही प्रत्यय दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में हो।

6.2.6.3 प्रतीक और चिन्ह (Symbols and Signs)—प्रतीक और चिन्ह भी चिंतन प्रक्रिया की मुख्य सामग्री है। चिंतन के लिए ये दोनों आवश्यक हैं। प्रत्येक प्रतीक (Symbol), चिन्ह (Sign) का बोधक होता है और प्रत्येक चिन्ह (Sign), प्रतीक (Symbol) का बोधक होता है अर्थात् ये एक-दूसरे के बोधक (Indicator) हैं। जैसे उदाहरण के लिए गणित में जोड़ का प्रतीक '+' के चिन्ह से तथा घटाने का प्रतीक '-' से प्रकट किया जाता है। व्यक्ति की भाषा भी एक प्रकार से प्रतीक है और इसकी कई प्रकार से अभिव्यक्ति होती है। मनुष्य ही नहीं अपितु पशु भी कई अंशों तक प्रत्यय के रूप में भाषा व्यवहार करते हैं। व्यक्ति शब्दों के सहारे चिंतन करता है क्योंकि प्राय: सभी शब्द प्रतीक होते हैं जिनका एक विशेष अर्थ होता है। शब्दों से भाषा का निर्माण होता है अत: भाषा, प्रतीक और चिन्ह—दोनों ही हैं और ये चिंतन में बहुत सहायक होते हैं।

6.2.7 चिंतन के आधार या चिंतन के पीछे दृष्टिकोण (Thinking frame work)

प्रत्येक व्यक्ति में चिंतन करने या सोचने के विशेष तरीके या दृष्टिकोण होते हैं जिनको व्यक्ति सोचने के समय उपयोग में लाता है। यद्यपि व्यक्ति इसके बारे में ज्यादा सजग नहीं होता है तथापि कुछ तरीके जैसे—सिद्धान्त, प्रतिमान, संदर्भ, अपेक्षा, प्रारूप या मानचित्र, संस्कार एवं धारणाएं आदि ऐसे तरीके हैं, जिनसे ज्ञान एवं अनुभवों को संगठित स्वरूप दिया जाता है। पहली बार जब हम किसी स्थिति या व्यक्ति के संपर्क में आते हैं तब यह पहला अनुभव हमारे में एक संस्कार बन जाता है अर्थात् हम उस व्यक्ति के प्रति एक दृष्टिकोण बना लेते हैं और इसी दृष्टिकोण के आधार पर हम आगे की घटनाओं पर विचार करते हैं। यह दृष्टिकोण दुनिया को समझने या उसको जानने में एक आधार बन जाता है जैसे दूध का जला छाछ को भी सावधानीपूर्वक पीता है। यह दृष्टिकोण अथवा संस्कार हमारे विश्वास को बनाता है और यह दुनिया क्या है? कैसे कार्य करती है? इसके बारे में अनुभव प्रदान करता है।

दृष्टिकोण या संस्कार में हमारी आस्था निहित होती है, एक समझ पैदा होती है कि विश्व क्या है? कैसा है? कैसे यह कार्य करता है? इसके साथ-साथ एक मूल्यांकन भी सन्निहित होता है। अपने बारे में, विश्व के बारे में एवं दोनों के अन्त:संबंधों के बारे में। हम उसी दृष्टिकोण के आधार पर सृष्टि की घटनाओं को समझते हैं, अनुमान लगाते हैं तथा भविष्यवाणी करते हैं। हमारे पुराने दृष्टिकोण या संस्कार बदलते भी हैं। जब हम नई बातों या तथ्यों को उस आधार या दृष्टिकोण पर समझने में सफल नहीं होते तब अधिकतर हमारी दृष्टि स्वत: ही आन्तरिक रूप में परिवर्तित होती रहती है अर्थात् अचेतन मन से ही परिवर्तित होती रहती है। इसका सामान्यतया हमें पता नहीं चलता है और इस दृष्टि परिवर्तन को भागा में बांधा भी नहीं जा सकता। इस प्रकार जैसे-जैसे हमारी आयु बढ़ती है, अनुभव बढ़ते हैं, हमारी समझ भी बढ़ती चली जाती है। हमारी धारणाएं (संस्कार या दृष्टिकोण के ज्ञानात्मक पक्ष का एक अंश) सामान्य घटना चक्रों की एक समझ होती है तथा सिद्धान्त, नियम, प्रारूप और मानचित्र आदि हमारे चिंतन के उपयोगी साधन बनते हैं। इनकी उपयोगिता इस बात पर निर्भर करती है कि किसी बात का वर्णन करने, व्याख्या करने या भविष्यवाणी करने में ये कितने सहायक होते हैं। वर्णनात्मक प्रारूप या मानचित्र किसी वस्तु को पहचानने में सहायक होते हैं। व्याख्यात्मक प्रारूप या मानचित्र यह बताते हैं कि कोई वस्तु क्यों एवं कैसे है? भविष्य कथन में सहायक प्रारूप या मानचित्र एक निश्चित सीमा में भविष्यवाणी करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार की भविष्यवाणी प्रारूप घटित घटना से लाभ उठाने व योजनाएं बनाने में सहायक होती हैं जिससे व्यक्ति घटनाओं से अधिकतम लाभ उठा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध प्रश्न 1:

1. वारेन के अनुसार चिंतन की परिभाषा क्या है?
2. चिंतन और स्मरण में क्या भेद है?

6.2.8 चिंतन की आधारभूत दक्षताएं (The Basic Skills of Thinking)

अच्छे चिंतक या विचारक जागरूकता से, सजगता से एवं स्वेच्छा से व्यापक स्तर पर सिद्धान्त, प्रारूप या मानचित्र, अवधारणाओं का उपयोग अपनी रुचि के क्षेत्र के चिंतन में करते हैं। अनेक सिद्धान्तों का उद्‌गम एवं उपयोग अनेक विषयों एवं विधाओं के विकास के साथ-साथ हुआ, जैसे—गणित, विज्ञान, भूगोल आदि। चिंतक अनेक विधाओं के क्षेत्र में अपने विषय में चिंतन के लिए विशेष सिद्धान्त या प्रारूप का उपयोग करते हैं। हमें सामान्य जीवन की समस्याओं को समझने एवं सुलझाने के लिए उन विशेष सिद्धान्तों या प्रारूपों की अपेक्षा नहीं भी हो सकती है परन्तु फिर भी अपने विषय में चिंतन करने के लिए कुछ सैद्धान्तिक एवं अनुभव ज्ञान के साथ कुछ आधारभूत दक्षताओं की आवश्यकता होती है। हमारे सुदृढ़ चिंतन के लिए मुख्य रूपसे निम्न मूल या आधारभूत दक्षताओं की आवश्यकता होगी—

1. परिभाषा—Defination
2. अनाग्रह—Suspension of belief
3. प्रश्न करना एवं समस्या को स्पष्ट करना—Asking question and formulating problems
4. वैचारिक प्रवाह को लिखना (Brain Storming)
5. वर्गीकरण एवं प्राथमिकता निर्धारण (Categorizing and prioritizing)
6. विश्लेषण (Analysis)
7. अनुमान (Infering)
8. तुलनात्मक (Comparing and Contrsting)
9. परिकल्पना निर्माण एवं असत्यकरण (Hypothesising and falsifying)
10. विशेषीकरण या सामान्यीकरण (Particularizing or generalising)
11. समालोचनात्मक परीक्षण या कसौटी (Devil's Advocate)
12. समस्या समाधान चक्र (Problem solving Cycles)

उपरोक्त बिन्दुओं को विस्तारपूर्वक इस प्रकार समझा जासकता है—

1. परिभाषा (Defination)—चिंतन के केन्द्र बिन्दुओं में प्रयुक्त शब्दों को सम्मिलित प्रकार से परिभाषित करना। यह नहीं मानें कि शब्दों का जो अर्थ हम लगा रहे हैं वही अर्थ दूसरों के दिमाग में भी होगा।

2. अनाग्रह (Suspension of Belief)—नई अवधारणा या सिद्धान्त को खोजने के लिए चिंतन प्रक्रिया में अपने आप को पूर्व अवधारणाओं व पूर्वाग्रहों से मुक्त रखें (चाहे अल्प समय के लिए ही सही)। जब तक नवीन अवधारणाएं स्पष्ट न हो तब तक धैर्य रखना चाहिए। असमंजसता की स्थिति हो तो घबराना नहीं चाहिए। अनेकांत दृष्टिकोण के रूप में इस क्षमता का विकास किया जा सकता है।

3. प्रश्न करना एवं समस्या को स्पष्ट करना (Asking question and formulating problems)—प्रभावशाली चिंतन प्रश्न उठाने की कला पर निर्भर करता है। इसमें सही एवं सटीक प्रश्न उठाए जाते हैं अथवा समस्याको इस प्रकार उठाया जाता है जिससे उसको हल करना सरल हो जाए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. वैचारिक प्रवाह को लिखना (Brain Storming)—समस्या के बारे में स्वयं के पास उपलब्ध जानकारी को लिख लेना तदपुरान्त उनका न्यायदर्शन एवं मूल्यांकन करना।

5. वर्गीकरण एवं प्राथमिकता निर्धारण (Categorizing and Prioritizing)—चिंतनों, विचारों अथवा जानकारी के वर्गीकरण या प्राथमिकता निर्धारिण से समस्या की स्पष्टता में अभिवृद्धि हो जाती है। इससे अनावश्यक विचारों की छटनी करने में भी सहायता प्राप्त होती है।

6. विश्लेषण (Analysis)—विश्लेषण सामान्यतया किसी सिद्धान्त विशेष के आधारपर किया जाता है। विश्लेषण करने से तथ्यों एवं पूर्वकल्पित धारणाओं में भेद करने में सहायता प्राप्त होती है। विश्लेषण प्रक्रिया के माध्यम से विचारों के सूक्ष्म स्तर तक पहुंचा जा सकता है।

7. अनुमान (Inferring)—इसमें किसी सूचना अथवा जानकारी के आधार पर अन्य बातों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

8. तुलना करना (Comparing and Contrasting)—तुलना करने की क्षमता चिंतन प्रक्रिया के निर्णय में सहायक होती है। विभिन्न संभावनाओं के आधार पर इसका निर्णय किया जाता है।

9. परिकल्पना निर्माण एवं असत्यकरण (Hypothesising and Falsifying)—इसके अन्तर्गत सिद्धान्त या प्रारूप का निर्माण करना उसकी सत्यता को परखना होता है। परिकल्पना एक अनुमानित सत्य है जब तक कि वह मिथ्या सिद्ध न हो जाए। इस प्रकार का चिंतन किसी सिद्धान्त को सत्यापित करने हेतु किया गया शोध या अन्वेषण होता है।

10. विशेषीकरण या सामान्यीकरण (Particularizing or Generalizing)—इसके अन्तर्गत सिद्धान्त के प्रमाणों के आधार पर उसके परिणामों का सामान्यीकरण या विशेषीकरण किया जाता है।

11. समालोचनात्मक परीक्षण या कसौटी (Devil's Advocate)—इसके अन्तर्गत विभिन्न परिकल्पनाओं की संभावनाओं की समालोचना करना होता है। अन्य वैकल्पिक कारणों की उपस्थिति को कसौटी पर कसना होता है।

12. समस्या समाधान चक्र (Problem Solving Cycles)—इसके अन्तर्गत सिद्धान्त का अथवा परिकल्पना का क्रमश: परीक्षण करना उसे कार्यकारण सिद्धान्त से देखना। कई विकल्पों में से किसी सही विकल्प पर पहुंचना।

6.2.9 चिंतन का विकास एवं प्रेक्षाध्यान (Development of Thinking and Preksha Meditation)

चिंतन की प्रक्रिया को प्रभावित करने के कई कारक हो सकते हैं परन्तु मानसिक तनाव, मानसिक अस्थिरता तथा संवेगात्मक अस्थिरता प्रमुख कारक है। व्यक्ति की अनावश्यक व्यस्तता, संघर्षमय जीवन के कारण तनाव की बहुलता उसकी चिंतन प्रक्रिया को काफी हद तक प्रभावित करती है। वर्तमान में व्यक्ति का चिंतन सटीक एवं अर्थपूर्ण नहीं हो पा रहा है। चिरकाल से हमारी भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसी तकनीकियां प्रचलन में हैं जो व्यक्ति को जीवन जीने की कला सिखाता है। जीवन जीने की ही कला से चिंतन प्रभावशाली बनता है। चिन्तन प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए जीवन-विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का अभ्यास महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीवन विज्ञान के अध्ययन से जहां व्यक्ति जीवन जीने की सही कला सीखता है वहीं प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों के द्वारा अपना मानसिक एवं शारीरिक परिष्कार करता है। ये दोनों पक्ष व्यक्ति की चिंतन प्रक्रिया को सुदृढ़ और सुव्यवस्थित रूप प्रदान करते हैं। ध्यान की प्रक्रिया से मानसिक उद्वेगों में कमी आती है वहीं शरीर के शिथिलीकरण से शारीरिक तनाव कम हो जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रेक्षाध्यान के नियमित अभ्यास से बौद्धिक क्षमता में वृद्धि संवेगात्मक स्थिरता में वृद्धि, स्वप्रत्यय निर्माण क्षमता में वृद्धि और शारीरिक एवं मानसिक तनाव (Ergic-tension) में कमी होती है। कई शोधकार्यों द्वारा इस बात की पुष्टि हो चुकी है। गौड़ (1977), गौड़ एवं बेताल (1999), ने अपने शोधकार्यों में इस बात की पुष्टि की है कि प्रेक्षाध्यान के कुछ अवयवों, जैसे—कायोत्सर्ग, दीर्घश्वास प्रेक्षा तथा ज्योतिकेन्द्र प्रेक्षा का नियमिति अभ्यास करने से उपरोक्त कारकों में सार्थक परिवर्तन होते हैं जो व्यक्ति की चिंतन प्रक्रिया को सुदृढ़ बना सकते हैं। गौड़ एवं शर्मा द्वारा कैदियों पर किये गए एक लघु शोध ाकार्य में भी इसी प्रकार के परिणाम देखे गए तथा यह भी देखा गया कि प्रेक्षाध्यान के अभ्यास से कैदियों के चिंतन में सकारात्मक परिवर्तन हुआ। इसी तरह गौड़ एवं सैनी ने कैदियों पर प्रेक्षाध्यान का प्रभाव आठ क्षेत्रों के तनावों पर देखा। प्रेक्षाध्यान के नियमित अभ्यास से आठ क्षेत्रों के तनावों में सार्थक कमी आई और उनकी सोच में सकारात्मक सार्थक परिवर्तन देखा गया। अत: उपरोक्त शोध कार्यों से यह स्पष्ट होता है कि प्रेक्षाध्यान का अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक तनावों को दूर करते हुए व्यक्ति की चिंतन प्रक्रिया एवं चिंतन संरचना को सुदृढ़ बनाती है। व्यक्ति में जितनी बौद्धिक क्षमता अधिक होगी, संवेगात्मक स्थिरता अधिक होगी, स्वप्रत्यय निर्माण की क्षमता अधिक होगी एवं शारीरिक एवं मानसिक तनाव जितने कम होंगे उतनी ही चिंतन क्षमता बढ़ जाएगी।

6.3 प्रश्नावली

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. चिंतन के उपकरण ..... हैं।
2. चितन के मूल या आधारभूत दक्षताएं ..... हैं।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. चिंतन क्या है?
2. चिंतन की कोई दो परिभाषाएं लिखिए।
3. चिंतन एवं कल्पना मे क्या अन्तर है?
4. चिंतन एवं स्मरण में क्या अन्तर है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. चिंतन की विभिन्न परिभाषा देते हुए चिंतन एवं कल्पना में अन्तर स्पष्ट करें।
2. चिंतन के लिए मूल या आधारभूत दक्षताओं का वर्णन करें।
3. चिंतन का विकास प्रेक्षाध्यान द्वारा किस प्रकार सम्भव है, स्पष्ट करें।
4. चिंतन के उपकरण कौन-कौन से हैं? विस्तार से समझाएं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भाग – 2

6.4 संवेग एवं उनका नियंत्रण (Emotions and their control)

6.4.1 संवेग क्या है? (What are emotions)

संवेग एक जटिल भावात्मक प्रक्रिया है और भाव के पश्चात ही संवेग की अवस्था आती है। कोई भी संवेग भाव के बिना संभव नहीं होते। संवेग मूल रूप से सुख-दु:ख की अनुक्रियाएं हैं। संवेग हमारी सूक्ष्म भावनात्मक प्रतिक्रिया है। ऐसा माना जाता है कि क्रोध अवरोधित चाहों की अनुक्रियाएं हैं। भय अवरोधित विवेक एवं दु:खअवरोधित प्रेम की अनुक्रिया है। मानव की मूल आवश्यकताएं संवेगों के स्तरों को पैदा करती हैं। खुशी, प्रसन्नता, आनन्द, परमानन्द—ये सुख की अनुक्रियाओं की विभिन्न अवस्थाएं हैं। संवेगों का प्राकट्करण वैसे तो स्वाभाविक है परन्तु फिर भी हम हमारे संवेगों का कुछ विशेष तरीकों से स्वस्थ प्रबन्ध कर सकते हैं तथा अपना भावनात्मक संतुलन बनाए रख सकते हैं। संवेगों का संतुलन बनाए रखना भी एक कला है।

संवेगात्मक या भावनात्मक रूप से संतुलित व्यक्ति प्रियता एवं अप्रियता, पसन्द या नापसन्द से मुक्त होकर निर्णय करते हैं। वे अपने भावों को ठीक से पहचान लेते हैं और दूसरों के भावों को भी जान लेते हैं। भावनात्मक संतुलित व्यक्ति सहयोग, सद्भाव एवं पारस्परिक संबंधों को महत्त्व प्रदान करते हैं। उनके निर्णयों में स्वयं के मूल्य और संबंधों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्राय: इनमें पारस्परिक संबंधों के निर्वाह करने या नये संबंध बनाने की अद्भुत क्षमता होती है।

संवेग हमारी सूक्ष्म भावनात्मक प्रतिक्रियाएं हैं। यह प्रतिक्रिया बाह्य परिस्थिति या आन्तरिक मन:स्थिति के प्रति भी हो सकती है। यह एक जटिल भावनात्मक प्रक्रिया है इसके कारण व्यक्ति में आन्तरिक और बाह्य—दोनों प्रकार के परिवर्तन होते हैं। संवेगावस्था को निरीक्षण के द्वारा पहचाना जा सकता है। इसके द्वारा प्रकट हुए लक्षणों को हम संवेगाभिव्यक्ति कहते हैं। क्रोध हमारी इच्छा में रूकावट के कारण होने वाली प्रतिक्रिया है। परिणामों के प्रति आशंकाओं की प्रतिक्रिया भय के रूप में होती है। सहानुभूति एवं प्रेम के अभाव की प्रतिक्रिया दु:ख है। मानव की मौलिक आवश्यकताएं संवेगों से जुड़ी हुई है। खुशी, आनन्द, प्रसन्नता, सब अनुकूल प्रतिक्रियाएं हैं। संवेगों की अभिव्यक्ति करके हम संवेगात्मक संतुलन बनाने का प्रयत्न करते हैं। इनकी अभिव्यक्ति के लिए अनेक रास्ते और विकल्प हैं, जैसे—

1. संवेगों की शारीरिक या वाचिक अभिव्यक्ति करना, जैसे—रोना, चिल्लाना, डांटना, अपने शरीर को हिलाना।
2. संवेगों को नियंत्रित कर लेना, उनका आन्तरिक रूप से दमन कर लेना या उनसे तादात्म्य स्थापित नहीं करना (Control over emotions)।
3. सही जगह पर सही तरीके से संवेगों को अभिव्यक्त करना अथवा अविनाशकारी तरीके से सही जगह पर उनका रेचन करना (Release/Cathorisis)।
4. सृजनात्मक कार्य में अथवा रचनात्मक क्रियाओं में रूपान्तरित कर देना, जैसे—कला या आत्मसाक्षात्कार (Self relization)।

उपरोक्त तरीकों से हम अपने भावों की अभिव्यक्ति करके भावनात्मक संतुलन बनाए रख सकते हैं और जीवन की क्रियाओं में इनका प्रबन्ध ठीक ढंग से कर सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.4.2 भावनात्मक रूप से विकसित या संतुलित व्यक्ति की विशेषताएं (Silent features of emotional balanced person)

भावनात्मक रूप से विकसित या संतुलित व्यक्ति की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं—

1. वे अपनी प्रतिक्रियाओं के प्रति जागरूक रहते हैं अर्थात् घटनाओं एवं व्यक्तियों के प्रति अपनी होने वाली शारीरिक अनुक्रियाओं के प्रति सजग रहते हैं।
2. वे विभिन्न संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में सूक्ष्म अन्तर कर सकते हैं।
3. वे भावनात्मक संवेगों की शारीरिक प्रतिक्रियाओं को पहचान सकते हैं।
4. वे अपने अतीत के अप्रिय संवेगों का अनुभव रखते हैं और उनके प्रभावों को वर्तमान जीवन में सीमित कर सकते हैं। अर्थात् वे भावों के अधीन बहुत ही कम हो पाते हैं।
5. वे अपनी अच्छी और बुरी भावनाओं को स्वीकार कर सकते हैं। अर्थात् अपने नकारात्मक अथवा सकारात्मक मूल्यों को स्वीकार करते हैं।
6. वे अपनी भावनाओं का उत्तरदायित्व स्वयं पर लेते हैं। इनका दोषारोपण दूसरों पर नहीं करते।
7. वे अपनी भावनाओं को विभिन्न तरीकों से अभिव्यक्त करने में सक्षम होते हैं अर्थात् इनका प्रबन्धन करने के लिए नियंत्रण, रेचन, प्रकटता जैसी अभिव्यक्तियों का उपयोग करते हैं।

6.4.3 अपने संवेगों को पहचानना (Discovring your emotions)

प्राय: स्वयं के भावों या संवेगों को सीधा जानना कठिन सा है। विशेष रूप से नकारात्मक संवेगों को जानना और भी कठिन है। अपने संवेगों को जानने या उनमें भेद करने तथा उन्हें स्वीकार करने की क्षमता प्राप्त करना अपेक्षित है। संवेगों को जानने और उनमें भेद करने के लिए यह आवश्यक है कि आप उन्हें स्वीकार करें और उनका मूल्य जानें।

हमारे संवेगों की जानकारी प्राय: दूसरे लोगों से प्राप्त होती है। जब वे कहते हैं कि आपकी अमुक-अमुक भावनाएं बच्चों जैसी हैं, लज्जास्पद हैं आदि-आदि। अपने संवेगों की जानकारी के प्रति हमारी प्रतिक्रिया अस्वाभाविक एवं असमंजसता की होती है हम उसे सहजता से स्वीकार नहीं कर पाते हैं। ऐसी स्थितियों से बचने के लिए हम तीव्र संवेगों के माध्यम से उन्हें छिपाने का प्रयत्न करते हैं, जैसे—उदासीनता, तनाव, असमंजसता आदि। जब हम अपने भीतर गहराई से देखते हैं तो हमें प्राथमिक संवेगों से सामना करना पड़ता है। जैसे—क्रोध, भय, दु:ख, प्रसन्नता, आनन्द आदि।

6.4.4 संवेगों का परिष्करण (Refining Emotions)

संवेगों का परिष्करण करने के लिए अनेक विकल्प हैं। इन विकल्पों से अपने संवेगों का परिष्करण कर हम अपना संतुलित एवं अच्छा व्यवहार प्रदर्शित कर सकते हैं। यहां हम चार मुख्य विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं। संवेगों के परिष्करण के लिए प्रथम विकल्प यह है कि विभिन्न व्यवहारों के समय अपनी वाचिक एवं शारीरिक प्रतिक्रियाओं को समझें एवं उनके प्रति जागरूक रहें। जो शारीरिक प्रतिक्रिया उचित नहीं लगे उसको दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं करें। इस प्रकार संवेगों के प्रति जागरूक रहने से हम संवेगों पर वैसी प्रक्रिया नहीं करते हैं, जैसी कि पूर्व में शारीरिक या वाचिक रूप से करते थे।

संवेगों के परिष्करण के लिए दूसरा विकल्प यह है कि हम कायिक या शारीरिक अनुक्रिया के साथ अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अपनी वाचिक क्रिया को सही भाषा दे। अपने संवेगों को उपयुक्त शब्दों में अभिव्यक्त करें। जिससे दूसरा व्यक्ति भी आपकी भावनाओं और प्राथमिकता को ठीक ढंग से समझ सकें।

तीसरा विकल्प यह है कि हम अपने संवेगों को इस प्रकार अभिव्यक्त करें जिससे दूसरों को क्षति एवं कष्ट नहीं पहुंचे। जैसे खेल प्रदर्शन में हम अपने कई प्रकार के संवेगों का रेचन करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चौथा विकल्प लेश्याध्यान का है। लेश्याध्यान का अर्थ है प्रशस्त रंगों का ध्यान। लेश्याध्यान एवं भावों के परिष्कार में बहुत गहरा सम्बन्ध है। गतवर्ष के पाठ्यक्रम में व्यक्तित्व का वर्गीकरण लेश्या के आधार पर नामक पाठ में हमने व्यक्तित्व एवं लेश्याध्यान का सम्बन्ध स्पष्ट किया था। लेश्याध्यान से भावों के उद्भव प्रक्रिया में वांछित परिवर्तन किया जा सकता है। भावधाराओं को निर्मल बनाया जा सकता है। अत: प्रशस्त रंगों का ध्यान कर हम अपने संवेगों का भावधाराओं का परिष्कार कर सकते हैं।

6.4.5 संवेगाभिव्यक्ति (Expression of emotions)

संवेगावस्था में व्यक्ति में बाह्य तथा आन्तरिक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के निरीक्षण से हम व्यक्ति के संवेगों को जान सकते हैं। संवेग एक जटिल भावनात्मक प्रक्रिया है और मन में भाव उत्पन्न होने के पश्चात् संवेग की अवस्था आती है। अत: संवेग के लिए भावना का होना आवश्यक है। कोई भी संवेग बिना भावना के संभव नहीं है। भाव के अन्तर्गत कोई शारीरिक परिवर्तन हो यह आवश्यक नहीं है परन्तु संवेगों का प्रकटीकरण बिना शारीरिक परिवर्तन के संभव नहीं है और इन परिवर्तनों को हम निरीक्षणों के द्वारा जान सकते हैं। जैसे भय की स्थिति में शरीर में कंपन आरंभ हो जाना, चीख निकलना, शरीर का पीला पड़ जाना आदि। संवेगाभिव्यक्ति के समय व्यक्ति के शरीर में बाह्य एवं आन्तरिक परिवर्तन आते हैं जिनका संक्षेप में आगे वर्णन किया जा रहा है।

6.4.5.1 बाह्य परिवर्तन (External Changes)

संवेगावस्था में जो बाह्य परिवर्तन होते हैं उनमें प्रमुख हैं—मुखाकृति में परिवर्तन (Facial changes), शारीरिक मुद्रा में परिवर्तन (Postural changes) तथा वाकशक्ति में परिवर्तन (Vocal changes)। मुखाकृति परिवर्तन में मुख की मांसपेशियां संवेग के समय फैल जाती हैं और परिणामस्वरूप मुखाकृति बदल जाती है। संवेग की प्रकृति के अनुसार मुखाकृति में परिवर्तन होता है, जैसे क्रोध के समय चेहरा तमतमा जाना, चेहरे की मांसपेशियों में खिंचाव आ जाना, आंखों का लाल हो जाना आदि। इसी प्रकार भय और अन्य संवेगों के समय मुखाकृति अलग-अलग रूपों में हो जाती है। हम मुखाकृति के आधार पर संवेगों की पहचान कर सकते हैं। संवेगों के अनुसार शारीरिक मुद्राओं में भी परिवर्तन होते हैं। विशेष संवेगों में शारीरिक मुद्रा भी विशेष बन जाती है। जैसे—प्रसन्नता के संवेगों में सिर ऊंचा उठ जाता है, सीना तन जाता है। वहीं दु:ख के संवेगों में शरीर का ढीला पड़ जाना, क्रोध के समय बाहों का मुड़ जाना, हाथ की अंगुलियों से मुट्ठी बन जाना आदि। इसी तरह संवेगों से व्यक्ति की बोली अर्थात् वाणी में परिवर्तन भी आ जाता है। भिन्न-भिन्न संवेगों के समय भिन्न-भिन्न प्रकार के वाक्शब्द भिन्न तीव्रता से बोले जाते हैं।

6.4.5.2 आन्तरिक परिवर्तन (Internal Changes)

संवेगों के कारण शरीर में बाह्य परिवर्तनों के अतिरिक्त आन्तरिक परिवर्तन भी होते हैं जिनका ज्ञान हम उपकरणों की सहायता से प्राप्त कर सकते हैं। आन्तरिक शारीरिक परिवर्तनों में प्रमुख रूप से हृदय गति, रक्तचाप, श्वसन की दर, नाड़ी गति, रक्त रसायन (Blood Chemestry) आदि में परिवर्तन होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्त:स्रावी ग्रंथियों के स्रावों में, मस्तिष्क की तरंगों में, पाचनक्रिया एवं मांसपेशियों में भी परिवर्तन होते हैं।

बोध प्रश्न 2:

---

1. संतुलित व्यक्ति की विशेषताएं बताएं?
2. संवेगों के आन्तरिक परिवर्तन कौन-कौन से है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.4.6 संवेगों का नियंत्रण (Controlling emotions)

वर्तमान में मानव जीवन में दिन-प्रतिदिन तनाव की स्थिति में वृद्धि हो रही है। इसका मूल कारण मानव जीवन की विलासिता एवं भौतिकवादिता है। परिणामस्वरूप मनुष्यों में संवेगिक अस्थिरता एवं मनोविकारों की निरंतर वृद्धि हो रही है। जिसके फलस्वरूप संघर्ष की विकट समस्या मनुष्य के समक्ष उभर रही है। वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक इस प्रकार की समस्या से उबरने के लिए नित्य नए प्रयोग कर रहे हैं एवं औषधियों का निर्माण कर रहे हैं। भारतीय योग मनोविज्ञान ने इन सांवेगिक अस्थिरताओं और मनोविकारों से उबरने के लिए कई उपाय सुझाए हैं। भारतीय योग मनोविज्ञान की मूल अवधारणा यह है कि व्यक्ति का मन व व्यवहार उसके पर्यावरण के प्रभाव से दूषित होकर संवेगात्मक अस्थिरता एवं मनोविकारों को जन्म देता है। ऐसी ही विचारधारा गीतादर्शन में व्यक्त की गई है। भारतीय योग विचार-धारा मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य व व्यक्तित्व विकास के लिए विशेष प्रक्रियाओं पर बल देती है। महर्षि पातंजलि ने एवं गीतादर्शन में पर्यावरणागत दुष्प्रभाव से मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति को अपना स्वाभाविक प्रकृतियों के अनुकूल निरंतर व्यवहार करना आवश्यक बताया है। परन्तु वास्तव में व्यावहारिक रूप से यह कठिन होता है। भारतीय मनोविज्ञान में ध्यान एवं योग के सतत् अभ्यास के द्वारा मनोकायिक विकारों तथा संवेगात्मक अस्थिरता पर नियंत्रण करने की बात कही गयी है। इसके प्रमाण ध्यान योग पर देश-विदेशों में हुए शोध कार्यों से प्राप्त होते हैं। भावातीत ध्यान से संवेगों का परिष्करण उन पर नियंत्रण पर कई शोधकार्य हुए हैं। प्रेक्षाध्यान पद्धति से भी इस प्रकार के परिणाम देखने को मिलते हैं। प्रेक्षाध्यान पद्धति का नियमित अभ्यास करने से संवेगात्मक या भावनात्मक स्थिरता (Emotional Stability) में वृद्धि होती है। इस पद्धति पर हुए शोधकार्य यह प्रमाणित करते हैं कि इस ध्यान के नियमित अभ्यास से जहां एक ओर संवेगात्मक स्थिरता बढ़ती है वहीं दूसरी ओर आर्गिक तनावों (Ergic-tension) में कमी आती है।

संवेगों एवं प्रेक्षाध्यान को लेकर चार स्तरों पर शोधकार्य हुए हैं—

1. प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों पर
2. उच्च कक्षाओं के छात्रों पर
3. जन साधारण लोगों पर
4. अपराध प्रवृत्ति के लोगों पर

1. प्रथम स्तर के शोध कार्य—इस शोध कार्य (गौड़, 1998) में प्राथमिक विद्यालय के समान स्तर के दो छात्र समूहों पर प्रयोग किया गया। एक समूह को नियमित रूप से प्रेक्षाध्यान तीन माह तक करवाया गया जबकि दूसरे समूह को ध्यान नहीं करवाया गया। दोनों समूहों का पूर्व में संवेग संबंध मनोपरीक्षण किया गया तथा तीन माह बाद पुनः परीक्षण किया गया। परीक्षण विश्लेषण के बाद इस बात की पुष्टि हुई कि प्रेक्षाध्यान करने वाले छात्रों में संवेगात्मक अस्थिरता (Emotional Unstability) में कमी आई जबकि संवेगात्मक स्थिरता सार्थक रूप से बढ़ी जबकि ध्यान नहीं करने वाले छात्रों में संवेगात्मक अस्थिरता (Emotional unstability) में कोई परिवर्तन नहीं आया। इस परिणाम से यह बात स्पष्ट होती है कि प्रेक्षाध्यान करने से संवेगात्मक स्थिरता बढ़ती है।

2. द्वितीय स्तर के शोधकार्य—प्रेक्षाध्यान का प्रभाव संवेगात्मक स्थिरता पर देखने के लिए उच्च कक्षाओं के ऐसे छात्रों पर शोध किया गया (गौड़ एवं बेताल, 1999) जो किसी-न-किसी प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन करते थे। संवेगात्मक स्थिरता कम रहने से या संवेगात्मक अस्थिरता रहने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से कई व्यक्ति मादक पदार्थों का सेवन करते हैं। इस प्रयोग में भी छात्रों के दो ऐसे समूहों को चुना गया जो किसी किसी प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन करते थे। एक समूह को दो माह तक नियमित रूप से प्रतिदिन 40 मिनिट का प्रेक्षाध्यान एवं अप्रमाद केन्द्र पर ध्यान कराया गया जबकि दूसरे समूह को ध्यान नहीं करवाया गया अपितु वे अपने दैनिक कार्यों में ही व्यस्त रहे। प्रयोग प्रारंभ करने से पहले दोनों समूहों का संवेगात्मक स्थिरता का परीक्षण कर लिया गया और दो माह के ध्यान के अभ्यास के बाद पुन: संवेगात्मक स्थिरता का परीक्षण किया गया। परिणामों से यह पता चला कि प्रेक्षाध्यान करने वाले छात्र समूह में संवेगात्मक स्थिरता पहले की अपेक्षा सार्थक रूप से अधिक बढ़ी है और उनके मादक पदार्थों के सेवन करने की आदत में कमी आई है या उन्होंने मादक पदार्थों का सेवन बंद कर दिया है। परन्तु दूसरे समूह के छात्रों, जिन्होंने प्रेक्षाध्यान का अभ्यास नहीं किया, के संवेगात्मक या भावनात्मक स्थिरता बढ़ने की अपेक्षा कुछ कम ही हुई है और उनके मादक पदार्थों के सेवन की आदत में कोई परिवर्तन नहीं आया है। अत: उपरोक्त शोध प्रयोग से यह स्पष्ट है कि प्रेक्षाध्यान का नियमित अभ्यास संवेगात्मक या भावनात्मक स्थिरता बढ़ाता है।

3. तृतीय स्तर के शोधकार्य—तृतीय स्तर के शोधकार्य (गौड़, 1999) प्रेक्षाध्यान एवं संवेगात्मक स्थिरता को लेकर जन-साधारण (स्त्री-पुरुषों) पर किये गये। इस शोध में यह देखा गया कि प्रेक्षाध्यान संवेगात्मक स्थिरता बढ़ाने में सार्थक रूप से सहायक है।

4. चतुर्थ स्तर के शोधकार्य—संवेगात्मक या भावनात्मक स्थिरता एवं प्रेक्षाध्यान को लेकर चतुर्थ स्तर का शोधकार्य (गौड़ एवं शर्मा) कैदियों पर किया। अपराध जगत् से जुड़ना या किसी विशेष परिस्थिति में अपराध हो जाना संवेगात्मक या भावनात्मक अस्थिरता का ही परिणाम है। इस शोध कार्य में उम्रकैद सजा प्राप्त कैदियों पर अल्पकालीन प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करवाया गया। यह अभ्यास 25 दिनों तक नियमिति रूप से प्रतिदिन 45 मिनिट का करवाया गया। प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करवाने के पूर्व कैदियों की भावनात्मक अर्थात् संवेगात्मक स्थिरता के स्तर एवं मानसिक स्वास्थ्य को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से माप लिया गया। 25 दिनों के प्रेक्षाध्यान के अभ्यास के पश्चात् कैदियों के संवेगात्मक स्थिरता एवं मानसिक स्वास्थ्य का पुन: मापन किया गया। पूर्वपश्च परीक्षणों का सांख्यकीय विश्लेषण किया गया। परिणामों में यह स्पष्ट पाया गया कि 25 दिनों के प्रेक्षाध्यान के पश्चात् कैदियों के भावनात्मक स्थिरता का स्तर बढ़ा है अर्थात् 25 दिनों के ध्यान के पश्चात् कैदियों में संवेगात्मक स्थिरता बढ़ी है तथा उनके मानसिक स्वास्थ्य में भी सकारात्मक सुधार हुआ है।

उपरोक्त चारों स्तरों के शोधकार्यों से स्पष्ट है कि कम आयु के बच्चों (विद्यार्थियों), वयस्कों (विद्यार्थियों), प्रौढ़ लोगों एवं अपराध क्षेत्र के प्रौढ़ लोगों में प्रेक्षाध्यान से संवेगात्मक या भावनात्मक स्थिरता बढ़ती है। भावनात्मक स्थिरता का व्यक्तित्व से सीधा सम्बंध है। व्यक्ति में संवेगात्मक या भावनात्मक स्थिरता जितनी अधिक होगी उसका व्यक्तित्व उतना ही सुदृढ़ होगा।

प्रेक्षाध्यान के नियमित अभ्यास से शरीर में होने वाली शिथिलीकरण प्रक्रिया से शरीर का लचीलापन बढ़ता है जो संघर्षमय तनावों और दबावों को सरलता से सहन लेता है और उनका शरीर पर कम से कम प्रभाव पड़ने देता है। परिणामस्वरूप मनोकायिक विकार एवं संवेगात्मक अस्थिरता कम से कम पैदा होती है। प्रेक्षाध्यान से दूसरा लाभ यह होता है कि यह मनुष्य के मनोशारीरिक मूल गहन तनावों को (Deep rooted tensions), जो कभी भी व्यक्ति में संवेगात्मक अस्थिरता पैदा कर सकते हैं को निकालकर बाहर फैंकता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति संवेगात्मक रूप से अस्थिर नहीं होता और यदि होता भी है तो थोड़ी मात्रा में और बहुत कम समय के लिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस तरह संवेगों पर नियंत्रण रखने या उसकी स्थिरता बनाए रखने के लिए प्रेक्षाध्यान और इसके अवयवों का नियमित रूप से दीर्घकालीन अभ्यास बहुत सहायक है। इससे व्यक्ति अपना भावनात्मक संतुलन बनाए रख सकता है और संवेगों पर नियंत्रण कर सकता है।

6.5 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. संवेग क्या हैं? इनका परिष्करण किस तरह सम्भव है?
2. संवेगाभिव्यक्ति से होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को विस्तार से लिखिए।
3. संवेगों का नियंत्रण किस प्रकार सम्भव है? इस क्षेत्र में हुए शोधकार्यों पर प्रकाश डालिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संवेग क्या है?
2. भावात्मक रूप से विकसित व्यक्ति की विशेषताएं बताईए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. संवेगाभिव्यक्ति में ..... परिवर्तन होते हैं।

6.6 संदर्भ पुस्तकें:

1. The Personal Management Hand Book, Johon Mulligaun, Human Potential Resource Group University of Surrey
2. Personality and Transcendental Meditation, B. P. Gaur, A Jainsons Publication, East of Kailash, New Delhi
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान—डॉ. एस.एन. शर्मा, हरप्रसाद भार्गव, 4/230 कचहरी घाट, आगरा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–7 : इन्द्रिय क्षमता और अन्तर्दृष्टि के विकास में प्रेक्षाध्यान

भाग–1

संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 इन्द्रिय क्षमता
7.3 घ्राण संवेदन
7.3.1 गंध की संवेदनशीलता
7.4 श्रवण संवेदना
7.5 दृष्टि (चाक्षष) संवेदना
7.5.1 निकट दृष्टि दोष
7.5.2 दूर दृष्टि दोष
7.6 रसीय संवेदना
7.7 त्वचीय संवेदना
7.7.1 स्पर्श जनित संवेदना
7.7.2 पीड़ा जनित संवेदना
7.7.3 ताप जनित संवेदना
7.8 विकसित ज्ञानेन्द्रिय क्षमताओं से लाभ
7.8.1 घ्राण इन्द्रिय
7.8.2 श्रवण इन्द्रिय
7.8.3 चाक्षुषी इन्द्रिय
7.8.4 रसीय इन्द्रिय
7.8.5 त्वचीय इन्द्रिय
7.9 इन्द्रिय क्षमताओं का विकास एवं प्रेक्षाध्यान
7.9.1 इन्द्रियां और सम्बन्धित चैतन्य केन्द्र
7.9.1.1 घ्राणेन्द्रिय : प्राण केन्द्र
7.9.1.2 श्रवणेन्द्रिय : अप्रमाद केन्द्र
7.9.1.3 दर्शनेन्द्रिय : चाक्षुष केन्द्र
7.9.1.4 रसेन्द्रिय : ब्रह्म केन्द्र
7.9.1.5 त्वचीय इन्द्रिय : कायोत्सर्ग एवं शरीर प्रेक्षा
7.10 प्रश्नावली
7.11 अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान
7.11.1 अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान क्या है?
7.11.2 अन्तर्ज्ञान का महत्व
7.11.3 विकसित अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान वाले व्यक्ति की विशेषताएं
7.11.4 अन्तर्दृष्टि एवं सीखना
7.11.5 अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान क्षमता का विकास
7.11.5.1 मन: स्थान की सफाई
7.11.5.2 योग द्वारा अन्तर्दृष्टि का विकास
7.11.5.3 अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान और प्रेक्षाध्यान
7.12 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.0 प्रस्तावना

पिछले पाठों में हमने संकल्पशक्ति, कल्पनाशक्ति चिन्तन का विकास एवं संवेगों का नियन्त्रण एवं प्रेक्षाध्यान के बारे में पढ़ा। हमने यह भी अध्ययन किया कि उक्त क्षमताओं के विकास में जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान किस तरह सहायक है।

इस पाठ में हम इन्द्रिय क्षमता और प्रेक्षाध्यान एवं अन्तर्दृष्टि और प्रेक्षाध्यान के बारे में पढ़ेंगे। इस पाठ के अन्तर्गत विशेषरूप से ज्ञानेन्द्रियों एवं उनकी कार्य क्षमता के बारे में अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त इन ज्ञानेन्द्रियों का चैतन्य केन्द्रों से क्या सम्बन्ध है एवं उनकी क्षमताओं का विकास किस तरह सम्भव है इसका भी अध्ययन हम इस पाठ के अन्तर्गत करेंगे। इस पाठ के दूसरे भाग में अन्तर्दृष्टि के बारे में भी पढ़ेंगे। अन्तर्दृष्टि क्या हैं? इसके विकास में प्रेक्षाध्यान की क्या भूमिका हो सकती है और किस प्रकार प्रेक्षाध्यान अन्तर्दृष्टि क्षमता का विकास करने में सहायक है इसकी व्याख्या भी इस पाठ के अन्तर्गत की जाएगी।

7.1 उद्देश्य

1. इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप यह जान पाएगें कि ज्ञानेन्द्रियां क्या हैं और इनसे सम्बन्धित क्या क्या कार्य है?
2. आप पांचों ज्ञानेन्द्रियों की क्षमताओं के बारे में भी जान पाएगें।
3. इस पाठ का पठन करने के पश्चात् आप यह जान पाएगें कि कम क्षमता वाली इन्द्रियों के क्या क्या दोष हो सकते हैं और इनसे व्यक्तित्व में क्या कमी रह सकती है।
4. आप को यह जानकारी मिल जाएगी कि ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित कौन-कौन से चैतन्य केन्द्र है और वे कहां स्थित है। इन चैतन्य केन्द्रों पर प्रेक्षा करने से क्या निष्पत्तियां प्राप्त होती है।
5. यह भी स्पष्ट होगा कि यौगिक क्रियाओं से भी ज्ञानेन्द्रियों की क्षमताओं का विकास सम्भव है।
6. इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप यह जान पाएगें की अन्तर्दृष्टि क्या है और अन्तर्दृष्टि क्षमता वाले व्यक्तियों की क्या विशेषताएं होती है।
7. आप यह जान पाएगें कि अन्तर्दृष्टि की क्षमता के विकास में प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान किस तरह सहायक है।
8. इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप इससे सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दे पाएगें।

7.2 इन्द्रिय-क्षमता

व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों के संसार की विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के संबंध में ज्ञान प्राप्त करता है। मनुष्य में पांच ज्ञानेन्द्रियां सर्व विदित है और इन्हीं ज्ञानेन्द्रियों से हमें विभिन्न विषयों एवं पदार्थों का ज्ञान होता है। चक्षुओं से देखकर, नासिका से सूँघकर, कर्ण से सुनकर, जिह्वा से स्वाद लेकर और त्वचा से स्पर्श कर हम विभिन्न विषयों का या पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। संवेदना इन्हीं इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करने की प्रारम्भिक प्रक्रिया है। ये ज्ञानेन्द्रियां जब किसी उत्तेजना से प्रभावित होती है तो इनमें एक रासायनिक परिवर्तन होता है उसकी सूचना ज्ञानवाही स्नायुओं के द्वारा मस्तिष्क के किसी विशेष भाग में जाती है और वहां एक ज्ञानात्मक (Cognitive) मानसिक प्रक्रिया का आविर्भाव (Manifestation) होता है। अत: जब भी कोई ज्ञानेन्द्रियां किसी उत्तेजना के संपर्क में आती है तो इससे हमें संवेदना की अनुभूति होती है।

जैसा कि हमने ऊपर स्पष्ट किया है कि ज्ञानेन्द्रियों से हमें संवेदनाओं की प्राप्ति होती है अर्थात् शरीर को संवेदना या किसी वस्तु का ज्ञान करवाने के लिए ज्ञानेन्द्रियां महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं। हमें संवेदना तथा इसके स्वरूप के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। संवेदना व्यक्ति के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मस्तिष्क की एक सरल और सामान्य प्रक्रिया है जिसको प्रत्यक्षीकरण (Perception) से पृथक करना असम्भव है। डॉ. शर्मा ने अपनी पुस्तक "आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान में" संवेदना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसके बारे में वुडवर्थ (1965) के कथन को इस प्रकार प्रस्तुत किया है, "सामान्य तौर पर जब हम संवेदनाओं की वार्ता करते हैं तो हमारा विचार उद्दीपकों के प्रति होता है तथा सम्बन्धों के प्रति जानकारी करनी होती है। जो व्यक्ति के अनुभवों में विभिन्न उत्तेजकों के रूप में संग्राहकों (Receptors) तक पहुंचते है।"

हमारी ज्ञानेन्द्रियां संवेदना ग्रहण करने के प्रमुख द्वार है। जब कभी कोई उत्तेजना ज्ञानेन्द्रियों— नाक, कान, आँख, जीभ तथा त्वचा पर अपना प्रभाव डालती है तो यही ज्ञानेन्द्रियां संवेदना ग्रहण करने के संग्राहक (Receptor) बन जाती है। जिन अंगों के द्वारा हम उत्तेजना ग्रहण करते हैं उन्हें ग्राहक इन्द्रियां या संग्राहक कहते हैं। जब उद्दीपक से उत्पन्न संवेदना ग्राहक इन्द्रियों या संग्राहकों के संपर्क में आती है तो व्यक्ति के शरीर के स्नायुओं में एक प्रकार की स्पन्दन (Vibration) उत्पन्न होते हैं। यह स्पन्दन वास्तव में विद्युत-रासायनिक शक्ति (Electro Chemical Energy) है। यही शक्ति ज्ञानवाही स्नायु (Sensory Nerves) के द्वारा व्यक्ति की संवेदना को व्यक्ति के मस्तिष्क में पहुंचाती है। ग्राहक इन्द्रियों के संबंधित गुणों की दृष्टि से संवेदना पांच गुणों वाली होती है—

1. घ्राण संवेदना (Olfactory Sensation) इसकी संबंधित इन्द्रिय नासिका है।
2. श्रवण संवेदना (Auditory Sensation) इससे संबंधित इन्द्रिय कर्ण (कान) है।
3. दृष्टि (चाक्षुष) संवेदना (Visual Sensation) इसकी संबंधित इन्द्रिय नेत्र (चक्षु) है।
4. रसीय संवेदना (Gustatory Sensation) इससे संबंधित इन्द्रिय जिह्वा (जीभ) है।
5. त्वचीय संवेदना (Cutaneous Sensation) इससे संबंधित इन्द्रिय त्वचा है।

उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त संवेदना की तीव्रता (Intensity), अवधि (Duration), स्पष्टता (Vividnè), विस्तार (Extension) तथा स्थानीय चिह्न (Local Sign) आदि भी विशेष गुण होते हैं।

तीव्रता (Intensity) के गुण की दृष्टि से संवेदनाओं में भिन्नता पाई जाती है। तीव्रता उत्तेजक या उद्दीपक के गुण पर निर्भर करती है। उद्दीपक जितना तीव्र होगा उससे संबंधित संवेदना भी उतनी ही तीव्र होगी। जैसे विभिन्न गंधों की संवेदनाओं में भिन्नता उसकी तीव्रता के आधार पर होती है।

अवधि (Duration) भी संवेदना का एक प्रमुख गुण है। अवधि से तात्पर्य उस समय से है जिसमें संवेदना अस्तित्व में रहती है। संबंधित संग्राहक को जितने समय तक कोई उद्दीपन या संवेदना प्रभावित करती है संवेदना की अवधि कहलाती है। अवधि के आधार पर प्रत्यक्षीकरण भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है।

स्पष्टता (Vividness) कोई उत्तेजक या उद्दीपक जितना स्पष्ट होगा संवेदना उतनी ही स्पष्ट होगी। अर्थात् जब कोई उद्दीपक अधिक अवधि एवं अधिक तीव्रता के साथ ग्राहक इन्द्रियों को या संग्राहकों को प्रभावित करता है तो संवेदना में भी उतनी ही स्पष्टता के गुण आ जाते हैं।

विस्तार (Extension) किसी ज्ञानेन्द्रिय से संबंधित विभिन्न उद्दीपक उस ज्ञानेन्द्रिय को समान भाव से उत्तेजित नहीं करती। किसी उद्दीपक से ज्ञानेन्द्रिय का बहुत कम भाग उत्तेजित होता है तो किसी उद्दीपक से अधिक भाग उत्तेजित होता है। जैसे किसी वस्तु से शरीर के किसी भाग के दो सेन्टीमीटर क्षेत्र को स्पर्श किया जाए और पुन: उसी भाग के 10 सेन्टीमीटर के क्षेत्र को स्पर्श किया जाए तो इन दोनों त्वचीय (Cutaneous) संवेदनाओं के विस्तार का अंतर होगा।

स्थानीय चिह्न (Local Sign) प्रत्येक संवेदना का कुछ ऐसा स्थानीय चिह्न होता है जिसके आलम्बन से शरीर के किसी भाग में स्थान निरूपण (Localization) होता है। उदाहरण स्वरूप व्यक्ति की आँखें बन्द करके किसी स्थान से ध्वनी करने पर व्यक्ति यह बता देता है कि ध्वनि किस दिशा या स्थान से हो रही है। इस तरह उस व्यक्ति को स्रोत संवेदना ही नहीं होती अपितु उसके स्थान का भी ज्ञान उसे हो जाता है। इसी तरह स्थानीय ज्ञान गंध संवेदना में भी हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रत्येक संवेदना में विशिष्ट ग्राहक इन्द्रिय और विशिष्ट उत्तेजना की आवश्यकता होती है। हमारी इन्द्रियां इनसे संबंधित उत्तेजनाओं को ही ग्रहण करती है। जैसे—

1. घ्राण संवेदना के लिए नाक ग्राह्य इन्द्रिय और गंध उद्दीपक है।
2. श्रवण संवेदना के लिए ग्राह्य इन्द्रिय कान और उत्तेजना ध्वनी है।
3. दृष्टि (चाक्षुष) संवेदना के अन्तर्गत ग्राह्य इन्द्रियां नेत्र है और उत्तेजना प्रकाश है। अर्थात् नेत्र और प्रकाश के आलम्बन से ही चाक्षुष संवेदना होती है। इसमें दूसरी ग्राह्य इन्द्रिय का आलम्बन नहीं लिया जा सकता जैसे नाक और प्रकाश के सहारे चाक्षुष संवेदना (Visual Sensation) नहीं हो सकती।
4. रसीय संवेदना के लिए ग्राह्य इन्द्रिय जिह्वा तथा स्वाद गुण उद्दीपक है।
5. त्वचीय संवेदना के लिए त्वचा ग्राह्य इन्द्रिय है और स्पर्श उद्दीपक है।

अब इन उक्त ज्ञानेन्द्रियों एवं उनके साथ जुड़ी हुई संवेदनाओं का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

7.3 घ्राण संवेदन (Olfactory Sensation)

घ्राण संवेदना के लिए ग्राह्य इन्द्रिय नासिका है और उद्दीपक गंध। प्राय: सभी प्राणियों में घ्राण क्षमता होती है। निम्न श्रेणी के प्राणियों में घ्राण संवेदना जितनी महत्त्वपूर्ण होती है उतनी मनुष्यों में नहीं होती है। निम्न श्रेणी के प्राणियों में भी कुत्तों में घ्राण-क्षमता सर्वाधिक होती है। घ्राण संवेदना प्राप्त करने के लिए नासिका में घ्राण संबंधी संग्राहक (Receptors) होते हैं इनकी संरचना लंबे धागों के समान होती है। घ्राण प्रक्रिया में पदार्थों के सूक्ष्म कण वायु के माध्यम से घ्राण संग्राहकों को उत्तेजित करते हैं और यही उत्तेजना स्नायु तन्तुओं के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुंचती है और हमें संबंधित गंध का ज्ञान हो जाता है। घ्राण प्रक्रिया में घ्राण संवेदना के लिए पदार्थों के सूक्ष्म कणों का घ्राण संग्राहकों तक पहुंचना आवश्यक है। जब हम एक ही गंध को लम्बी अवधि तक सूंघते रहें तब उस गंध के प्रति हम समायोजित हो जाते हैं और उस गन्ध का भान हमें फिर नहीं हो पाता। एक ही प्रकार की गंध अधिक देर तक घ्राण संबंधी स्नायु कोशिकाओं को स्पन्दित करती है तो इन कोशिकाओं की संवेदनशीलता धीरे-धीरे कम होने लगती है और इसी से घ्राण कोशाणुओं में थकावट आ जाती है और हम उस गंध के प्रति समायोजित हो जाते हैं। हमारे शरीर की सुगन्ध या दुर्गन्ध का पता हमें नहीं चल पाता जबकि दूसरों को चल जाता है इसका यही कारण है कि हम अपने स्वयं के शरीर की गंध के प्रति समायोजित हो जाते हैं। इसी तरह से चमड़े के कारखाने में कार्यरत या अगरबत्ती के कारखाने में कार्यरत श्रमिक वहां की गंध से समायोजित हो जाते हैं और उनको चमड़े की गंध या अगरबत्ती की गंध का भान नहीं हो पाता।

वैज्ञानिकों ने छ: प्रकार की गंधों का पता लगाया है। ये निम्न प्रकार से हैं—

1. पुष्प गंध (Flower Odour)
2. फल गंध (Fruit Odour)
3. मसालेदार गंध (Spiey Odour)
4. दुषित गंध (Foul Odour)
5. राल गंध (Resinious Odour) तथा
6. ज्वलन गंध (Burning/Inflanmatory Odour)

पुष्प की गंध में पुष्प, मेंहदी तथा कुछ तेलों की गंध, फल गंध में फलों तथा कुछ तेलों की गंध, मसालेदार गंध में सभी प्रकार के मसालों की गंध, दूषित गंध में अफीम, कीट-पतंगे, खटमल आदि की गंध, राल गंध में राल तथा तारपीन आदि की गंध तथा ज्वलन गंध में धुँआ, कागज का धुँआ, तम्बाकु, कॉफी आदि की गंध सम्मिलित है।

7.3.1 गंध की संवेदनशीलता

सभी व्यक्तियों में गंध के प्रति संवेदनशीलता समान नहीं होती। कुछ व्यक्तियों को गंध की संवेदना बहुत कम होती है इस कारण उन्हें गंध का आभास कम होता है। कुछ व्यक्तियों में गंध के प्रति संवेदनशीलता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का अभाव होता है। कई व्यक्तियों को प्रत्येक गंध स्पष्ट रूप से आ जाती है इसका कारण है कि गंध के प्रति उनकी संवेदनशीलता अधिक है। जिन व्यक्तियों में गंध के प्रति संवेदनशीलता न्यून होती है या संवेदनशीलता का अभाव पाया जाता है, उन व्यक्तियों में घ्राणहीनता (Anosnaia) का दोष होता है।

7.4 श्रवण संवेदना (Auditory Sensation)

व्यक्ति को बाह्य जगत् से सम्पर्क स्थापित करने में श्रवण संवेदना बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। श्रवण संवेदना की संबंधित इन्द्रिय कान (कर्ण) है। श्रवण संवेदना का संबंध चारों दिशाओं से होता है। कर्णेन्द्रिय प्रमुख रूप से तीन भागों में विभक्त होती है—1. बाह्य कर्ण (Outer Ear), 2. मध्य कर्ण (Middle Ear) तथा आन्तरिक कर्ण (Inner Ear)। ध्वनी बाह्य कर्ण से होती हुई आन्तरिक कर्ण में पहुंच कर श्रवण स्नायु को उत्तेजित करती है और श्रवण स्नायु उसको मस्तिष्क में उसके सम्बन्धित केन्द्र तक पहुंचाती है।

कई लोगों की श्रवण क्षमता बहुत तेज होती है, कई लोगों की न्यून तथा कई लोगों की अति न्यून होती है। अति न्यून श्रवण क्षमता वाले लोग बहरे (कर्मी) कहलाते हैं। सुनने की प्रक्रिया में मध य कर्ण और आन्तरिक कर्ण का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। बाह्य कर्ण के दो प्रमुख भाग होते हैं, ऊपरी भाग को 'पिन्ना' कहते हैं और दूसरा भाग श्रवण नलिका (Auditony Meatus) कहलाती है। श्रवण नलिका का अग्रभाग कर्ण ढोल या कर्ण पटल (Timpanic Membrane or Ear Drum) भी कहलाता है। कर्ण ढोल से मध्य कर्ण प्रारम्भ होता है और उसके आगे का भाग आन्तरिक कर्ण के नाम से जाना जाता है। ध्वनी तरंगे बाह्य कर्ण नलिका में से प्रवेश कर कर्ण ढोल से टकराती है। कर्ण ढोल या कर्ण पटल से ध्वनी तरंगे टकराने पर कर्ण ढोल में एक गति उत्पन्न होती है जो आन्तरिक कर्ण में पहुंचकर श्रवण स्नायु को उत्तेजित करती हुई मस्तिष्क तक पहुंचती है। इस तरह हम बाहरी ध्वनी को सुन पाते हैं।

7.5 दृष्टि (चाक्षुष) संवेदना (Visual Sensation)

दृष्टि या चाक्षुस संवेदना की ग्राह्य इन्द्रियां आँखें है तथा प्रकाश की तरंगे उद्दीपक है। जब हम किसी वस्तु या पदार्थ को देखते हैं तो इसका तात्पर्य यह है कि उस वस्तु या पदार्थ से एक तरह की प्रकाश तरंगे निकलकर हमारी आँखों तक पहुँचती है और आँखे इन प्रकाश तरंगों को ग्रहण करती है। इसके पश्चात् इस प्रक्रिया में कुछ रासायनिक और दैहिक क्रियाएं होती है जिसके फलस्वरूप हमें दृष्टि (चाक्षुष) संवेदना की अनुभूति होती है। चाक्षुष संवेदना में आँखों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। दृष्टि संवेदना का संबंध एक ही दिशा से होता है। कई लोगों की दृष्टि क्षमता बहुत अच्छी होती है जबकि कई लोगों की दृष्टि क्षमता अत्यन्त दुर्बल (कमजोर) होती है। कमजोर दृष्टि क्षमता को हम दो भागों में वर्गीकृत करते हैं—

1. निकट दृष्टि दोष (Myopia) तथा
2. दूर दृष्टि दोष (Hyper Metropia)।

7.5.1 निकट दृष्टि दोष

इस प्रकार के दृष्टिदोष से पीड़ित व्यक्ति को दूर की वस्तुएं तथा दृश्य अस्पष्ट तथा धुंधले दिखाई पड़ते है।

7.5.2 दूर दृष्टि दोष

इस प्रकार के दृष्टि दोष से पीड़ित व्यक्ति को निकट की वस्तुएं तथा दृश्य अस्पष्ट तथा धुंध ाले दिखलाई पड़ते है। आँखों से संबंधित कुछ अन्य रोग होते है जैसे रतौन्धी, रंगान्धता आदि।

7.6 रसीय संवेदना (Gustatory Sensation)

रसीय संवेदना की संबंधित इन्द्रिय जिह्वा है। विभिन्न प्रकार के स्वाद इसके उद्दीपक का कार्य करते हैं। घ्राण संवेदना और रसीय संवेदना में घनिष्ठ संबंध है। कई विद्वानों का मत है कि इन दोनों संवेदनाओं को उत्पन्न करने वाली इन्द्रियों का विकास एक ही प्रकार के रासायनिक द्रव्य से हुआ। जब व्यक्ति की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नासिका को बन्द करके कई प्रकार की वस्तुएं क्रमश: जिह्वा पर रखने को दी जाए तो उनके स्वाद को पहचानने में वह असमर्थ होता है जैसे नासिका बन्द करके प्याज तथा सेब के छोटे टुकड़ों को क्रमश: चखकर व्यक्त करना कठिन है परन्तु नासिका बन्द न करके उनको चखने पर हमें भिन्नता का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। व्यक्ति जिह्वा के द्वारा विभिन्न प्रकार के स्वादों का वर्णन करता है। प्राय: हम यही मानते हैं कि सम्पूर्ण जिह्वा द्वारा ही किसी पदार्थ के स्वाद का ज्ञान होता है परन्तु यह बात ठीक नहीं है। जिह्वा सभी प्रकार के स्वाद के लिए समान रूप से संवदेनशील नहीं होती। जीभ का अग्र भाग मीठे तथा पीछे का भाग कड़वे के लिए अधिक संवेदनशील होता हैं। जिह्वा के सामने तथा बगल का भाग क्रमश: नमकीन और खट्टे स्वाद के लिए संवेदनशील होता हैं।

स्वाद के चार गुण माने जाते हैं जिनमें—

1. मीठा (Sweet)
2. नमकीन (Saline)
3. खट्टा (Sour) तथा
4. कडवा (Bitter)।

जिह्वा के जो संग्राहक स्वाद ग्रहण करते है उन्हें स्वाद कलिका (Test Bud) कहते हैं। एक वस्तु के स्वाद को निरन्तर ग्रहण करते रहने से उसके स्वाद के अनुभव में कमी आने लगती है जिसको हम स्वाद समायोजन कहते हैं। एक वस्तु के स्वाद के प्रति समायोजन अन्य वस्तुओं के स्वादों की संवेदनशीलता बढ़ाने में सहायक होता है। जैसे मीठी वस्तु के समायोजन से अन्य स्वाद जैसे खट्टाए नमकीन या कड़वे की तीव्रता बढ़ जाती है।

7.7 त्वचीय संवेदना (Cutaneous Sensation)

त्वचीय संवेदना सम्पूर्ण त्वचा से संबंधित है। त्वचीय संवेदनाओं की अनुभूति का माध्यम सम्पूर्ण त्वचा है। त्वचीय संवेदना को मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया गया है—

1. स्पर्श जनित संवेदना (Touch Sensation)
2. पीड़ा जनित संवेदना (Pain Sensation)
3. ताप जनित संवेदना (Thermal Sensation)

7.7.1 स्पर्श जनित संवेदना (Touch Sensation)

मानव शरीर में पाई जाने वाली त्वचा भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। कहीं पर त्वचा की परत मोटी होती है और कहीं पर पतली। हमारी त्वचा में पाए जाने वाली कोशाणुओं की उत्तेजना के फलस्वरूप हमें स्पर्श की अनुभूति प्राप्त होती है। शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों की त्वचा की ग्रहण शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण स्वरूप हम देखें तो हमें ज्ञात होगा कि हमारी अंगुलियों के अग्रभाग तथा जिह्वा की त्वचा में संवेदनशीलता का गुण सर्वाधिक पाया जाता है। इसका कारण वहां पर पाये जाने वाले कोशाणुओं स्पर्श संग्राहकों की अधिकता है जो उन स्थानों की त्वचा को अन्य स्थानों की त्वचा के मुकाबले अधिक संवेदनशीलता प्रदान करते हैं जबकि हमारी पीठ तथा पैर की ऐडी की त्वचा में सबसे कम कोशाणु (स्पर्श संग्राहक) पाये जाते हैं।

हमारी त्वचा की संरचना तीन परतों से निर्मित होती है—

1. बाह्य त्वचा (Epidermis)
2. आन्तरिक त्वचा (Corium or truedermis) तथा
3. उपत्वचा (Sub-Cutaneous Tissue)।

आन्तरिक त्वचा सर्वाधिक संवेदनशील होती है। त्वचा को जैसे ही कोई उद्दीपन (Stimulus) प्राप्त होता है त्वचा में उपस्थित स्पर्श बिन्दु (कोशाणु) सक्रिय हो उठते है और हमें स्पर्श का अनुभव होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.7.2 पीड़ा जनित संवेदना (Pain Sensation)

हमारी त्वचा में पीड़ा का अनुभव कराने वाले पीड़ा संग्राहक बिन्दुओं के अस्तित्व का प्रश्न विवादास्पद है। किन्तु वर्तमान में इन बिन्दुओं के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारा गया है। पीड़ा संवेदना का संबंध त्वचा में पाए जाने वाले विशिष्ट प्रकार के 'स्नायु छोर' (Nerve ending) से है। ऐसी मान्यता है कि आँख की कनीनिका में इस प्रकार के स्नायु छोरों की अधिकता होती है। 'स्नायु छोरो' को प्राप्त होने वाली उत्तेजनाओं के फलस्वरूप हमें पीड़ा संवेदना की अनुभूति होती है। ये उत्तेजक विभिन्न प्रकार के होते है। जैसे यान्त्रिक, रासायनिक, तापीय तथा विद्युतीय।

7.7.3 ताप जनित संवदेना (Thermal or Temperature Sensation)

ताप जनित संवेदना के संग्राहकों के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि शील एवं उष्ण ताप की संवेदनाओं की प्राप्ति हेतु भिन्न-भिन्न संग्राहक नहीं होते है जबकि कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि इन दोनों प्रकार की संवेदना की अनुभूति के लिए भिन्न-भिन्न संग्राहक होते हैं किन्तु फिर भी दोनों प्रकार की संवेदनाओं का भिन्न-भिन्न अस्तित्व है—

1. **शीत संवेदना**—हमाारी त्वचा में पाये जाने वाले शीत बिन्दुओं की संख्या में असमानता पाई जाती है। इन्हीं बिन्दुओं के द्वारा हमें शीत का अनुभव होता है।
2. **उष्ण संवेदना**—शीत बिन्दुओं की भांति उष्ण बिन्दुओं की संख्या के बारे में भी मतैक्य का अभाव पाया जाता है। शरीर के किसी विशेष भाग पर इन बिन्दुओं का आधिक्य होता है तथा कहीं-कहीं पर इनकी न्यूनता होती है। एक अनुमान के अनुसार सम्पूर्ण शरीर में पाए जाने वाले उष्ण बिन्दुओं की संख्या लगभग 30,000 है।तुलनात्मक रूप से शीत बिन्दुओं की संख्या उष्ण बिन्दुओं से अधिक होती है।

7.8 विकसित ज्ञानेन्द्रिय क्षमताओं से लाभ

जिन व्यक्तियों की ज्ञानेन्द्रियां अच्छी प्रकार विकसित होती है वे क्षमताओं के धनी होते है। यदि इन विकसित इन्द्रियों का उपयोग भी सही ढंग से करें तो ये व्यक्ति के विकास में चार चाँद लगा देती हैं। ज्ञानेन्द्रिय क्षमताओं का विकास किया जा सकता है। यहां हम ज्ञानेन्द्रिय क्षमताओं सम्बन्धित कुछ कार्यों की विवेचना करें गे और आगे इनके विकास के लिए जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान की प्रविधियों का वर्णन करेंगे।

7.8.1. घ्राण इन्द्रिय

घ्राण इन्द्रिय का सही विकास होने पर व्यक्ति गंधों में भेद शीघ्रता से कर लेता है। इस प्रकार क्षमताएं सेना में कार्यरत लोगों के बहुत उपयोगी है। इसी तरह रासायनिक कारखानों, गैस के गोदामों, गुप्तचर सेवा आदि में कार्य करने वाले व्यक्तियों में भी यह क्षमता होनी बहुत आवश्यक है। वैसे तो जीवन के हर क्षेत्र में इस इन्द्रिय क्षमता की बहुत उपयोगिता है।

7.8.2. श्रवण इन्द्रिय

इस इन्द्रिय का मुख्य कार्य श्रवण करना, ध्वनियों में विभेद करना, ध्वनियों को पहचानना है। इस इन्द्रिय की विकसित क्षमता वाला व्यक्ति हल्की से हल्की ध्वनी को पकड़ लेता है, ध्वनी की दिशा को भी तुरन्त पहचान लेता है। सेना कार्य, कारखानों में कार्य, रेलगाड़ी ड्राइवर का कार्य, बस ड्राइवर का कार्य, संगीत कार्य आदि कार्य क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए यह क्षमता पर्याप्त रूप से विकसित होनी आवश्यक है। पुलिस सेवा एवं गुप्तचर सेवाओं में भी इस इन्द्रिय के क्षमता का विकास बहुत आवश्यक हैं।

7.8.3. चाक्षुषी इन्द्रिय

चाक्षुषी इन्द्रिय हमारी आँखें हैं। यह सर्व विदित है कि किसी भी कार्य को सही ढंग से करने के लिए आँखों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। कुछ विशेष सेवाओं (नौकरियों) के लिए तो आँखों की क्षमता का विकसित होना अत्यन्त आवश्यक है। रेल सेवा, हवाई सेवा, जल, थल एवं हवाई सेना सेवा

(Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पुलिस एवं गुप्त चर के लिए तो चाक्षुषी इन्द्रिय क्षमता की विशेष योग्यता होनी चाहिए। वर्ण अन्धता एवं रतौन्धी आदि इस इन्द्रिय की अयोग्यता है।

7.8.4. रसीय इन्द्रिय

जिह्वा हमारी रसीय इन्द्रिय है खाद्य पदार्थों के रसों में भेद करने के लिए इस इन्द्रिय की क्षमता का विकास होना आवश्यक है। इस इन्द्रिय क्षमता का विकास हर व्यक्ति में होना अपेक्षित है। खाद्य पदार्थों के निर्माण के कारखानों, भोजनालयों एवं होटलों में कार्य करने वाले कर्मचारियों की यह क्षमता विशेष रूप से विकसित होना अपेक्षित है।

7.8.5. त्वचीय इन्द्रिय

हमारे शरीर की त्वचा त्वचीय इन्द्रिय का कर्य करती हैं। बाहरी वातावरण, वायु मण्डल, जलवायु स्पर्श के सही ज्ञान के लिए इस इन्द्रिय का विकसित होना आवश्यक है। इसके अविकसित अवस्था में व्यक्ति को संपर्क ज्ञान, स्पर्श ज्ञान, शीत-उष्ण का ज्ञान नहीं हो पाता।

7.9 इन्द्रिय क्षमताओं का विकास एवं प्रेक्षाध्यान

जैसा कि हम जानते हैं कि कुछ लोगों में सुनने की क्षमता बहुत अच्छी होती है, कुछ लोगों में देखने की, कुछ लोगों में सूँघने की तो कुछ लोगों में स्वाद की और कुछ लोगों में त्वचीय क्षमता उच्च कोटी की होती है। उपरोक्त क्षमताओं से सम्बन्धित ज्ञानेन्द्रियों की योग्यता (संवेदनशीलता) बढ़ जाती है तब इस प्रकार की क्षमताओं का विकास होता है। कुछ लोगों में ये क्षमताएं जन्मकाल से ही प्राकृतिक रूप से विरासत में प्राप्त हो जाती है तो कई लोग कुछ विधियों का प्रयोग कर इस प्रकार की क्षमताओं का विकास कर लेते हैं। कई लोग इनका विकास इतना अधिक कर लेते है कि ये क्षमताएं पराशक्ति (Pera-Power) बन जाती है। इन्हीं पराशक्ति क्षमताओं से ये लोग मीलों दूर की बातें सुन लेते है, मीलों दूर से गंध को प्राप्त कर लेते है आदि-आदि।

योगशास्त्र में उक्त पांचों इन्द्रियों का सम्बन्ध पांच तत्त्वों के साथ माना है। घ्राणेन्द्रिय का सम्बंध I पृथ्वी से, जिह्वा का जल से, चक्षु का अग्नि से, स्पर्शन का वायु से श्रवणेन्द्रिय का स्रोत आकाश से माना गया है। योगशास्त्र में इन इन्द्रियों की क्षमताओं का विकास सही दिशा में करने और इन इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने की कई विधियां बतलाई गई है। इन इन्द्रियों का सही दिशा में विकास और नियंत्रण व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करता है। इससे ही व्यक्ति अपने जीवन का सही ढंग से प्रबन्धन कर उच्चता के शिखर पर पहुंच सकता है। यहां तक की वह मोक्ष की प्राप्ति भी कर सकता है। जबकि इन्हीं इन्द्रियों पर व्यक्ति का नियंत्रण न रहे और इनका विकास सही दिशा में नहीं हो तो ये व्यक्ति का पतन भी कर सकती है।

जीवन विज्ञान के अनुसार व्यक्ति के शरीर में तेरह (13) चैतन्य केन्द्र माने गये है। ये चैतन्य केन्द्र भिन्न-भिन्न शक्ति के भंडार (Power House) है। योगशास्त्र में जिस तरह चक्रों को जागृत करने की विशेष विधियां है उसी तरह जीवन-विज्ञान में भी चैतन्य केन्द्रों को जागृत करने की कुछ विधियां है। जिस तरह से सूर्य के प्रकाश को किसी ताल (Lens) की सहायता से एक बिन्दू पर एकत्रित कर अग्नि या ऊर्जा को प्रज्वलित किया जा सकता है ठीक उसी भांति चित्त को इन केन्द्रों पर केन्द्रित कर इन शक्तिभंडारों (Power Houses) पर पड़े आवरण को हटाकर, इन केन्द्रों का अनावरण कर शक्तियां प्राप्त की सकती हैं।

इन्द्रियों का विकास करने या इनको उन्नत बनाने के लिए इन इन्द्रियों से संबंधित चैतन्य केन्द्रों को जागृत किया जा सकता है और इनकी क्षमताओं में अभिवृद्धि की जा सकती है। इन्द्रियों से संबंधित चैतन्य केन्द्रों एवं उनसे विकसित होने वाली क्षमताओं के बारे में विस्तृत व्याख्या आगे की जा रही है। इसके अतिरिक्त इन इन्द्रियों के विकास के लिए उपयोग में आने वाली कुछ यौगिक क्रियाओं के बारे में भी आगे विवरण दिया जा रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बोध प्रश्न 1:

1. इन्द्रिय क्षमता से आपका क्या तात्पर्य है?
2. स्वाद के चार गुण कौन-कौन से है?
3. विकसित ज्ञानेन्द्रिय क्षमताओं के क्या-क्या लाभ हैं?

7.9.1 इन्द्रियां और सम्बन्धित चैतन्य केन्द्र (Senses or Related Psychic Centres)

जैसा कि हमने ऊपर स्पष्ट किया है कि व्यक्ति के शरीर में तेरह (13) मुख्य चैतन्य केन्द्र है और प्रत्येक चैतन्य केन्द्र में एक विशेष प्रकार की शक्ति का भंडारण है। इनमें कुछ चैतन्य केन्द्र हमारे ज्ञानेन्द्रियों से संबंधित है। जिस इन्द्रिय में हम विकास करना चाहते है उससे संबंधित चैतन्य केन्द को हम सक्रिय कर सकते हैं। इनका वर्णन हम आगे कर रहें हैं।

7.9.1.1. घ्राणेन्द्रिय : प्राण केन्द्र

घ्राणेन्द्रिय से संबंधित चैतन्य केन्द्र प्राण केन्द्र है। इसकी स्थिति नासिका के अग्र-भाग पर है। इस केन्द के सक्रिय हो जाने से व्यक्ति की घ्राणक्षमता बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति में पूर्वाभास, दूराभास, प्रकाश दर्शन एवं बहुत दूर से गंध का अनुभव कर लेने जैसी क्षमताओं का विकास इस केन्द्र के सक्रिय हो जाने से होता है।

इस केन्द्र को जागृत करने के लिए नासिका पर ध्यान किया जाता है। कायोत्सर्ग करने के उपरान्त कुछ समय श्वासप्रेक्षा का अभ्यास किया जाना चाहिये और जब शरीर शिथिल और स्थिर हो जाये तब अपने चित्त को प्राण केन्द्र पर केन्द्रित करना चाहिये। नियमित रूप से इस प्रकार का अभ्यास करने से व्यक्ति का प्राणकेन्द्र सक्रिय हो जाता है और उसकी घ्राण क्षमता का विकास होने लगता है।

इसके अतिरिक्त यौगिक क्रियाओं में जल-नेति और सूत्र-नेति करने से नासिका की सफाई हो जाती है और वे दूषित-पदार्थ जो घ्राण क्षमता के विकास में बाधक होते हैं, हट जाते हैं। जल एवं सूत्र नेति के अभ्यास द्वारा नासिका के संवेदनशील तंतु, जिनकी क्रियाशीलता में कमी आ जाती है, पुनः क्रियाशील हो जाते है एवं उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है। इस क्रिया से नासिका में उपस्थित स्नायु तंतु भी सक्रिय एवं संवेदनशील हो जाते हैं और व्यक्ति कई गंधों में विभेद करने एवं सूक्ष्म से सूक्ष्म गंध को प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

7.9.1.2 श्रवणेन्द्रिय : अप्रमाद केन्द्र

योगशास्त्र के अनुसार श्रवणेन्दिय का संबंध कर्णेन्द्रियों से होता है। शब्द बोध, ध्वनी का बोध ा एवं ध्वनी का विश्लेषण हम इसी केन्द्र से करते हैं। इस इन्द्रिय क्षमता का अच्छा विकास हो जाने पर व्यक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्मतर ध्वनी का भी विश्लेषण सहज रूप से कर सकता है तथा प्रमादी स्वभाव से मुक्त रहता है। जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के सिद्धान्त के अनुसार इस इन्द्रिय के लिए जो चैतन्य केन्द्र कार्य करता है वह अप्रमाद केन्द्र कहलाता है। हमारे कान के पास कनपट्टी का हिस्सा (कान के पीछे है) अप्रमाद केन्द्र कहलाता है। इसकी प्रेक्षा करने से व्यक्ति में जागरूकता बढ़ती है और प्रमाद कम होता हे। इसकी प्रेक्षा करने से व्यक्ति स्वतः ही व्यसनमुक्त हो जाता है। एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति में भी इस केन्द्र का गलत व्यवहार को सुधारने के लिए उपयोग किया जाता है।

इस केन्द्र को जागृत करने या सक्रिय करने के लिए निश्चित समय तक कायोत्सर्ग करके दीर्घश्वास प्रेक्षा का अभ्यास किया जाना चाहिए तत्पश्चात् अप्रमाद केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित करके हरे रंग का ध्यान किया जाना चाहिए। अप्रमाद केन्द्र की प्रेक्षा करने से यहां अवस्थित विशेष स्नायु तंतु सक्रिय होकर व्यक्ति की स्मृति, जागरूकता एवं श्रवण क्षमता को बढ़ा देती है तथा व्यसनी व्यक्ति को व्यसनमुक्त बना देती है। श्रवण इन्द्रियों की क्षमता बढ़ाने के लिए कुछ यौगिक क्रियाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कान की यौगिक क्रिया की विधि

1. कानों में तर्जनी अंगुली डालकर कुछ समय (लगभग) मिनट) तक धीरे-धीरे घुमाएं।
2. कानों के बाहरी भाग की चारों तरफ हाथ के द्वारा मालिश करें तथा कान को उपर-नीचे दाएं-बाएं खींचें।
3. हथेलियों से दोनों कानों को दबाकर अन्तर्ध्वनी को सुनने का प्रयास करे।

कई योगीजन इन क्रियाओं से एवं योनीमुद्रा से कानों में ब्रह्मनाद सुनने का भी प्रयत्न करते हैं। इस क्रिया से कान के अनेक रोग शान्त हो जाते है, श्रवण शक्ति का विकास होता है, आलस्य दूर होता है तथा विवेक क्षमता में अभिवृद्धि होती है।

7.9.1.3 दर्शनेन्द्रिय : चाक्षुष केन्द्र

जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान सिद्धान्त के अनुसार चाक्षुष केन्द्र का स्थान नेत्र गोलकों में माना जाता है। नेत्रों के द्वारा हम शरीर की अधिकांश ऊर्जा का व्यय करते है। नेत्रों से ही हमें भौतिक जगत् का बोध होता है। चाक्षुष इन्द्रिय की क्षमता में अभिवृद्धि के फलस्वरूप व्यक्ति की न केवल बाह्य दृष्टि क्षमता बढ़ती है अपितु अन्तर्दृष्टि का भी विकास होता है। चाक्षुष इन्द्रिय क्षमता का विकास करने के लिए चाक्षुष केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर ध्यान किया जाता है। जैसा कि ऊपर लिखा गया है इस चैतन्य केन्द्र पर ध्यान करने से पूर्व कायोत्सर्ग एवं श्वास प्रेक्षा का अभ्यास किया जाता है। इससे चाक्षुष केन्द्र के तंतु सक्रिय होकर व्यक्ति की दृष्टि क्षमता में अभ्विृद्धि करते है।

नेत्रों की कार्यक्षमता में अभिवृद्धि के लिए कुछ यौगिक क्रियाएं सहायक होती है। ये निम्न प्रकार से है—

1. आँख के गोलकों को क्रमशः ऊपर, नीचे, दाएं, बाएं, तिरछे ले जाएं।
2. आँखों के गोलकों को घड़ी की सुइयों की दिशा में घुमाएं तत्पश्चात् विपरीत दिशा में घुमाएं।
3. आँखों को तेजी के साथ टिमटिमाएं।
4. अपनी दोनों हथेलियों को परस्पर घर्षण कर गर्म करे फिर दोनों को जोड़कर गुहा बनाएं तथा आँखें को हथेलियों से ढ़ककर अंधेरे में आँखें को टिमटिमाएं। तत्पश्चात् धीरे-धीरे अंगुलियों के मध्य से प्रकाश को देखते हुए आँखें को खोले।

7.9.1.4 रसेन्द्रिय : ब्रह्म केन्द्र

जिह्वा हमारी रसेन्द्रिय है और यही हमें रसों के स्वादों का ज्ञान देती है। जिह्वा द्वारा ही हम अपने शब्दों को व्यक्त करते हैं। इस इन्द्रिय से रसों का स्वाद लेने के साथ साथ यह आवश्यक है इस पर समुचित नियंत्रण भी रखा जाय। इस इन्द्रिय से हम हमारा स्वास्थ्य ठीक रख सकते हैं और बिगाड़ भी सकते हैं। इस पर यदि नियन्त्रण न रहे तो यह व्यक्ति को चट्टु (स्वादु) बना देती है जिससे स्वास्थ्य पर प्रतिकुल असर पड़ता है। अनियन्त्रित जिह्वा व्यक्ति को वाचाल बना देती है और व्यक्ति का अपनी वाणी पर नियन्त्रण नहीं रहता। यही जिह्वा मंत्रों का उच्चारण कर व्यक्ति को ब्रह्म स्वरूप बना देती है।

योग शास्त्र में इस इन्द्रिय का बड़ा महत्त्व दिया गया है इसका सम्बन्ध जननेन्द्रियों से भी जोड़ा गया है। यदि इस पर नियन्त्रण न रखा जाय तो यह रस के स्वाद में असक्त हो जाती है और व्यक्ति में कामुकता बढ़ा देती है। योगशास्त्र में खेचरी मुद्रा (आकाश गमन) के लिए इस इन्द्रिय का बहुत महत्त्व माना गया है। लम्बे समय तक खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने से व्यक्ति वाकसिद्धि को भी प्राप्त होता हैं।

रसनेन्द्रिय की सरल क्षमता बढ़ाने के लिए जीवन विज्ञान प्रेक्षाध्यान के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म केन्द्र पर प्रेक्षा (ध्यान) करनी चाहिए। ब्रह्म केन्द्र जिह्वा के अग्र भाग पर होता है। इसकी नियमित प्रेक्षा करने से इसके तंतु सक्रिय हो जाते हैं। जीवन विज्ञान प्रेक्षाध्यान सिद्धान्त के अनुसार रस का संयम एवं जिह्वाग्र की प्रेक्षा ब्रह्मचर्य के साधन है। जिह्वा के अग्रभाग पर प्रेक्षा करने पर उसमें विशेष प्रकार के स्पन्दनों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का अनुभव होता है। जिह्वा की प्रेक्षा करने से पूर्व कायोत्सर्ग एवं श्वास प्रेक्षा करनी चाहिए। फिर जिह्वा को अधर में रख उसकी प्रेक्षा की जानी चाहिए और उसमें उत्पन्न होने वाले प्रकम्पनों का अनुभव करना चाहिए। जिह्वा को स्थिर रखना, इसे शिथिल करना, इसकी प्रेक्षा करना एवं मौन रखना ये सभी क्रियाएं ब्रह्मचर्य में सहायक है।

7.9.1.5 त्वचीय इन्द्रिय : कायोसर्ग एवं शरीर प्रेक्षा

व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर की त्वचा स्पर्श इन्द्रिय या त्वचीय इन्द्रिय के रूप में है। शरीर पर कहीं भी कोई स्पर्श या उत्तेजना मिलती है तो यह इन्द्रिय तुरन्त उस उत्तेजना को मस्तिष्क तक पहुंचाती है। यदि किसी भी भाग की स्पर्श इन्द्रिय अपना कार्य सुचारू रूप से नहीं करती है तो स्पर्श ज्ञान या उस भाग पर होने वाली उत्तेजना का ज्ञान मस्तिष्क को नहीं हो सकता। बाह्य वातावरण, जलवायु, उष्णता एवं शीतलता का ज्ञान भी इसी इन्द्रिय द्वारा होता है।

इस इन्द्रिय की क्षमता बढ़ाने के लिए कायोत्सर्ग एवं शरीर प्रेक्षा बहुत ही उपयोगी है। जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान सिद्धान्त के अनुसार कायोत्सर्ग एवं शरीर प्रेक्षा करने से त्वचा की प्रतिरोध क्षमता (ळत) एवं संवेदनशीलता बढ़ती है। फलस्वरूप शरीर को क्षति पहुंचाने वाली उत्तेजनाओं का त्वचा प्रतिरोध करती है तथा अपनी संवेदना बनाए रखती है।

यौगिक क्रियाओं में शरीर की मालिश करने से त्वचा का रक्त संचार बढ़ता है और इसकी क्षमता भी बढ़ती है।

7.10 प्रश्नावली

1. निबन्धात्मक प्रश्न

1. घ्राणेन्द्रिय क्या है? इसके कार्यों को समझाते हुए इसकी क्षमता का विकास किस तरह सम्भव है स्पष्ट करें।
2. श्रवण संवेदना को समझाइये इस क्षमता का विकास प्रेक्षाध्यान द्वारा किस प्रकार सम्भव है स्पष्ट करें?
3. रसीय संवेदना क्या है? इसके विकास में जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान किस तरह सहयोगी है विस्तार से लिखें।
4. त्वचीय संवेदना से आप क्या समझते है इसकी क्षमता का विकास किस तरह सम्भव है?
5. विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित चैतन्य केन्द्रों की विस्तृत व्याख्या कीजिये?

2. लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. चाक्षुषी चैतन्य केन्द्र की संक्षेप में व्याख्या करे?
2. अप्रमाद केन्द्र क्या है इस पर ध्यान करने से क्या लाभ है?
3. प्राण केन्द्र क्या है इसे किस तरह जागृत किया जा सकता है?
4. ब्रह्मकेन्द्र को सक्रिय किस तरह किया जा सकता है स्पष्ट करें।
5. त्वचीय इन्द्रिय की क्षमता बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए समझाये।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ज्ञानेन्द्रियां है—

1. चार 2. दस 3. पांच 4. ग्यारह

2. चैतन्य केन्द्र है—

1. पांच 2. चौदह 3. तेरह 4. सात

3. ब्रह्म चैतन्य केन्द्र होता है—

1. नाक पर 2. जिह्वा में 3. कनपट्टी पर 4. ललाट पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भाग–2

7.11 अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान (Insight or Intuition and Preksha Meditation)

अन्तदृष्टि या अन्तर्ज्ञानि व्यक्ति की एक विशिष्ट क्षमता है। ये क्षमता प्राय: सभी व्यक्तियों में पाई जाती है परन्तु कुछ ही लोगों में यह पूर्ण विकसित रूप में विद्यमान होती है। कई मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अन्तर्दृष्टि अन्य प्राणियों में भी पाई जाती है। प्राणी अपनी समस्याओं का समाधान करने में इस क्षमता का उपयोग करता है। अन्तर्दृष्टि का समस्याओं को हल करने में बड़ा महत्त्व है। सीखने की प्रक्रिया में अन्तर्दृष्टि का महत्त्वपूर्ण उपयोग होता है। इसका बौद्धिक स्तर से घनिष्ट संबंध है। इसीलिए निम्न श्रेणियों के प्राणियों की अपेक्षा उच्च श्रेणी के प्राणियों में और मनुष्यों में यह अधिक मात्रा में विद्यमान होती है। 'कोहलर तथा वुडवर्थ' जैसे मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की प्रक्रिया को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है।

7.11.1 अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान क्या है? (What is Insight or Intuition?)

किसी भी विषय वस्तु के बारे में सीधा ज्ञान या अन्तर्बोध को अन्तर्ज्ञान कहते है। इसमें व्यक्ति अपने पूर्व अनुभव, वर्तमान ज्ञान, कल्पना तथा बाहरी वातावरण के ज्ञान का उपयोग करता हुआ विषय वस्तु के बारे में अन्तर्ज्ञान प्राप्त करता है। अन्तर्ज्ञान इच्छानुसार नियंत्रित की जाने वाली क्रिया न होकर एक एकाग्रतापूर्वक ग्राहिता की स्थिति (Attentive state of receptivity) है।

कुछ लोगों के अनुसार आन्तरिक चिन्तन के कोलाहल को रोकना तथा कल्पनाओं या गतिबोध (Kinesthetic) के ज्ञानद्वार को खोलना ही अन्तर्ज्ञान है।

7.11.2 अन्तर्ज्ञान का महत्त्व (The Importance of Intuition)

प्राय: यह देखा जाता है कि पाश्चात्य देशों में अन्तर्ज्ञान के उपयोग का महत्त्व बहुत कम है। ये देश अन्तर्ज्ञान की अपेक्षा तार्किक ज्ञान को अधिक महत्त्व देते हैं। शिक्षा प्रणाली में भी अन्तर्ज्ञान को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया। पूर्वी देशों में अन्तर्ज्ञान का बहुत महत्त्व है और कई धर्मों में इस ज्ञान की अभिवृद्धि हेतु विभिन्न पद्धतियां प्रचलित है। पूर्वी देशों के कुछ विद्यालयों में जैसे बौद्ध मठ, गुरुकुल तथा योग–केन्द्रों में बालकों को बाल्यावस्था से इस ज्ञान की अभिवृद्धि हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है।

7.11.3 विकसित अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान वाले व्यक्ति की विशेषताएं

अन्तर्ज्ञानि स्थितियों के प्रति अन्त:शक्ति एवं संभावनाओं को प्राप्त करने में उपयोगी है। ज्ञानेन्द्रियों से परे भी अन्तर्ज्ञानि शक्ति (Intuition-Power) का अनुभव किया जा सकता है। जिन व्यक्तियों में अन्तर्ज्ञानि क्षमता विकसित होती है वे मुख्यत: भविष्यदृष्टा, अन्वेषक, कलाकार तथा निर्माणदृष्टा होते है। अन्तर्ज्ञानी प्राय: स्वच्छन्द, स्वतंत्र, उन्मुख तथा स्वेच्छाचारी होते है। ये अपनी अन्त:प्रेरणा को ही मानते हैं और शीघ्र ही निष्कर्षों पर पहुंच जाते है। ऐसे व्यक्ति समस्य का समाधान करने, नई कौशलताओं को सीखने में कुशल होते है। ये अपनी ऊर्जा का उपयोग उत्साहपूर्वक और सही ढंग से सही कार्य के लिए करते है। गुप्त वस्तु या विषय को अन्तर्दृष्टि से ज्ञात करने की कौशलता भी इनमें होती है। इनमें अतिन्द्रिय ज्ञान (Extra sensory perception) भी अच्छा होता है।

7.11.4 अन्तर्दृष्टि एवं सीखना (Insight and learning)

कई वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों में यह स्पष्ट रूप से पाया कि अन्तर्दृष्टि का सीखने की प्रक्रिया Learning Process पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अन्तर्दृष्टि की विशेषता यह है कि एक बार सीखने पर इस बात की भूल नहीं हो सकती है कि समय बीतने पर उसकी याद कुछ धुंधली हो जाए। मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर्दृष्टि से सीखने की कुछ विशेषताएं भी बताई है जैसे —

1. अन्तर्दृष्टि अचानक होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. अन्तर्दृष्टि से विषय-वस्तुएं या विचार एक संगठन (Organisation) में दिखाई देती है।
3. अन्तर्दृष्टि से प्राणी के प्रत्यक्षीकरण में बदलाव होता है।
4. अन्तर्दृष्टि का बौद्धिक स्तर से गहन संबंध है।
5. मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ के अनुसार अन्तर्दृष्टि दो प्रकार की होती है—पूर्व दृष्टि (Foresight) एवं पश्चात् दृष्टि (Hindsight)।

व्यक्ति अपनी समस्याओं के समाधान के लिए कभी पूर्व दृष्टि एवं कभी पश्चदृष्टि का उपयोग करता है।

7.11.5 अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान क्षमता का विकास (Development of Insight or Intuition Power Capability)

अन्तर्दृष्टि का व्यक्ति के चेतनास्तर एवं मन की स्थिति से पर्याप्त संबंध है। व्यक्ति की चेतना जितनी विकसित होगी अर्थात् मन जितना शांत होगा अन्तर्दृष्टि का विकास उतना ही अधिक होगा। मन की चंचलता जितनी कम होगी, मनुष्य में कषायों की जितनी मात्रा कम होगी अन्तर्दृष्टि शक्ति का स्तर उतना ही अधिक होगा। जिस तरह शांत एवं स्थिर पानी में ही पानी के तल को देखा जा सकता है और अस्थिर एवं हिलते हुए पानी में पानी का तल नहीं देखा जा सकता ठीक उसी तरह कषायों से युक्त और अस्थिर मन के कारण व्यक्ति की अन्तर्दृष्टि क्षमता विकसित नहीं हो सकती अत: अन्तर्दृष्टि क्षमता के विकास के लिए व्यक्ति का मनशांत हो या कम से कम चंचल होना चाहिए। आगे हम कुछ ऐसी विधियां एवं अभ्यास संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं जिनका उपयोग कर व्यक्ति अपनी अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान को बढ़ा सकता है, उसको जाग्रत कर सकता है।

1. अपनी दिनचर्या को सरल एवं मन को स्पष्ट, निष्पक्षतापूर्ण क्रिया करें। स्वयं को स्वीकारे अन्य लोगों एवं वस्तुओं को भी स्वीकारें, जो जैसा भी है स्वीकार करें।
2. अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहार एवं एकाग्रता अपने भावात्मक परानुभूति या समानुभूति से करें।
3. अपना सहायक समूह बनाएं जो आपके अभ्यास के समय आपके अनुभवों एवं आप द्वारा जानी गई क्रियाओं को जांच कर सके और आपको प्रोत्साहित कर सके।
4. अभ्यास के दौरान प्राप्त अनुभवों, संकेतों तथा रूपों को देखे और गम्भीरता से उनका विश्लेषण करें। वास्तव में ये संकेत प्रतिरूप अन्तर्ज्ञान को चेतन स्तर तक लाने के माध्यम या वाहक है।
5. नियमित अभ्यास करें और अन्तर्ज्ञान से होने वाले अनुभवों का लेखा रखे।

7.11.5.1. मनः स्थान की सफाई (Clearing the Space)

जैसा कि पूर्व में ये स्पष्ट किया गया है कि मन की अधिक क्रियाशीलता से अन्तर्दृष्टि प्रभावित होती है। मन की अधिक क्रियाशीलता (चंचलता) को कम करने के लिए या मस्तिष्क में उमड़ते हुए अस्थिर विचारों की तीव्रता कम करने के लिए, अन्य भाषा में मानसिक सफाई करने के लिए, जिससे की अन्तर्ज्ञान निर्बाध गति से प्राप्त होता रहे, निम्न विधि अपना सकते है—

सर्वप्रथम कोलाहल रहित एवं शान्त वातावरण का चुनाव करे तत्पश्चात्

(i) आँखे कोमलता से बन्द करे, लम्बे एवं गहरे श्वास लें और शरीर को शिथिल कर दें।
(ii) अब आप स्वयं से पूछे या स्वयं में ही देखें की आपको संतुष्ट होने से कौन रोक रहा है। संतुष्टि से चित्त की स्थिरता, मन की स्थिरता बढ़ती है।
(iii) अब स्वत: ही मौखिक उत्तर या प्रतिरूप को आने दें। आने वाले उत्तर का स्वागत करें, परन्तु उसमें उलझें नहीं और न ही उससे व्यथित होवें, मात्र दृष्टा भाव से उसे देखें।
(पअ) अब मानसिक रूप से या दृष्टा भाव से देखते हुये और विचार करें की इस समस्या को आपने सुरक्षित स्थान पर किसी संदूक में रख दिया है, किसी गुब्बारे के साथ बांधकर उसे आकाश में उड़ा दिया है या किसी झील या समन्दर में उसे डुबा दिया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(अ) जब आप अनुभव करे लें कि वो समस्या चली गईं है तो पुन: इस विधि की पुनरावृत्ति करे और तब तक करें जब तक संपूर्ण समस्या निकल न जाए। यह प्रयोग आप कई प्रकार की समस्याओं को निकालने के लिए कर सकते हैं। इस तरह मानसिक रूप से आप अपनी मानसिक सफाई कर लेंगे।

7.11.5.2. योग द्वारा अन्तर्दृष्टि का विकास (Development of Insight thirough Yoga)

योग साधना द्वारा अन्तर्दृष्टि का विकास सहज ही किया जा सकता है। अष्टांग योग द्वारा अन्त:करण शुद्ध हो जाता है, मन के विकार समाप्त हो जाते है, मानसिक स्थिरता बढ़ जाती है जो अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्ञान ज्ञान प्राप्ति में सहायक होती है। आसनों के अभ्यास से शरीर का लचीलापन बढ़ता है और कई प्रकार की व्याधियों से मुक्ति मिलती है। प्राणायाम से विवेकज्ञान पर पड़ा आवरण क्षीण हो जाता है और विवेक ज्ञान प्रस्फुटित होता है। पांतजली योग दर्शन के अनुसार—

तत: क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥

प्राणायाम से मन स्थिर होता है। प्रत्याहार से मन के विचार दूर हो जाते हैं एवं इन्द्रियों का उत्कृष्ट वशीकरण हो जाता है। धारणा से मन स्थिर होता है साथ ही धैर्यता का भी विकास होता है। ध्यान के द्वारा मन गहरा शान्त हो जाता है और उसे अद्‌भुत चैतन्य की प्राप्ति होती है। जब ध्यान में ध्येय अर्थ मात्र से भासता है और उसका (ध्यान का) स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है तो यह समाधि की अवस्था कहलाती है। तीनों (धारणा, ध्यान और समाधि) का एक विषय में होना संयम कहलाता है। इस स्थिति में व्यक्ति को अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्ञान एवं अतीन्द्रिय ज्ञान सहज रूप से प्राप्त होता है, जिससे व्यक्ति भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञाता हो जाता है।

7.11.5.3 अन्तदृष्टि या अन्तर्ज्ञान और प्रेक्षाध्यान (Insight (Intuition) and Preksha Meditation)

प्रेक्षाध्यान द्वारा अन्तर्दृष्टि का विकास सहज एवं सरल है। प्रेक्षाध्यान के विभिन्न चरणों के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति अपने कषायों को दूर कर मन की स्थिरता एंव चेतना की क्षमता को बढ़ा सकता है जिससे उसको अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान सहज रूप से और सरलता से प्राप्त हो सकता है।

कायोत्सर्ग से अपने शरीर को शिथिल कर शरीर के अनावश्यक दबावों को दूर किया जा सकता है। संपूर्ण कायोत्सर्ग से शरीर के एक-एक अवयव को शिथिल कर उनके विकारों को दूर कर उन पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

कायोत्सर्ग से शरीर की शिथिलता के साथ-साथ स्थिरता भी बढ़ती है एवं शारीरिक विकार कम होते है जो मन की स्थिरता बढ़ाने एवं चैतन्य विकास में सहायक सिद्ध होता है।

अन्तर्यात्रा के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति अपनी शक्ति का उर्ध्वारोहण करता है।शक्ति केन्द्र जो कि सुषुम्ना के निचले सिरे पर स्थित होता है वहां से शक्ति को ऊपर की ओर उठाकर ज्ञान केन्द्र तक लाना होता है। इस हेतु अन्तर्यात्रा का अभ्यास प्रभावी है। शक्तिकेन्द्र से शक्ति सुषुम्ना में विभिन्न स्थलों पर अवस्थित विभिन्न चैतन्य केन्द्रों से होती हुई मस्तिष्क के ऊपरी भाग (चोटी का स्थान) में स्थित ज्ञानकेन्द्र तक पहुंचती है। जिससे इस शक्ति का प्रयोग ज्ञान की प्राप्ति एवं सत्य की खोज के लिए किया जा सके। इस प्रकार अन्तर्यात्रा के अभ्यास से व्यक्ति शक्ति का ऊर्ध्वारोहण कर अन्तर्दृष्टि एवं अन्तर्ज्ञान का विकास प्रभावी रूप से कर सकता है।

श्वासप्रेक्षा मन पर नियंत्रण स्थापित करने का एक प्रभावी उपाय है क्योंकि यदि हमें मन पर नियंत्रण करना है तो उस हेतु हमें श्वास को नियंत्रित करना होगा और इसके लिए श्वासप्रेक्षा एक सशक्त माध्यम है। श्वासप्रेक्षा के द्वारा श्वसन प्रक्रिया को एक लयबद्ध एवं नियंत्रित गति प्राप्त होती है यदि श्वास सम्यक होता है तो सम्यक एवं लयबद्ध श्वास का स्करात्मक प्रभाव व्यक्ति की स्मरण शक्ति एवं चिन्तन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर पड़ता है। श्वासप्रेक्षा के नियमित अभ्यास से व्यक्ति की एकाग्रता विकसित होती है जो अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान के विकास में सहायक सिद्ध होती है। शरीरप्रेक्षा में हम शरीर को बंद आंखों से देखते हैं। शरीर की प्रेक्षा करते है। शरीरप्रेक्षा में हम किसी प्रकार का सुझाव नहीं देते है और न ही शरीर के विभिन्न स्थानों पर होने वाली क्रियाओं का विश्लेषण करते है बल्कि प्रियता एवं अप्रियता के भावों से मुक्त होकर शरीर की प्रेक्षा करते हैं। इससे शरीर के प्रति व्यक्ति के ममत्व का लोप होता है एवं व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के संवेदनों के प्रति तटस्थता के भाव का विकास होता है। इस प्रकार के अभ्यास से व्यक्ति के चित्त का शुद्धिकरण (परिष्कार) होता है तथ चेतना का प्रवाह अबाध एवं सरस बनता है। यही सब प्रक्रियाएं व्यक्ति की अन्तर्दृष्टि एवं अन्तर्बोध (अन्तर्ज्ञान) के विकास में सहायक सिद्ध होती है।

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा में हम हमारे शरीर में अवस्थित तेरह (13) प्रमुख केन्द्रों पर अपने चित्त को केन्द्रित करते है। चैतन्य-केन्द्र के संपूर्ण क्षेत्र पर चित्त को ले जाते हैं और वहां होने वाले कम्पन, प्रकम्पन, संवेदन आदि को राग-द्वेष भाव से मुक्त होकर देखते है। चैतन्य-केन्द्र हमारे शरीर में अवस्थित वे स्थल हैं, जहां हमारी चेतना के प्रदेश सघन है, घनीभूत है। चेतना के इन सघन प्रदेशों पर ध्यान करके, चित्त को अवस्थित करके हम अपनी चेतना का परिष्करण करते हैं। यह परिष्कार हमें दृश्य एवं दृष्टा के पृथकत्व का बोध करने में सहायक सिद्ध होता है और अंतत: हम इस प्रकार के अभ्यास के अन्तर्बोध (अन्तर्ज्ञान) एवं अन्तर्दृष्टि के विकास में सहायता मिलती है।

अन्तर्दृष्टि के विकास में लेश्याध्यान की भूमिका सबसे प्रभावकारी है। लेश्याध्यान के अभ्यास से व्यक्ति सत्य की खोज में प्रवृत्त होता है एवं अन्तर्दृष्टि का जागरण करता है। लेश्याध्यान में हम हमारे शरीर के कुछ विशिष्ट चैतन्य-केन्द्रों पर कुछ विशिष्ट रंगों का ध्यान करते है। इस प्रकार के रंगों के ध्यान का हमारे शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक और सर्वाधिक रूप से हमारे मानसिक स्वस्थ पर अनुकूल एवं सार्थक प्रभाव डालता है। आनन्द केन्द्र, विशुद्धि केन्द्र, दर्शन केन्द्र, ज्योति केन्द्र तथा ज्ञान केन्द्र पर क्रमश: हरे, नीले, अरूण, श्वेत तथा पीले रंग का ध्यान किया जाता है। इनमें दर्शन केन्द्र पर अरूण रंग के ध्यान के द्वारा अन्तर्दृष्टि का जागरण होात है। इसके अलावा अन्य केन्द्रों पर अनुकूल रंगों का ध्यान करने से भावधारा निर्मल बनती है, वासनाएं शान्त होती है, क्रोध शान्त होता है एवं ज्ञान तंतु सक्रिय बनते है। इन सबके अतिरिक्त विभिन्न अनुप्रेक्षाओं एवं भावनाओं के अभ्यास के द्वारा भी व्यक्ति अपनी अन्तर्दृष्टि एवं अन्तर्ज्ञान को विकसित कर सकता है। आवश्यकता केवल दृढ़ निश्चय एवं नियमित अभ्यास की है।

7.12 प्रश्नावली

1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ के अनुसार अन्तर्दृष्टि कितने प्रकार की होती है?

2. लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तर्दृष्टि के विकास में मन:स्थान की सफाई की विधि लिखिये।
2. अन्तर्दृष्टि क्या है?
3. विकसित अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान वाले व्यक्ति की विशेषताएं लिखिये?

3. निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्ज्ञान क्या है? विकसित अन्तर्ज्ञान वाले व्यक्ति की विशेषताएं बतलाइये?
2. योग एवं प्रेक्षाध्यान द्वारा अन्तर्दृष्टि का विकास किस तरह सम्भव है समझाइये?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-8 स्मृति क्षमता का विकास एवं लेश्याध्यान

संरचना

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 स्मृति क्या है?

8.3 स्मृति के प्रकार

- 8.3.1 सांवेदिक स्मृति
- 8.3.2 अल्पकालिक स्मृति
- 8.3.3 दीर्घकालिक स्मृति

8.4 स्मरण की प्रक्रियाएं/स्मरण के तत्व

- 8.4.1 अधिगम या स्थिरीकरण
- 8.4.2 धारणा
  - 8.4.2.1 धारणा को प्रभावित करने वाले कारक
- 8.4.3 पुन:स्मरण या प्रत्याह्वान
  - 8.4.3.1 पुनरूत्पादक
  - 8.4.3.2 रचनात्मक प्रत्यास्मरग
- 8.4.4 प्रत्यभिज्ञा
  - 8.4.4.1 अनिश्चत प्रत्यभिज्ञा
  - 8.4.4.2 निश्चित प्रत्यभिज्ञा

8.5 स्मृति प्रक्रिया को उत्तम बनाने के लिए कुछ अनुकूल दशाएं

- 8.5.1 अनुकूल अधिगम विधि
- 8.5.2 धारणा में अनुकूल दशाएं
- 8.5.3 पुन:स्मरण क्षमता
- 8.5.4 प्रत्यभिज्ञा शीघ्र एवं स्पष्ट हों

8.6 स्मृति का प्रशिक्षण

- 8.6.1 स्मरण करने की इच्छा
- 8.6.2 रूचि
- 8.6.3 प्रतिमाएं
- 8.6.4 पूर्व अनुभवों का उपभोग
- 8.6.5 साहचर्य विधि का उपभोग
- 8.6.6 विषय वस्तु को समझना
- 8.6.7 अंश विधि
- 8.6.8 पश्चावरोधक को रोककर

8.7 मानसिक स्थिरता एवं स्मरण

8.8 स्मरण या स्मृति एवं ध्यान योग

- 8.8.1 लेश्याध्यान के द्वारा स्मृति क्षमता का विकास
- 8.8.2 प्राणायाम एवं स्मृति

8.9 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.0 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने इन्द्रिय क्षमताओं के बारे में तथा इन क्षमताओं के विकास में प्रेक्षाध्यान की भूमिका के बारे में पढ़ा। इसके अतिरिक्त अन्तर्दृष्टि या अन्तर्ज्ञान (Insight or Intution) के बारे में भी अध्ययन किया। अन्तर्दृष्टि के विकास में प्रेक्षाध्यान की भूमिका के बारे में भी पूर्व अध्याय में अध्ययन किया।

अब बात स्मृति कि प्राय: हम यह सुनते हैं कि अमुक व्यक्ति की स्मृति बहुत अच्छी है। अमुक व्यक्ति बार-बार भूल जाता है। कई व्यक्ति अपनी स्मृति में कई सूचनाओं को एक साथ रख लेते हैं। कई बार हम बचपन की बातों को स्मृति में ले आते हैं तो कई बार हम वर्तमान की बातों को भी भूल जाते हैं। कई घटनाओं को हम जीवनभर याद रखते हैं तो कई बार हम अपने निकटस्थ मित्रों या आत्मीयजनों के नाम भी भूल जाते हैं। यह सब स्मृति का खेल है।

इस अध्याय में स्मृति, स्मृति क्षमता और उसके विकास के बारे में अध्ययन करेंगे। लेश्याध्यान के द्वारा स्मृति क्षमता का विकास किस तरह संभव है, इसके बारे में भी अध्ययन करेंगे।

8.1 उद्देश्य

1. इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् स्मृति क्या है, इसके बारे में आप जान पायेंगे।
2. स्मृति कितने प्रकार की होती है। इसके बारे में भी आप इस अध्याय के अध्ययन के बाद जान पायेंगे।
3. लेश्याध्यान क्या है? एवं स्मृति क्षमता के विकास में इसकी क्या भूमिका हो सकती है? इसके बारे में भी आप जान पायेंगे।
4. इस पाठ का अध्ययन करने के बाद इससे संबंधित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दे पायेंगे।

8.2 स्मृति क्या है? (What is Memory)

स्मृति और विस्मृति हमारे दैनिक जीवन में नित्यप्रति होने वाले अनुभव के विषय हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति सूचनाओं को संरक्षित रखता है। जब हम किसी विषय को समझ लेते हैं और सीख लेते हैं तब मस्तिष्क इनकी सूचनाओं का भण्डारण कर लेता है और इन सूचनाओं का पुनरूद्धार सामान्यत: प्रत्याह्वान (Recall) के रूप में होता है। सूचनाओं का पुनरूद्धार ही एक प्रकार से स्मृति है।

स्मरण या स्मृति चिंतन, कल्पना, संवेदना आदि की तरह एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अपने किसी अतीतानुभव या शिक्षण को वर्तमान चेतना में लाते हैं और पहचानते हैं। अत: स्मरण प्रक्रिया के लिए पूर्व के अनुभव या पूर्व में सीखना आवश्यक है। कालान्तर में जब हम उन अनुभवों या शिक्षण को अपनी चेतना में लाते हैं या पुनर्व्यक्त करते हैं तो चेतना में लाने और पहचानने की मानसिक प्रक्रिया ही स्मरण कहलाती है। स्मरण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है और इसे कल्पना, चिंतन, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण आदि प्रक्रियाओं से भिन्न करना सरल नहीं है। स्मरण क्रिया में चार प्रक्रियाएं होती हैं या चार तत्त्व विद्यमान रहते हैं—

1. स्थिरीकरण या अधिगम (Fixation or Learning)
2. धारणा (Retention)
3. प्रत्याह्वान या पुन: स्मरण (Recall)
4. प्रतिभिज्ञा (Recognition)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्थिरीकरण में किसी विषय का अनुभव और शिक्षण आवश्यक है। अत: अनुभव या शिक्षण स्मरण की पहली प्रक्रिया है जो स्थिरीकरण के अन्तर्गत आती है। अनुभव में आए हुए या सीखे हुए विषय को संजोने की प्रक्रिया धारणा में आती है जो कि स्मरण की दूसरी प्रक्रिया है। धारणा में संजोये विषय को चेतना में लाना प्रत्याह्वान (Recall) कहलाता है जो कि स्मरण की तीसरी प्रक्रिया है। जब हम प्रत्यावाहित अनुभव या शिक्षण को पहचानते हैं तो यह प्रतिभिज्ञा (Recognition) की प्रक्रिया कहलाती है जो कि स्मरण की चौथी प्रक्रिया है।

कई विद्वानों ने स्मृति या स्मरण को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। इनमें वुडवर्थ, विलियम जेम्स और हिलगार्ड तथा ऐटकिन्सन प्रमुख मनोवैज्ञानिक है।

वुडवर्थ के अनुसार, ''पूर्व में एक बार सीखी गयी क्रिया का पुन: स्मरण ही स्मृति है।''

डॉ. एस.एन. शर्मा ने विलियम जेम्स की परिभाषा को इस तरह परिभाषित किया है ''स्मरण किसी घटना अथवा तथ्य का ज्ञान है जिसके अतिरिक्त किसी अन्य चेतना के बारे में विचार नहीं कर रहे हैं, जैसाकि हम पहले विचार अथवा अनुभव कर सके हैं।''

हिलगार्ड और ऐटकिन्सन के अनुसार, ''स्मृति का अर्थ होता है कि वर्तमान में उन क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को प्रदर्शित करना जिनको हमने पहले सीखा था।''

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि स्मृति एक जटिल शारीरिक और मानसिक स्वरूप है जिसमें तीन प्रकार की मानसिक प्रक्रियाएं होती हैं। मनोविज्ञान में स्मृति के स्वरूप का विवेचन दो प्रकार से किया गया हैं—1. अनेक मनोवैज्ञानिक स्मृति को एक ही स्थिति वाली ऐसी व्यवस्था मानते हैं जिसमें सूचनाओं की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न स्तर पर होती है। 2. अनेक मनोवैज्ञानिक स्मृति को बहु अवस्था प्रक्रिया की रचना के रूप में मानते हैं।

8.3 स्मृति के प्रकार

ऐटकिन्सन तथा शिफरिंग ने स्मृति के स्वरूप को व्याख्या करने के लिए एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने स्मृति को तीन वर्गों में रखा—

1. सांवेदिक स्मृति (Sensory Memory)
2. अल्पकालिक स्मृति (Short Termed Memory—S.T.M.)
3. दीर्घकालिक स्मृति (Long Termed Memory—L.T.M.)

8.3.1 सांवेदिक स्मृति (Sensory Memory)

इस प्रकार की स्मृति ज्ञानेन्द्रियों के स्तर पर कुछ क्षणों के लिए भण्डारित रहती है। सांवेदिक स्मृति ज्ञानेन्द्रियों के अनुसार रहती है। जितनी ज्ञानेन्द्रियां हैं उतनी प्रकार की सांवेदिक स्मृतियों की कल्पना की जा सकती है। ज्ञानेन्द्रियां अपने स्तर पर किसी उद्दीपन या उत्तेजना की सूचनाओं को प्राप्त करती है और ये सूचनाएं कुछ क्षणों के लिए ही बनी रहती हैं। जैसे चक्षुओं से देखे गये कुछ दृश्यों के संवेदना की स्मृति, नाक से ली गई गंध के संवेदना की स्मृति, जिह्वा से प्राप्त रस संवेदना की स्मृति, श्रवणेन्द्रिय से शब्द संवेदना की स्मृति और त्वचा से स्पर्श संवेदना की स्मृति। यदि ज्ञानेन्द्रियों के समक्ष उद्दीपन तीव्र है तो सम्भवत: उसकी स्मृति अल्पकालिक या दीर्घकालिक भी हो सकती है।

मनोवैज्ञानिक स्पर्लिंग (1960) एवं नाइस्सेर (1967) ने चाक्षुष सांवेदिक स्मृति (Visual sensory memory) और श्रवणात्मक सांवेदिक (Auditory sensory memory) पर प्रयोगात्मक शोध अध्ययन किये हैं। उनके अनुसार नेत्रों के सामने से उपस्थित उद्दीपक हट जाने के बाद भी नेत्रों के अक्षपटल पर उद्दीपक का प्रतिचित्र कुछ क्षणों के लिए बना रहता है। अत: इससे यह स्पष्ट होता है कि उद्दीपक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के हटने के बाद भी उद्दीपक का प्रतिचित्र नेत्रपटल में भण्डारित रहता है और स्मृति पटल पर लाया जा सकता है।

जिस प्रकार से चाक्षुष सांवेदिक स्मृति भण्डार होता है उसी प्रकार श्रवणात्मक सांवेदिक स्मृति भण्डार भी होता है और दूसरी अन्य ज्ञानेन्द्रियों से सम्बंधित सांवेदिक स्मृति भण्डार होते हैं।

8.3.2 अल्पकालिक स्मृति या स्मरण (Short Term Memory (S.T.M.)

इस प्रकार की स्मृति में प्राप्त सूचनाएं बहुत ही सीमित समय तक रहती है। इसमें प्राय: ऐसी सूचनाएं रहती हैं जो वर्तमान समय की होती हैं तथा तात्कालिक रूप से प्राप्त की गई है। मनोवैज्ञानिकों ने अल्पकालिक स्मृतियों को चार प्रकार की बताया है। ये हैं सक्रिय स्मृति (Active memory), कार्यकारी स्मृति (Working memory), प्राथमिक स्मृति (Primary memory) एवं तात्कालिक स्मृति (Immediate memory)। अधिगम या सीखने (Learning) प्रक्रिया के समय विशेषकर वाचिक अधिगम के क्षेत्र में इस प्रकार की स्मृति का उपयोग होता है।

अल्पकालिक स्मृति के बारे में मनोवैज्ञानिक हेब्ब (1949) का यह मानना है कि मस्तिष्क के कुछ स्नायु कोशिकाओं में क्रिया का एक जाल-सा है जिसमें एक कोशिका में होने वाली क्रिया दूसरी कोशिका को सक्रिय करती है जिससे एक अनुरणन वृत्त (Reverbratory Circuit) बन जाता है। पुन: अभ्यास के अभाव में या समय बीतने के कारण यह क्रियाएं मन्द पड़ जाती हैं और कुछ काल बाद समाप्त हो जाती हैं।

8.3.3 दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory (LTM)

हम सभी का यह अनुभव है कि कई घटनाएं हमें जीवनभर याद रहती हैं और कई घटनाएं हम कुछ ही दिनों में भूल जाते हैं। प्राय: हर व्यक्ति में विशाल एवं अपेक्षाकृत रूप से स्थाई स्मृति होती है। जब शब्दों का अर्थ हम एक बार अच्छी तरह समझ लेते हैं या किसी घटना की क्रिया को एक बार ठीक से समझ लेते हैं तो प्राय: उसे भुलते नहीं। फिर भी कई बार हम कुछ महिनों या वर्षों में भूल भी जाते हैं, उनकी विस्मृति हो जाती है। टुलविंग (1972) ने दो प्रकार की दीर्घकालिक स्मृतियों का वर्णन किया है—1. वृतात्मक स्मृति (Episodic memory) 2. शब्दार्थ विषयक स्मृति (Semantic memory)।

प्रथम प्रकार की स्मृति अर्थात् वृतात्मक स्मृति (Episodic memory) में घटनाओं और उनके कालिक-स्थानिक (Temperal spatial) सम्बंधों को ग्रहण कर भण्डारित किया जाता है। जबकि दूसरी प्रकार की स्मृति अर्थात् शब्दार्थ विषयक स्मृति (Semantic memory) में भाषा का उपयोग होता है। इसमें व्यक्तिवाचिक प्रतीकों (Verbal symbols), शब्दों एवं उनके अर्थों तथा उनके पारस्परिक सम्बंधों और सूत्रों का भण्डारण करता है और इसी स्मृति के आधार पर वह प्रतीकों एवं उनके सम्बंधों का उपयोग करता है। इस प्रकार की स्मृति में व्यक्ति में अनेक प्रतिमाएं (Images), संज्ञानात्मक मानचित्र (Cognative maps) तथा स्थानिक विशेषताओं (Spatial specialities) का भण्डारण होता है।

उक्त दोनों प्रकार की स्मृतियां एक दूसरे से सम्बंधित है तथा एक दूसरे के लिए पूरक होती है। टुलविंग ने अपने आगे के शोधकार्यों (1983, 1984, 1985) में इन दोनों प्रकार की स्मृतियों में सम्बंध पाया है।

वृतात्मक स्मृति (Episodic memory) एवं शब्दार्थ विषयक स्मृति (Semantic memory) में कुछ निम्न विशेषताएं होती हैं—

1. दोनों स्मृतियों के स्वरूप एवं संरचना में अन्तर है। वृतात्मक स्मृति (Episodic memory) का सम्बंध किसी अनुभव विशेष के भण्डारण से होता है जबकि शब्दार्थ विषयक (Semantic memory) का सम्बंध शब्दों और प्रतीकों के संगठित ज्ञान के भण्डारण से होता है।

2. विस्मरण के स्वरूप के आधार पर दोनों स्मृतियों में भिन्नता होती है। वृतात्मक स्मृति का विस्मरण शीघ्रता से होता है जबकि शब्दार्थ स्मृति का देरी से।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. वृतात्मक स्मृति एवं शब्दार्थ विषय स्मृतियां एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी परस्पर अन्तर्क्रिया करती हैं।

दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory) में स्मृति का भण्डारण वाचिक कूट संकेतों (Verbal encoding) से ही होता है। मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि मूर्त्त अथवा अमूर्त्त गुणधर्मों एवं सम्प्रत्ययों का दीर्घकालिक स्मृति में भण्डारण भाषा के रूप में ही होता है। व्यक्ति जो कुछ भी स्मरण करता है, जैसे परिचित लोगों के चेहरे, वस्तुओं का रंग-रूप या कोई घटना, उनके कूट संकेत वाचिक ही होते हैं।

8.4 स्मरण की प्रक्रियाएं/स्मरण के तत्त्व

जैसाकि हमने पूर्व में लिखा है कि स्मरण में चार प्रक्रियाएं होती हैं—1. अधिगम या स्थिरीकरण (Learning or Fixation), 2. धारणा (Retention), 3. पुनःस्मरण या प्रत्याह्वान (Recall) तथा 4. प्रतिभिज्ञा (Recognition)। अब हम इन प्रक्रियाओं का संक्षेप में वर्णन करेंगे—

8.4.1 अधिगम या स्थिरीकरण (Learning or Fixation)

अधिगम या सीखना या स्थिरीकरण स्मरणक्रिया के अन्तर्गत प्रथम मानसिक प्रक्रिया है। बिना किसी विषय वस्तु के सीखे, उसके स्मरण का प्रश्न ही नहीं उठता। जब हम किसी विषय वस्तु का स्मरण करते हैं तो इससे यह स्पष्ट है कि हमने उस विषय वस्तु को सीखा है या उसके बारे में ज्ञान प्राप्त किया है। जब हम किसी विषय वस्तु को सीखते हैं तो यह कूट संकेतन (Encoding) की प्रक्रिया कहलाती है और इस प्रक्रिया से मस्तिष्क में स्मृति चिह्न बन जाते हैं जिनका कि निर्माण स्नायु पुंजों से होता है। इन्हीं पुंजों से सूचना संसाधन की प्रक्रिया पूर्ण होती है। अर्थात् बाह्यजगत् की सूचना या बाह्य जगत् का अधिगम कूट संकेतन की सरलता या जटिलता सूचनाओं की प्रकृति पर निर्भर करती है जो व्यक्ति को संवेदनीय मार्ग (Sensory means) से प्राप्त होती है। ये सूचनाएं स्मृति भण्डार में भण्डारित हो जाती हैं। कूट संकेतन शब्दार्थ विषयक, श्रवण या ध्वनि सम्बंधी या दृष्टि सम्बंधी हो सकते हैं। स्मरण में कूट संकेतन ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बाह्य जगत् या वातावरण से प्राप्त उत्तेजनाओं या उद्दीपकों की सूचनाओं का स्मृति चिह्नों के रूप में संकलन होता है। संवेदनीय मार्ग या सभी प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण की गई सूचनाओं का पूर्ण कूट संकेतन नहीं होता अपितु सार्थक सूचनाओं का ही कूट संकेतन हो पाता है।

कूट संकेतन की प्रक्रिया के साथ ही मस्तिष्क में संकलन (Compilation) की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। सूचनाओं के संकलन पुनः स्मरण की प्रक्रिया तक बने रहते हैं।

8.4.2 धारणा (Retention)

स्मरण क्रिया में दूसरी प्रक्रिया धारणा की होती है जो अधिगम या स्थिरीकरण की अगली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में कूटसंकेतन की सामग्री या सूचनाएं स्मृति भण्डारण में एकत्रित हो जाती है। इसी प्रक्रिया को हम स्मृति भण्डारण या धारणा कहते हैं। जैसे कोई क्रिया या प्रक्रिया हम सीखते हैं या किसी दृश्य को देखते हैं, कोई संगीत सुनते हैं तो ये बातें हमें याद रहती हैं। जब हम इस प्रकार को सूचनाओं या अनुभवों को एकत्र कर लेते हैं तो इनका स्वरूप धारणा के रूप में बना रहता है। यही धारणा मस्तिष्क की स्मरण क्षमता कहलाती है। धारणा की प्रक्रिया अधिगम के तुरंत बाद प्रारंभ हो जाती है।

धारणा एक मनोशारीरिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में शारीरिक रूप से मस्तिष्क के अग्रखण्ड (Frontal lobe) और पश्च-खण्ड (Occipital lobe) की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इस बात की पुष्टि फ्रांज तथा लेशलै जैसे शरीर शास्त्रियों ने की है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भी धारणा के सम्बंध ा में विचार प्रस्तुत किये हैं। बैण्टले और उनके साथियों के अनुसार व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है या सूचनाएं प्राप्त करता है तो उसके मस्तिष्क में स्मृति चिह्न (Memory traces) बन जाते हैं। ये चिह्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ही क्रियात्मक स्वरूप स्मृति है। मस्तिष्क से ये चिह्न जब लुप्त हो जाते हैं तो व्यक्ति सीखी हुई बातें या प्राप्त सूचनाओं को भूल जाता है।

कई मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि धारणा शरीरिक प्रक्रिया न होकर एक मानसिक प्रक्रिया है। बार्टलेट एवं गिब्सन जैसे मनोवैज्ञानिकों के अनुसार धारणा अभिरूचि, प्रेरणाशक्ति एवं सांवेगिक अवस्थाओं पर निर्भर करती हैं। चूंकि इन अवस्थाओं का स्वरूप मानसिक है अत: धारणा प्रक्रिया भी मानसिक प्रक्रिया है।

मनोविश्लेषणवादी भी धारणा प्रक्रिया स्वरूप में इसे शारीरिक प्रक्रिया न मानकर मानसिक प्रक्रिया ही मानते हैं। इनके अनुसार किसी भी सीखी हुई प्रक्रिया या अर्जित अनुभवों को भुलाया नहीं जा सकता तथा धारणा समाप्त नहीं होती अपितु स्मृति चिह्न जब अचेतन मस्तिष्क या मन में चले जाते हैं तो विस्मृति होती है और इसे विस्मरण कहते हैं। इसका प्रमाण मनोविश्लेषणवादी इस बात से देते हैं कि हम विस्मृत विषय को सम्मोहन द्वारा पुन: स्मृति पटल पर ला सकते हैं।

उपरोक्त दोनों प्रकार की बातों से यह स्पष्ट होता है कि धारणा न केवल शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया है बल्कि ये एक दूसरे की पूरक प्रक्रियाएं भी हैं। अत: यह मनोशारीरिक (Psycho-somatic) पूरक प्रक्रिया है।

8.4.2.1 धारणा को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting retention)

धारणा को प्रभावित करने वाले मुख्य रूप से तीन कारक हैं—

1. व्यक्ति से सम्बन्धित कारक
2. विषयवस्तु सम्बन्धित क्रिया कारक
3. अधिगम सम्बन्धित कारक

1. व्यक्ति से सम्बन्धित कारक—इस प्रकार के कारकों में वे सभी कारक आते हैं जो स्मरण करने वाले व्यक्ति से सम्बंधित हैं, जैसे—आयु, लिंग, शारीरिक दशा, मानसिक दशा, अनुभव, रूचियां, अभिरूचियां, सांवेगिक स्थिति, बुद्धि और परिपक्वता आदिकारक महत्त्वपूर्ण हैं।

2. विषयवस्तु सम्बन्धित क्रिया कारक—इस प्रकार के कारकों में स्मरण के विषयवस्तु का स्वरूप, विषयवस्तु की सरलता, विषयवस्तु की कठिनाई आदि कारक आते हैं।

3. अधिगम सम्बन्धित कारक—इस प्रकार के कारकों में सीखने की व्यवस्था, विधियां, क्रियाएं और प्रक्रियाएं आदि कारक आते हैं।

8.4.3 पुन:स्मरण या प्रत्याह्वान (Recall or Retrieval)

स्मृति या स्मरण क्रिया में पुन:स्मरण या प्रत्यावाहन तीसरी प्रक्रिया है। इस क्रिया में मस्तिष्क में स्थिर अधिगमों या अनुभवों को पुन: चेतना स्तर पर लाया जाता है। इस प्रक्रिया को पुनरुत्पादन (Reproduction) के रूप में जाना जाता है।

पुन:स्मरण की परिभाषा डॉ. एस.एन. शर्मा ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त की है, ''वह प्रक्रिया जिसके द्वारा हम पूर्व अनुभवों की प्रतिमा उसके प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करते हैं, उसे पुन: स्मरण कहते हैं।''

पुन:स्मरण (Recall) का उदाहरण है कि पूर्व में किसी पढ़ी हुई कहानी को पुन: चेतना स्तर पर लाकर दूसरों को सुनाना या स्वयं के द्वारा ही पुन: उसका स्मरण करना। विद्यार्थी परीक्षा कक्ष में परीक्षा देते समय अपने पूर्व अध्ययन को पुन: स्मरण करते हुए उत्तर पुस्तिका में लिखता है। विद्यार्थी का पूर्व अध्ययन उसकी धारणा की प्रक्रिया है जिसे वह पुन: अपनी चेतना के स्तर पर लाता है। अत: पुन: स्मरण प्रक्रिया धारणा पर निर्भर होती है। धारणा ही सूचनाओं या अधिगम का भण्डारण है और उसी के आधार पर पुन: स्मरण या प्रत्याह्वान की प्रक्रिया होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पुन:स्मरण धारणा पर निर्भर होते हुए भी धारणा से निश्चित नहीं होता। धारणा के अच्छा होने पर प्रत्याह्वान या पुन: स्मरण भी अच्छा हो यह आवश्यक नहीं है। प्रत्याह्वान प्रक्रिया में पहले याद किये या देखे गये तथ्यों को ज्यों का त्यों उपस्थित कर देना प्राय: सम्भव नहीं होता। स्मरण करने वाले व्यक्ति से उसमें कुछ हेरफेर अवश्य ही हो जाता है। कभी-कभी वह तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देता है। इन्हीं आधारों पर प्रत्यास्मरण दो प्रकार से हो सकता है—

8.4.3.1 पुनरूत्पादक (Reproductive recall)—इस प्रकार के प्रत्यास्मरण में पूर्व में देखे गये या याद किए गए तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जाता है।

8.4.3.2 रचनात्मक प्रत्यास्मरण (Creative recall)- स्मरण करने वाला तथ्यों में अपनी ओर से कुछ हेरफेर कर देता है। प्रत्यास्मरण में शब्दश: पुनरुत्पादन बहुत ही कम मिलता है कहीं कोई अपवाद हो सकता है। बार्ट लेट और उसके साथियों ने कई प्रयोगों से परिणाम निकाला है कि स्मृति प्रक्रिया में प्रत्यास्मरण पुनरुत्पादक न होकर रचनात्मक होता है।

लेविस, क्रॉसलैण्ड तथा हण्डरसंग ने भी इसी प्रकार के विचार प्रत्यास्मरण के बारे में व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार पुन: स्मरण चार प्रकार का होता है—

1. प्रत्यक्ष पुन: स्मरण (Direct recall)—जब व्यक्ति बिना किसी सहायता या संकेत के अपने पूर्व अनुभव चेतना पर ले आता है और उसको उनका पुन: स्मरण हो आता है तब उसे प्रत्यक्ष पुन:स्मरण कहा जाता है।

2. अप्रत्यक्ष पुन: स्मरण (Indirect recall)—इस प्रकार के पुन: स्मरण में व्यक्ति किसी संकेत की सहायता से अपने पूर्व अनुभवों को चेतना के स्तर पर ले आता है तब उसे अप्रत्यक्ष पुन: स्मरण कहते हैं।

3. प्रयासपूर्ण पुन:स्मरण (Deliberate recall)—जब व्यक्ति अपने अनुभवों, घटनाओं अथवा तथ्यों को प्रयास या बल पूर्वक चेतना के स्तर पर लाकर स्मरण करता है तब उसे प्रयास पूर्ण पुन: स्मरण कहा जाता है।

4. स्वत: पुन: स्मरण (Spontaneous recall)—जब घटना, अनुभव अथवा तथ्य बिना किसी प्रयास या सहायता के चेतना स्तर पर स्वत: आ जाती है तो इसे स्वत: पुन: स्मरण कहा जाता है।

8.4.4 प्रत्यभिज्ञा (Recognition)

प्रत्यभिज्ञा स्मृति क्रिया का चतुर्थ तत्व या पद है अर्थात् प्रत्यस्मरण प्रक्रिया के बाद स्मरण क्रिया में प्रत्यभिज्ञा की प्रक्रिया होती है। प्रत्यभिज्ञा का शाब्दिक अर्थ है पुन: जाना जाना या पहचाना जाना। अत: प्रत्यभिज्ञा पहचान की क्रिया है। स्मृति क्रिया में पहचान की क्रिया के आधार पर पुन: स्मरण के अनुभवों को सही रूप से चेतना के स्तर पर लाया जाता है यही क्रिया प्रत्यभिज्ञा कहलाती है। पुन: स्मरण तथा प्रत्यभिज्ञा में मुख्य अन्तर यह है कि पुन: स्मरण में वस्तु उपस्थित नहीं रहती जबकि पहचान में या प्रत्यभिज्ञा क्रिया में पहचानी जाने वाली वस्तु उपस्थित रहती है अर्थात् प्रत्यभिज्ञा में वस्तुओं के साथ पूर्ण पहचान होती है। प्रत्यभिज्ञा पुन: स्मरण की अपेक्षा सरल होती है। किसी घटना को या व्यक्ति को सरलता से पहचाना जा सकता है किंतु उसका पुन: स्मरण कठिन हो सकता है उदाहरण के लिए जैसे किसी गद्य या पद्य की पंक्तियों को हम भूल जाते हैं और समय पर पुन: स्मरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत याद नहीं आ पाती किंतु उन पंक्तियों के सामने आने पर हम उन्हें तत्काल पहचान लेते हैं और समझ जाते हैं कि इन्हीं पंक्तियों को हमने याद किया था। प्रत्यभिज्ञा और पुन: स्मरण पर समय के मध्यांतर का बढ़ा प्रभाव पड़ता है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है किसी वस्तु की पहचान का भी ह्रास होता जाता है परन्तु इससे भी कहीं अधिक ह्रास पुन: स्मरण की प्रक्रिया में होता है। अत: समय अन्तराल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का प्रभाव प्रत्यभिज्ञा अथवा पहचान की प्रक्रिया की अपेक्षाकृत पुन: स्मरण पर भी पड़ता है। प्रत्यभिज्ञा दो प्रकार से होती है।

8.4.4.1 अनिश्चित प्रत्यभिज्ञा (Indefinite recognition)—इसके अन्तर्गत व्यक्ति जब किसी घटना या तथ्य को पूर्ण विवरण के साथ चेतन पटल पर न पहचान पाए तो इस प्रकार की प्रक्रिया को अनिश्चित प्रत्यभिज्ञा या अनिश्चित पहचान कहते हैं।

8.4.4.2 निश्चित प्रत्यभिज्ञा (Definite recognition)—व्यक्ति जब किसी घटना अथवा तथ्य को पूर्ण विवरण के साथ चेतना स्तर या पटल पर लाकर पहचान ले तो इस प्रकार की प्रक्रिया को निश्चित प्रत्यभिज्ञा या निश्चित पहचान कहते हैं।

8.5 स्मृति प्रक्रिया को उत्तम बनाने के लिए कुछ अनुकूल दशाएं

स्मृति प्रक्रिया को उत्तम बनाने के लिए पूर्वोक्त चारों तत्त्वों का अनुकूल होना अति आवश्यक है। अर्थात् अधिगम या स्थिरीकरण उत्तम प्रकार का हो, उत्तम धारण शक्ति हो, पुन: स्मरण शीघ्र हो और प्रत्यभिज्ञा शीघ्र एवं स्पष्ट हों। इन अनुकूल दशाओं का संक्षेप में आगे वर्णन कर रहे हैं—

8.5.1 अनुकूल अधिगम विधि

यदि अधिगम या सूचनाओं का कूट संकेतन (Encoding) उचित विधि के आधार पर है तो विषय वस्तु का या घटना का ज्ञान अच्छी स्मृति की ओर ले जा सकता है। अच्छी स्मृति बनाए रखने के लिए अधिगम की कौन-सी विधि उत्तम एवं उपयोगी होगी? इस विषय वस्तु को देखते हुए इसका चयन करना चाहिए।

8.5.2 धारणा में अनुकूल दशाएं

उत्तम धारण शक्ति के लिए विषय वस्तु या सामग्री का स्वरूप, सीखने की मात्रा, सीखने या अधिगम की गति, अधिगम की विधियां, व्यक्ति का ध्यान, व्यक्ति की अनुभूतियां, निद्रा, मानसिक तत्परता, मानसिक समीक्षा और व्यक्ति का व्यापक अनुभव बहुत सहयोगी है। अच्छी स्मृति इस बात पर भी निर्भर करती है कि व्यक्ति में किसी विषय वस्तु के अनुभवों को धारण करने की क्षमता कितनी अच्छी है। उत्तम धारण शक्ति वाले व्यक्ति की स्मृति क्षमता अच्छी होगी।

8.5.3 पुन: स्मरण क्षमता

पुन: स्मरण का शीघ्रता से होना उत्तम स्मृति का तीसरा लक्षण है। जब व्यक्ति किसी सीखी हुई विषय वस्तु को शीघ्र ही दुहरा देता है तो ऐसे व्यक्ति उत्तम स्मृति वाला कहा जाएगा।

8.5.4 प्रत्यभिज्ञा शीघ्र एवं स्पष्ट हों

स्पष्ट एवं शीघ्र पहचान भी उत्तम स्मृति के लक्षणों में से है। याद की गई किसी वस्तु के लिए पुन: स्मरण आवश्यक तो है ही साथ ही साथ शीघ्र एवं स्पष्ट पहचान भी होनी आवश्यक है। यह योग्यता जितनी अधिक होगी स्मृति क्षमता उतनी ही अधिक होगी।

8.6 स्मृति का प्रशिक्षण (Training of Memory)

अच्छी स्मृति वाले व्यक्ति अपनी क्रियाओं को एवं अपने कार्यों को अच्छे ढंग से कर सकते हैं। क्षीण स्मृति वाले व्यक्ति जीवन में कई जगह हानि उठाते हैं। अच्छी स्मृति वाले विद्यार्थी कक्षाओं एवं परीक्षाओं में अग्रणी रहते हैं जबकि क्षीण स्मृति वाले विद्यार्थी प्राय: असफल होते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस बात के कई परीक्षण किये हैं कि अनुभव को स्मृति में अधिक समय तक और अधिक स्पष्ट रूप से रखा जा सकता है। स्मृति को उन्नत बनाने के लिए कई प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। स्मृति भी एक मानसिक क्षमता है और अन्य मानसिक क्षमताओं की भांति इसका भी विकास संभव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। एबर्ट (Ebert) और म्यूमन (Meumann) ने स्मृति प्रशिक्षण के लिए कई प्रयोग किये और उन्होंने पाया कि व्यक्ति के कौशल में सुधार करने से स्मृति में उन्नति होती है। स्मृति का विकास करने के लिए या उसको उन्नत बनाने के लिए निम्न विधियों या साधनों का उपयोग किया जा सकता है—

8.6.1 स्मरण करने की इच्छा (Desire to memorise)

स्मृति क्षमता के विकास में व्यक्ति की इच्छा एक मुख्य कारक है। व्यक्ति में किसी विषय वस्तु की स्मृति रखने की इच्छा कहां तक है। व्यक्ति में स्मृति क्षमता बनाये रखने की इच्छा जितनी प्रबल होगी उतना ही अधिगम, कूटसंकेतन (Encoding), धारणा, प्रत्याह्वान एवं प्रत्यभिज्ञा अच्छी होगी। यदि इच्छा नहीं है या क्षीण इच्छा है तो सब कुछ विस्मृत हो जायेगा। अत: स्मृति को प्रशिक्षित करने का यह एक उपाय है कि व्यक्ति जो कुछ भी याद करे या विषय वस्तु का अनुभव करे तो उसे स्मृति में रखने की प्रबल इच्छा करे। विद्यार्थियों के लिए यह बात विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उनको अपनी विषय वस्तु को यह दृढ़ इच्छा रखते हुए कि मुझे इसको याद रखना है, स्मृति में डालना चाहिए।

8.6.2 रूचि (Intrest)

किसी विषय वस्तु का अधिगम करने में व्यक्ति की कितनी रूचि है यह बात भी स्मृति को प्रभावित करती है।

8.6.3 प्रतिमाएं (Images)

स्मृति के विकास के प्रशिक्षण में प्रतिमाओं का भी विशेष महत्त्व है क्योंकि प्रतिमाओं के कारण ही प्रत्यावाहन सरलता से संभव हो पाता है।

8.6.4 पूर्व अनुभवों का उपभोग (Use of Previous Experiences)

जिस विषय को हम स्मृति में रखना चाहें या याद रखना चाहें उनको अपने पूर्व अनुभवों से किसी न किसी प्रकार जोड़ लें। पूर्व अनुभवों के साथ नवीन सीखे हुए अनुभवों का संबंध जोड़ दिया जाता है तो ये अनुभव स्मृति में दीर्घकाल तक टिके रहते हैं।

8.6.5 साहचर्य विधि का उपभोग (Use of association method)

इस विधि में सीखी हुई विषय वस्तुओं का ज्ञान या प्राप्त सूचनाओं को किसी विशेष प्रतीकों, प्रतिमाओं या अन्य अनुभवों के साथ जोड़ दिया जाता है। इससे स्मरण के समय प्रत्यावाहन की प्रक्रिया में सरलता रहती है।

8.6.6 विषय वस्तु को समझना (Understanding the subject)

जिस किसी चीज को हमें याद रखना है उसकी प्रक्रिया को या अर्थ को पूरी तरह समझ लेना चाहिए। समझ कर स्मरण भण्डारण में भण्डारित की गई की सूचनाएं या विषय वस्तु के अनुभव लंबे समय तक टिके रहते हैं। यह एक दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory) बन जाती है। विद्यार्थियों के लिए रटकर (Rotting) याद करने की विधि की अपेक्षा विषय वस्तु को समझकर याद करने की विधि ज्यादा लाभदायक रहती है। क्योंकि समझकर याद की गई विधि से स्मरण या स्मृति ठोस एवं लंबे समय तक बनी रहती है।

8.6.7 अंश विधि (Part method)

किसी बड़े विषय को याद करने के लिए उस विषय को छोटे-छोटे अंशों या विषयों में बांट लेना चाहिए। इन छोटे-छोटे अंशों को याद कर बड़े विषय या सम्पूर्ण विषयों को याद किया जा सकता है। जैसे किसी विषय के पाठ को याद करना है तो उसे कई बिन्दुओं में विभक्त किया जा सकता है और इन बिन्दुओं या अंशों के आधार सम्पूर्ण पाठ को याद किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8.6.8 पश्चावरोधक को रोककर (By checking retroactive inhibition)

अधिगम में बाधक कारण पाश्चावरोधक भी है। अधिगम स्मृति का पहला चरण है अत: अच्छी स्मृति के लिए पश्चावरोधक के कारणों को रोकना चाहिए।

उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त भी कुछ और भी साधनों को काम में लिया जा सकता है, जैसे लयबद्ध किसी विषयवस्तु को याद करना विशेषकर कविता आदि के स्मरण के लिए। किसी पाठ को या शब्दों को उच्च स्वर से पढ़ना। किसी विषयवस्तु की समय-समय पर मानसिक समीक्षा करना। इन उपायों से भी स्मरणशक्ति दृढ़ होती है।

8.7 मानसिक स्थिरता एवं स्मरण (Stability of mind and Memory)

स्मृति या स्मरण की प्रक्रिया को अच्छे ढंग से उपयोग में लाने के लिए मानसिक स्थिरता एवं तनावमुक्त होना बहुत ही आवश्यक है। इससे कूटसंकेतन एवं धारणा की प्रक्रिया सही होती है और स्मरण क्षमता बढ़ती है। मानसिक स्थिरता को बनाए रखने के लिए ध्यानयोग की कुछ विधियां बड़ी लाभकारी होती हैं। आगे हम कुछ विधियों का संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं।

बोध प्रश्न 1:

1. स्मृति की कोई दो परिभाषाएं बताएं?
2. वृतात्मक स्मृति क्या होती है?
3. प्रत्याह्वान का क्या अर्थ है?
4. स्मृति प्रशिक्षण की विधियां लिखें?

8.8 स्मरण या स्मृति एवं ध्यान-योग

स्मरण क्षमता को बढ़ाने के लिए योग भी बड़ा उपयोगी साधन है। कई शोधकार्यों से यह सिद्ध हो गया है कि ध्यान-योग के द्वारा मानसिक चंचलता को शांत किया जा सकता है और मानसिक एकाग्रता द्वारा अच्छा अधिगम (Learning) किया जा सकता है। कई योग, आसन एवं क्रियाएं स्मरण या स्मृति क्षमता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

प्रेक्षाध्यान में लेश्याध्यान को प्रयोग भी स्मृति क्षमता बढ़ाने में सहायक है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार लेश्याध्यान के नियमित अभ्यास से मनुष्य की भावधारा में परिवर्तन आता है और स्मृति का विकास होता है। इस विषय पर विस्तार में चर्चा हम आगे कर रहे हैं।

8.8.1 लेश्याध्यान के द्वारा स्मृति क्षमता का विकास

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानासन एवं मुद्रा का चुनाव करें। आंखों को कोमलता से बंद करें। चित्त को पैर के अंगुठे से सिर तक क्रमश: प्रत्येक अवयव पर ले जाएं, शिथिलता का सुझाव दें एवं शिथिलता का अनुभव करें।

अब अपने चित्त को ज्ञान केन्द्र (चोटी के स्थान) पर केन्द्रित करें और वहां पर चमकते हुए पीले रंग का ध्यान करें (सूर्यमुखी के पुष्प अथवा स्वर्ण के समान चमकता हुआ पीला रंग)। अनुभव करें आपके चारों ओर पीले रंग के परमाणु फैल रहे हैं। अब हम चमकते हुए पीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें पीले रंग के परमाणु, प्रत्येक श्वास के साथ आपके शरीर में प्रवेश कर रहे हैं।

कुछ समय पश्चात् अनुभव करें, ज्ञान केन्द्र से पीले रंग के परमाणु निकल कर आपके शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। आपका पूरा आभामण्डल पीले रंग के परमाणुओं से भर गया है। पीले रंग के परमाणुओं को देखें। अनुभव करे ज्ञान तंतु विकसित हो रहे हैं, ज्ञानतंतु विकसित हो रहे हैं, ज्ञानतंतु विकसित हो रहे हैं। इसके पश्चात् स्वत: सुझाव दें कि "मेरी स्मृति क्षमता का विकास हो रहा है, मेरी स्मृति क्षमता बढ़ रही है, मैं हर किसी विषय-वस्तु को भली-प्रकार याद रख सकता हूँ।" इस प्रकार के सुझाव कई बार देकर इनका चिंतन करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दो-तीन लम्बे गहरे श्वास लें और अनुभव करें कि पैर के अंगुठे से सिर तक चैतन्य पूरी तरह जागरूक हो गया है। सम्पूर्ण शरीर में सक्रियता का अनुभव करें। कोमलता से धीरे-धीरे अपनी आंखें खोलें। प्रयोग सम्पन्न।

8.8.2 मंत्र प्रयोग द्वारा स्मृति क्षमता का विकास

स्मृति क्षमता के विकास के लिए निम्न विधि भी उपयोगी है—

किसी भी ध्यानासन का चुनाव करें। शरीर को स्थिर, शिथिल एवं तनावमुक्त करें। चित्त को पैर के अंगुठे से मस्तिष्क तक क्रमशः प्रत्येक अवयव पर ले जाएं। शिथिलता का सुझाव दें एवं शिथिलता का अनुभव करें। अनुभव करे पैर के अंगुठे से सिर तक आपका सम्पूर्ण शरीर शिथिल हो गया है।

अब अपने चित्त को ललाट के मध्यभाग पर केन्द्रित करें। वहां चमकते हुए पीले रंग से लिखे 'ऐं' का ध्यान करें। तत्पश्चात् अपने चित्त को दोनों कनपटियों पर केन्द्रित करें और वहां चमकते हुए पीले रंग से लिखें 'ॐ' का ध्यान करें। इस प्रकार ललाट के मध्य भाग तथा दोनों कनपटियों पर क्रमशः ॐ ऐं ॐ का ध्यान करें। कुछ समय लगभग (लगभग 5 से 10 मिनट) तक प्रयोग जारी रखें। कुछ समयोपरान्त दो-तीन दीर्घश्वास के साथ प्रयोग को सम्पन्न करे।

इस मंत्र का वर्णित विधि के साथ नियमित अभ्यास करने से स्मृति क्षमता में अपेक्षित वृद्धि होती है।

8.8.2 प्राणायाम एवं स्मृति

प्राणायाम का नियमित अभ्यास स्मृति क्षमता विकास में बहुत उपयोगी है। प्राणायाम क्रिया से प्राणवायु मस्तिष्क तक वेग से पहुंचती है और मस्तिष्क के तंतुओं को सक्रिय बनाए रखती है। प्राणायाम किसी अनुभवी आचार्य की देखरेख में ही करना चाहिए।

8.9 प्रश्नावली

I निबंधात्मक प्रश्न

1. स्मृति की प्रक्रियाओं को समझाइये।
2. दीर्घकालिक स्मृति क्या है?
3. स्मृति क्षमता बढ़ाने के उपायों को समझाइये।
4. प्रेक्षाध्यान एवं लेश्याध्यान से स्मृति का विकास किस तरह सम्भव है? समझाइये।

II लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्मृति क्या है?
2. अल्पकालिक स्मृति क्या है?
3. सांवदिक स्मृति क्या है?

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न—एक वाक्य में उत्तर लिखें:—

1. स्मरण क्रिया में मुख्य प्रक्रियाएं होती हैं—
   (क) तीन (ख) दो (ग) चार (घ) पांच
2. स्मृति को कितने वर्गों में रखा गया है—
   (क) तीन (ख) चार (ग) पांच (घ) छः

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग 3 स्व–प्रबन्धन एवं तनाव प्रबन्धन
इकाई–9 आवश्यकताओं एवं आंतरिक जगत् का प्रबन्धन, स्वास्थ्य एवं शक्ति का संरक्षरण

संरचना

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 मास्लो का आवश्यकता सिद्धांत

- 9.2.1 जैविक या शारीरिक आवश्यकताएं
- 9.2.2 सुरक्षा की आवश्यकता
- 9.2.3 संबद्धता एवं प्रेम की आवश्यकता
- 9.2.4 प्रतिष्ठा या आत्मसम्मान की आवश्यकता
- 9.2.5 ज्ञानात्मक आवश्यकताएं
- 9.2.6 सौन्दर्यपरक आवश्यकताएं
- 9.2.7 स्व–वास्तवीकरण या आत्मसिद्धि की आवश्यकता
- 9.2.8 भावातीत होने या आध्यात्मिक होने की आवश्यकता

9.3 योग द्वारा आवश्यकताएं का प्रबंधन

9.4 आन्तरिक जगत

- 9.4.1 चिंतन एवं विचार
- 9.4.2 स्वास्थ्य एवं जीवन शक्ति का संरक्षण
- 9.4.3 अपने शरीर के प्रति विवेकी बनें
- 9.4.3.1 शरीर प्रेक्षा का महत्व
- 9.4.4 हार्दिक संवेग

9.5 प्रश्नावली

9.6 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने मानव क्षमताओं एवं इनके विकास के बारे में अध्ययन किया। इस अध्ययन में हम व्यक्ति की विभिन्न आवश्यकताओं का अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के आन्तरिक जगत का प्रबन्धन, उसके स्वास्थ्य एवं शक्ति का संरक्षण किस प्रकार सम्भव है इसका भी अध्ययन हम इस अध्याय में करेंगे।

गत अध्यायों में हमने स्व–प्रबन्धन में उपयोगी विभिन्न कौशलताओं के बारे में अध्ययन किया। इन कौशलताओं का विकास किस तरह संभव है एवं इनका प्रबन्धन किस तरह किया जा सकता है इसके बारे में भी हमने चर्चा की।

मनुष्य की आवश्यकताएं एवं इच्छाएं कई प्रकार की होती है और जीवन के कुशल प्रबन्धन में इन आवश्यताओं एवं इच्छाओं का भी कुशल प्रबन्धन अति आवश्यक है। अर्थात् अपने आप का प्रभावी प्रबन्धन करने के लिए हमें अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं का प्रबन्धन करना जरूरी है। अपने वातावरण, दूसरों से अपने सहायक संबंधों तथा अन्य लोगों के हितों को ध्यान में रखते हुए अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं का सुव्यवस्थित प्रबन्धन करना व्यक्ति के प्रभावशाली प्रबन्धन में सहायक है। मनुष्य की आवश्यकताएं क्या हैं? इसके लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई दृष्टिकोण दिए।

1. आवश्यकता क्या हैं एवं आवश्यकताओं का प्रबन्धन व्यक्ति किस तरह कर सकता है इसकी जानकारी इस पाठ के द्वारा दी जायेगी।

2. आन्तरिक जगत् क्या है और इसका प्रबन्धन किस प्रकार सम्भव है आदि जानकारी प्राप्त होगी।

3. इस पाठ का तीसरा उद्देश्य है व्यक्ति के स्वास्थ एवं जीवन शक्ति के संरक्षण के बारे में जानकारी देना।

9.2 मास्लो का आवश्यकता सिद्धांत

अमेरिका के सुविख्यात मनोवैज्ञानिक अब्राहम मास्लो ने मानव आवश्यकताओं को एक व्यवस्थित पद क्रम में प्रस्तुत किया। उन्होंने मानव आवश्यकताओं को दो प्रमुख भागों में बांटा है। पहली प्रकार की आवश्यकताओं को उन्होंने दोषपूर्ण अभिप्रेरणाएं (Deficiant motives or 'D' motives) कहा है। दूसरी प्रकार की आवश्यकताओं को उन्होंने अभिप्रेरित प्रेरणाएं (Growth motives or Mata needs or Being or 'B' needs) कहा है। व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं को दोषपूर्ण आवश्यकताओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इन आवश्यकताओं में शारीरिक आवश्यकताएं या दैहिक आवश्यकताएं रखी जा सकती हैं।

मास्लो ने व्यक्ति की आवश्यकताओं को प्रमुख आठ सोपानों में विभक्त किया है–

1. जैविक या शारीरिक आवश्यकताएं (Biological or Physiological needs)
2. सुरक्षा की आवश्यकताएं (Safety and Security needs)
3. संबद्धता एवं प्रेम की आवश्यकता (Belonging and love or attachment needs)
4. प्रतिष्ठात्मक आवश्यकताएं (Self-esteem needs)
5. ज्ञानात्मक आवश्यकताएं (Cognitive needs)
6. सौन्दर्यपरक आवश्यकताएं (Esthetic needs)
7. आत्मसात या आत्मसिद्धि की आवश्यकता (Self actualization needs)
8. भावातीत होने की आवश्यकताएं (Transcendence needs)

इन आवश्यकताओं के बारे में हम संक्षेप में आगे वर्णन कर रहे हैं–

9.2.1 जैविक या शारीरिक आवश्यकताएं (Biological or Physiological need)

इन आवश्यकताओं के अन्तर्गत प्राय: पांच प्रकार की आवश्यकताएं प्रमुख हैं, ये हैं– भूख (Hunger), प्यास (Thirst), काम या यौन (Sex), विश्राम (Rest), तथा निद्रा एवं स्वप्न (Sleep and Dreams)। ये सभी आवश्यकताएं देह स्तर की है और इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए व्यक्ति क्रिया करने के लिए प्रेरित होता है। व्यक्ति अपनी यथेष्ठ क्रियाओं द्वारा इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए प्रेरित होता है। यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति में कमी रह जाती है या आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती तो व्यक्ति में एक तनाव या दबाव बन जाता है और वह येन–केन प्रकारेण इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने का पूरा प्रयास करता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर व्यक्ति के समायोजन पर भी प्रभाव पड़ता है और कभी–कभी तो व्यक्ति कुसमायोजित हो जाता है।

क्योंकि ये आवश्यकताएं शारीरिक हैं तथा शारीरिक समायोजन बनाए रखने के लिए एवं आंतरिक संतुलन बनाए रखने के लिए इनकी पूर्ति स्वाभाविक एवं आवश्यक है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति कितनी की जाए, कब की जाए एवं कैसे की जाए यही व्यक्ति का कुशल प्रबन्धन है। भूख आवश्यकता की पूर्ति सामान्य भोजन करके भी की जा सकती है और इसी आवश्यकता की पूर्ति असामान्य भोजन या अतिविशिष्ट भोजन करके भी की जा सकती है। असामान्य भोजन या अतिविशिष्ट भोजन या अति भोजन से इस आवश्यकता की पूर्ति तो हो जाती है परन्तु अपच, भोजन का विषाक्त हो जाना तथा अम्ल पित जैसे दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अतः इससे भूख आवश्यकता की पूर्ति का लाभ या संतुष्टि जो व्यक्ति को मिली है उससे ज्यादा क्षति इसके अतिरिक्त प्रभाव से व्यक्ति को होती है। यदि व्यवहार में व्यक्ति इसी प्रकार की क्रिया अर्थात् असामान्य भोजन, अवशिष्ट भोजन तथा अति भोजन, लम्बे समय तक करता रहे तो कालान्तर में उसके शरीर में मोटापा, हृदय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रोग एवं अन्य कई प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जिससे व्यक्ति का शरीर के प्रति प्रबन्धन बिगड़ जाता है और शरीर अनियंत्रित हो जाता है।

इसी तरह प्यास आवश्यकता की पूर्ति सामान्य पानी पीकर भी की जा सकती है परन्तु अनावश्यक रूप से अन्य पेय पदार्थों, जैसे–कृत्रिम ठण्डे पेय, मदिरापान (ठण्डी बीयर आदि), गर्म पेय, जैसे–चाय, काफी आदि कण्ठ एवं शरीर के अन्य भागों के लिए घातक सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त ये पेय पदार्थ व्यक्ति में अनावश्यक उत्तेजनाएं पैदा करते हैं जिससे व्यक्ति का आंतरिक सामंजस्य एवं बाहरी सामंजस्य (Harmony) भंग हो जाता है। जिसका प्रबन्धन व्यक्ति के लिए कठिन हो जाता है।

उपरोक्त दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति व्यक्ति इन आवश्यकताओं को समझकर सामान्य रूप से भी कर सकता है। यह इन आवश्यकताओं के प्रति सामान्य सुप्रबन्धन है और इससे व्यक्ति का सामंजस्य अपने तथा वातावरण के प्रति बना रहता है। इसके विपरीत यदि वह अन्य साधनों से, जिनका कुप्रभाव व्यक्ति या अन्य पर पड़ता है, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और इससे व्यक्ति का स्वयं के प्रति एवं पर्यावरण के प्रति भी सामंजस्य बिगड़ जाता है। यह कुशल प्रबन्धन न होकर कुप्रबन्धन हो जाता है।

यौन सम्बन्धी आवश्यकताओं का भी प्रबन्धन सही ढंग से होने से व्यक्ति का समायोजन बना रहता है। इसका दमन करने या इसकी पूर्ति समय पर न होने से भी व्यक्ति में असामान्यता आ जाती है। परन्तु अत्यधिक यौनाचार से भी व्यक्ति बलात्कार जैसे कुकृत्यों में संलग्न हो जाता है।

इसी तरह नींद एवं स्वप्न भी व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकता है। क्या कभी आपने रात भर न सोने का अनुभव किया है? रातभर न सोने के बाद दूसरे दिन नींद की कमी से आपको कैसा लगता है? नींद की कमी का प्रभाव अलग–अलग लोगों पर अलग–अलग ढंग से पड़ता है। प्रायः नींद की कमी से अधिकांश लोग अपने दैनिक कार्यक्रमों में अधिक गल्तियां करते हैं। पूरे दिन उनको थकान एवं उबासी और बार–बार नींद के झटके आने जैसी स्थिति बनी रहती है। शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए निद्रा एक बुनियादी आवश्यकता है। एक स्वस्थ व्यक्ति प्रति रात औसत सात घंटे नींद लेता हैं हालांकि सोने के घंटे विभिन्न व्यक्तियों के लिए विभिन्न हो सकते हैं फिर भी औसत नींद प्रत्येक व्यक्ति के लिए सात घंटे होती है। समय पर न सोनाऔर पर्याप्त मात्रा में नींद न लेने से व्यक्ति के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। अनिद्रा के रोगियों के व्यवहार में प्रायः असामान्यता देखी जाती है। उनके व्यवहार में चिड़चिड़ापन,क्रोध, हर वस्तु को बार–बार भूल जाना, तनावयुक्त रहना, सिर दर्द रहना तथा अपच जैसी समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। पर्याप्त नींद लेने से व्यक्ति में ऊर्जा का पुनः संचार होता है। शारीरिक थकान मिटती है एवं व्यक्ति अपने आपको तरोताजा अनुभव करता है।

अतिनिद्रा भी स्वस्थ व्यक्ति के लिए लाभदायक नही कही जा सकती। अतिनिद्रा से भी आलस्य एवं प्रमाद उत्पन्न होता है। कई शारीरिक व्याधियां, जैसे–वजन बढ़ना अर्थात् मोटापा (Obesity) हृदय संबंधी व्याधियां एवं अन्य स्वास्थ्य संबंधी व्याधियां भी उत्पन्न हो जाती हैं। अतः एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए सामान्य नींद ही आदर्शमयी रहती है।

नींद लेने के दौरान व्यक्ति को स्वप्न भी आते हैं। यह स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। स्वप्नों के द्वारा व्यक्ति अपने अचेतन मन में पड़े हुए तनावों से मुक्त होता है। व्यक्ति स्वप्नों के माध्यम से ही उन इच्छाओं की पूर्ति करता है जिनको वह साक्षात् बाह्य जगत् में पूरा नहीं कर पाता। स्वप्नों से मानसिक एवं शारीरिक तनावों में कमी आती है और व्यक्ति मानसिक एवं शारीरिक भार से हल्का हो जाता है।

उपरोक्त लिखित भूख (Hunger), प्यास (Thirst), काम–यौन (Sex), नींद या निद्रा (Sleep) एवं स्वप्न (Dream) तथा विश्राम (Rest)। व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताएं (Basic Need) है। यदि इनकी पूर्ति नहीं हो पाती है तो व्यक्ति की व्यावहारिक क्रियाएं प्रभावित होती है। इन आवश्यकताओं का प्रबन्धन करना भी एक कला है। यदि व्यक्ति इन आवश्यकताओं का प्रबन्धन करना जान ले तो वह अपने जीवन का भी कुशल एवं सही प्रबन्धन कर सकता है।

9.2.2. सुरक्षा की आवश्यकता (Safety and Security)

हर प्राणी अपने शरीर को खतरे से सुरक्षित रखने का प्रयत्न करता है। वह किसी भी प्रकार से अपने शरीर की क्षति नहीं चाहता। व्यक्ति भी अपने आपको सुरक्षित रखने का प्रयत्न करता है। वह अपने जीवन की सुरक्षा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एवं स्वतन्त्रता चाहता है तथा भय और हिंसा से या अन्य प्रकार के खतरों से दूर रहना चाहता है। अपने को सुरक्षित रखने के लिए वह सुरक्षित जगह का प्रबन्धन करता है। असुरक्षित लोगों में भय बने रहने के कारण उनके व्यवहार में असामान्यता रहती है और वह उचित आसरे की तलाश में रहते हैं। भय या खतरे को देखकर व्यक्ति अपनी सुरक्षा का ठोस प्रबन्ध करता है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे–भूकम्प, अतिवृष्टि, तूफान आदि का भय, हिंसा का भय, युद्ध का भय आदि से व्यक्ति सुरक्षित रहने का प्रयत्न करता है वह इसके लिए समुचित व्यवस्था करने का प्रयत्न करता है। यह प्रवृत्ति प्रायः प्रकृति के सभी प्राणियों में होती है परन्तु व्यक्ति विकसित मस्तिष्क का उच्च श्रेणी का प्राणी है अतः वह अपनी इस प्रकार की आवश्यकताओं को प्राथमिकता से पूरा करता है।

सुरक्षा की आवश्यकता को आवश्यकता से अधिक रूप से पूरा करना भी उचित नहीं माना जा सकता। जैसे–एक व्यक्ति को सुरक्षित रहने के लिए दो कमरे एवं कुछ अन्य सुविधाएं पर्याप्त हैं परन्तु इसकी जगह वह भव्य भवन बनाकर रहने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की इच्छा पूर्ति के लिए उसको अपने जीवन में कई तोड़–जोड़ करने पड़ेंगे। अनावश्यक ऊर्जा व्यय करनी पड़ेगी जिससे उसके सामान्य व्यवहार में निश्चित रूप से परिवर्तन आयेगा। अतः पर्याप्त सुरक्षा के लिए जितनी सामग्री आवश्यक हो उतना ही उपयोग में लाना इस आवश्यकता का सफल प्रबन्धन है।

9.2.3 संबद्धता एवं प्रेम की आवश्यकता (Belonging or love or attachment need)

यह आवश्यकता प्रायः सभी प्राणियों में पायी जाती हैं परन्तु मनुष्य में यह विशेष रूप से पायी जाती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज के बंधनों में रहता है और रहना चाहता है। हर व्यक्ति यह चाहता है कि वह दूसरों के साथ सम्बन्ध बनाये और दूसरे भी उसके साथ सम्बन्ध रखें। हर व्यक्ति दूसरों को प्यार करना चाहता है और दूसरों से भी प्यार प्राप्त करना चाहता है। इसी के आधार पर व्यक्तियों के बीच सामाजिक सम्बन्ध ा बनते हैं और इन सम्बन्धों के आधार पर व्यक्ति समूह में भी क्रिया करता है। समाज की संरचना में यह आवश्यकता भी एक प्रमुख कारक है। प्रायः कोई व्यक्ति अलग–अलग या अकेला रहना पसन्द नहीं करता अतः इस आवश्यकता की पूर्ति व्यक्ति समूह में रहकर करता है।

इस आवश्यकता की पूर्ति न होने पर व्यक्ति में अकेलेपन की कसक सामाजिक निर्वासन एवं तिरस्कार की अनुभूति होती है। विशेष रूप से उस समय जब व्यक्ति के पास मित्रों, परिजनों एवं संतानों का अभाव रहता है। मास्लो ने इस आवश्यकता की कमी का प्रभाव व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्धित किया और पाया कि सामाजिक गतिशीलता और औद्योगिकरण के फलस्वरूप इस आवश्यकता की कमी अनुभव होती जा रही है। पारिवारिक विघटन भी इस आवश्यकता का एक महत्वपूर्ण कारक है।

9.2.4 प्रतिष्ठा या आत्मसम्मान की आवश्यकता (Self-esteem needs)

जब व्यक्ति में दैहिक, सुरक्षात्मक एवं संबंधनशीलता और प्रेम की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है तब उसमें प्रतिष्ठा एवं सम्मान की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। हर व्यक्ति स म्मान चाहता है, प्रतिष्ठा चाहता है। इस आवश्यकता के अन्तर्गत व्यक्ति अपना आत्मसम्मान चाहता है और दूसरों को भी सम्मान देना चाहता है। मास्लो ने इस आवश्यकता को दो शक्तियों के रूप में व्यक्त किया है–

1. आत्म–सम्मान (Self-respect)
2. अन्य लोगों से प्राप्त सम्मान (Respect from others)

पहली इच्छा में व्यक्ति में स्पर्धा की इच्छा, विश्वास, वैयक्तिक शक्ति की उपयुक्तता, निष्पत्ति तथा स्वतंत्रता जैसे मूल्य होते हैं। इसमें व्यक्ति यह अनुभव करना चाहता है कि उसकी क्षमता कैसी है, वह कैसे कार्यों को कर सकता है तथा जीवन की चुनौतियों को कैसे स्वीकार कर सकता है जिससे कि उसका आत्म–सम्मान बढ़ सके।

दूसरे रूप की आवश्यकता में दूसरों से प्राप्त प्रतिष्ठा, दूसरों के अनुमोदन, अवधान, अपना पद और प्रसिद्धि आदि शामिल हैं। अच्छा कार्य करने के पश्चात् व्यक्ति प्रशंसा पाना चाहता है। आत्म–प्रतिष्ठा या आत्म संतुष्टि व्यक्ति को आत्मयोग्यता, आत्मविश्वास, शक्तियोग्यता और प्रशंसा में अपनी उपयोगिता की अनुभूति व अभिवृत्ति प्रदान करती है जो उसके व्यक्तित्व विकास में सहायक होती है। इसके विपरीत यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

न हो तो व्यक्ति में हीनता, दुर्बलता, असहायता तथा विसंगति जैसी अभिवृत्तियों का विकास हो जाता है जिससे उसके व्यक्तित्व विकास में निषेधात्मक स्व–प्रत्यक्षीकरण, निरूत्साह, असहाय तथा स्वयं और समाज को हीन समझने की प्रवृत्ति का विकास होता है।

9.2.5 ज्ञानात्मक आवश्यकताएं (Cognitive Needs)

मानव व्यवहार में प्रायः ये बात देखने को मिलती है कि व्यक्ति किसी न किसी वस्तु के बारे में जानने को उत्सुक रहता है। अर्थात् वह किसी वस्तु के बारे में ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञान की वृद्धि चाहता है। इस ज्ञान पिपासा के कारण ही व्यक्ति अपना विकास करता है एवं प्रगति की ओर आगे बढ़ता है। व्यक्ति में ज्ञान प्राप्त करने की, दूसरों को समझने की तथा नयापन प्राप्त करने की इच्छा बनी रहती है। वह दूसरों को समझने की कोशिश करता है एवं ज्ञान के उच्च स्तर पर वह अपना और दूसरी अन्य घटनाओं का विश्लेषण करता है। यह आवश्यकता व्यक्ति की उच्च श्रेणी की आवश्यकता है।

उपरोक्त एक से लेकर तीन पदों की आवश्यकताओं को मास्लो ने निम्न श्रेणी या प्राथमिक आवश्यकताएं कहा है जबकि पांच से लेकर आठ पदों की आवश्यकताओं को संबंधन की या स्वतंत्र आवश्यकता कहा है।

9.2.6 सौन्दर्यपरक आवश्यकताएं (Asthatic Needs)

इस आवश्यकता के अन्तर्गत व्यक्ति में प्राकृतिक एवं मानवीय सौन्दर्यता के प्रति समर्पित होने इच्छा होती है। वह प्रकृति की सौन्दर्यता एवं नियमों को समझने का प्रयास करता है। इस प्रकार की आवश्यकता में व्यक्ति समाज के विकास एवं भलाई के लिए समर्पित होने की इच्छा रखता है। वह आर्थिक सुरक्षा, प्रशंसा, स्तर प्रतिष्ठा एवं पौरुष प्रदर्शित करने की अपेक्षा न्याय, सत्य, अच्छाई एवं सौन्दर्य आदि का आकांक्षी होता है। ये आवश्यकताएं फ्रायड द्वारा प्रस्तुत संबंधन की आवश्यकता या परा–आवश्यकता के अन्तर्गत आती है।

9.2.7 स्व–वास्तवीकरण या आत्मसिद्धि की आवश्यकता (Self Actualization Needs)

इस प्रकार की आवश्यकता उच्च स्तरीय व्यक्ति में पायी जाती है। जब व्यक्ति उपरोक्त छः सोपानों की आवश्यकताओं का समझ लेता है तथा इनका प्रबन्धन स्वाभाविक रूप से एवं प्रभावी ढंग से कर लेता है तब उसमें इस प्रकार की आवश्यकता का जन्म होता है। इस प्रकार की आवश्यकता के बारे में मास्लो यह मानते हैं कि यह आवश्यकता व्यक्ति की सर्वोत्तम इच्छा अर्थात् अपने आपको समझने की इच्छा को अभिव्यक्त करती है। उनका यह भी मानना है कि यह आवश्यकता व्यक्ति के विशिष्ट गुणों एवं विशेषताओं से उत्पन्न होती है।

इस आवश्यकता के अन्तर्गत व्यक्ति अपना अर्थपूर्ण उद्देश्य बनाता है और उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वह अपनी क्षमताओं, अभिक्षमताओं का मूल्यांकन करता है, अपने आपका मूल्यांकन करता है और अपनी खामियों एवं कमजोरियों को समझने का प्रयत्न करता है। अपने आपका मूल्यांकन करने के पश्चात् वह अपने में अपेक्षित परिवर्तन करने का प्रयास करता है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने आपको निरपेक्ष, स्वार्थरहित एवं सबके प्रति समभाव रखने वाला प्रयत्न करता है।

9.2.8 भावातीत होने या आध्यात्मिक होने की आवश्यकता (Tanscendental or Spiritual Needs)

मास्लो के मतानुसार जब व्यक्ति की आत्मसिद्धि की आवश्यकता की पूर्ति होने लग जाती है अर्थात् व्यक्ति में आत्मसिद्धि के गुण उत्पन्न हो जाते हैं तब वह भावातीत या आध्यात्मिक होने की आवश्यकता की ओर बढ़ता है। इस आवश्यकता में व्यक्ति प्रकृति के बहुत निकट होना चाहता है, प्रकृति के रहस्यों को समझना चाहता है एवं समाधिस्त होना चाहता है। इस आवश्यकता के अन्तर्गत वह परमशांति को प्राप्त करना चाहता है तथा परमात्मा से साक्षिभूत होना चाहता है।

इस आवश्यकता को प्राप्ति में पूर्वलिखित सभी आवश्यकताएं गौण हो जाती हैं। यह आवश्यकता एक तरह से सर्वोच्च आवश्यकता है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति परम शक्ति के सम्पर्क में आ जाता है।

इस तरह व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व को समझने के लिए मास्लो ने आवश्यकताओं के क्रमानुसार सोपान बताये हैं। प्रायः क्रमशः प्रत्येक सीढ़ी या सोपान की आवश्यकता को पूर्ण करता हुआ व्यक्ति अगली सीढ़ी या सोपान की आवश्यकता को प्राप्त करता है। यह उसके व्यक्तित्व विकास का क्रम भी है। मास्लो के अनुसार प्रत्येक सीढ़ी क्रम या सोपान की आवश्यकताएं जन्मजात हैं न कि सीखी हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इसका प्रकटीकरण व्यक्ति के परिवार और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार होता है। इन आवश्यकताओं का दमन होना, इनकी पूर्ति न होना या इनका कुंठित हो जाना व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता उत्पन्न कर देता है। उदाहरण के लिए निम्न श्रेणी की आवश्यकताओं, जैसे–भूख–प्यास, गौन, निद्रा एवं निश्राम तथा प्रेम की आवश्यकताओं के कुंठित हो जाने पर व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता उत्पन्न हो जाती है और व्यक्ति के आक्रामक एवं यौन विकृति का व्यवहार उत्पन्न हो जाता है।

9.3 योग द्वारा आवश्यकताओं का प्रबंधन (Managing Needs through Yoga)

पातंजलि योग पद्धति योग पद्धतियों की श्रेष्ठतम पद्धति है। इसके आठ अवयवों में से कुछ अवयवों को ही साधने का यदि प्रयत्न किया जाये तो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं का प्रबंधन प्रभावी ढंग से कर सकता है। ध्यान की प्रचलित विभिन्न प्रणालियों एवं विधियों के द्वारा भी आवश्यकताओं का प्रबंधन संभव है। पातंजलि योग–पद्धति के यम और नियम के द्वारा व्यक्ति अपनी कई आंतरिक और वाह्य आवश्यकताओं पर नियंत्रण करना सीख लेता है। इसी तरह योगासनों द्वारा शरीर में उत्पन्न होने वाले वर्ज्य पदार्थों का परि करण कर शरीर में उत्पन्न होने वाली अनावश्यक आवश्यकताओं पर नियंत्रण करना व्यक्ति के लिए सहज हो जाता है। प्राणायाम मानसिक एवं शारीरिक विकारों को जो व्यक्ति में अनावश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकार उत्पन्न करते हैं, का परिष्करण कर उसे ज्ञानदृष्टि प्रदान करता है जिससे वह अपनी आवश्यकताओं की वास्तविकता को समझ सके।

धारणा, ध्यान एवं समाधि मास्लो द्वारा बताये गये अन्तिम तीन सोपानों की पूरक क्रिया के समान ही है। धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा व्यक्ति सौन्दर्यपरक आवश्यकताओं, स्व–वास्तवीकरण या आत्मसिद्धि की आवश्यकताओं, भावातीत होने की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकता है।

ध्यान की अन्य पद्धतियों के नियमित अभ्यास से भी अन्तर्दृष्टि का विकास होता है जो व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं को समझने और उन पर नियंत्रण करने के लिए काफी सहायक सिद्ध होती है।

9.4 आन्तरिक जगत् (Internal World)

जैसाकि हमने ऊपर लिखा है व्यक्ति की आवश्यकताओं का संबंध आन्तरिक और बाह्य जगत् दोनों से होता है। आवश्यकताओं की उत्पत्ति आन्तरिक और बाहरी जगत् दोनों से होती है और इनकी पूर्ति भी दोनों जगत् से होती है। उदाहरण के लिए भूख–प्यास का उत्पन्न होना। यह एक आन्तरिक आवश्यकता है परन्तु इसकी पूर्ति हम बाह्य जगत् या भौतिक जगत् से करते हैं। इसी तरह अन्य आवश्यकताओं की उत्पत्ति एवं उनकी पूर्ति के स्थान आन्तरिक और बाह्य दोनों हैं। आवश्यकताओं के अतिरिक्त हमारे आन्तरिक जगत् में कुछ ऐसी क्रियाएं भी होती हैं जो हमारी क्षमता अभिक्षमताओं को प्रदर्शित करती हैं। जैसे–चिन्तन, कल्पना, बुद्धि, स्मृति, इच्छा शक्ति एवं अन्तर्दृष्टि ये सभी क्षमताएं हमारे आन्तरिक जगत् नें होती हैं।

यहां हम संक्षेप में आंतरिक जगत् के कुछ ऐसे कारकों का वर्णन करेंगे जो व्यक्ति के व्यावहारिक पक्ष में परिलक्षित होते हैं। विशेष रूप से मनु य में उत्पन्न होने वाले विचार, चिंतन, विचार–शक्ति, विचारों की तीव्रता, सकारात्मक चिंतन एवं नकारात्मक चिंतन के बारे में विचार करेंगे।

9.4.1 चिंतन एवं विचार (Thinking and Thoughts)

मनुष्य उच्च स्तर का चिंतन करने वाला प्राणी है। प्रायः सभी मनुष्यों में चिंतन प्रक्रिया सतत् रूप से चलती रहती है। स्वस्थ चिंतन करने वाले मनुष्य मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ रहते हैं जबकि दुश्चिंतन करने वाले व्यक्ति प्रायः शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ रहते हैं। मनोवैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों के अनुसार मनोदैहिक (Thinking and Thoughts) व्याधियां, दुश्चिंतन का परिणाम है जबकि सकारात्मक चिंतन या विचारों से व्यक्ति मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सकारात्मक या विधायक चिंतन के अन्तर्गत व्यक्ति का सोच बड़ा व्यापक एवं पक्षपात रहित होता है। चिंतन व उसका दृष्टिकोण अनेकान्तवादी एवं सापेक्ष होता है। सकारात्मक चिंतन करने वाले व्यक्ति प्रायः मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा के भाव रखते हैं। वह जनहित के कल्याण की बात सोचता है। ऐसे व्यक्ति जो सकारात्मक चिंतन करते हैं, दूसरों की भलाई के लिए एवं दूसरों का दुःख समझते हुए उनको दूर करने का चिंतन करते हैं। अपनी आवश्यकताओं के बारे में भी वे सकरात्मक चिंतन करते हैं।

दूसरी ओर नकारात्मक चिंतन करने वाले व्यक्ति शारीरिक और मानसिक रूप से अस्वस्थ रहते हैं। उनके विचारों में स्थिरता नहीं रहती तो मस्तिष्क में विचारों की तीव्रता बढ़ जाती है। नकारात्मक चिंतन करने वाले व्यक्ति अपनी मानसिक ऊर्जा को अन्य लोगों के बारे में बुरा चिंतन करके खर्च करते रहते हैं। इतना ही नहीं नकारात्मक चिंतन करने वाले व्यक्ति अपनी मानसिक ऊर्जा को दूसरे लोगों के प्रति भाडयंत्र रचने, उनका काम बिगाड़ने एवं उनका बुरा करने के लिए ही खर्च करते हैं। नकारात्मक चिंतन वाले व्यक्तियों का दृष्टिकोण व्यापक नहीं होता तथा उनमें मैत्री, करूणा, मुदिता एवं उपेक्षा के भाव नहीं के बराबर होते हैं। दूसरों के प्रति द्वेषता का चिंतन इनमें प्रायः बना रहता है। इसी प्रकार का चिंतन करने से कालान्तर में इन व्यक्तियों में मनोशारीरिक व्याधियां उत्पन्न हो जाती है जो उनके जीवन के स्व–प्रबन्धन के लिए बहुत बड़ी बाधक सिद्ध होती हैं। इस प्रकार के चिंतन में व्यक्ति विध्वंसात्मक चिंतन भी करता है। आन्तरिक जगत् में इस प्रकार का चिंतन व्यक्ति को वाह्य जगत् में इसके अनुरूप कार्य करने के लिए बाध्य करता है।

सभी व्यक्तियों को मैत्री करना अच्छा लगता है तब हम किसी से शत्रुता क्यों रखें। जब शत्रुता का भाव नहीं है तब व्यक्ति में स्वतः विधायक चिंतन प्रारम्भ हो जाता है। अतः इस प्रकारके भाव एवं विधायक चिंतन को अपनाते हुए व्यक्ति अपनी मानसिक ऊर्जा का क्षरण रोक सकता है। व्यक्ति अपने आन्तरिक जगत् में नकारात्मक चिंतन का प्रबंधन करते हुए अर्थात् उस पर नियंत्रण करते हुए सकारात्मक चिंतन की ओर जाता है तब उसका प्रबंधन सही दिशा में होता है।

योग की विभिन्न क्रियाओं द्वारा एवं ध्यान द्वारा आन्तरिक जगत् के विचारों को संतुलित किया जा सकता है एवं नकारात्मक चिंतन से छुटकारा पाया जा सकता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा के सूत्र आन्तरिक जगत् के प्रबन्धन में महत्त्वपूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होते हैं। नियमित रूप से यौगिक क्रियाओं की अभ्यास एवं ध्यान करने से भी व्यक्ति अपने आन्तरिक जगत् में उत्पन्न होने वाले विचारों को व्यवस्थित कर सकता है एवं आन्तरिक जगत् का सही ढंग से प्रबन्धन कर सकता है।

बोध प्रश्न :

1. हमारी शारीरिक आवश्यकताएं कौन कौनसी हैं? बतलाइए।
2. भावातीत होने का क्या अर्थ है?
3. योग द्वारा आवश्यकताओं का प्रबन्धन कैसे संभव है?

9.4.2 स्वास्थ्य एवं जीवन शक्ति का संरक्षण (Maintenance of Health and Vitality)

स्वास्थ्य एवं जीवनशक्ति को बनाए रखने का तात्पर्य यह नहीं है कि केवल हम अच्छा खान–पान करें एवं व्यायाम करें। अच्छा खान–पान एवं व्यायाम ही केवल अच्छे स्वास्थ्य एवं जीवन शक्ति बनाए नहीं रख पाता अपितु इसमें कई अन्य और भी बातें हैं जिन पर हमें ध्यान देना चाहिए। अच्छे स्वास्थ्य एवं जीवनशक्ति को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने भावों, संवेगों, मानसिक क्रियाओं के प्रति भी समझदारी रखें एवं जागरूक रहें। अपने प्रति आत्मनिष्ठ बनें। सम्पूर्ण स्वास्थ्य, स्वस्थ शरीर एवं मस्तिष्क दोनों से बनता है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए हमें अपने विचारों को समझने, शरीर, मन, मस्तिष्क एवं भावों की सूचनाओं को भी समझना अत्यावश्यक है। जब हम अपने शरीर एवं मन–मस्तिष्क को समझना सीख जाते हैं तो अपने आन्तरिक जगत् एवं बाह्य जगत् में तालमेल या अच्छा समायोजन और दोनों में अच्छा संतुलन बनाए रख सकते हैं तथा इस प्रक्रिया से अपने स्वास्थ्य भी बनाए रख सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.4.3 अपने शरीर के प्रति विवेकी बनें (Be aware with the Wisdom of Your Body)

कई व्यक्तियों को यह समझने में कोई परेशानी या दिक्कत नहीं होती है कि उन्हें भूख लगी है या उनके शरीर का कोई भाग दर्द कर रहा है या उन्हें नींद आ रही है। अतः ऐसे व्यक्ति अपने शरीर के प्रति सजग हैं। कई व्यक्तियों को उपरोक्त क्रियाओं का भाव नहीं रहता एवं इनके प्रति उनकी सजगता भी नहीं रहती है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति अपने शरीर पर ध्यान नहीं देते । उन्हें अपने शरीर के प्रति सजग रहने में कठिनाई होती है। वास्तव में अच्छे स्वास्थ्य और जीवन शक्ति बनाए रखने के लिए हमें अपना कुछ समय शरीर पर खर्च करना चाहिए। शरीर की प्रेक्षा करनी चाहिए और शरीर के प्रत्येक भाग को समझते हुए उसमें हो रही क्रियाओं पर ध्यान देना चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि शरीर का कौन–सा भाग आपकी पकड़ में या ध्यान में आ जाता है और कौन–से भाग में सम्पर्क करने में कठिनाई होती है। शरीर के किस भाग में तनाव या दबाव है? इस तरह यह भी देखना चाहिए शरीर में गति, शक्ति एवं स्फूर्ति कितनी है? कैसी है? शरीर के किसी भाग को ध्यान में लाने के लिए जानबूझ कर अपने संवेदनों एवं स्पन्दनों को बढ़ाएं। अब देखें कि कौन–सा अंग आपको क्या सूचना दे रहा है? इसका विश्लेषण करने का प्रयत्न करें। उसमें किसी भी प्रकार की अस्वस्थता हो तो उसे ठीक करने का प्रयत्न करें।

9.4.3.1 शरीर प्रेक्षा का महत्व (Important of Perception of Body)

इस प्रक्रिया को साधने में कायोत्सर्ग का महत्वपूर्ण योगदान है। विशेष रूप से संपूर्ण कायोत्सर्ग का बड़ा महत्व है। इसमें पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक शरीर के प्रत्येक अंग एवं अवयव पर चित्त को ले जाकर उसकी प्रेक्षा की जाती है और उसमें होने वाले प्रकम्पनों एवं क्रियाओं का अनुभव किया जाता है। इससे हम अपने शरीर के अन्दर होने वाले प्रकम्पनों एवं स्पन्दनों के प्रति जागरूक हो जाते हैं और इससे हमें अपने स्वास्थ्य के बारे में पूरी जानकारी मिल जाती है। यदि हमारे शरीर के किसी अंग या भाग में किसी भी प्रकार की तकलीफ या अस्वस्थता है तो उसका तुरन्त हमें आभास हो जाता है। इस तरह से शरीर से हमारा मैत्रीपूर्ण संपर्क हो जाता है।

इस प्रकार की प्रक्रिया के बाद यदि हम संपूर्ण कायोत्सर्ग करें तो शिथिलीकरण प्रक्रिया द्वारा शरीर के उन अंगों को सुधारा जा सकता है या उन अंगों की प्रतिपूर्ति की जा सकती है जिनमें किसी प्रकार की तकलीफ या व्याधि है। उपरोक्त प्रक्रियाओं से हम अपने शरीर को स्वस्थ बनाये रख सकते हैं। इससे शरीर में किसी प्रकार के तनाव या दबाव को कम किया जा सकता है तथा मिटाया भी जा सकता है। इससे शरीर की शक्ति, गति एवं स्फूर्ति को भी जाना जा सकता है।

9.4.4 हार्दिक संवेग (Heart-felt emotions)

समाज में प्रायः व्यक्ति को अपने भावों को दबाना सिखाया जाता है। इन भावों को लम्बे समय तक या दीर्घकाल तक दबाने या दमित करने से पुनः उनसे संपर्क नहीं हो पाता और फिर वह इन भावों को प्रकट करने या विसर्जित करने में असमर्थ हो जाता है।

महिलाओं में भावों को प्रकट करने से क्रोध प्रकट करने की क्षमता कम हो जाती है जबकि पुरुषों में भय और दुःख दबाया जाता है। जब इस प्रकार के भावों का दमन निरन्तर होता रहता है तो इसके परिणामस्वरूप शारीरिक या मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अपने भावों और मनोभावों का विसर्जन करना सीखें। इससे आपकी जीवनशक्ति या बौद्धिकता में वृद्धि होती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रथम स्तर पर आप अपने भावों को जानें एवं भावों में भेद करना भी जानें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. व्यक्ति की आवश्यकताओं के बारे में मास्लो के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
2. योग द्वारा आवश्यकताओं का प्रबन्धन किस तरह सम्भव है? स्पष्ट कीजिए।
3. आंतरिक जगत् क्या है? स्पष्ट करें।
4. स्वास्थ्य एवं जीवन शक्ति का संरक्षण कैसे सम्भव है? स्पष्ट करें।

9.6 संदर्भ पुस्तकें

1. The Personal Management Hand Book-Johan Mulligan, Human Potential Resource Group, Universtiy of Surrety.
2. Psychology for Living: Adjustment Growth, and Behaviour Today-Estawood Atwater, Prentice-Hall of India, Private Limited, New Delhi

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–10 : समय प्रबन्धन एवं जीवन विज्ञान की विभिन्न अवस्थाएं, समस्या, निर्णय एवं योजना

संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 समय प्रबन्धन

10.2.1 समय प्रबन्धन क्या है?

10.3 समय नष्ट करने वाले कारक

10.3.1 स्वयं से जुड़े कारक

10.3.1.1 मनःस्थिति

10.3.1.2 आराम पसन्द प्रवृत्ति

10.3.1.3 स्वास्थ्य

10.3.1.4 आदतें

10.3.2 पारिवारिक एवं सामाजिक कारक

10.3.2.1 आगन्तुक

10.3.2.2 मित्रगण

10.3.2.3 अनुशासनहीनता

10.3.2.4 अवस्थाएं

10.3.2.5 निरर्थक सामाजिक गोष्ठियां

10.3.2.6 अनावश्यक आलोचनात्मक बैठकें

10.3.3 व्यवसाय संबंधी कारक

10.3.3.1 अनावश्यक बैठकें

10.3.3.2 दूरभाष यंत्र का दुरुप्योग

10.3.3.3 अस्पष्ट संप्रेषण

10.3.3.4 अस्त–व्यस्त अधिकारी वर्ग

10.3.3.5 ना कहने में अक्षम

10.3.3.6 सहकर्मी

10.3.3.7 कार्यदशाएं

10.3.4 अन्य कारक

10.3.4.1 यातायात साधनों का सही नहीं होना

10.3.4.2 प्रतीक्षा करना

10.3.4.3 व्यवस्थाएं सही नहीं होना

10.3.4.4 दूरदर्शनों का दुरुपयोग

10.3.4.5 अनावश्यक चिंतन

10.4 समय का प्रबन्धन

10.4.1 समय का विश्लेषण

10.4.1.1 बाह्य आवश्यकताओं पर समय खर्च

10.4.1.2 आन्तरिक आवश्यकताओं पर समय खर्च

10.4.1.3 अप्रत्याशित या आकस्मिक संकट या आपात स्थिति में समय खर्च

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.4.2 प्रतिदिन के समय का विश्लेषण
10.4.2.1 प्राथमिकताएं एवं उनकी व्यवस्था
10.5 रागय प्रबन्धन के गुख्य बिन्दु
10.6 प्रश्नावली
10.7 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 प्रस्तावना

गत पाठ में आपने व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं उनके आन्तरिक जगत के प्रबन्धन के बारे में अध्ययन किया। इनके अतिरिक्त स्वास्थ्य एवं शक्ति के संरक्षण के बारे में भी अध्ययन किया। इस पाठ में समय प्रबन्धन के बारे में अध्ययन करेंगे।

व्यक्ति के जीवन की प्रगति में समय का प्रबन्धन बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जो व्यक्ति अपने समय का प्रबन्धन करने में कुशल होते हैं, वे जीवन के हर क्षेत्र में सफल रहते हैं। यदि हम महान् पुरुषों के जीवनियों के बारे में पढ़े तो उनमें यह बात बड़े स्पष्ट रूप से सामने आती है कि वे अपने जीवन में समय को कितना महत्व देते थे। कई महान् व्यक्ति अपने प्रतिदिन के कार्यों में एक–एक मिनट का हिसाब रखते थे। वे अपने जीवन के एक मिनट को भी बड़ा महत्वपूर्ण मानते थे और उसका उपयोग बड़ी सूझबूझ से करते थे।

10.1 उद्देश्य

1. इस पाठ के अध्ययन के बाद समय प्रबन्धन क्या है? इसके बारे में आप जान पाएंगे।
2. समय नष्ट करने वाले कारकों के बारे में भी आप जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
3. समय का प्रबन्धन किस प्रकार सम्भव है, इसका अध्ययन भी आप कर पाएंगे।
4. समय के प्रबन्धन के लिए विभिन्न प्रकार की सारणियों का अवलोकन आप इस पाठ में कर पाएंगे।
5. इस पाठ के अध्ययन के बाद आप समय प्रबन्धन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के उत्तर सहज प्रकार से दे पाएंगे।

10.2.0 समय प्रबन्धन (Time-Management)

व्यक्ति के जीवन की प्रगति का मुख्य कारक समय है। प्राय: कहा जाता है कि कमान से निकला तीर वापस नहीं आता, जिह्वा से निकले शब्द वापस नहीं लौटते, बीता यौवन वापस नहीं आता और गुजरा हुआ समय वापस नहीं लौटता। अत: समय का व्यक्ति के जीवन में बड़ा महत्व है। समय बड़ा मूल्यवान् होता है। वर्तमान समय में जहां वैज्ञानिक विकास चरम सीमा पर है वही व्यक्ति को समय की समस्या का सामना करना पड़ता है। समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। समय का सही ढंग से प्रबन्धन जहां व्यक्ति को उसकी उन्नति के चरम शिखर पर पहुंचा देता है वहीं समय का कुप्रबन्धन व्यक्ति को कदम–कदम पर असफल बना देता है। समय का प्रबन्धन करना एक कला है। प्राय: अनुभव में आता है कि समय का सही प्रबन्धन नहीं होने से हम कई कार्यों को ठीक ढंग से सम्पन्न नहीं कर पाते। समय बड़ा मूल्यवान्, बलवान होता है और समय के आगे ही सभी लोग नतमस्तक होते हैं। समय को नष्ट करने का परिणाम बड़ा भयंकर होता है। कहा भी गया है कि 'जो समय को बरबाद करता है, समय उसको बरबाद कर देता है।'

विद्वानों ने, दार्शनिकों ने और वैज्ञानिकों ने समय के मूल्य को समझा। हम यदि कुछ बड़े एवं महान् लोगों का जीवन चरित्र देखें तो उसमें सबसे प्रमुख बात समय के प्रबन्धन की ही आती है। महात्मा गांधी, आइन्सटीन, आचार्य तुलसी आदि सभी अपने समय के मूल्य को समझते थे तथा ये सभी समय के प्रबन्धन की कला में प्रवीण थे। इसी कारण ये अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हुए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10.2.1 समय प्रबन्धन क्या है? (What is Time Management)

समय अनुत्क्रमणीय (Irreversable) एवं अद्वितीय (Irreplacable) होता है। समय खराब करने से तात्पर्य अपना जीवन खराब करना है। यदि हम अपने समय का महत्व जानते हैं तो लोग हमारा महत्व जानेंगे। यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि हम अपने आपको और समय को कितना मूल्यवान् मानते हैं। हम अपने आप का कितना प्रबन्धन कर सकते हैं।

वास्तव में समय प्रबन्धन, समय नष्ट करने वाले कारकों का और समय को बचाने वाले कारकों का प्रबन्धन है। हम किस तरह से उन कारकों पर नियंत्रण कर सकते हैं जो हमारे समय को नष्ट करते हैं। दूसरी ओर हम उन कारकों को किस तरह से प्रोत्साहित कर सकते हैं जिनसे हमारे समय में बचत होती है या जिनके द्वारा हम समय का सही प्रबन्धन कर सकते हैं। जब हम समय के प्रति लापरवाह होते हैं तो समय नष्ट करने वाले कारक हम पर हवी हो जाते हैं। अत: विभिन्न स्थिति में अपना सही स्व-प्रबन्धन करने के साथ-साथ हम समय को मूल्यवान् माने तो यह जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

समय को सही दिशा में खर्च करना, समय का अच्छा प्रबन्धन है और समय को अनावश्यक कार्यों में खर्च करना या गलत कार्यों में खर्च करना निश्चित रूप से समय का कुप्रबन्धन है। युवा पीढ़ी में प्राय: यह देखा जाता है कि अधिकांश वयस्क अपना सनय अनावश्यक कार्यों में खर्च कर देते हैं। संभवत: समय के मूल्य के बारे में उनमें सही दिशाबोध का पूर्ण ज्ञान नहीं होता।

समय नष्ट करने वाले कुछ कारकों के भंवर में वे ऐसे फंस जाते हैं कि वे उससे चाहकर भी उबर नहीं पाते। हम आगे कुछ ऐसे कारकों का वर्णन करेंगे जो व्यक्ति के समय को प्राय: नष्ट किया करते हैं।

10.3 समय नष्ट करने वाले कारक (Time Waster or Time Robbers)

समय नष्ट करने वाले कारकों को हम "समय के लुटेरे" भी कह सकते हैं। मनुष्य के जीवन में समय नष्ट करने वाले कारकों को मुख्य रूप से हम चार भागों में बांट सकते हैं-

1. स्वयं से जुड़े कारक (Time wasters related to self)
2. पारिवारिक एवं सामाजिक कारक (Time wasters related to Family and Society)
3. व्यवसाय संबंधी कारक (Time wasters related of Occupation)
4. अन्य कारक (Other Time Wasters)

10.3.1 स्वयं से जुड़े कारक (Time Wasters related to self)

व्यक्ति से संबंधित समय नष्ट करने वाले कारकों में कुछेक ऐसे कारक होते हैं जो व्यक्ति की मन:स्थिति, उसकी प्रकृति, उसके स्वास्थ्य एवं उसकी आदतों से संबंधित होते हैं। व्यक्ति के स्वयं से संबंधित समय नष्ट करने वाले कारकों को भी हम चार श्रेणियों में रख सकते हैं, जो निम्नानुसार है-

1. मन:स्थिति (Mood)
2. आराम पसन्द प्रवृत्ति (Easy going nature)
3. स्वास्थ्य (Health)
4. आदतें (Habits)

10.3.1.1 मन:स्थिति (Mood)

व्यक्ति की मन:स्थिति और समय का बहुत गहरा सम्बन्ध है। बहुधा यह देखा गया है कि जिन लोगों की मन:स्थिति सही नहीं होती वे किसी भी कार्य को पूरा करने में अनावश्यक समय खर्च करते हैं। मन की अधीर स्थिति एवं अस्थिर मानसिकता वाले व्यक्ति किसी कार्य को सही ढंग से एवं समय पर नहीं कर पाते जिससे उनका समय आवश्यकता से अधिक खर्च हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.3.1.2 अराम पसन्द प्रवृत्ति (Easy going nature)

व्यक्ति की इस प्रकार की प्रवृत्ति में व्यक्ति का आलस्य एवं कार्य को आगे के समय तक टालते रहने की प्रवृत्ति मुख्य होती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति से व्यक्ति समय पर कार्य नहीं करता और आज के काम को कल पर या अनिश्चित समय तक टालता रहता है। इससे अनावश्यक रूप से समय की ज्यादा खपत होती है और कार्य भी समय पर सम्पन्न नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त कार्य को सम्पन्न करने में बहुत अधिक समय नष्ट हो जाता है।

10.3.1.3 स्वास्थ्य (Health)

समय नष्ट करने वाले कारकों में व्यक्ति का स्वास्थ्य भी एक महत्त्वपूर्ण कारक है। मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ न रहने के कारण मनुष्य (व्यक्ति) कार्य का निष्पादन करने में आवश्यकता से कई गुना अधिक समय खर्च कर देता है। अस्वस्थता की स्थिति में व्यक्ति का समय तो नष्ट होता ही है। साथ ही उसके अन्य कार्यों के निष्पादन में भी विलंब होता है।

10.3.1.4 आदतें (Habits)

कई व्यक्तियों का समय उनकी आदतों के कारण नष्ट होता है। गलत आदतों के कारण व्यक्ति विशेष क्रिया को बार-बार दोहराता है जिसमें उसका मूल्यवान् समय नष्ट होता है। कुछ बुरी आदतें जैसे बिना मतलब किसी से बातें करने या गप्पें मारने की आदत, व्यर्थ इधर-उधर घूमने की आदत, व्यर्थ में किसी के पास जाकर बैठने की आदत, गली-मोहल्ले या नुक्कड़ों पर बैठकर ताश खेलना या गप्पें मारने की आदतों में व्यक्ति अपने जीवन का बहुमूल्य समय नष्ट कर देता है।

10.3.2 पारिवारिक एवं सामाजिक कारक (Time wasters related to Femily and Society)

समय नष्ट करने वाले इस प्रकार के कारकों में विशेष रूप से निम्न कारक आते हैं-

i. आगन्तुक (Visitors)
ii. मित्रगण (Friends)
iii. अनुशासनहीनता (Indiscipline)
iv. अव्यवस्थाएं (Disorderiness)
v. निरर्थक सामाजिक गोष्ठियां
vi. अनावश्यक आलोचनात्मक बैठकें

10.3.2.1 आगन्तुक (Visitors)

परिवार में सामाजिक शिष्टता के नाते आगन्तुकों का सत्कार एवं सम्मान किया जाता है परन्तु प्राय: ऐसे आगन्तुक आकर परिवार में टिक जाते हैं जिनके आने का कोई उद्देश्य नहीं होता। इनके पास कुछ कार्य न होने से ये खाली रहते हैं और अपना खाली समय व्यतीत करने के लिए अन्य लोगों के घर पहुंच जाते हैं। वहां ये अनावश्यक बाते करते हैं या गप्पें मारते रहते हैं। परिणामस्वरूप ये अपना भी समय नष्ट करते हैं और दूसरों का भी समय नष्ट करते हैं। पास-पड़ोस में रहने वाले इस प्रकार के लोग कोई-न-कोई बहाना बनाकर दूसरों के घर पहुंच जाते हैं और बतियाते रहते हैं। अत: समझदार समय प्रबन्धक ऐसे व्यक्तियों से दूर रहते हैं। उनकी व्यर्थ बातों में वे रूचि नहीं लेते हैं और उनकी व्यर्थ बातों को ये समझदार व्यक्ति सुना-अनसुना कर उन्हें शीघ्रता से विदा कर देते हैं।

10.3.2.2 मित्रगण (Friends)

समाज में मित्रगण दो प्रकार के होते हैं एक इस प्रकार के मित्र होते हैं जो समय का मूल्य पहचानते हुए अर्थयुक्त एवं सृजनात्मक कार्यों में समय का सदुपयोग करते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे मित्र भी होते हैं जो निरर्थक बातों एवं अनावश्यक कार्यों में स्वयं का और अपने मित्रों का समय व्यर्थ में ही बरबाद करते हैं समझदार व्यक्ति ऐसे मित्रों को दरकिनार रखते हुए अपने समय-प्रबन्धन में उनका हस्तक्षेप

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नहीं होने देते। समय खराब करने वाले मित्र गप्पें-हांकने, दिवास्वप्न देखने और दिखाने में प्रवीण होते है। यह प्राय: उनकी आदतों में निहित होता है। कई बार ऐसे मित्र व्यक्ति को चलचित्र (Cinema) में, क्लबों में या अनावश्यक गोष्ठियों में ले जाकर उनके अमूल्य समय को नष्ट करते है। अत: सही समय -प्रबन्धन वाले व्यक्तियों को इन सभी कार्यक्रमों के प्रति एवं ऐसे मित्रों के प्रति सतर्क एवं सावधान रहना चाहिए।

10.3.2.3 अनुशासनहीनता (Indiscipline)

परिवार एवं समाज में जब अनुशासनहीनता की बीमारी पैदा हो जाती है तब कोई भी कार्य निर्धारित समय पर सम्पन्न नहीं हो पाता। इन्हें सम्पन्न करनेमें व्यक्ति को अनावश्यक रूप से समय खर्च करना पड़ता है। वर्तमान समय में अनुशासनहीनता की समस्या दिनो-दिन बढ़ती जा रही है। परिवार का मुखिया एवं परिवार के सदस्य अनुशासन में नहीं रह पाते जिसके फलस्वरूप पारिवारिक कार्यों का निष्पादन करने में अनावश्यक एवं अतिरिक्त समय खर्च करना पड़ता है।

अत: समय का मूल्यांकन करते हुए परिवार के सभी सदस्यों को समय के प्रति सचेत रहते हुए प्रत्येक कार्य को यथासमय सम्पन्न करना चाहिए। इससे समय की बचत होगी साथ ही साथ अनुशासन की भावना भी सुदृढ़ होगी।

10.3.2.4 अवस्थाएं (Disorderiness)

जब व्यक्ति की समाज एवं परिवार में अव्यवस्थाएं होती है तब भी व्यवस्थाएं बनाए रखने के लिए समय व्यय करना पड़ता है।समाज में व्याप्त पाखंड एवं पोंगापंथी क्रियाएं, आडम्बर आदि कुछ ऐसी अव्यवस्थाएं है जिनमें फंसकर व्यक्ति अपना समय नष्ट करता है। अत: इनमें लिप्त न होकर एवं इन बुराइयों को दूर कर व्यक्ति समय की बचत कर समय का सदुपयोग करते हुए समय का कुशल प्रबन्धन कर सकता है।

10.3.2.5 निरर्थक सामाजिक गोष्ठियां

व्यक्ति के अमूल्य समय का अधिकांश भाग समाज की निरर्थक गोष्ठियों में खर्च हो जाता है। छोटी-छोटी बातों को लेकर अनावश्यक रूप से तनावों का पैदा होना और उनके ऊपर निरर्थक चर्चाएं करना बहुमूल्य समय की बर्बादी है। यह एक ऐसा कारक है जो कई व्यक्तियों का सामूहिक रूप से समय की बर्बादी करता है।

10.3.2.6 अनावश्यक आलोचनात्मक बैठकें

मनुष्य जाति में बहुत कम ऐसे व्यक्ति होते हैं जो किसी की सही प्रशंसा करते हैं एवं उन्हें प्रोत्साहित करते हैं। प्राय: यह देखने में आता है कि नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए व्यक्ति एक-दूसरे की बुराई या कटाक्ष (काट) करते हुए अपना अमूल्य समय नष्ट करते हैं। किसी को नीचा दिखाने एवं उसके उद्देश्यपूर्ण मार्ग से भटकाने के लिए षड्यंत्र रचने में भी व्यक्ति अपना समय नष्ट करता है। दूसरों की बुराइयों के ऊपर टिप्पणियां करने एवं दूसरों की बुराइयों को बढ़ा चढ़ाकर दूसरे लोगों को बताने में अपनी मानसिक एवं शारीरिक ऊर्जा को खर्च करते हुए समय का अपव्यय करते हैं।

ऐसी स्थिति में व्यक्ति को सावधान होकर इस प्रकार की क्रियाओं से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के प्रति अनेकांतिक दृष्टिकोण रखते हुए सकारात्मक विचार रखने चाहिए। इससे व्यक्ति न केवल अपनी शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा का संरक्षण करेगा अपितु अपने मूल्यवान् समय की ही बचत करेगा। हमें एक-दूसरे की अर्थहीन आलोचनाओं से बचना चाहिए जिससे समय की अच्छी बचत होती है।

10.3.3 व्यवसाय संबंधी कारक (Time wasters related to Occupation)

व्यवसाय संबंधी समय नष्ट करने वाले कारकों में निम्न कारक प्रमुख है-

i. अनावश्यक बैठकें—(Unneccessary meeting)
ii. दूरभाष यंत्र का दुरुपयोग (Misuse of telephone instrument)
iii. अस्पष्ट संप्रेषण (Unclear Communication)
iv. अस्त-व्यस्त अधिकारी वर्ग (Confused Authority)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

v. ना कहने में अक्षम (Inabilty to say 'No')
vi. सहकर्मी (Co-workers)
vii. कार्यदशाएं (Working conditions)

10.3.3.1 अनावश्यक बैठकें (Unneccessary meeting)

व्यावसायिक क्षेत्र में अनावश्यक बैठकें व्यक्ति का समय खराब करनेवाला एक प्रमुख कारक है। कई बार देखा जाता है कि एक ही प्रकरण को लेकर कई बार अनावश्यक बैठकें तो केवल चाय-पानी, नास्तें एवं गप्पें मारने में ही सम्पन्न हो जाती है और इस तरह व्यवसाय संबंधी समय का एक बड़ा भाग इसमें खर्च हो जाता है। कई कार्यालयों में कई बार बैठकें मात्र दिखावे के लिए होती है तो कई बैठकें मात्र खानापूर्ति के लिए होती है। कई बैठकों में ऐसे व्यक्तियों को शामिल कर लिया जाता है जिनका संबंध उस बैठक से है ही नहीं। अत: इस तरह की अनावश्यक बैठकें व्यक्तियों का समय खर्च करती है।

10.3.3.2 दूरभाष यंत्र का दुरुपयोग (Misuse of telephone instrument)

समय नष्ट करने वाले कारकों में दूरभाष यंत्र के दुरुपयोग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कई लोग इस यंत्र का दुरुपयोग करते हुए इससे चिपके रहते हैं एवं बतियाते रहते हैं। बार–बार इस यंत्र का प्रयोग करते हुए व्यक्ति अपना एवं दूसरों का भी समय नष्ट करता है। टेलीफोन वर्तमान में एक अतिसामान्य एवं सहज उपलब्ध सेवा है। आजकल लगभग प्रत्येक घर में टेलीफोन उपलब्ध है तथा प्रत्येक व्यक्ति के पास मोबाइल फोन है। अतः लोग छोटी–छोटी एवं निरर्थक बातों के लिए एक–दूसरे को टेलीफोन करते रहते हैं। विशेष रूप से महिलाएं टेलीफोन पर लम्बे समय तक बातें करती हैं। कभी–कभी तो महज गप्पें मारने के लिए या दिल्लगी के लिए भी वे टेलीफोन पर बतियाती रहती हैं। इससे वे टेलीफोन सेवा का दुरुपयोग तो करती ही हैं, साथ ही साथ वे अपना और दूसरों का भी समय नष्ट करती हैं।

10.3.3.3 अस्पष्ट संप्रेषण (Unclear Communication)

अस्पष्ट संप्रेषण से भी समय नष्ट होता है। अस्पष्ट संप्रेषण से सामने वाले को कोई बात समझ में नहीं आती। अतः इस बात को समझाने में अनावश्यक रूप से समय नष्ट होता है अतः संप्रेषण स्पष्ट होना चाहिए, जिससे कि अगला व्यक्ति बात को ठीक ढंग से समझ सके और समय भी नष्ट नहीं हो पाये।

10.3.3.4 अस्त–व्यस्त अधिकारी वर्ग (Confused Authority)

जब किसी संस्थान में अधिकारी वर्ग की स्थितियां एवं उनके अधिकार स्पष्ट न हो तो अधीनस्थ कर्मचारियों का समय बहुत ज्यादा खर्च होता है। अस्त–व्यस्त अधिकारी अपने–अपने हिसाब से आदेश देते रहते हैं, कर्मचारी किसके आदेश की पालना करे और कौन–सा कार्य करे, इस उलझन में पड़ जाते हैं तथा उनका समय नष्ट होता रहता है। कार्य भी समय पर सम्पन्न नहीं हो पाता।

10.3.3.5 ना कहने में अक्षम (Inability to say 'No')

कभी–कभी व्यक्ति किसी कार्य के लिए शिष्टाचार के नाते या संकोचवश उन कार्यों के लिए भी न नहीं कह सकते जिनको करने में वे अक्षम हैं। बाद में जब वे कार्य को करने लगते हैं तो उन कार्यों को सम्पन्न करने में उन्हें बहुत समय खर्च करना पड़ता है तथा कार्य भी समय पर सम्पन्न नहीं हो पाता। जब व्यक्ति अपनी क्षमताओं से परे जाकर कार्य करने का प्रयत्न करता है तो समय अधिक नष्ट होता है। अतः जिस कार्य को व्यक्ति सम्पन्न न कर सके उसके लिए वह स्पष्ट रूप से "ना" कर दे। इससे उसके समय की बचत होती है।

10.3.3.6 सहकर्मी (Co-Workers)

कार्यालयों में सहकर्मी भी समय नष्ट करने वाले विशेष कारक होते हैं। कार्य समय में भी गप्पें मारना, हंसी–ठिठोली करना और अनावश्यक बाते करना समय की बर्बादी के मुख्य कारण बन जाते हैं। कई ऐसे कर्मचारी जो कुसमायोजित होते हैं, न तो खुद ठीक ढंग से कार्य करते हैं और न ही दूसरों को सुचारू रूप से कार्य करने देते हैं। कुछ कर्मचारी सिगरेट–बीड़ी पीने, चाय पीने और पिलाने में अपना और दूसरों का समय नष्ट करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.3.3.7 कार्यदशाएं (Working conditions) —कार्यालय में या विशेष रूप से औद्योगिक इकाइयों में कार्यदशाएं सही नहीं हैं तो ये समय–बर्बादी के कारण बन जाते हैं। जैसे कार्यस्थलों पर प्रकाश की समुचित व्यवस्था न होना, तापक्रम सही नहीं हो, कार्य करने के उपकरण सही न हो तथा बैठने की व्यवस्था सही न हो तो ऐसे में कार्य करने वाले व्यक्तियों का अधिकांश समय इन समस्याओं से जूझने में खर्च हो जाता है।

10.3.4 अन्य कारक (Other Time Wasters)

अन्य कारकों में निम्न मुख्य कारक समय नष्ट करने वाले होते हैं

1. यातायात साधनों का सही नहीं होना।
2. प्रतीक्षा करना।
3. व्यवस्थाएं सही नहीं होना।
4. दूरदर्शनों का दुरुपयोग।
5. अनावश्यक चिंतन।

10.3.4.1 यातायात साधनों का सही नहीं होना

यातायात साधनों में जैसे स्कूटर, साइकिल, मोटरगाड़ी आदि का बार–बार खराब हो जाना, स्थानीय यातायात सेवाओं में विलम्ब होना आदि प्रमुख है। जब व्यक्ति अपनी सवारी साधनों की समय–समय पर देखभाल नहीं करता तब सवारी गाड़ियाँ बार–बार खराब हो जाती हैं और इससे समय अनावश्यक रूप से नष्ट होता है। इसी तरह स्थानीय यातायात सेवाओं के चालक लापरवाही बरतते हैं और समय पर वाहनों का संचालन नहीं करते हैं, इससे भी समय अनावश्यक रूप से नष्ट होता है।

10.3.4.2 प्रतीक्षा करना–कई लोगों की यह बुरी आदत होती हैं कि वे किसी को मिलने या कार्य करने के लिए समय तो दे देते हैं पर उसके अनुरूप वे स्वयं ही नहीं पहुंच पाते या कार्य सम्पन्न नहीं कर पाते, इससे समय की अधिक बरबादी होती है।

10.3.4.3 व्यवस्थाएं सही नहीं होना

किसी भी आयोजन, समारोह या संस्थान में साधन के समय पर उपलब्ध न होने पर कार्यों का सम्पादन समय पर नहीं हो पाता, इससे एक व्यक्ति का ही नहीं बल्कि उनसे जुड़े कई व्यक्तियों का समय नष्ट होता है। जैसे किसी समारोह में माइक, बिजली एवं बैठने की सही व्यवस्था न होना, समारोह के आयोजकों एवं समारोह के अध्यक्ष या विशिष्ट अतिथि का समारोह में समय पर नहीं पहुंचना कई व्यक्तियों का समय नष्ट करता है। इससे हम सामूहिक समयनष्टता (Mass Time Wasting) कह सकते हैं।

10.3.4.4 दूरदर्शनों का दुरुपयोग

वर्तमान समय में दूरदर्शन सबसे बड़े समय के डकैत हैं। विश्वभर के अधिकांश लोग अपना अधिकांश समय दूरदर्शनों को देखने में नष्ट करते हैं। वेशक दूरदर्शनों में कई ज्ञानवर्धक बातें बताई जाती हैं। परन्तु कई कार्यक्रम बड़े फुहड़ और अनैतिकपूर्ण होते हैं। व्यक्ति इसी को मनोरंजन समझकर अनावश्यक कार्यक्रमों को भी देखने में अपना अधिकांश समय नष्ट करता है। दूरदर्शनों में दिखाए जाने वाले कार्यक्रमों से न केवल व्यक्ति का समय ही नष्ट होता है अपितु उसमें मानसिक प्रदूषण भी पैदा होता है। बच्चे ही नहीं जवान व बूढ़े लोग भी अपने खाली समय का दुरुपयोग दूरदर्शनों के कार्यक्रमों को देख–देखकर नष्ट करते हैं।

10.3.4.5 अनावश्यक चिंतन

अधिकांश लोग अपना मूल्यवान समय अनावश्यक चिंतन, अनावश्यक कल्पनाओं, दिवास्वप्नों एवं दूसरों के प्रति भाड्यंत्रों के विचारों में नष्ट कर देते हैं। ऐसे लोग नकारात्मक चिंतन करते हैं या दिवास्वप्न देखदेख कर अपना समय व्यर्थ में खो देते हैं। किसी कार्यक्रम की क्रियान्विति के लिए कल्पनाएं करना अनुचित नहीं है परन्तु मात्र कल्पनाएं करते रहना और उनके अनुरूप उनको क्रियान्वित न करना व्यर्थ में समय खोना ही है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपरोक्त सभी कारकों को सारणी संख्या–1 के अन्तर्गत देखा जा सकता है–

सारणी–1

समय नष्ट करने वाले कारक

1. स्वयं से जुड़े	2. पारिवारिक एवं सामाजिक	3. व्यवसाय संबंधी	4. अन्य कारक
1. मनःस्थिति	1. आगंतुक	1. अनावश्यक बैठकें	1. यातायात साधन
2. आरामपसंद प्रवृत्ति	2. मित्रगण	2. दूरभाष यंत्र का दुरुपयोग	2. प्रतीक्षा
3. स्वास्थ्य	3. अनुशासनहीनता	3. अस्पष्ट सम्प्रेषण	3. व्यवस्थाएं
4. आदतें	4. अव्यवस्थाएं	4. अस्तव्यस्त अधिकारी वर्ग	4. दूरदर्शनों का दुरुपयोग
	5. निरर्थक सामाजिक गोष्ठियां	5.'ना' कहने में अक्षम	5. अनावश्यक चिंतन
	6. अनावश्यक आलोचनात्मक बैठकें	6. सहकर्मी	
		7. कार्यदशाएं	

बोध प्रश्न 1:

1. समय प्रबन्धन क्या है?
2. स्वयं से जुड़े कारक किस प्रकार समय को नष्ट करते हैं? समझाएं।
3. समय नष्ट करने वाले कारकों की सारणी बनाएं।

10.4 समय का प्रबन्धन (Time Management)

हर व्यक्ति चाहे वह कामकाजी व्यक्ति हो, विद्यार्थी हो, गृहस्थ हो, गृहिणी हो या कोई उच्च अधिकारी हो, समय की कमी हर कोई महसूस करता है। वहीं दूसरी ओर कई व्यक्तियों की यह शिकायत रहती है कि समय कैसे व्यतीत करें? ऐसी स्थिति में सवेरे से शाम बिना काम इधर-उधर डोलते रहते हैं, पड़े रहते हैं या दूसरों से बतियाते हुए अपना समय गुजारते रहते हैं। कहा जाता है कि समय, मौत और ग्राहक किसी की प्रतीक्षा नहीं करते। समय को सही ढंग से व्यय करना जिससे कि अपने कार्यों की पूर्ति हो जाए और तनाव व दबाव भी न बने समय का प्रबन्धन कहलाता है। समय का सही दिशा में उपयोग करना जिससे व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सके तथा उसको मानसिक एवं शारीरिक संतुष्टि भी दे सके, समय का सही प्रबन्धन है। समय का सही प्रबन्धन करने से व्यक्ति मानसिक एवं शारीरिक तनाव से मुक्त रहता है तथा चिंताओं एवं कुण्ठाओं से बच जाता है। समय के सही प्रबन्धन से व्यक्ति सुख, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रख सकता है। एवं सुखी रह सकता है। समय का प्रबन्धन कैसे किया जाए इसके लिए आगे हम कुछ बिन्दुओं पर विचार करेंगे।

समय प्रबन्धन में सबसे पहले हम यह देखें कि हम अपना मूल्यवान समय कैसे और कहां खर्च कर रहे हैं। इस तरह हम अपने दैनिक कार्यक्रमों में जो समय खर्च कर रहे हैं तो किस तरह से कर रहे हैं, इसका विश्लेषण करें। हम किन–किन कार्यों को प्राथमिकता से करते हैं उसका भी विश्लेषण करें। इन बिन्दुओं पर हम आगे विस्तार से चर्चा कर रहे हैं।

10.4.1 समय का विश्लेषण

हम जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कितना समय खर्च करते हैं? जैसे–मित्रों के साथ, अध्ययन में, कार्यालय में, अन्य कार्यों में समय कितना खर्च करते हैं। समय का विश्लेषण हम निम्न तीन बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं–

i. बाह्य आवश्यकताओं पर समय खर्च

ii.आन्तरिक आवश्यकताओं पर समय खर्च

iii.अप्रत्याशित या आकस्मिक संकट या आपात स्थिति में समय खर्च

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.4.1.1 बाह्य आवश्यकताओं पर समय खर्च

जीवन की बाहरी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जैसे कार्यालय का काम, मित्रों से मिलना, पारिवारिक लोगों से मिलना, सामाजिक गतिविधियों में भाग लेना, मनोरंजन के लिए कार्यक्रमों को देखना, शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए व्यायाम, योगासन आदि करना, पर्यटन के लिए जाना एवं सामान आदि की व्यवस्था करने में कितना समय व्यय करते हैं, इसका आकलन या विश्लेषण करना।

10.4.1.2 आन्तरिक आवश्यकताओं पर समय खर्च

अपने शरीर के आन्तरिक जगत् की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए हम कितना समय खर्च करते हैं जैसा कि पूर्व अध्यायों में हमने स्पष्ट किया है कि मानव की जैविक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होना आवश्यक है। हमारी आन्तरिक आवश्यकताएं कितनी कम हैं व कितनी ज्यादा हैं तथा उनकी पूर्ति के लिए हम कितना समय खर्च करते हैं? यह भी ध्यान देने योग्य बात है। शरीर का आन्तरिक स्वास्थ्य, माधुर्यता एवं सुसंगति को बनाए रखने के लिए भी व्यक्ति अपना समय खर्च करता है।

10.4.1.3 अप्रत्याशित या आकस्मिक संकट या आपात स्थिति में समय खर्च

कई बार व्यक्ति को आकस्मिक घटनाओं या आपात स्थिति में भी समय खर्च करना पड़ता है, जैसे–अचानक कोई हादसा घट जाना, किसी प्रकार की दुर्घटना घट जाना, गाड़ी का खराब हो जाना, यातायात बाधित हो जाना। अचानक किसी का बीमार पड़ जाना या मृत्यु हो जाना, अनिर्धारित तिथि में मेहमानों का आ जाना आदि ऐसे कारक हैं जिनमें व्यक्ति अपना समय खर्च करता है।

उपरोक्त क्षेत्रों में समय कितना खर्च किया जा सकता है इसका विश्लेषण करने के लिए एक विश्ले ाण सारणी बनानी चाहिए। यह विश्लेषण सारणी प्रतिदिन के लिए, प्रतिसप्ताह के लिए, प्रतिमाह के लिए एवं प्रतिवर्ष के लिए भी बनाई जा सकती है। जैसा कि सारणी संख्या–2 में दर्शाया गया है। इस सारणी से हम यह पता लगा सकते हैं कि व्यय हुए समय का सदुपयोग कितना हुआ है तथा दुरुपयोग कितना हुआ है। इसके आधार पर हम अगला कदम यह ले सकते हैं कि समय का दुरुपयोग किस तरह से रोग सकते हैं और कहां–कहां अपने समय का सदुपयोग कर सकते हैं। किस जगह समय कम खर्च करना है और किस जगह समय अधिक खर्च करना है।

सारणी संख्या–2

समय विश्लेषण (Time Analysis)

उपलब्ध साप्ताहिक समय–घंटे ..... मिनट .....

व्यय किया गया समय (Time spent)	घंटे (Hours)	मिनट (Minutes)	प्रतिशत %
1. स्वयं पर, जैसे- स्वास्थ्य, आदतें आदि			
2. परिवार में			
3. समाज में			
4. कार्यालय या व्यवसाय में			
5. अन्य कार्यों में			
कुल समय			100%

उपरोक्त सारणी के अनुसार यह विश्लेषण किया जाता है कि–

1. स्वयं पर कितना समय खर्च किया जा रहा है।
2. परिवार के लिए कितना समय खर्च किया जा रहा है।
3. समाज के लिए कितना समय खर्च किया जा रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. कार्यालय या व्यवसाय में कितना समय खर्च किया जा रहा है।
5. अन्य कार्यों में कितना समय खर्च किया जा रहा है।

10.4.2 प्रतिदिन के समय का विश्लेषण

साप्ताहिक कार्य एवं समय विश्लेषण के अलावा प्रतिदिन के कार्य को सम्पादित करने में कितना समय व्यय किया जा रहा है तथा कार्य को सम्पादित करने में उनकी प्राथमिकता कैसी रखी जाए, इसका विश्लेषण करने के लिए प्रतिदिन की समय विवरणिका बनाई जाती है इस विवरणिका में प्रतिदिन के कार्य की प्राथमिकताएं, निष्पादन तथा प्रगति का लेखा–जोखा होता है। इसके अतिरिक्त कार्य में किये जाने वाले समय के व्यय का ब्यौरा भी लिखा जाता है। इस प्रतिदिन विवरणिका को डेली टाईम लोग **(Daily Time Log)** कहते हैं जो सारणी संख्या–3 के अनुरूप है।

सारणी संख्या–3

दैनिक समय विवरणिका (Daily Time Log)

	आज की प्राथमिक क्रियाविधियां **(Today's Priority Activity)**	निष्पादन **(Achieved)**	कुछ प्रगति **(Some Progress)** कोई प्रगति नहीं **(No Progress)**
समय **(Time)**	दिनभर के कार्य **(Activities of Day)**	व्यय समय **(Time Taken)** **Hrs. Mits.**	आलोचनात्मक टिप्पणी **(Critical Comment)**

10.4.2.1 प्राथमिकताएं एवं उनकी व्यवस्था

प्रतिदिन के कार्यों में हम जो समय व्यय करते हैं उनका लेखा–जोखा दैनिक विवरणिका में लिखना चाहिए। जिन कार्यों में हमे करना है उनको भी प्राथमिकता के आधार पर क्रमबद्ध करना चाहिए। दिन प्रारम्भ होते ही अर्थात् प्रातः काल से ही दिनभर में किए जाने वाले कार्य की प्राथमिकता के आधार पर सूची तैयार कर लेनी चाहिए।

आधुनिक समय में समय का प्रबन्धन सही रूप से करने के लिए एक सूत्र काम में लिया जा सकता है। यह है–**'RUTH, VED'A RUTH** का तात्पर्य है–1. रश (Rush) 2. अर्जेन्ट (Urgent) या अत्यावश्यक, 3. टुडे (Today) एवं 4. होल्ड (Hold) इसी तरह VED का तात्पर्य है–1. वाइटल (Vital) 2. एशेन्शियल (Essential) और 3. डीजायरेबल (Desirable) इस तरह इसी कार्य को हम चार श्रेणियों में रख सकते हैं–

1. आवश्यक–अत्यावश्यक
2. आवश्यक–परन्तु अत्यावश्यक नहीं
3. साधारण–आवश्यक
4. साधारण–आवश्यक नहीं

व्यक्ति अपने कार्यों को उपरोक्त श्रेणियों में व्यवस्थित कर सकता है और उसके अनुसार प्राथमिकी क्रम देता है और इन कार्यों को पूर्ण करने में प्राथमिकता के अनुसार समय व्यय करता है। सारणी संख्या–4 में इसे स्पष्ट किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सारणी संख्या– 4

श्रेणी **(Category)**	खण्ड **(Block)**	प्राथमिकता प्रारूप **(Priority Type)**	प्राथमिकता क्रम **(Priority Rak)**
आवश्यक–अत्यावश्यक	1	'रश' **Rush**	1
आवश्यक–अत्यावश्यक नहीं	2	'अर्जेण्ट' **Urgent**	2
साधारण–आवश्यक	3	'टूडे' **Today**	3
साधारण–आवश्यक नहीं	4	'होल्ड' **Hold**	4

कार्यों के प्राथमिकी प्रकारों तथा प्राथमिकी क्रमानुसार कार्यों को सम्पादित किया जाना चाहिए। जो कि अतिआवश्यक एवं आवश्यक हैं उनको प्रथम वर्ग या खण्ड में रखा जाना चाहिए। इस प्रकार के कार्य रश (Rush) प्राथमिकी प्रकारों में आते हैं, इन्हें सर्वप्रथम पूरा करने के लिए समय लगना चाहिए। जो कार्य एवं क्रियाएं आवश्यक तो हैं परन्तु अत्यावश्यक नहीं हैं उनको हम अर्जेन्ट (Urgent) की श्रेणी में रखते हैं। जो कार्य साधारण हैं परन्तु आवश्यक नहीं है उनको हम टूडे (Today) की श्रेणी में रखते हैं। जो कार्य साधारण हैं एवं आवश्यक नहीं है उनको हम होल्ड (Hold) की श्रेणी में रखते हैं। (चित्र संख्या–1)

इसी तरह बहुत ही आवश्यक कार्यों को वाइटल (Vital) श्रेणी में रखा जाता है। आवश्यक कार्यों को एसेन्शियल (Essential) श्रेणी में रखा जाता है। इसी तरह साधारण कार्यों को डीजायरेबल (Desirable) श्रेणी में रखा जाता है। (चित्र संख्या–2)

चित्र संख्या–1

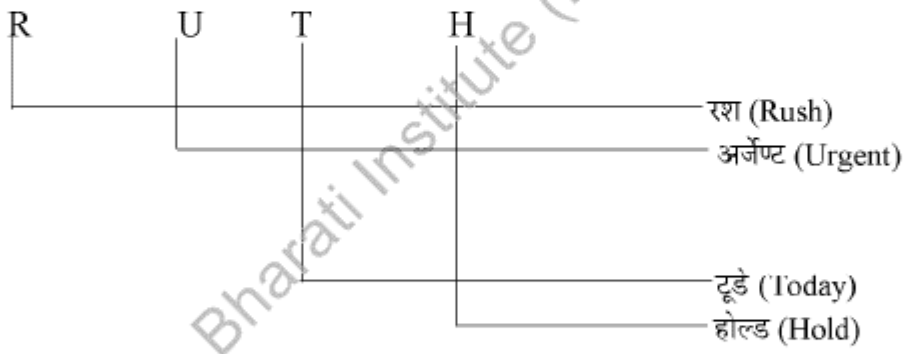

चित्र संख्या–2

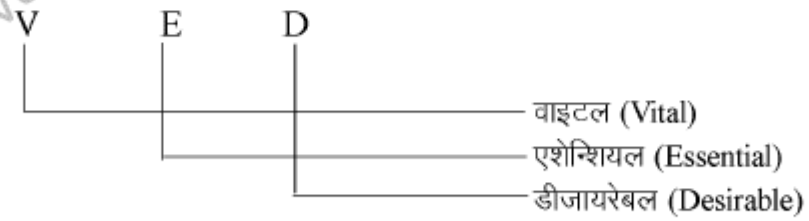

समय प्रबन्धन के कुछ मुख्य बिन्दु–

10.5 समय प्रबन्धन के मुख्य बिन्दु

1. प्रातः सूर्योदय से पूर्व उठें, अपने नित्य कर्म के बाद योगाभ्यास एवं ध्यान करें। इससे शरीर की प्राणशक्ति एवं क्रियाशक्ति एवं क्रियाशीलता बढ़ती है और क्रिया समय (Reaction time)कम होता है, अर्थात् किसी भी कार्य को सम्पादित करने में समय कम लगता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. प्रातः काल ही उस दिन किए जाने वाले कार्यों की सूची बनाएं एवं आवश्यक कार्यों को प्राथमिकता देते हुए उनके पूर्ण करने में लगने वाले समय का निर्धारण करें।
3. अनावश्यक कार्यों को टालें या प्राथगिक वरीयता के क्रग गें राबरो बाद गें करें। लोगों को या आगन्तुकों को निश्चित एवं सही समय दें। निश्चित समय पर लोगों से मिलने से समय की पर्याप्त बचत होती है।
4. अनावश्यक लोगों से फालतू बहस या विवाद न करें। इससे मानसिक तनाव बढ़ता है व समय का अपव्यय होता है। मनोरंजन करने एवं टीवी पर मनोरंजन के कार्यक्रमों की निश्चित सीमा रखें। दृढ़ इच्छाशक्ति रखते हुए उन पर नियंत्रण करें। प्रायः यह देखा जाता है कि लोग प्रतिदिन का अधिकांश समय टीवी एवं मनोरंजन में खर्च कर देते हैं।
5. आगन्तुकों को सीमित समय दें। मित्रगणों को भी आवश्यकतानुसार सीमित समय दें।
6. जीवन में अनुशासन बनाए रखें अर्थात् समय पर उठें और निश्चित समय पर अपने कार्यों को पूर्ण करें। इससे व्यक्ति अपना बहुत समय बचा सकता है। सारी क्रियाओं को व्यवस्थित करने से ही समय की बचत होती है।
7. निरर्थक सामाजिक गोष्ठियों में भाग न लें तथा अनावश्यक आलोचनात्मक बैठकें न करें।
8. दूरभाष यंत्र (टेलीफोन) का कम से कम उपयोग करें। इस पर अनावश्यक बातें व गप्पें न मारें। इससे समय का दुरुपयोग होता है।
9. यदि किसी कार्य को करने में आप वास्तव में सक्षम नहीं हैं तो उसे हाथ में न लें । इससे अनावश्यक रूप से समय नष्ट होता है और कार्य भी पूरा नहीं हो पाता है। कार्य की स्थितियों को सामान्य रखें, इससे भी समय की बचत होती है।
10. अपने मन की स्थिति सामान्य रखें और किसी भी कार्य को धैर्यता और लगन से करें, इससे कार्य कम समय में पूरा होता है व अच्छा कार्य होता है। मनः स्थिति ;डवबकद्ध बार–बार न बदले, इस बात का ध्यान रखना चाहिए।
11. मनःस्थिति बार–बार बदलने से व्यक्ति अपने करने वाले कार्य के क्रमों को बदलता रहता है इससे कोई भी कार्य समय पर पूरा नहीं हो पाता और समय भी नष्ट हो जाता है।
12. आराम पसन्द प्रवृत्ति एवं आलस्य को त्यागें। यह प्रवृत्ति समय का प्रबल शत्रु है। अतः आज के काम को कल पर न टालकर आज ही उसे पूरा करने का प्रयत्न करें। इससे व्यक्ति का मनोबल भी बना रहता है व कार्य भी समय पर सम्पन्न हो जाता है।
13. अपने स्वास्थ्य को उन्नत बनाए रखें। शरीर की स्फूर्ति व चुस्ती कार्य को समय पर पूरा करने में बड़ी मददगार होती है, अतः शरीर को चुस्त एवं स्फूर्ति बनाए रखने के लिए नियमित रूप से ध्यान, योग एवं प्राणायाम का अभ्यास करें।
14. अपनी आदतों पर नियंत्रण रखें। कार्य का निष्पादन करने में आदतों को हावी न होने दें।
15. प्रसन्नचित्त एवं चिन्तामुक्त व्यक्ति किसी भी कार्य को पूरा करने में कम समय लेता है अर्थात् वह समय की बचत कर लेता है।
16. समय बर्बाद करने वाले डकैत कारकों (Time Robbers or Time Wasters) पर नियंत्रण रखें।
17. जो कार्य आप हाथ में लेते हैं उसे पूरा करें, अधूरा न छोड़ें।
18. समय के पाबन्द रहें।
19. दैनिक विवरणिका प्रतिदिन बनाएं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

20. पर्याप्त विश्राम करें।
21. जिस कार्य को आप नहीं कर सकते हैं उसके लिए स्पष्ट रूप से परन्तु विनम्रतापूर्व 'न' कर दें।
22. नियमित रूप से प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करें, इससे कार्य क्षमता एवं अन्तर्दृष्टि बढ़ती है, जो किसी भी कार्य का सम्पादन करने में सहायक होती है व समय की बचत करती है।

10.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. समय प्रबन्धन क्या है? संक्षेप में बताइए।
2. समय नष्ट करने वाले कारकों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. स्वयं से जुड़े हुए समय नष्ट करने वाले कारकों को समझाइए।
4. समय नष्ट करने वाले सामाजिक एवं पारिवारिक कारक को स्पष्ट करें।
5. समय नष्ट करने वाले व्यवसाय सम्बन्धी कारकों को समझाइए।
6. समय का प्रबन्धन किस प्रकार सम्भव है?
7. समय विश्लेषण क्या है?
8. दैनिक विवरणिका क्या है?
9. समय प्रबन्धन के कुछ मुख्य बिन्दुओं को स्पष्ट करें।

10.7 संदर्भ पुस्तकें

1. Develop thyself-Bajrang Jain&Kavita Saravgi, Edited by-Sadhvi Shri Rajnimathi, B. Jain Publishers (P) Ltd..
2. Personal Management (Hand Book)-Mulligan J.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–11 दबाव या तनाव का स्वरूप, कारक तत्त्व एवं प्रभाव
(Stress-nature, causes and effects)

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 तनाव या दबाव का स्वरूप

11.2.1 तनाव (दबाव) क्या है?

11.3 दबाव से अभिगम

11.3.1 उत्तेजना अभिमुखी अभिगम

11.3.2 अनुक्रिया अभिमुखी व्याख्या अभिगम

11.3.3 मनोगत्यात्मक अभिगम

11.3.3.1 सतर्क प्रतिक्रिया

11.3.3.2 प्रतिरोध की स्थिति

11.3.3.3 थकान की स्थिति

11.4 दबावों के प्रकार

11.4.1 दु:खद दबाव

11.4.2 सुखद दबाव

11.4.3 अतिरंजित दबाव या अत्यधिक दबाव

11.4.4 सामान्य से कम दबाव

11.4.5 प्रो. पेस्टोन्जी के अनुसार दबावों के प्रकार

11.4.5.1 कार्य एवं संगठन सम्बन्धी

11.4.5.2 सामाजिक क्षेत्र

11.4.5.3 अन्त:मानसिक दबाव

11.5 दबाव की भारतीय धारणा

11.6 दबाव की विधायक भूमिका

11.7 दबाव के कारण या कारक

11.7.1 वैयक्तिक

11.7.2 अन्तर्वैयक्तिक

11.7.3 संस्थागत

11.7.4 सामाजिक एवं सामुदायिक

11.7.5 सांस्कृतिक

11.7.6 राष्ट्रीय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.7.7 अन्तर्राष्ट्रीय
11.7.8 सार्वभौमिक
11.8.0 दबावों के प्रभाव
11.8.1 मानसिक प्रभाव
11.8.2 भावनात्मक प्रभाव
11.8.3 मनोशारीरिक प्रभाव
11.8.4 कायकार्यकी प्रभाव
11.9 प्रश्नावली

11.0 प्रस्तावना

गत अध्याय में हमने व्यक्ति के समय प्रबंधन एवं जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में अध्ययन किया। इनसे जुड़ी विभिन्न समस्याओं तथा उनके समाधान के लिए, लिये जाने वाले निर्णयों के बारे में भी अध्ययन किया। समस्याओं को हल करने के लिए बनाई जाने वाली योजनाओं के बारे में भी हमने अध्ययन किया।

इस अध्याय में व्यक्ति में उत्पन्न होने वाले तनावों के स्वरूप के बारे में अध्ययन करेंगे। तनाव उत्पन्न करने वाले तत्त्वों के बारे में भी अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त तनावों का व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका भी विस्तार में हम अध्ययन करेंगे।

व्यक्ति अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए जीवन पर्यंत क्रियाएं करता रहता है। वह अपने आप से, परिवार में, समाज में एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों में समायोजन बनाए रखने का प्रयत्न करता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने के लिए भी व्यक्ति कई प्रकार के प्रपंच करता है। जब व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्त्ति में बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं या वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति में असफल हो जाता है तो उसमें तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। इन तनावों के कारण व्यक्ति पर एक दबाव सा बन जाता है जिस कारण वह अपनी क्रियाएं और व्यवहार ठीक से नहीं कर पाता है।

11.1 उद्देश्य

1. इस अध्याय का उद्देश्य व्यक्ति के तनावों (दबावों) को स्पष्ट करना है। अत: इस पाठ के अध्ययन के बाद आप तनाव के स्वरूप को जान पाएंगे।

2. आप तनाव या दबाव पैदा करने वाले कारक तत्त्वों के बारे में भी जान पाएंगे।

3. इस अध्याय का उद्देश्य तनावों से व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह भी स्पष्ट करना है। अत: इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् तनावों से पड़ने वाले शारीरिक, मानसिक एवं अन्य प्रभावों के बारे में भी जान पाएंगे।

4. इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप तनाव (दबाव) के स्वरूप, उसके कारक, तत्त्व एवं उसके प्रभावों से संबंधित विभिन्न प्रश्नों का उत्तर दे पाएंगे।

11.2 तनाव या दबाव का स्वरूप

जैसाकि हमने ऊपर स्पष्ट किया है कि व्यक्ति की आवश्यकताएं जब पूरी नहीं हो पाती और उनकी पूर्त्ति में जो बाधाएं समय-समय पर उत्पन्न होती रहती हैं वे व्यक्ति पर एक विशेष दबाव बना देती है, यही दबाव, प्रतिबल या स्ट्रेस (Stress) के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में व्यक्ति को कई समस्याओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एवं स्थितियों का सामना करना पड़ता है इन्हीं स्थितियों और समस्याओं में उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करनी होती है। प्रतिकूल स्थितियां और समस्याएं व्यक्ति में तनाव पैदा करती है। आधुनिक जीवन शैली एक भागदौड़ की जीवनशैली बन गई है। रोजगार की समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, प्रतिस्पर्धाएं, संघर्ष, युद्ध का भय, प्राकृतिक आपदाओं का भय ऐसी समस्याएं हैं जो व्यक्ति के जीवन को तनावपूर्ण एवं भयावह बना देती है। आधुनिक जीवनशैली में जीने के लिए कई वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास हुए हैं जो व्यक्ति के जीने के स्तर को तो बढ़ाते हैं परन्तु इनको प्राप्त करने में व्यक्ति को जो संघर्ष करना पड़ता है उसमें वह विपुल मात्रा में अपनी शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा का व्यय करता है।

व्यक्ति अपने कार्य को भय, दबाव या तनाव के वातावरण में करता है तब ऐसी स्थिति में वह अपने कार्य की क्रियान्विति को सही ढंग से नहीं कर पाता क्योंकि वह अपने आपको एक तनाव या दबाव की स्थिति में पाता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति सामान्य स्थितियों में भय एवं तनावमुक्त वातावरण में कार्य करता है उसके कार्य का निष्पादन निश्चित रूप से अच्छा होता है।

11.2.1 तनाव (दबाव) क्या है? (What is Stress)

दबाव को परिभाषित करना कठिन है। अलग-अलग विद्वानों, मनोवैज्ञानिकों ने इसका अर्थ भिन्न-भिन्न रूपों में निकाला है। कई लोग दबाव को बाहरी उद्दीपक के रूप में लेते हैं जो व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक थकान का कारण बनता है। कई लोग इसको आन्तरिक अन्तर्नोद (Internal Drive) के रूप में मानते हैं जो व्यक्ति की साम्यावस्था को विचलित करता है। कई विद्वानों ने इसे आन्तरिक और बाहरी तनाव बताया है। कई विद्वानों ने प्रतिबल को व्यक्तिगत बताया है तो कई ने सामूहिक भी बताया है।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि दबाव (Stress) व्यक्ति के लिए एक ऐसी आन्तरिक या बाहरी स्थिति है जो उसके सामान्य व्यवहार पर प्रभाव डालती है और व्यक्ति को उसका सामना करने के लिए प्रेरित एवं बाध्य करती है। किन्हीं कारणों से व्यक्ति इन स्थितियों का सामना नहीं कर पाता है तो उसमें एक तनाव-सा बन जाता है और इस तनाव के कारण व्यक्ति का व्यवहार सामान्य नहीं रह पाता। तनाव की यह स्थिति दबाव (Stress) कहलाती है।

रोजन तथा ग्रेगरी (Rosen and Gregory) के अनुसार ''प्रतिबल (Stress) एक ऐसी बाह्य या आन्तरिक उत्तेजनात्मक अनिष्टकारी या अवसादीर्य स्थिति है जिसके साथ समायोजन करना कठिन है।''

सरासन एवं सरासन 1998 ने दबाव को इस प्रकार परिभाषित किया है ''व्यक्ति जब तक स्थिति का सामना करने के लिए क्रिया करता है, विशेष रूप से अपनी क्षमताओं से परे जाकर, तो उसमें होने वाली अनुभूति या स्थिति दबाव है।''

कॉलमैन के अनुसार ''कोई भी समायोजि आवश्यकता या मांग जिसके लिए वैयक्तिक या सामूहिक मुकाबलाई व्यवहार अपेक्षित है, दबाव है।''

जिम्बार्डो (1988) के अनुसार, ''दबाव किन्ही उत्तेजनाओं या घटनाओं, जो व्यक्ति की साम्यावस्था को विचिलत करती है, के प्रति प्राणी द्वारा की गई विशिष्ट या सामान्य अनुक्रिया का प्रतिरूप है और यह योग्यता अनुरूप उनका सामना करता है।''

उपरोक्त सभी परिभाषाओं से यह बात स्पष्ट होती है कि दबाव एक उत्तेजना (Stimulus) एवं अनुक्रिया (Response) का अनुभव है। उत्तेजना प्राणी को उसकी साम्यावस्था से विचलित करती है और प्राणी पुनः अपनी साम्यावस्था में आने के लिए अनुक्रिया करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11.3 दबाव के अभिगम (Approaches of Stress)

मनोवैज्ञानिकों ने दबाव के अध्ययन या दबाव को समझने के लिए तीन अभिगमों (Approaches) के विचार रखे हैं। ये तीन अभिगम (Approaches) हैं—

1. उत्तेजना अभिमुखी अभिगम (Stimulus oriented approach)
2. अनुक्रिया अभिमुखी व्याख्या अभिगम (Response oriented interpretation approach)
3. मनोगत्यात्मक अभिगम (Psychodynamic approach)

उपरोक्त अभिगमों का संक्षेप में वर्णन हम आगे कर रहे हैं—

11.3.1 उत्तेजना अभिमुखी अभिगम (Stimulus oriented approach)

इस अभिगम के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि दबाव एक ऐसा बाह्यबल है जो व्यक्ति में सतर्जकता (Threating) उत्पन्न करता है। सेली (Selye) के अनुसार कोई बाह्य घटना या कोई आन्तरिक अन्तर्नोद (Internal drive) जो व्यक्ति में सतर्जकता उत्पन्न करती है जिससे व्यक्ति की साम्यावस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है।

11.3.2 अनुक्रिया अभिमुखी व्याख्या अभिगम (Response oriented interpretation approach)

अनुक्रिया अभिमुखी व्याख्या अभिगम के अन्तर्गत यह देखा जाता है कि दबाव व्यक्ति पर किस प्रकार की क्रिया करता है या प्रभाव डालता है। उस पर मनोवैज्ञानिक रूप से या शारीरिक रूप से क्या प्रभाव डालता है। इस दबाव या उत्तेजना से प्रभावित होकर वह किस प्रकार की अनुक्रियाएं करता है। उसमें शारीरिक, कायकारिणी (Physiological) एवं मानसिक (Psychological) क्या परिवर्तन आते हैं।

11.3.3 मनोगत्यात्मक अभिगम (Psychodynamic approach)

इस अभिगम के अन्तर्गत हेन्स सेली ने सामान्य अनुकूलन संलक्षण (General Adaptation Syndrome—GAS) का प्रत्यय रखा। सेली के अनुसार दबाव की स्थिति में व्यक्ति तीन प्रकार की स्थितियों से गुजरता है।

1. सतर्क प्रतिक्रिया (Alarm Reaction)
2. प्रतिरोध की स्थिति (Stage of Resistance)
3. थकान की स्थिति (Stage of Exhaustion)

11.3.3.1 सतर्क प्रतिक्रिया (Alarm Reaction)

इस स्थिति में जब व्यक्ति पर दबाव पड़ता है तो वह सतर्क होकर अपनी साम्यावस्था बनाए रखने के लिए प्रतिक्रिया या अनुक्रिया करता है। दबाव का सामना करता है जिससे कि उसकी साम्यावस्था बनी रहे। इसके अतिरिक्त उसमें मानसिक एवं कायिक परिवर्तन भी आते हैं, जैसे मानसिक तनाव, स्नायुमण्डल में उत्तेजना, चिंता, मांसपेशियों में तनाव, हृदय गति का बढ़ जाना, एड्रीनल हार्मोन का स्राव बढ़ जाना आदि। कई बार दबाव का सामना नहीं कर पाने के कारण व्यक्ति व्याधियों का शिकार हो जाता है।

11.3.3.2 प्रतिरोध की स्थिति (Stage of Resistance)

इस स्थिति में व्यक्ति दबाव को कम करने के लिए पूरी प्रतिरोधक क्रिया करता है। अपने बचाव हेतु रक्षा प्रणाली या रक्षा प्रतिक्रियाएं (defense machanism or defensive reactions) अपनाता है। उपरोक्त दोनों प्रणालियों का उपयोग करने के लिए अपनी पूरी ऊर्जा का उपयोग भी करता है। उसके उपरान्त भी यदि दबाव बना रहता है तो वह अगली स्थिति में पहुंच जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11.3.3.3 थकान की स्थिति (Stage of Exhaustion)

इस स्थिति में जब व्यक्ति अपने दबावों का सामना नहीं कर पाता है तब वह थक जाता है, टूट जाता है। इस स्थिति तक उसकी सामना या प्रतिरोध करने की क्षमता क्षीण हो जाती है, सारी ऊर्जा खर्च हो जाती है और व्यक्ति परिस्थितियों से हार जाता है। चित्र सं. 1 में उपरोक्त स्थितियों को स्पष्ट किया गया है।

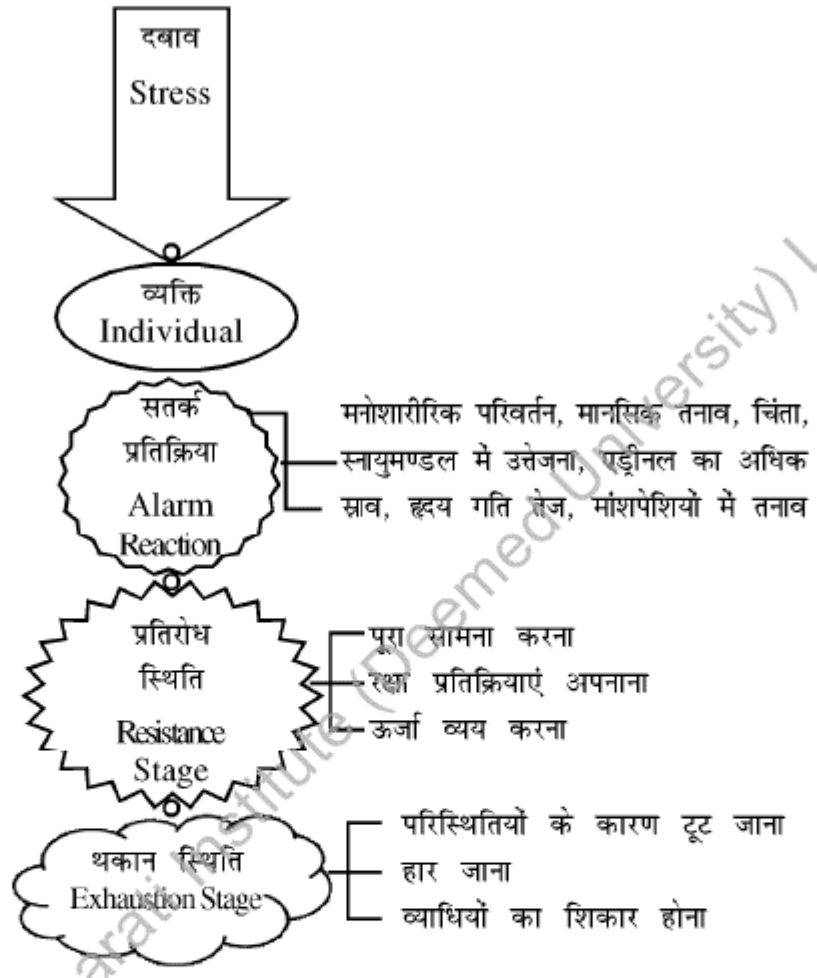

चित्र सं.-1 दबाव से विभिन्न स्थितियां (Various stages due to stress)

उत्तेजना किस प्रकार की है और किस सीमा तक वह प्राणी की साम्यावस्था को विचिलत करती है और उसके अनुसार प्राणी की क्या अनुक्रिया होती है? इनके अनुरूप ही व्यक्ति में दबाव पैदा होता है।

उत्तेजना, जो प्राणी को मिलती है और उसकी साम्यावस्था को विचलित कर दबाव पैदा करती है, उत्तेजक कारक कहलाते हैं चूंकि ये कारक दबाव पैदा करते हैं इसलिए इनको दबाव कारक (Stressor) कहा जाता है। व्यक्ति के कई बाहरी एवं कई आन्तरिक उत्तेजक कारक या दबाव कारक (Stressors) होते हैं जो उसमें दबाव उत्पन्न करते हैं। जैसे स्पर्धात्मक कार्य बाहरी स्ट्रेसर है तो आन्तरिक शारीरिक पीड़ा आन्तरिक स्ट्रेसर है। कई घटनाएं और कई प्रकार की व्याधियां बाहरी एवं आन्तरिक दबाव कारक या स्ट्रेसर (Stressors) हो सकते हैं।

कई प्रकार के दबाव व्यक्ति की कार्यक्षमता में न्यूनता ला देते हैं, कई व्याधियां उत्पन्न कर देते हैं, तो कई ऐसे भी दबाव होते हैं जो व्यक्ति के हितकारी होते हैं और अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। कई दबाव ऐसे होते हैं जिनका प्रभाव व्यक्ति पर न्यून रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.4 दबावों के प्रकार (Kind of Stresses)

यह आवश्यक नहीं है कि सभी दबाव केवल हानिकारक ही होते हैं बल्कि कई दबाव लाभदायक भी होते हैं। यह दबाव की प्रकृति, वातावरण एवं घटना पर निर्भर करता है।

हैंस सेले (1980) जो दबाव पर अच्छे शोधकर्त्ता माने जाते हैं, दबाव को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित करते हैं—

1. दु:खद दबाव (Distress)
2. सुखद दबाव (Eustress)
3. अतिरंजित दबाव या अत्यधिक दबाव (Hyper stress)
4. सामान्य से कम दबाव (Hypostress)

उपरोक्त प्रकार के दबावों का संक्षेप में नीचे वर्णन किया जा रहा है—

11.4.1 दु:खद दबाव (Distress)

जब कोई दु:ख उत्पन्न करने वाली उत्तेजना या घटना जब व्यक्ति पर हानिकारक प्रभाव डालती है जिससे व्यक्ति का संतुलन नहीं रहता अर्थात् असंतुलित हो जाता है तो इस प्रकार का दबाव दु:खद दबाव कहलाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने में साम्यावस्था नहीं बना पाता। आधुनिक समाज, आधुनिक जीवनशैली में आधुनिक विलासिता की वस्तुओं को प्राप्त करने में इस प्रकार के दबाव दृष्टिगोचर होते हैं।

11.4.2 सुखद दबाव (Eustress)

जैसाकि पूर्व में हमने स्पष्ट किया कि कुछ दबाव अच्छे भी होते हैं जो व्यक्ति में सुखद अनुभव पैदा करते हैं। ये दबाव कुछ विशेष अवसरों पर होते हैं, जैसे नये रोजगार की प्राप्ति अर्थात् नौकरी लगने पर, विवाह होने के अवसर पर, कोई साहसिक कार्य करने पर और कोई नयी चीज सीखने पर इस प्रकार के दबाव उत्पन्न होते हैं। यह सुखद रोमांचक स्थिति होती है।

11.4.3 अतिरंजित या अत्यधिक दबाव (Hyper stress)

जब व्यक्ति पर कई प्रकार के दबाव, जो विभिन्न प्रकार की घटनाओं से जुड़े हों, निरन्तर पड़ते रहते हैं जिससे उसके व्यवहार की अनुकूलनशीलता पर बुरा असर पड़ता है तथा व्यक्ति की साम्यावस्था को विचलित कर देते हैं। इससे जो दबाव उत्पन्न होता है उसे अतिरंजित या अत्यधिक दबाव कहते हैं। ये दबाव व्यक्ति की अनुकूलन सीमाओं का भी उल्लंघन कर देते हैं। इसमें दबाव का स्तर काफी ऊंचा हो जाता है।

11.4.4 निम्न दबाव (Hypostress)

इसको अपर्याप्त दबाव (Insufficient Stress) भी कहते हैं। इस प्रकार के दबाव निठल्ले एवं आलसी लोगों में होते हैं। इनमें पर्याप्त मात्रा में उत्तेजना का अभाव होता है। ऐसे लोग दबाव या उत्तेजना प्राप्त करने के लिए नशीले पदार्थों का उपयोग करते हैं। इस प्रकार के दबाव में निम्न स्तर के दबाव होते हैं।

उपरोक्त दबाव विभिन्न लोगों में विभिन्न प्रकार से होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि एक व्यक्ति में एक ही प्रकार का दबाव होता है। व्यक्ति में दबावों की प्रकृति बदल सकती है। उसमें कभी दु:खद दबाव तो कभी सुखद दबाव भी बन सकता है। कभी दबाव का स्तर बढ़कर अतिरंजित या अत्यधिक दबाव बन जाता है तो कभी निम्न स्तर का। यह सब व्यक्ति के पर्यावरण, सामाजिक स्थितियां एवं आवश्यकताओं पर निर्भर करता है।

उपरोक्त विभिन्न प्रकार के दबावों को चित्र सं. 2 के द्वारा समझा जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

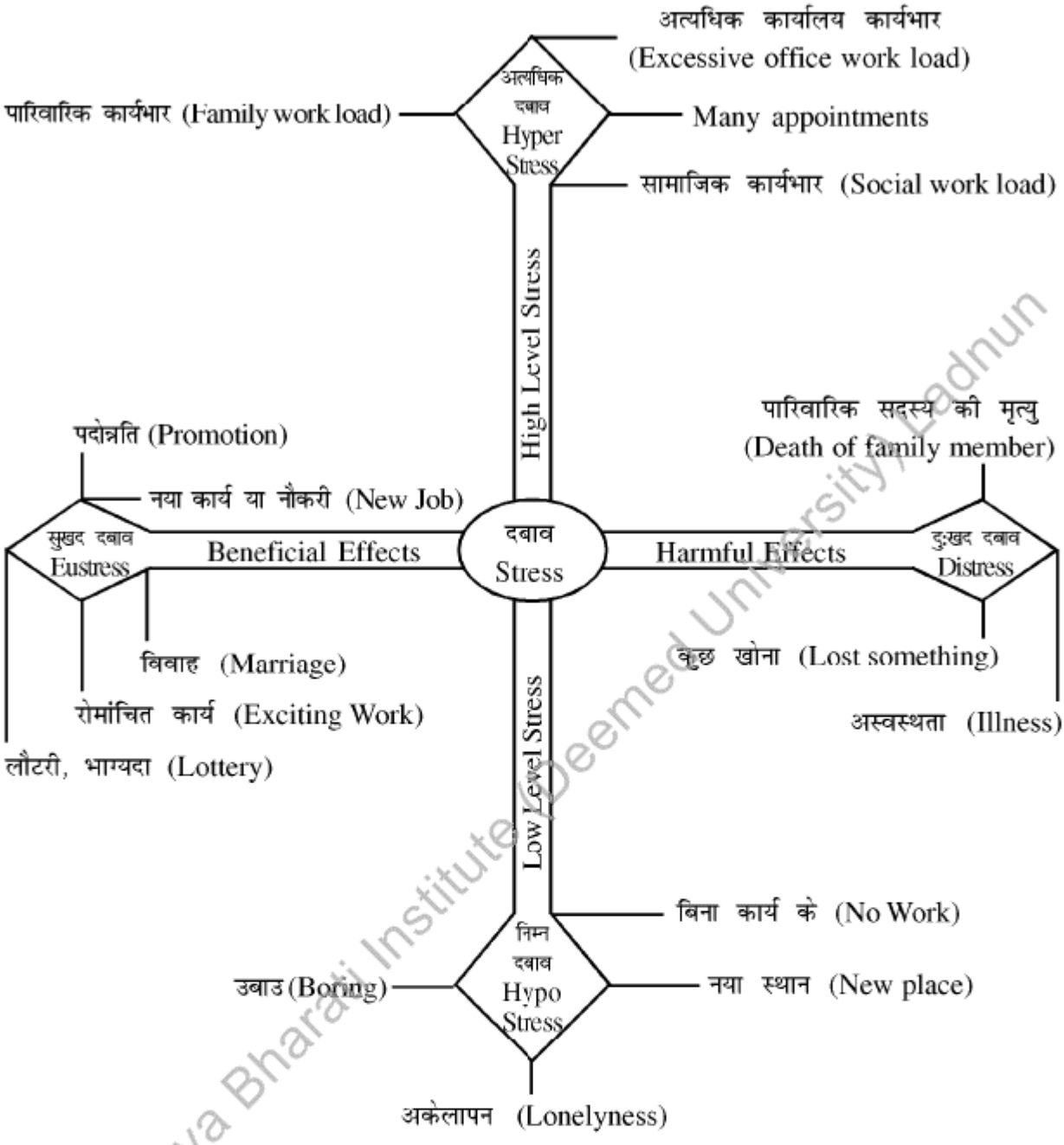

चित्र सं.-2 दबाव के चार प्रकार (Four variations of Stress)

11.4.5 प्रो. पेस्टोन्जी के अनुसार दबावों के प्रकार

प्रो. पेस्टोन्जी (1990) ने दबाव के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए तीन प्रकार के दबावो को स्पष्ट किया है। ये दबाव हैं—1. कार्य एवं संगठन सम्बन्धी दबाव, 2. सामाजिक क्षेत्र के दबाव, 3. अन्त: मानसिक दबाव। इन दबावों का संक्षेप में वर्णन निम्न प्रकार है—

11.4.5.1 कार्य एवं संगठन सम्बन्धी (Stress related of jobs and the organization)

इस प्रकार के दबाव व्यक्ति के कार्यक्षेत्र, जैसे उसका काम, नौकरी, जिस संस्थान या संगठन में काम करता है, से सम्बंधित होते हैं। व्यक्ति के कार्य का प्रकार, वातावरण, साथ में कार्यरत सहयोगी या कर्मचारी, उसका वेतन, संगठन की नीतियां आदि का दबाव इस प्रकार के दबावों के अन्तर्गत आते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11.4.5.2 सामाजिक क्षेत्र (Social sector stress)

इस प्रकार के दबाव व्यक्ति के सामाजिक क्षेत्र, परिवार और सामाजिक पर्यावरण से सम्बंधित होते हैं। इन दबावों में धार्मिक कट्टरता, जाति, वर्ग, भाषा, वेशभूषा, सामाजिक परिस्थितियां, सामाजिक स्तर एवं सामाजिक आर्थिक स्थितियों से सम्बन्धित दबाव आते हैं।

11.4.5.3 अन्त:मानसिक दबाव (Intra-psychic Stress)

अन्त:मानसिक दबाव वैयक्तिक होते हैं। व्यक्ति का स्वभाव, प्रकृति, उसके मूल्य, योग्यताएं तथा स्वास्थ्य से सम्बंधित दबाव इस श्रेणी में आते हैं।

पेस्टोन्जी ने व्यक्ति द्वारा दबाव सहन करने की सीमाएं भी बताई है। इस दबाव सहन सीमा को उन्होंने Stress Tolerance Limit (S.T.L.) कहा है।

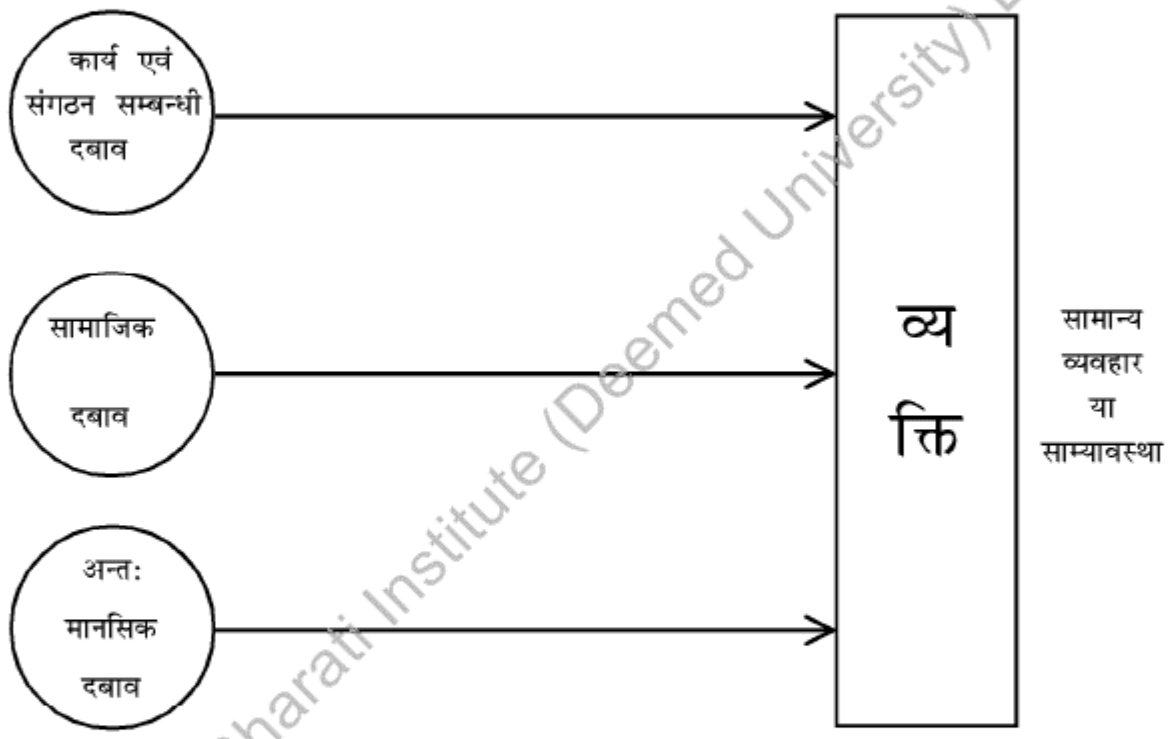

चित्र सं.-3 सहनसीमा स्तर पर—सामान्य व्यवहार Stress Tolerance Limit (STL)

दबाव सहन सीमा (STL) का स्तर दबाव की प्रकृति पर निर्भर करता है। दबाव सहन सीमा तक व्यक्ति दबावों को सहन कर सकता है और दबावों को दूर करने का प्रयत्न करता है जिससे कि उसकी साम्यावस्था बनी रहे, जैसा कि चित्र सं. 3 में दर्शाया गया है। यदि दबाव सहन सीमा से बढ़ जाता है तो व्यक्ति ओर प्रयत्न कर उसका सामना करता हुआ साम्यावस्था बनाने का प्रयत्न करता है इससे वह साम्यावस्था की सतही सीमा पर अव्यवस्थित या विचलित होता है परन्तु ज्यों-ज्यों दबाव की मात्रा बढ़ती जाती है तथा व्यक्ति उसका सामना करने के लिए उचित उपायों का उपयोग नहीं कर पाता तो उसकी साम्यावस्था और ज्यादा विचलित हो जाती है। उसकी ऊर्जा अधिक व्यय होने लगती है। दबाव से व्यक्ति एवं उसकी साम्यावस्था पर पड़ने वाले प्रभाव से उसमें विभिन्न स्थितियां पैदा हो जाती हैं और स्थितिनुसार उसके व्यावहारिक लक्षणों में विभिन्न परिवर्तन आते जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रथम स्थिति में जब व्यक्ति की साम्यावस्था पर दबाव का लघु सतही प्रभाव पड़ता है तो उसे सामान्य से कुछ ज्यादा प्रयत्न करने पड़ते हैं, कार्य करने में कठिनाई आने लगती है, घबराहट बढ़ जाती है और चिंताएं भी बढ़ जाती हैं। चित्र सं. 4 में यह स्थिति स्पष्ट है।

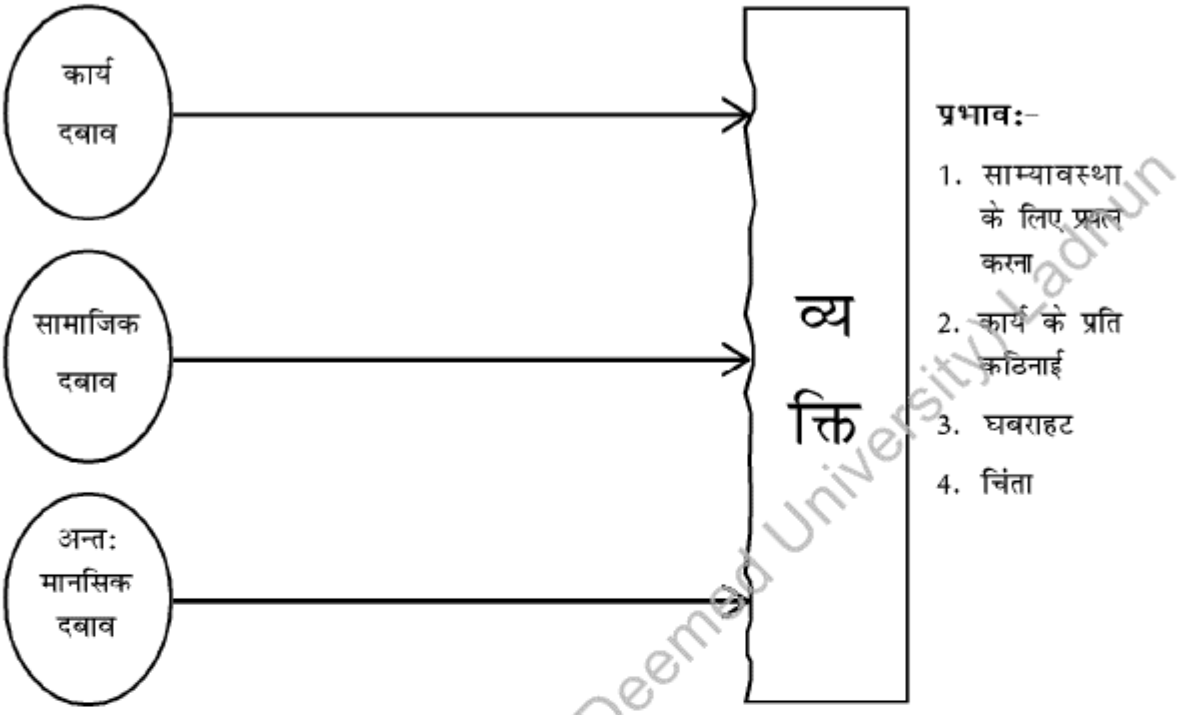

चित्र सं.-4 दबावों का व्यक्ति की साम्यावस्था पर लघु सतही प्रभाव

दूसरी स्थिति में जब दबाव की मात्रा और काल बढ़ जाने पर व्यक्ति की साम्यावस्था में दीर्घ सतही परिवर्तन आते हैं और उसे क्षति होने लगती है, इस अवस्था में उसे साम्यावस्था में लाने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न करने पड़ते हैं। व्यक्ति में घबराहट, बेचैनी एवं चिंता बढ़ जाती है। उसमें मनोशारीरिक असामान्य लक्षण उत्पन्न होने लग जाते हैं और व्यवहार आक्रामक होने लगता है। जैसा कि चित्र सं. 5 में स्पष्ट है।

तीसरी अवस्था में जब दबाव की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है तब व्यक्ति स्वयं एवं उसकी साम्यावस्था बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। व्यक्ति स्थितियों का सामना नहीं कर पाता और उसमें मानसिक, शारीरिक एवं व्यावहारिक असमानताएं प्रकट होने लगती हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व टूटने लगता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति थक जाता है या टूट जाता है वह परिस्थितियों से हार मान लेता है एवं कई मानसिक असमानताओं का शिकार हो जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति में आने वाले विशेष परिवर्तन मानसिक और शारीरिक होते हैं। मानसिक प्रभावों में—1. व्यक्ति की मानसिक एकाग्रता भंग हो जाती है, 2. सोचने, समझने एवं निर्णय लेने की क्षमताएं प्रभावित होती हैं, 3. व्यक्ति चिंता, कुण्ठा एवं अन्य मानसिक असमान्य लक्षणों से घिर जाता है।

शारीरिक लक्षणों के अन्तर्गत व्यक्ति में अनिंद्रा, सिरदर्द, अपच, स्वभाव में परिवर्तन के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यौन व्यवहार में वह असामान्य हो जाता है और अपने आपको यौन व्यवहार में कमजोर मानने लगता है। अन्ततः दबाव की इस स्थिति पर पहुंचने पर व्यक्ति पूरी तरह टूट जाता है और उसका व्यक्तित्व बिखर जाता है। चित्र सं. 6 में यह स्थिति स्पष्ट है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

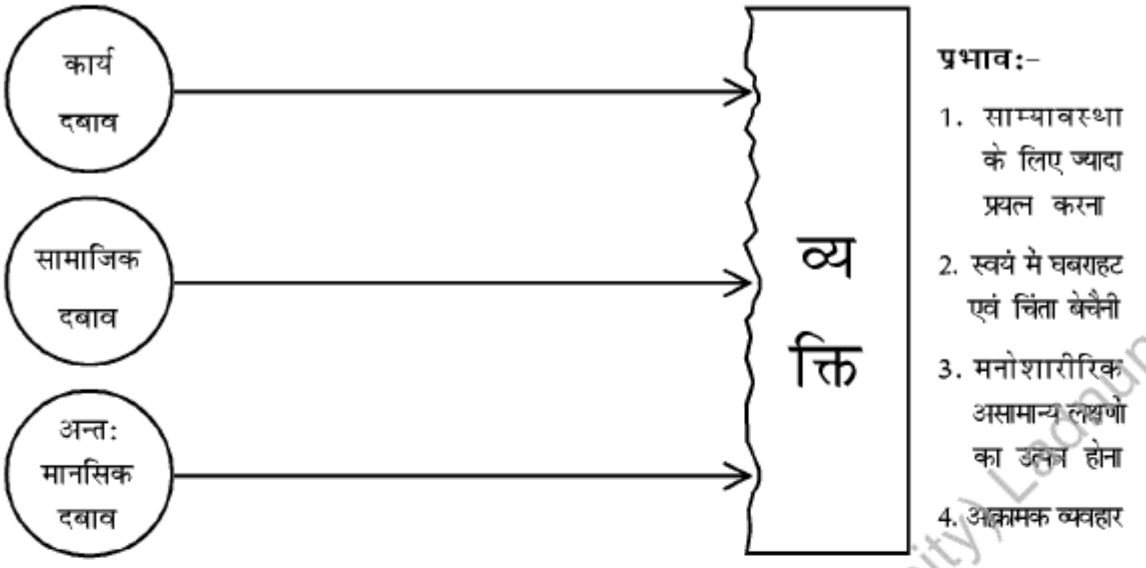

चित्र सं.-5 अधिक दबाव से साम्यावस्था पर दीर्घ सतही प्रभाव

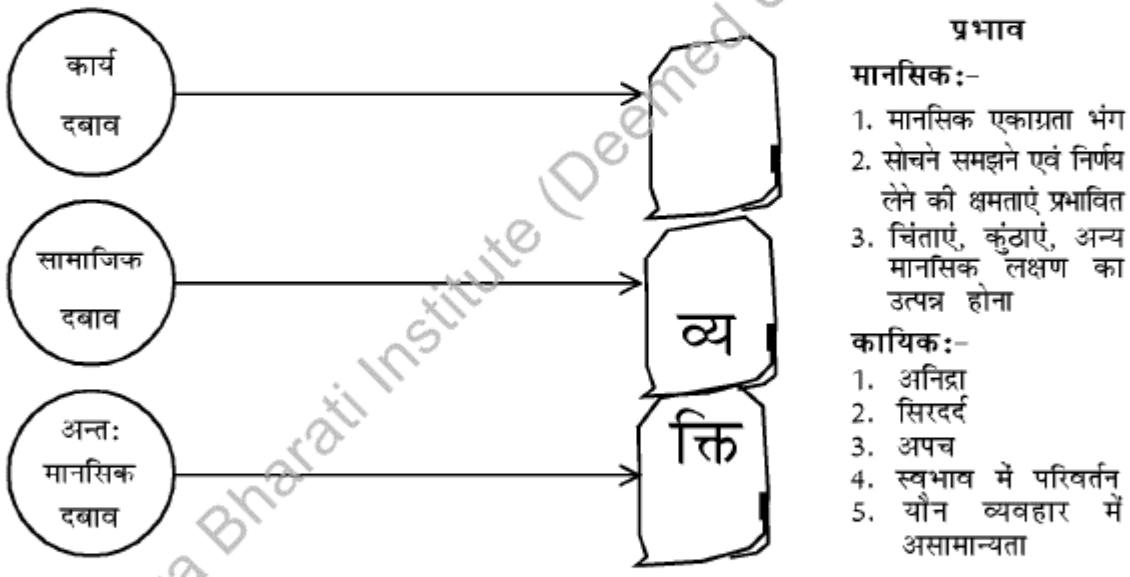

चित्र सं.-6 दबाव की मात्रा एवं काल बढ़ जाने से व्यक्ति में असामान्यता व्यक्ति का थक जाना या टूट जाना

11.5 दबाव की भारतीय धारणा (Indian Concept of Stress)

भारतीय संस्कृति में दबाव से सम्बंधित कोई सीधी धारणा नहीं है। परन्तु दबाव संप्रप्त से मिलती-जुलती कई ऐसी क्रियाओं का उल्लेख भारतीय संस्कृति के परम्परागत साहित्यों में अवश्य है। भारतीय साहित्यों में दु:ख, क्लेश, अहंकार, काम, तृष्णा एवं आधि जैसे प्रत्ययों का उल्लेख है जो पाश्चात् मनोविज्ञान में उल्लेखित दबाव से उत्पन्न होने वाले लक्षणों के समान ही है। आयुर्वेदिक प्रणाली में इन लक्षणों के बारे में स्पष्ट बताया गया है। आयुर्वेद एवं योगविज्ञान में मनोशारीरिक सम्बंधों के बारे में बहुत ही स्पष्ट लिखा गया है। योगविज्ञान या योगशास्त्र में व्यक्ति के व्यवहार के सम्बंध में मनोकायिक सम्बंधों को बहुत महत्त्व दिया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

राव (1983) ने क्लेश एवं दु:खों को आधुनिक दबाव के प्रत्यक्ष के समरूप ही माना है। क्लेश मानसिक प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह व्यक्ति का आन्तरिक बोझ (Hindering Load) है जो वास्तव में एक दबाव ही है। इसी तरह उन्होंने दु:ख को भी एक दबाव ही माना है। राव के अनुसार सांख्य योग में दु:ख दबाव ही है और इसको तीन प्रकार के दबावों में माना जा सकता है।

1. वैयक्तिक (आध्यात्मिक) — Personal (adhyathmik)
2. परिस्थितिक दबाव (अधिभौतिक) — Situational (adhibhotik)
3. पर्यावरणीय दबाव (अधिदैविक) — Environmental (adhidevik)

वैयक्तिक दबाव भी दो प्रकार के होते हैं — मानसिक एवं शारीरिक। मानसिक दबावों में लोभ, घृणा, कामुकता, लालसा, भय, द्वेषता आदि है जिससे व्यक्ति में दबाव बनता है। इसी तरह शारीरिक या कायिक दबाव वात पित्त और कफ से उत्पन्न होते हैं। परिस्थितिक दबाव स्थानिक दबाव है जबकि पर्यावरणीय दबाव प्राकृतिक आपदाओं से पैदा होते हैं, जैसे भूकम्प, तुफान, तापक्रम की अधिकता न्यूनता, अतिवृष्टि आदि।

11.6 दबाव की विधायक भूमिका (Postivie Role of Stress)

जैसाकि हमने पूर्व में लिखा है कि दबाव व्यक्ति पर केवल हानिकारक प्रभाव ही डालते हैं, ऐसी बात नहीं है। कई बार दबाव लाभदायक भी होते हैं। ऐसे दबावों से कार्य करने की गति एवं क्षमताएं भी बढ़ती हैं। केट्स डीव्रिस (Kets de Vries, 1979) के अनुसार प्रत्येक को कार्यों को सम्पादित करने के लिए कुछ मात्रा में दबाव की आवश्यकता रहती है। यदि व्यक्ति पर दबाव नहीं रहेगा तो वह कार्यों को ठीक ढंग से नहीं कर पाएगा। बच्चों के व्यवहारों को सुधारने या उनको अनुकूल बनाने के लिए थोड़ा बहुत दबाव बनाए रखना आवश्यक है। इसी तरह कार्यालयों में कर्मचारियों से सुचारू रूप से कार्य करवाने के लिए भी दबाव अति आवश्यक है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि दबाव इतना अधिक न हो कि वह व्यक्ति की कार्यक्षमताओं या व्यवहार को नकारात्मक रूप से प्रभावित करे। अत: दबाव को कृत्रिम रूप से बनाए रखना चाहिए तथा उसका प्रहस्तन सही ढंग से होना चाहिए। सीमित और सही ढंग से प्रहस्तन किया हुआ दबाव व्यक्ति की प्रगति का कारण बन सकता है और व्यक्ति के विकास में सहायक हो सकता है।

बोध प्रश्न :

---

1. तनाव को परिभाषित करें?
2. अतिरंजित दबाव क्या है?
3. दबाव की भारनीय धारणा को समझाएं?

11.7 दबाव के कारण या कारक (Causes or Factors of Stress)

प्राय: सभी लोगों को दबावों से सामना करना पड़ता है। हमें कभी-कभी ऐसी घटनाओं से रूबरू होना पड़ता है जिनसे हम परेशान हो जाते हैं या हमारा कार्यक्रम गड़बड़ा जाता है। जैसे किसी आवश्यक कार्य को जाना है और रास्ते में जाम लग गया जिससे हम आगे नहीं बढ पाते और हम गन्तव्य स्थान पर समय पर नहीं पहुंच पाते जिससे हमें कार्य की क्षति होती है, इसी से हममें दबाव बढ़ जाता है। हम कम्प्यूटर पर कार्य कर रहे हैं, कार्य भी अधिक है परन्तु विद्युत की गड़बड़ी या कम्प्यूटर में कोई गड़बड़ी आ जाए तो हम पर कार्य का दबाव बढ़ जाता है। इस तरह दैनिक जीवन में अपने कार्यक्षेत्र में ऐसी कई घटनाएं घटती हैं जिससे दबाव बढ़ना स्वाभाविक हो जाता है और इससे हमें मानसिक,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शारीरिक एवं समय की क्षति होती है। इस तरह से कई कारण हैं जिनसे हमें दबाव मिलता रहता है। दबावों के कारणों का सरल रूप से अध्ययन करने के लिए इनको कुछ श्रेणियों में बांट सकते हैं। दबावों के मुख्य कारण या कारक निम्न हैं—

1. वैयक्तिक (Individual or Personal)
2. अन्तर्वैयक्तिक (Interpersonal)
3. संस्थागत (Organizational)
4. सामाजिक एवं सामुदायिक (Social and Communal)
5. सांस्कृतिक (Cultural)
6. राष्ट्रीय (National)
7. अन्तर्राष्ट्रीय (International)
8. सार्वभौमिक (Universal)

दबाव के उपरोक्त कारणों या कारकों का हम नीचे संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं—

11.7.1 वैयक्तिक कारक (Individual Factors)

व्यक्ति पर दबाव का पहला कारण या कारक वैयक्तिक ही होता है। व्यक्ति के विश्वास (Beliefs), भाव, सोचने का तरीका एवं कार्यशैली दबाव के कारण बन सकते हैं। स्वयं की अवास्तविक आशाएं, स्वयं पर अतिविश्वास (Over confidence) या बहुत कम विश्वास (Under confidence) भी वैयक्तिक दबाव के कारण होते हैं। इनके अतिरिक्त अपने आप को किसी कार्य के योग्य न मानना, अपनी योग्यताओं का सही मूल्यांकन नहीं कर पाना, समय का सही प्रबंधन न कर पाना, अपनी आवश्यकताओं पर नियंत्रण न हो पाना भी दबाव के कारण होते हैं। अपने कार्यों की क्षमताओं को एवं आवश्यकताओं की सीमाओं को निर्धारित करने में अक्षम होने के कारण भी दबाव पैदा होता है। अपनी क्षमता से ज्यादा कार्य को स्वीकार कर लेना और फिर उसके समय पर सम्पन्न न होने से भी दबाव बढ़ता है।

11.7.2 अन्तर्वैयक्तिक कारक (Interpersonal Factors)

व्यक्ति पर पड़ने वाले दबावों में अन्तर्वैयक्तिक कारक भी बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इन कारकों में व्यक्ति जब अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क करता है या अन्य व्यक्तियों के संपर्क में आता है तब ऐसी स्थितियों में उत्पन्न तनाव दबाव के कारण बनते हैं। जैसे किसी उत्तेजित या आक्रमक व्यक्ति के संपर्क में आना। दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने में श्रम करना, पारिवारिक सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने, कार्यपरिस्थितियों में अपने अधिकारियों से व्यवहार सम्बन्धी क्रियाएं करने में उत्पन्न तनाव दबावों को जन्म देते हैं। इस प्रकार के दबाव अन्तर्वैयक्तिक दबाव कहलाते हैं। अर्थात् दूसरों के साथ पारस्परिक क्रियाओं के समय उत्पन्न होने वाले दबाव अन्तर्वैयक्तिक दबाव कहलाते हैं। इस प्रकार दबाव अन्य लोगों से सम्मान न मिलने के कारण, प्रेम न मिलने के कारण, प्रेम प्रसंगों में असफल होने के कारण, अनादर होने के कारण, अपने कार्यक्षेत्र में साथियों के साथ समायोजन न होने के कारण, अधिकारियों से अभद्र व्यवहार होने के कारण भी उत्पन्न होते हैं।

11.7.3 संस्थागत कारक (Organizational Factors)

संस्थागत दबाव कारकों में संस्थान की संरचना, अधिकारीगण, कार्य करने वाले कर्मचारी, सम्प्रेषण तंत्र (Communication System), प्रबंधन तंत्र, संस्था के मूल्य एवं उद्देश्य विशेष रूप से महत्त्व रखते हैं। व्यक्ति जिस संस्थान से जुड़ा हुआ है उसकी प्रकृति एवं उद्देश्यों का भी व्यक्ति के दबाव से सीधा सम्बंध होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संस्थान की संरचना कैसी है, उसकी कार्यशैली कैसी है, इसका सीधा प्रभाव उसमें कार्यरत व्यक्तियों पर पड़ता है। यदि अधिकारीगण अपने अधिकारों का सही ढंग से उपयोग करने में सक्षम हैं तो इसका प्रभाव कर्मचारियों पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक भी पड़ता है। कई बार अधिकारियों का पक्षपाती व्यवहार कर्मचारियों में दबाव उत्पन्न कर देता है। ऐसे अधिकारी पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाकर अयोग्य कर्मचारियों या चापलूस कर्मचारियों को पदोन्नत कर देते हैं जो संस्था के लिए अहितकर तो हैं ही साथ ही अन्य कर्मचारियों में दबाव पैदा कर देते हैं।

संस्थान में कार्य करने वाले सहभागियों का व्यवहार, उनके कार्य करने के ढंग भी दबाव का कारण बनते हैं। इनके अतिरिक्त संस्था का सम्प्रेषण तंत्र, प्रबंधन तंत्र भी दबाव के लिए काफी सीमा तक उत्तरदायी होते हैं। सम्प्रेषण तंत्र में यदि कर्मचारी की सही बात अधिकारियों तक सही ढंग से नहीं पहुंच पाती है तो कर्मचारी पर दबाव बढ़ना स्वाभाविक है। इसी तरह संस्था के मूल्यों एवं उद्देश्यों का भी संस्था में कार्यरत व्यक्ति विशेष (कर्मचारी) पर प्रभाव पड़ता है। यदि संस्था के जो मूल्य हैं उनके अनुरूप यदि संस्था कार्य नहीं कर पा रही है और वह अपने उद्देश्य से भटक कर कार्य कर रही है तो उस संस्था में कार्यरत्त हर कर्मचारी में दबाव पैदा होना स्वाभाविक है।

इस तरह संस्थान का भी व्यक्ति के दबावों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

11.7.4 सामाजिक एवं सामुदायिक कारक (Social and Communal Factors)

सामाजिक एवं सामुदायिक कई ऐसे कारक हैं जो व्यक्ति में दबाव उत्पन्न करते हैं, जैसे—सामाजिक संरचना, उसमें रहने वाले अन्य व्यक्तियों की अपराधिक प्रवृत्तियां, सामाजिक ज्ञान का अभाव या कमी, उसमें ध्वनि एवं अन्य प्रदूषण, आवागमन का साधन, समाज या समुदाय में मूलभूत सुविधाओं का अभाव आदि। चूंकि व्यक्ति को अपने समाज या समुदाय में ही रहना होता है अतः इन सभी समस्याओं का सामना उसे करना पड़ता है और इसी से उसमें दबाव उत्पन्न होता है।

11.7.5 सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors)

दबाव उत्पन्न करने में सांस्कृतिक कारकों में मुख्य रूप से जाति, प्रजाति, धर्म, यौन भिन्नता, सांस्कृतिक नियम, कुछ विशेष प्रकार के नियम, रीति-रिवाज आदि कारक आते हैं जो व्यक्ति में उत्पन्न दबावों के लिए उत्तरदायी होते हैं।

11.7.6 राष्ट्रीय कारक (National Factors)

राष्ट्रीय कारकों में राष्ट्र की नीति, आर्थिक नीति एवं आर्थिक स्थिति, बेरोजगारी, लोकसेवा, कर-भार दरें आदि महत्त्वपूर्ण कारक हैं। इनके अतिरिक्त सुरक्षा व्यवस्था, अलगाववाद, आतंकवाद, युद्ध का भय एवं युद्ध आदि भी कुछ ऐसे कारक हैं जो व्यक्तियों में दबाव उत्पन्न करते हैं।

11.7.7 अन्तर्राष्ट्रीय कारक (International Factors)

अन्तर्राष्ट्रीय दबावों के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रों के विभिन्न मूल्यों, राजनीतिक एवं संस्कृति को न समझ पाने से उत्पन्न दबाव मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त देशान्तरण या प्रव्रजन से उत्पन्न हुए दबाव भी व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। युद्ध और उससे उत्पन्न हुई विध्वंशात्मक स्थितियां भी दबाव के कारण बनते हैं।

पर्यावरणीय क्षति भी दबाव उत्पन्न करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय दबाव कारकों में से एक है।

11.7.8 सार्वभौमिक कारक (Universal Factors)

सार्वभौमिक कारकों में असुरक्षा की भावना के दबाव, खगोलीय घटनाओं के फलस्वरूप हुई क्षति के कारण उत्पन्न होने वाले दबाव मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक ज्ञान की अस्पष्टता, मृत्यु का भय, ब्रह्माण्ड में व्यक्ति के नगण्य अस्तित्व के कारण भी दबाव उत्पन्न होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.8 दबावों के प्रभाव (Effects of Stresses)

दबावों का व्यक्ति की दैनिक जीवन क्रियाओं एवं व्यक्तित्व पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। ये प्रभाव मानसिक, भावनात्मक, मनोशारीरिक एवं शारीरिक—चार प्रकार से पड़ता हैं। किसी संस्थान या संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के दबाव का प्रभाव उस संस्थान एवं संगठन के उत्पादन एवं उसके निष्पत्तियों पर भी बहुत पड़ता है। आगे हम दबावों के मानसिक, भावनात्मक एवं शारीरिक रूप से पड़ने वाले प्रभावों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

11.8.1 मानसिक प्रभाव (Mental Effects)

दबाव का मानसिक प्रभाव बहुत गहरा होता है। मानसिक दबाव के कारण कुछ मानसिक व्याधियां उत्पन्न हो सकती हैं। इन व्याधियों में प्रमुख रूप से अवसाद (Depression), दुश्चित्ता (Anxiety) तथा कुंठाएं (Frustration) आदि प्रमुख हैं। अधिक मानसिक दबाव पड़ने से व्यक्ति में अवसादिक क्रियाएं होने लगती हैं। अधिक दबावों के कारण व्यक्ति दु:श्चिंताओं से भी पीड़ित हो जाता है। इसी तरह उसमें कुंठाएं उत्पन्न हो जाती हैं। इनके अतिरिक्त व्यक्ति में दबावों के मानसिक प्रभाव के कारण मानसिक अस्थिरता बढ़ जाती है और व्यक्ति का मन किसी काम में नहीं लग पाता है। व्यक्ति के सोचने एवं समझने की क्षमता भी कम हो जाती है।

11.8.2 भावनात्मक प्रभाव (Emotional Effects)

दबावों के भावनात्मक प्रभाव से व्यक्ति में चिड़चिड़ापन आ जाता है। वह बात-बात में क्रोध करने लगता है। उसका भावनात्मक संतुलन सही नहीं रह पाता है और उसमें प्राय: तनाव बना रहता है।

11.8.3 मनोशारीरिक प्रभाव (Psycho-somatic Effects)

दबावों के मनोशारीरिक प्रभाव के कारण व्यक्ति में प्राय: सिरदर्द (Headach), पेट में घाव (Peptic Ulcers), उच्च रक्तचाप (Hyper-teusions), अस्थमा (Asthama), त्वचीय घाव (Cuteneous Ulcers), अपच (Stomach Upsets), शारीरिक दर्द (Bodyach) तथा थकान (Fatigue) आदि के लक्षण पैदा हो जाते हैं।

11.8.4 कायकार्यकी प्रभाव (Physiological Effects)

दबावों के कार्यकार्यकी प्रभावों में शरीर का भार बढ़ जाना या घट जाना (Over weight or Under weight), मोटापा (Obesity), मधुमेह (Diabetes), यकृत में विकृति (Disorder in liver) मूत्र-जनेन्द्रीय विकार (Uro-genital Disorder) आदि महत्त्वपूर्ण विकार उत्पन्न हो जाते हैं। दबाव यदि अतिरंजित हो जाए तो हृदयघात (Heart attacks) तक हो सकता है।

उपरोक्त प्रभावों के अतिरिक्त दबावों से व्यक्ति पर कई घातक प्रभाव पड़ सकते हैं, जैसे इन्द्रियों पर प्रभाव- चक्षु, श्रवणेन्द्रिय, जिह्वा आदि पर भी खराब प्रभाव पड़ सकता है।

संस्थागत या संगठनात्मक दबावों के भी कई बुरे प्रभाव देखने को मिलते हैं। संस्थागत कर्मचारियों पर यदि दबावों का प्रभाव है तो उस संस्थान् की प्रगति, उत्पादन, कार्य निष्पादन एवं सभी प्रकार के समन्वयों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

11.9 प्रश्नावली

I निबंधात्मक प्रश्न

1. दबाव के स्वरूप को समझाइए।
2. पेस्टोन्जी द्वारा प्रस्तुत दबाव के स्वरूप को समझाइए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. दबाव कितने प्रकार के होते हैं? समझाइए।
4. दबाव के कारक तत्त्वों को स्पष्ट कीजिए।
5. दबावों के होने वाले प्रभावों की व्याख्या करें।

II लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. दबाव के कारक तत्त्वों को लिखिए।
2. दबाव की भारतीय धारणा स्पष्ट कीजिए।
3. दबाव की विधायक भूमिका बताइए।

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न—सही उत्तर दें—

1. दबाव के अभिगम (Approaches) हैं—
   (क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पांच
2. हैन्स सेली के अनुसार दबाव को कितने भागों में बांटा है?
   (1) दो (2) चार (3) छः (4) आठ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई : 12 तनाव प्रबंधन एवं जीवन विज्ञान

संरचना

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 तनाव प्रबन्धन की विधियां

12.2.1 अपने पर्यावरणीय व्यवहार को बदल कर

12.2.1.1 दबाव से निवर्तन

12.2.1.2 निश्चयात्मकतापूर्वक दबाव का सामना करना

12.2.1.3 समझौतापूर्ण व्यवहार

12.2.2 अपनी जीवनशैली को बदलकर

12.2.2.1 दबाव के प्रति सहनशक्ति की क्षमता का विकास करना

12.2.2.2 जीवन कार्य गति को बदलना

12.2.2.3 व्यथित विचारों पर नियंत्रण करना

12.2.2.4 आवश्यकता होने पर समस्या के समाधान हेतु दूसरों की सहायता चाहना

12.2.2.5 सामाजिक सहायता चाहना

12.2.3 समय का सही प्रबन्धन

12.3 तनाव प्रबन्धन और प्रेक्षाध्यान

12.3.1 प्रेक्षाध्यान एक परिचय

12.3.1.1 कायोत्सर्ग

12.3.1.2 श्वास प्रेक्षा

12.3.1.3 शरीर प्रेक्षा

12.3.1.4 अन्तर्यात्रा

12.3.1.5 चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा

12.4 प्रश्नावली

12.0 प्रस्तावना

हमने पूर्व पाठ में तनाव के स्वरूप, तनाव उत्पन्न करने वाले कारकों एवं तनावों के प्रभावों के बारे में अध्ययन किया। इस अध्याय में तनावों (दबावों) का नियोजन या प्रबंधन किस तरह किया जा सकता है, इसका अध्ययन करेंगे। इस पाठ में हम यह भी अध्ययन करेंगे कि तनाव प्रबंधन में जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान किस प्रकार सहायक हो सकता है।

आज के युग में दबाव तो हर व्यक्ति पर पड़ता है, हर व्यक्ति तनावयुक्त या दबावयुक्त है। परन्तु सफलता उसी व्यक्ति को मिल पाती है जो अपने तनावों या दबावों का सही ढंग से सामना कर लेता है, उनका नियोजन कर लेता है या उनका प्रबंधन कर लेता है। तनाव प्रबंधनों के लिए आजकल कई विधियां प्रविधियां प्रचलित हैं परन्तु सही विधि का उपयोग सही ढंग से किया जाए तो व्यक्ति अपने दबावों का प्रबन्धन कर सकता है। प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान एक ऐसा विषय एवं विधि है जिसका सही ढंग से उपयोग करने से व्यक्ति अपने दबावों को कम कर सकता है और उन्हें न्यूनतम स्तर पर ला सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैसाकि हमने पूर्व में लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति तनावमुक्त या दबावमुक्त रहना चाहता है। क्योंकि दबावों से व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक—तीनों प्रकार की क्षति होती है। शारीरिक रूप से शरीर में असामान्यता जैसे कि मांसपेशियों की अकड़न, रक्तदाब में परिवर्तन, श्वसन क्रिया में परिवर्तन, पाचन संस्थान में गड़बड़ी, सिरदर्द, शारीरिक दर्द आदि प्रमुख हैं जबकि मानसिक रूप से चिंता, कुण्ठा आदि असामान्यता प्रमुख है। भावनात्मक रूप से भय, क्रोध, आक्रोश आदि प्रमुख असामान्य लक्षण उत्पन्न होते हैं।

12.1 उद्देश्य

1. इस पाठ के अध्ययन के बाद तनावों या दबावों को दूर करने की विभिन्न युक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2. तनाव व दबाव दूर करने की पर्यावरणीय व्यवहार बदलने की युक्ति के बारे में ज्ञान पाएंगे।

3. जीवनशैली को बदल कर किस प्रकार हम दबावों या तनावों को दूर कर सकते हैं। इस बारे में भी इस पाठ के अध्ययन के बाद जान पाएंगे।

4. समय का सही प्रबन्धन कर हम दबावों को कम कर सकते हैं। इसका उल्लेख भी इस पाठ के अन्तर्गत प्राप्त कर सकते हैं।

5. प्रेक्षाध्यान के कुछ अवयवों के प्रयोगों को उपयोग में लेकर दबाव या तनाव कम किये जा सकते हैं। इसके बारे में भी ज्ञान होगा।

12.2 तनाव प्रबन्धन की विधियां

तनावों या दबावों का प्रबन्धन करने के लिए व्यक्ति अनेक युक्तियों को अपनाता है। कुछ युक्तियों को अपनाते हुए वह अपने दबावों को कम कर सकता है अथवा दूर कर सकता है तथा कुछ युक्तियों को अपनाकर भी वह अपने दबावों को दूर करने में असफल हो जाता है। यहां हम कुछ मुख्य युक्तियों का वर्णन करेंगे जिनको उपयोग में लाकर व्यक्ति अपने दबावों का प्रबन्धन सफलतापूर्वक कर सकता है। ये युक्तियां हैं—

1. अपने पर्यावरणीय व्यवहार को बदल कर
2. अपनी जीवनशैली को बदल कर
3. समय का सही प्रबन्धन करके
4. प्रेक्षाध्यान के कुछ अवयवों के प्रयोगों को अपनाकर
5. योग साधनों को अपनाकर

12.2.1 पर्यावरणीय व्यवहार को बदलकर (Modifying the environmental behaviour)

इस प्रकार की युक्ति के अन्तर्गत हम अपने दबावों को दूर करने के लिए अपनी पर्यावरणीय क्रियाओं में परिवर्तन करते हैं। उदाहरणस्वरूप जैसे हम किसी वस्तुभंडार (दुकान) को एक विशेष मॉडल के परिकलक (कम्प्यूटर) की आपूर्त्ति का आदेश देते हैं। जब परिकलक की आपूर्ति हम तक हो जाती है और हम उसको खोलकर देखते हैं तब हमें यह ज्ञात होता है कि यह परिकलक वह नहीं है जिसकी आपूर्त्ति का हमने वस्तुभंडार को आदेश दिया था। ऐसी स्थिति में उत्पन्न हुए दबाव के प्रति तीन प्रकार से प्रतिक्रियाएं कर सकते हैं—

अ. जैसा भी परिकलक हमें प्राप्त हुआ है, हमने उसे स्वीकार कर लिया और यह दृढ़निश्चय किया की उस वस्तुभंडार से भविष्य में कोई और वस्तु नहीं खरीदेंगे।

ब. हम वस्तुभंडार के संचालक को उसके द्वारा की गई त्रुटि को स्पष्ट करेंगे और चाहे गये मॉडल का ही परिकलक प्राप्त करेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स. किसी अन्य मॉडल का परिकलक (जो उस वस्तुभंडार में उपलब्ध हो) खरीद लेंगे।

उपरोक्त उदाहरण की प्रतिक्रियाओं में विमुखता, निश्चयात्मकता और परिस्थिति से समझौते की प्रतिक्रियाएं प्रकट होती हैं। अतः इस प्रकार की युक्ति में हम निम्न तीन प्रकार की प्रतिक्रियाएं कर सकते हैं—

1. दबाव से निवर्तन (Withdrawal),
2. निश्चयात्मकतापूर्वक दबाव का सामना करना और (Coping the stress with assertiveness)
3. दबावों के साथ समझौता करना (Compromising behaviour)।

12.2.1.1 दबाव से निवर्तन (Withdrawal)

इस प्रकार के व्यवहार में व्यक्ति दबाव के प्रति उदासीन या निवर्तन की प्रतिक्रिया करता है। जब व्यक्ति दृढ़तापूर्वक दबाव का सामना या मुकाबला नहीं कर सकता तो वह इस प्रकार की युक्ति अपनाता है। कुछ समय के लिए जब तक दबाव या तनाव कम नहीं हो जाता या मिट नहीं जाता है, इस प्रकार का व्यवहार व्यक्ति अपनाता है। यह एक अस्थाई युक्ति है। वास्तव में इस युक्ति में व्यक्ति दबावपूर्ण स्थिति को हल करने की अपेक्षा उस स्थिति से दूर हटने का प्रयत्न करता है और अनुकूल समय आने पर उस स्थिति का सामना करने का प्रयत्न करता है। जब व्यक्ति को दबाव के प्रति उपयुक्त समाधान नहीं मिल पाता तब वह इस स्थिति को अपनाता है।

12.2.1.2 निश्चयात्मकता पूर्वक दबाव का सामना करना (Coping the stress with asser-tiveness)

इस युक्ति में व्यक्ति जब यह जान लेता है कि वह दबाव का किसी-न-किसी तरह मुकाबला या सामना कर सकता है और उसको सफलता मिल सकती है तब वह दृढ़ता पूर्वक कुछ विशेष युक्तियों को अपनाते हुए तथा कार्य करने की निश्चयात्मक क्रिया को करते हुए तनावों या दबावों का सामना कर लेता है और उनको कम करने या हटाने का प्रयत्न करता है। वह दबाव को कम करने या दूर करने की ठान लेता है और यह निश्चय कर लेता है कि मुझे इस तनाव को या दबाव को दूर करना है। इस युक्ति से व्यक्ति प्रभावपूर्णता से अपने तनावों व दबावों का प्रबन्धन कर लेता है। क्योंकि उसमें निश्चयात्मक शक्ति की प्रबलता होती है। निश्चयात्मक शक्ति वाला व्यक्ति न केवल अपने दबावों का कुशल प्रबन्धन कर सकता है अपितु स्थितियों एवं लोगों से पर्याप्त लाभ भी उठाता है।

क्षीण निश्चयात्मक शक्ति वाले व्यक्ति अपने दबावों को दूर नहीं कर पाते और वे अपने दबावों को दूर करते समय अस्थिर, चिड़चिड़े, क्रोधयुक्त और आक्रामक हो जाते हैं। इससे उनका दबाव या तनाव घटने के स्थान पर बढ़ जाता है। इस प्रकार के व्यक्तियों से दूसरे लोग लाभ उठा लेते हैं। ऐसे लोग अपना तनाव या दबाव कम करते समय दूसरों को क्षति भी पहुंचा सकते हैं एवं दूसरों में अप्रसन्नता उत्पन्न कर सकते हैं।

दृढ़ निश्चय शक्ति वाले लोग दबाव का सामना करते हुए सरलता से और बिना किसी को क्षति पहुंचाए अपना कार्य सम्पन्न कर लेते हैं। कई बार कुछ दबाव द्वन्द्वमयी स्थितियों से भी बनते हैं, जैसे एक ही समय में एक व्यक्ति को दो विपरीत कार्य करने को कह दिया जाए तो उस समय उसमें एक द्वन्द्वात्मक स्थिति बन जाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति में एक दबाव बन जाता है। इस दबाव को दृढ़ निश्चयात्मक शक्ति वाले लोग तो चतुराई से कम कर लेते हैं या दूर कर लेते हैं परन्तु क्षीण निश्चयात्मक शक्ति वाले लोगों के लिए ऐसी स्थिति उनको क्रोधी और आक्रामक बना देने वाली होती है। अतः दृढ़ निश्चयात्मक व्यवहार की युक्ति दबावों या तनावों को कम करने में बहुत उपयोगी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

12.2.1.3 समझौतापूर्ण व्यवहार (Compromising behaviour)

तनावों या दबावों को दूर करने में समझौतापूर्ण व्यवहार की युक्ति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस युक्ति को अपनाते हुए व्यक्ति अपने तनावों या दबावों को काफी सीमा तक हल कर सकता है। दबावों को दूर करने के लिए समझौतापूर्ण व्यवहार की युक्ति के भी तीन प्रकार हैं—

1. संगतिपूर्ण या अनुकूलन समझौता,
2. विनिमय पूर्ण समझौता तथा
3. प्रतिहस्त समझौता।

समझौतापूर्ण व्यवहार युक्ति के उपरोक्त तीनों प्रकारों के द्वारा व्यक्ति अपने दबावों व तनावों को दूर कर सकता है। इस प्रकार ये युक्तियां भिन्न-भिन्न प्रकार की स्थितियों, दबावों व तनावों के निस्तारण हेतु उपयोग में लाई जा सकती है। उदाहरणस्वरूप एक व्यक्ति किसी विशेष कार्यसेवा (Job) को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और वह विशेष कार्यसेवा (Job) किन्हीं कारणों से उसको नहीं मिल पाती। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति में दबाव या तनाव स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं। इन दबावों या तनावों को कम करने के लिए या दूर करने के लिए व्यक्ति संगतिपूर्ण या अनुकूलन संमझौतापूर्ण युक्ति को अपनाता है। वह किसी दूसरी अपने अनुकूल कार्यसेवा (Job) को प्राप्त कर अपना तनाव या दबाव कम कर लेता है।

दूसरे प्रकार की समझौता युक्ति (विनिमयपूर्ण समझौता) में व्यक्ति अपने दबावों या तनावों को कम करने अथवा मिटाने के लिए वार्तालाप या लेनदेन के माध्यम को अपनाता है। इस प्रकार के दबाव या तनाव हमारे दैनिक जीवन में बनते रहते हैं। जैसे—दो गुटों के मध्य विवाद और विवाद के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला वैयक्तिक या सामूहिक दबाव या तनाव। इस प्रकार के दबावों या तनावों को वार्तालाप या क्षतिपूर्ति लेन-देन के समझौते के द्वारा कम किया जा सकता है अथवा समाप्त किया जा सकता है।

तीसरे प्रकार की समझौता युक्ति में व्यक्ति प्रतिहस्त समझौता की युक्ति को अपनाकर अपने दबावों या तनावों को कम करता है अथवा नष्ट करता है। उदाहरणस्वरूप एक छात्र आयुर्विज्ञान महाविद्यालय में अध्ययन हेतु प्रवेश पाने के लिए कई बार प्रयत्न करता है और वह असफल होता है। ऐसी स्थिति में उसमें उत्पन्न होने वाले दबावों या तनावों को इस युक्ति से दूर किया जा सकता है। जैसे की वह उस महाविद्यालय में प्रवेश न लेकर किसी औषधी निर्माण विज्ञान (Pharmacy), शारीरिक चिकित्सा (Physio Therapy) अथवा पराआयुर्विज्ञान (Pera-Medical) का प्रशिक्षण लें। अर्थात् अपने अनुकूल प्रवेश न मिलने से उत्पन्न दबाव को वह उसके स्थान पर उसी विषय से संबंधित अन्य विषय का प्रशिक्षण प्राप्त कर दबावों को दूर कर सकता है।

उपरोक्त युक्तियों में पर्यावरण के दबाव कारकों एवं पर्यावरणीय व्यवहार को बदलते हुए दबावों का सामना करते हैं और दबावों को कम करने या दूर करने का प्रयत्न करते हैं। इन युक्तियों को अपनाकर व्यक्ति दबावों के हानिकारक प्रभावों से बच सकता है और अपनी मानसिक एवं शारीरिक क्षति से भी बच सकता है। अब हम आगे कुछ ऐसी युक्तियों के बारे में चर्चा करेंगे जिनमें व्यक्ति स्वयं अपनी जीवनशैली को बदल कर तनावों या दबावों का सामना कर सकता है और दबावों के हानिकारक प्रभावों से बच सकता है।

12.2.2 अपनी जीवनशैली को बदलकर (Altering the life style)

प्राय: विषम परिस्थितियों में व्यक्ति अपने पर्यावरण पर नियंत्रण करने की अपेक्षा स्वयं पर नियंत्रक करना ठीक समझता है। अपने स्वयं के व्यवहार, कार्यशैली और जीवनशैली को बदलकर व्यक्ति अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दबावों के प्रति अच्छा प्रबन्धन कर सकता है। जीवनशैली बदलने का तात्पर्य यहां यह नहीं है कि हम तनावों के प्रति उदासीन या विमुख होकर उससे बचने के लिए एक पृथक जीवनशैली का निर्माण कर लें अपितु यहां जीवनशैली बदलने का तात्पर्य अपने कुछ गुणों और क्षमताओं का विकास करना है। इसके अतिरिक्त अपनी कमियों एवं कार्यशैली में सुधार लाना है।

जीवनशैली के बदलाव में हम मुख्य रूप से पांच बिन्दुओं पर आगे चर्चा करेंगे। जो इस प्रकार है—

1. दबाव के प्रति सहनशक्ति की क्षमता का विकास करना (Developing stress tolerance power)
2. जीवन कार्य गति को बदलना (Changing pace of life)
3. व्यथित विचारों पर नियंत्रण करना (Control over distressful thoughts)
4. आवश्यकता होने पर समस्या के समाधन हेतु दूसरों की सहायता चाहना (If needed, seek help for problem solving skill's)
5. सामाजिक सहायता चाहना (Seek social support)

इन युक्तियों का हम संक्षेप में आगे वर्णन कर रहे हैं।

12.2.2.1 दबाव के प्रति सहनशक्ति की क्षमता का विकास करना (Developing stress tolarance power)

कई लोग छोटे-छोटे तनावों से, जो उनके संबंध में है या नहीं है, बहुत जल्दी विचलित और स्थितियों के प्रति असमायोजित हो जाते हैं। कई लोग भारी तनावों और दबावों में भी विचलित नहीं होते तथा स्थितियों के प्रति उनका समायोजन बना रहता है। इसका मुख्य कारण तनावों के प्रति उनकी सहनशक्ति है। यदि तनाव के प्रति सहनशक्ति का अभाव है तो व्यक्ति जल्दी विचलित हो जायेगा और असमायोजित भी। दबावों के प्रति यदि सहनशक्ति अधिक है तो व्यक्ति दबावों का सहज रूप से सामना कर सकता है। तनावों के प्रति कम सहनशक्ति वाले व्यक्ति छोटी-छोटी बात पर चिड़चिड़े हो जाते हैं और अपनी छोटी-सी आलोचना को भी सहन नहीं कर सकते। इनमें दबावों के प्रति चिंता प्राय: बनी रहती है जबकि दबावों के प्रति अधिक सहनशक्ति रखने वाले व्यक्तियों में ठीक इसके विपरीत स्थितियां होती हैं। इनमें सरलता से चिड़चिड़ापन नहीं आता। अपने प्रति आलोचनाओं से ये नहीं घबराते हैं। ये धैर्यवान् होते हैं और परिस्थितियों का सामना धैर्यता से करते हैं। ये चिन्तायुक्त कम रहते हैं।

सहनशक्ति क्षमता का विकास किया जा सकता है। इसका विकास करना भी एक कला है। व्यक्ति आत्मविश्लेषण करके, अपना धैर्य बढ़ाकर, स्थितियों का सही आंकलन करके स्थितियों को ठीक ढंग से समझने का प्रयत्न करके इस क्षमता को बढाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस युक्ति को बढ़ाने के लिए योग के कुछ अंग जैसे आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि का अभ्यास भी किया जा सकता है (इनकी चर्चा हम संक्षेप में आगे करेंगे)। इसके अतिरिक्त यह क्षमता बढ़ाने के लिए प्रेक्षाध्यान और उसके कुछ अवयवों का भी अभ्यास किया जा सकता है।

12.2.2.2 जीवन कार्यगति को बदलना (Changing pace of life)

हमारी वर्तमान की भाग-दौड़ की जीवनशैली में कई प्रकार के दबाव बनते हैं और हम समय प्रबन्धन द्वारा इन दबावों को हल्का करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु फिर भी हमारे तनाव या दबाव बने रहते हैं। वास्तव में हमारे जीवन की भाग-दौड़ की गति को नियंत्रित करना अति आवश्यक है। इस भाग-दौड़मय जीवन की गति के कारण प्रत्येक व्यक्ति का समायोजन परिस्थितियों के अनुसार भिन्न होता है। दबावों को कम करने या उनसे बचने के लिए अपनी जीवनशैली में कुछ परिवर्तन कर सकते हैं। इसके लिए कुछ युक्तियों को हम नीचे रख रहे हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. प्रात: जल्दी उठें। इससे हम अपने दैनिक कार्यों को समय पर पूरा कर सकते हैं और भागदौड़ से बच सकते हैं।
2. सही समय पर नाश्ता (Breakfast) करें।
3. कार्यों की सूची बनाएं और प्रमुख कार्यों को रेखांकित करें तथा प्राथमिकता से उनका संपादन करें।
4. कार्यस्थल तक जाने के लिए पर्याप्त समय रखें ताकि भाग-दौड़ से बचा जा सके।
5. प्रतिदिन कम से कम एक समय का भोजन अपने परिवार के सदस्यों, मित्रों या अन्य लोगों के साथ लें।
6. शराब और अन्य नशीले द्रव्यों का प्रयोग न करें अथवा कम से कम प्रयोग करें।
7. प्रतिदिन कुछ समय तक अपने आप को शिथिल (Relax) करें।
8. कुछ समय तक टहलने जाएं, साईकिल चलाएं।
9. जिस कार्य की आपको जानकारी न हो उनको हाथ में ना लें।
10. जो कार्य पूरा करने के लिए आपने हाथ में है उसमें एकाग्र रहें।
11. अपने मित्रों के साथ बातचीत के लिए समय निकालें।
12. नियमित रूप से स्वाध्याय करें।
13. सप्ताहंत में कहीं भ्रमण पर जाएं।
14. तनावमुक्त होकर सोने का प्रयत्न करें।
15. सोते से पहले कुछ पढें या संगीत सुनें।

12.2.2.3 व्यथित विचारों पर नियंत्रण करना (Control over distressful thoughts)

संभवतया किसी परीक्षण-पत्र को भरते समय उसमें उल्लेखित प्रथम प्रश्न को देखने के पश्चात् आपने अनुभव किया होगा कि कभी-कभी आप स्वयं से ही बड़बड़ाते हैं—"मैं जानता हूं कि मैं इस परीक्षण में उत्तीर्ण नहीं हो सकता हूं।" इस प्रकार के नकारात्मक आत्म प्रबोधन, जो आपकी निष्पादन में दखल देते हैं, आपको परीक्षण में कमजोर बनाते हैं।

आप इस प्रकार के व्यथित विचारों को निम्नांकित कौशल के द्वारा नियंत्रित कर सकते हैं—

सर्वप्रथम अपनी नाकारात्मक और विध्वंशकारी सोच एवं विकारों के प्रति जागरूक रहें। संभवतया आपने अनुभव किया होगा कि इस प्रकार के विचार सामान्यतया परिस्थितियों को गंभीर रूप से बिगाड़ देते हैं। जैसे कि "मैं इस परेशानी में, इस झंझट में कैसे पड़ गया?" और "मैं क्या कर सकता हूं?" आदि। व्यथित विचारों के विपरीत सकारात्मक विचारों का निर्माण करें। उदाहरणस्वरूप "मैं इस कार्य को कुशलता से सम्पन्न कर सकता हूं। मैं अपना सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन करूंगा और बता दूंगा की परिस्थितियां बदली जा सकती हैं।" इससे आपको शिथिलता (Relaxation) का अनुभव करने में सहायता प्राप्त होगी। अन्त में व्यथित विचारों का सफलता पूर्वक प्रबन्धन करने के उपरान्त स्वयं को मानसिक शाबासी देवें। स्वयं के प्रति आभारोक्ति में भी कुछ समय देवें, "मैंने इस कार्य को सम्पन्न कर लिया है, मैं अपने द्वारा प्राप्त की गई प्रगति से प्रसन्न हूं।" अथवा अन्य शब्दों में स्वयं को बधाई प्रेषित करें, जैसे कि कोई फिल्म देखने जाएं या कोई ऐसी वस्तु को खरीदें जिसकी आपको महत्ति आवश्यकता है।

12.2.2.4 आवश्यकता होने पर समस्या समाधान हेतु दूसरों की सहायता चाहना (If needed, seek helf for problem solving skills)

अधिकांश महाविद्यालयों एवं समुदायों के द्वारा प्रशिक्षण, रोजगार प्राप्ति हेतु कौशल और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तनाव-दबाव प्रबन्धन जैसे विषयों पर कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं। कुछ लोग इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेकर उनका क्रियात्मक रूप से लाभ उठाते हैं एवं कुछ लोग प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् किसी विशेष समस्या के अवसर पर उसे प्रदर्शित करने का विचार मात्र रखते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण का महत्त्व केन्टकी (Kentuckey) विश्वविद्यालय के एक प्रयोग में, जिसमें समस्या समाधान दल का सहयोग था, प्रदर्शित किया गया। शोधार्थियों के द्वारा कुछ छात्रों का चयन किया गया जो औसत स्वास्थ्य समस्याओं और अस्वस्थता कि अवधि के अलावा, उच्च दबाव स्तर से ग्रसित थे। 32 विद्यार्थियों ने स्वेच्छिक रूप से कार्यक्रम में भाग लिया जिनको रेण्डम पद्धति के आधार पर मध्यस्थ दल (Intervention group) अथवा नियंत्रित दल (Control group) के रूप में रखा गया। मध्यस्थ (Intervention) में 90 मिनट की दस सामूहिक बैठकें शामिल थी जो कि समस्या समाधान कौशल और सामुहिक अवलंब पर केन्द्रित थी। इन बैठकों में महाविद्यालयी जीवन में होने वाले दबावों एवं उनका सामना करने की रणनीति के बारे में चर्चा की गई जो छात्रों के लिए सहायक थी। नेतृत्वकर्त्ताओं और विद्यार्थियों ने सटीक रणनीति कौशल का प्रदर्शन करने में बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया। अन्त के आधे सत्रों में विद्यार्थी ने अतिरिक्त दिलचस्पी को परिपोषण करने में उत्साह दिखाया जो उनको महाविद्यालय में प्राप्त हुए थे। प्राप्त परिणामों के द्वारा यह स्पष्ट हुआ कि जिन विद्यार्थियों ने प्रशिक्षण समूहों में भाग लिया था, उन्होंने न केवल समस्या समाधान कौशल और सामुहिक अनलंब की प्रशंसा की अपितु उनके स्वास्थ्य में भी सुधार पाया गया। नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों की तुलना में इन विद्यार्थियों ने कमतर स्वास्थ्य समस्याओं, कमतर नई बीमारियों के वृतान्त तथा अयोग्यता के दिनों में कमी की सूचना दी।

12.2.2.5 सामाजिक सहायता चाहना (Seek Social Support)

कई अध्ययनों ने यह प्रदर्शित किया है या अनलंब समूह का अनलंब प्राप्त होता है। जब हमें किसी समूह, निकटस्थ मित्र तब हम दबावों का प्रबन्धन अधिक सफलतापूर्वक करते हैं एवं बेहतर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का आनन्द लेते हैं। उदाहरण के तौर पर, एक अध्ययन में कोहेन (1988) ने पाया कि जिनके सामाजिक संबंध क्षीण होते हैं, उन व्यक्तियों के मुकाबले निकटस्थ नातेदारी का दबावों का सामना करने के रूपों (तरीकों) पर सार्थक प्रभाव पड़ता है, साथ ही हमारे स्वास्थ्य एवं नैतिकता पर भी। व्यक्तियों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से ग्रस्त होने और अकाल (समयपूर्व, अपरिपक्व), मृत्यु की संभावनाएं कम होती हैं जो अपने पारिवारिक सदस्यों का, निकट मित्रों का, धार्मिक वर्ग के सदस्यों, साथी कर्मचारियों और अन्य सहायक समूहों का सहयोग प्राप्त करते हैं।

मित्रों और अनलंब समूहों का आधिक्य दबावों को विभिन्न मार्गों के द्वारा विसर्जित करने में सहायक हो सकता है। प्रथम, निकटस्थ नातेदारियां व्यक्ति को उन दु:खद अनुभवों को बांटने का अवसर उपलब्ध करवाती है जो स्वयं द्वारा ही वहन करने पर बोझिलता को उत्पन्न कराते हैं। द्वितीय, मित्र, व्यक्ति को उनके अपने स्नेह एवं आत्मीय उद्गारों के द्वारा भावनात्मक अनुलंब प्रदान करते हैं। तृतीय, हमारे मित्रों की आपसी समझ और आश्वासन हमारे आत्मसम्मान को जीवन की विषम परिस्थितियों में संबल देने वाले हो सकते हैं। चतुर्थ, संबंधित मित्रों और सहायक समूह हमें सही सलाह और सूचना दे सकते हैं जो हमारी समस्या के समाधान में उपयोगी होते हैं।

बेशक कुछ लोग जो हमारे आस-पास होते हैं, हमारे लिए जान-बूझकर तनाव या दबाव पैदा कर सकते हैं। कार्यालयों में कुछ अधिकारी एवं साथी कर्मचारी भी ऐसे हो सकते हैं जो तनाव या दबाव उत्पन्न करें। इस समस्या से उत्पन्न होने वाले दबावों का निराकरण भी समाज के अन्य सदस्यों के द्वारा ही होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पाश्चात्य देशों में पारिवारिक विघटन बहुत शीघ्रता से एवं अधिक मात्रा में होता है। कई देशों में तलाक की दर एक तलाक प्रति मिनट भी है। पारिवारिक विघटन की बीमारी भारत में तेजी के साथ बढ़ रही है। इस प्रकार की समस्या का पति, पत्नी, बच्चों एवं परिवार के अन्य सदस्यों पर गहरा दबाव पड़ता है परन्तु इनका हल भी समाज से निकल सकता है। समाज के व्यक्तियों से सहायता लेकर इस प्रकार के दबावों को कम किया जा सकता है।

12.2.3 समय का सही प्रबन्धन (Time Management)

व्यक्ति में दबाव उत्पन्न करने और कम करने में समय प्रबन्धन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। समय का सही प्रबन्धन नहीं किया जाए और किसी कार्य को समय पर पूरा न किया जाए तो व्यक्ति में दबाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है और जब यह दबाव बढ़ जाता है तब शारीरिक और मानसिक स्थितियां बिगड़ने लगती हैं। कई लोगों में कार्य को कल पर टालने की प्रवृत्ति होती है और कल-कल करते-करते वे अपना कार्य भार बढ़ा लेते हैं। कालान्तर में कार्य समय पर पूरा न होने पर उनमें भयंकर दबाव बन जाता है। क्योंकि समय की सीमा होती है। अत: समय का मूल्यांकन एवं सही उपयोग कर हम अनावश्यक दबावों से बच सकते हैं।

बोध प्रश्न :

---

1. पर्यावरणीय व्यवहार को बदलकर हम तनावों को कैसे कम कर सकते हैं?
2. दबाव के प्रति सहन शक्ति को कैसे बढ़ाया जा सकता है?

12.3 तनाव प्रबन्धन और प्रेक्षाध्यान

वर्तमान समय में आधुनिकता की अंधी दौड़ ने व्यक्ति को विभ्रमित कर दिया है। भौतिकता की चकाचौंध ने व्यक्ति के नैतिकता के स्तर को निम्न बना दिया है। अधिक से अधिक और नवीनता को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपने उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम दोहन करता है किंतु इसके पश्चात् भी जब उस व्यक्ति को वांछित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है तो वह दबाव अथवा तनाव की स्थिति में आ जाता है। इस प्रकार के दबाव व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं और यदि व्यक्ति स्वयं को इस स्थिति से सफलतापूर्वक निपटने में अक्षम पाता है तो वह कई प्रकार की व्याधियों से ग्रसित हो जाता है। अत: तनावों या दबावों का प्रबन्धन अथवा उनका निस्तारण व्यक्ति के स्वास्थ्य को संतुलित बनाए रखने के लिए अत्यावश्यक है। तनाव अथवा दबाव के प्रबन्धन में पूर्व वर्णित अन्य युक्तियों के साथ-साथ प्रेक्षाध्यान एवं इसके विभिन्न अवयवों का प्रयोग भी सार्थक एवं उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

12.3.1 प्रेक्षाध्यान : एक परिचय

प्रेक्षाध्यान, ध्यान की उत्कृष्ट पद्धति है। इसके अभ्यास के द्वारा व्यक्ति न केवल शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों या दबावों से मुक्त होता है बल्कि उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भी संभव होता है। प्रेक्षाध्यान एवं इसके विभिन्न अवयवों के नियमित अभ्यास के द्वारा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर सकारात्मक एवं सार्थक परिवर्तन होते हैं।

जैसाकि पूर्व में हमने तीन प्रकार के तनावों अथवा दबावों—शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का वर्णन किया है जो कि व्यक्ति को असंतुलित बना देते हैं। इन तनावों अथवा दबावों को दूर करने अथवा उनका प्रबन्धन करने में प्रेक्षाध्यान एवं उसके विभिन्न अवयव किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, इसका वर्णन हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

12.3.1.1 कायोत्सर्ग (Relaxation)

कायोत्सर्ग शिथलीकरण की एक उत्कृष्ट प्रक्रिया है। शिथलीकरण के द्वारा हम सर्वप्रथम अपने शारीरिक तनावों अथवा दबावों का निस्तारण करते हैं। किसी भी प्रकार के तनाव या दबाव का प्रभाव सर्वप्रथम हमारे शरीर पर पड़ता है और इससे हमारी मानसिक एवं भावनात्मक असंतुलन की अभिव्यक्ति होती है। अत: तनाव अथवा दबावों से मुक्ति के लिए सर्वप्रथम कायोत्सर्ग का अभ्यास करते हैं। कायोत्सर्ग वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वत: सूचन (Auto-suggestion) पद्धति से अपने शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों को विसर्जित करता है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम शरीर के प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित कर शिथिलता का सुझाव देकर शिथिलता का अनुभव किया जाता है। धीरे-धीरे पूरे शरीर की शिथिलता को साधा जाता है। इस प्रक्रिया से शरीर को गहन विश्राम मिलता है जो शरीर को पुन: ऊर्जामय बनाने में सहायक होता है। स्नायु मण्डल सहित शरीर के सभी संस्थानों को भी गहन विश्राम मिलता है। उनकी क्रियाओं में सुधार आता है और असामान्य क्रियाएं भी सामान्य होने लगती हैं। इस प्रक्रिया से शरीर का लचीलापन भी बढ़ता है।

प्रेक्षाध्यान के किसी भी अवयव के अभ्यास से पूर्व कायोत्सर्ग किया जाता है।

12.3.1.2 श्वास प्रेक्षा (Perception of Breathing)

श्वास प्रेक्षा के दो प्रकार हैं—दीर्घ श्वास प्रेक्षा तथा समवृत्ति श्वास प्रेक्षा। श्वास प्रेक्षा की प्रक्रिया में श्वास का संतुलन किया जाता है क्योंकि श्वास के असंतुलन का प्रभाव न केवल हमारे शरीर पर बल्कि मन और भावनाओं पर भी पड़ता है। श्वास के असंतुलन का दुष्प्रभाव हमारे रक्तचाप, चयापचय की दर तथा त्वचीय प्रतिरोध के साथ-साथ हमारी मानसिक क्रियाओं, सोचने-समझने की शक्ति और एकाग्रचित्तता पर भी पड़ता है। तनाव अथवा दबाव की स्थिति में भी हमारा श्वास असंतुलित हो जाता है। जिसके फलस्वरूप हमारे शरीर में ऊपर वर्णित परिवर्तन होते हैं जो कि शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

अत: श्वासप्रेक्षा के अभ्यास के द्वारा हम श्वास संतुलन का अभ्यास करके हमारी शारीरिक और मानसिक क्रियाओं को संतुलित करते हैं जिसका सीधा एवं सकारात्मक प्रभाव हमारे तनाव-दबाव प्रबंधन प्रक्रिया पर पड़ता है। क्योंकि यदि व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ एवं मानसिक रूप से जागरूक रहे तो उसे तनाव या दबाव कम प्रभावित करते हैं और यदि तनाव या दबाव का प्रभाव होता है तो व्यक्ति उनका प्रबन्धन कुशलता से कर सकता है।

12.3.1.3 शरीर प्रेक्षा (Perception of Body)

शरीर प्रेक्षा का अभ्यास हमारे शरीर में तनावों एवं दबावों के द्वारा उत्पन्न असंतुलन को दूर करता है। जब हम शरीर के विभिन्न अवयवों पर चित्त को केन्द्रित करते हैं तो हमारे मस्तिष्क (Brain) की शक्तियां उस स्थान पर केन्द्रीभूत हो जाती हैं। इससे वहां पर जो भी कोई असंतुलन या तनाव होता है, दूर हो जाता है। दबावों एवं तनावों के विसर्जन हो जाने पर शरीर में हल्केपन का अनुभव होता है एवं हमारी कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शरीर प्रेक्षा की प्रक्रिया में चित्त को शरीर के प्रत्येक अवयव पर क्रमशः केन्द्रित करते हैं। किन्तु इस प्रक्रिया में कायोत्सर्ग की भांति स्वतःसुझाव नहीं दिये जाते हैं बल्कि शरीर के प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित करके प्रेक्षा मात्र की जाती है। प्रियता एवं अप्रियता के भावों से मुक्त होकर वहां पर होने वाले कम्पन, प्रकम्पन एवं संवेदन का अनुभव मात्र करना, प्रेक्षा करना शरीर प्रेक्षा है। इस प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति अपने शारीरिक दबावों और तनावों का निस्तारण कर सकता है। तनाव अथवा दबाव की स्थिति में हमारे शरीर की मांसपेशियां तथा अन्य भीतरी अवयव एवं उनके कार्य असंतुलित हो जाते हैं जो स्थिति को और अधिक गंभीर बना देते हैं। शरीर के इन अंगों के असंतुलित हो जाने का गंभीर प्रभाव हमारे मस्तिष्क एवं उसके कार्यों पर पड़ता है। अतः, यदि हम अपने शरीर के विभिन्न अंगों की क्रियाओं एवं उनके कार्यों को संतुलित बना ले तो उसका सार्थक प्रभाव हमारे मस्तिष्क एवं उसके कार्यों पर भी होगा।

12.3.1.4 अन्तर्यात्रा (Internal Trip)

दबावों या तनावों की अवस्था में हमारे शरीर के सभी अंग असंतुलित हो जाते हैं और उनकी कार्यक्षमता में कमी आ जाती है। जिसके परिणामस्वरूप शरीर में ऊर्जा का उत्पादन भी कम हो जाता है। ऊर्जा के उत्पादन में कमी आने का सबसे अधिक प्रभाव हमारे मस्तिष्क (Brain) पर पड़ता है। फलतः मस्तिष्क की कार्यक्षमता में कमी आ जाती है जिससे व्यक्ति मानसिक रूप से असंतुलित हो जाता है और उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है।

अन्तर्यात्रा हमारी चेतना की शक्ति का ऊर्ध्वारोहण करने की प्रक्रिया है। हमारी सुषुम्ना के अंतिम छोर में ऊर्जा का स्थान माना गया है। जब तक यह शक्ति हमारी सुषुम्ना के अंतिम सिरे में स्थित होती तब तक यह निष्क्रिय होती है। अंतर्यात्रा की प्रक्रिया के नियमित अभ्यास के द्वारा हम चेतना की इस शक्ति का सुषुम्ना के मार्ग से मस्तिष्क की ओर ऊर्ध्वारोहण करते हैं, जिससे यह शक्ति हमारे मस्तिष्क में पहुंचे और वहां पहुंचने पर इस शक्ति का शरीर की विभिन्न क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं के संचालन में उपयोग किया जा सके। शक्ति का ऊर्ध्वारोहण हमें दबावों और तनावों से मुक्त रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अन्तर्यात्रा की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप हमारा पूरा शरीर चेतनामय एवं शक्ति सम्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में हम हमारे समक्ष उपस्थित होने वाली सभी स्थितियों एवं परिस्थितियों का साहस एवं सूझबूझ से सामना करते हैं। जिससे कि ऐसी स्थितियों या परिस्थितियों में हम दबाव या तनाव का अनुभव नही करते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अन्तर्यात्रा का अभ्यास हमें दबाव-तनाव मुक्त रखने एवं उनके निष्तारण में सहायक होता है।

12.3.1.5 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा (Perception of Psychic Centre)

हमारे शरीर में चेतना के असंख्य केन्द्र हैं किन्तु प्रेक्षाध्यान की अवधारणा में प्रमुख तेरह (13) चैतन्य केन्द्र माने गये हैं। चैतन्य केन्द्र हमारे शरीर के वे स्थान अथवा बिंदु हैं जहां हमारी चेतना की रश्मियां घनीभूत रूप में विद्यमान रहती हैं। चेतना की ये रश्मियां हमारे शरीर में चलने वाली विभिन्न गतिविधियों को प्रभावित करती हैं।

वैज्ञानिक आधार पर चैतन्य केन्द्र वे हैं, ज्हां हमारी तंत्रिकाओं के समूह (Pleuxes) पाए जाते हैं। साथ ही चैतन्य केन्द्रों का क्षेत्र हमारी अन्तःस्रावी ग्रंथियों से भी संबंधित है।

जैसाकि हमने पूर्व में बताया है कि दबाव या तनाव की अवस्था का हमारी शारीरिक क्षमताओं एवं क्रियाओं पर विपरीत एवं विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। चैतन्य केन्द्रप्रेक्षा की प्रक्रिया में हम हमारे शरीर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में स्थित विभिन्न चैतन्य केन्द्रों पर चित्त को केन्द्रित करते हैं। ऐसा करने के परिणामस्वरूप चेतना के ये सघन केन्द्र जागृत होते हैं। चैतन्य केन्द्रों के जागरण होने का तात्पर्य हमारी अन्तस्रावी ग्रंथियों के स्रावों के संतुलित होने से है क्योंकि दबाव की अवस्था में हमारी इन ग्रंथियों के स्रावों में अनियमितता उत्पन्न हो जाती है। चैतन्य केन्द्रप्रेक्षा के परिणामस्वरूप हमारी चेतना का अर्थात् ऊर्जा का जागरण होता है। हमारी अंत:स्रावी ग्रंथियों के स्राव नियमित एवं संतुलित होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप हमारे शरीर के अन्य तंत्र एवं उनकी क्रियाएं भी संतुलित होने लगती हैं और हम दबाव व उससे उत्पन्न परिस्थितियों से कुशलता से निपटने में सक्षम होते हैं।

12.4 अभ्यास के लिए प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. अपने पर्यावरणीय व्यवहार को बदलकर हम दबावों का सामना किस प्रकार कर सकते हैं।
2. जीवनशैली में परिवर्तन दबाव प्रबंधन में किस प्रकार उपयोगी है, स्पष्ट कीजिए।
3. समय का सही प्रबन्धन करके हम दबावों को किस प्रकार दूर कर सकते हैं, समझाइये।
4. प्रेक्षाध्यान एवं इसके विभिन्न अवयव दबाव प्रबन्धन में किस प्रकार उपयोगी है, विस्तार से समझाइये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. दबाव से निर्वतन से आप क्या समझते हैं।
2. निश्चयात्मक पूर्वक दबाव का सामना क्या है?
3. दबावों के प्रति समझौतापूर्वक व्यवहार क्या है?
4. जीवन कार्यगति को बदलकर दबाव का सामना कैसे किया जा सकता है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. समय नष्ट करने वाले कारकों के नाम लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-13 अभिव्यक्ति का महत्त्व, कारक तत्त्व एवं अनेकान्त

संरचना

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 संप्रेक्षण का स्वरूप

13.2.1 अभिव्यक्ति कौशल का महत्त्व

13.2.1.1 अभिव्यक्ति का स्वरूप

13.3 संप्रेषण

13.3.1 संप्रेषण का अर्थ एवं परिभाषा

13.3.2 संप्रेषण के तत्व

13.3.2.1 संकेत एवं चिह्न

13.3.2.2 भाषा

13.3.2.3 समझ

13.4 संप्रेषण के कारक तत्व

13.4.1 अनेकान्त दृष्टिकोण

13.4.2 कथनी-करनी में एकरूपता

13.4.3 आत्म-विश्वास

13.4.4 स्पष्टता

13.4.5 गृहण क्षमता

13.4.6 संवेग नियंत्रण

13.4.7 सीखने की इच्छा

13.5 संप्रेषण के कार्य

13.6 संप्रेषण की विशेषताएं

13.7 संप्रेषण के उद्देश्य

13.8 संप्रेषण के सिद्धान्त

13.8.1 स्पष्टता का सिद्धांत

13.8.2 ध्यान का सिद्धांत

13.8.3 ईमानदारी का सिद्धांत

13.8.4 उपयोग का सिद्धांत

13.8.5 नियंत्रण का सिद्धांत

13.8.6 प्रमापीकरण का सिद्धांत

13.8.7 परामर्श का सिद्धांत

13.8.8 अनुकूलता का सिद्धांत

13.8.9 प्रतिपुष्टि का सिद्धांत

13.8.10 नेतृत्व का सिद्धांत

13.9 संप्रेषण प्रक्रिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.9.1 संदेश
13.9.2 साधन
13.9.3 प्राप्तकर्ता
13.9.4 प्रति सूचना
13.10 संप्रेषण के प्रकार
13.10.1 औपचारिक एवं अनौपचारिक संप्रेषण
13.10.2 मौखिक एवं लिखित संप्रेषण
13.10.3 अधोगामी, ऊर्ध्वगामी तथा क्षैतिजीय एवं तिर्यक् संप्रेषण
13.11 संप्रेषण के माध्यम
13.11.1 सूचना पट्ट
13.11.2 स्थायी निर्देश
13.11.3 पोस्टर पत्रिका
13.11.4 ब्राउचर या फोल्डर
13.11.5 आकाशवाणी तथा दूरदर्शन
13.11.6 पुस्तकालय-वाचनालय
13.11.7 प्रशिक्षण कार्यक्रम
13.11.8 विशिष्ट कार्यक्रम
13.12 क्रियात्मक संप्रेषण
13.13 सारांश
13.14 प्रश्नावली
13.15 संदर्भ ग्रंथ

13.0 प्रस्तावना

वर्तमान युग में शक्ति का सर्वोत्तम स्रोत है—विशेषज्ञता। अर्थात् ज्ञान-विज्ञान के किसी एक क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करना। विशेषज्ञता के साथ-साथ जिसके पास उसको संप्रेषित या अभिव्यक्त करने की क्षमता है, उसकी शक्ति असीमित हो जाती है। जीवन विज्ञान के अध्येता जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान और योग में अपनी विशेषज्ञता प्राप्त करें तो उनकी शक्ति में अभूतपूर्व विकास होगा। इसके साथ ही अपने ज्ञान-विज्ञान को प्रभावी ढंग से सेवार्थी या प्रशिक्षु तक संप्रेषित या अभिव्यक्त करने की क्षमता प्राप्त कर लेंगे तो उनकी शक्ति असीम बन जाएगी।

जीवन विज्ञान का अध्येता जीवन में क्या करता है इसका निर्णय इस पर निर्भर है कि वह स्वयं से किस प्रकार संप्रेषण स्थापित करता है। आधुनिक युग में जीवन की गुणवत्ता संप्रेषण की गुणवत्ता पर आधारित है। संप्रेषण के दो प्रकार हैं—आन्तरिक एवं बाह्य। व्यक्ति के जीवन में प्रसन्नता इस बात पर निर्भर नहीं है कि उस पर क्या बीत रहा है किंतु इस बात पर निर्भर है कि वह उसकी व्याख्या किस प्रकार से करता है। उसका जीवन और जीवन में होने वाली घटनाओं के प्रति दृष्टिकोण कैसा है? व्यक्ति जिस दृष्टिकोण से जीवन की व्याख्या करता है और इसे अपने भीतर संप्रेषित करता है उसी पर उसके जीवन में प्रसन्नता और शांति निर्भर है। आन्तरिक संप्रेषण का प्रयोग है—अनुप्रेक्षा। जिसकी पिछले पाठो में चर्चा की गई।

''बाह्य अभिव्यक्ति'' का अध्ययन ''प्रबंध (Management)'' जैसे विषयों में विस्तार से किया जाता है। इसका तकनीकी शब्द है—संप्रेषण। जीवन विज्ञान में अभिव्यक्ति या संप्रेषण का अध्ययन तीन रूपों में करना है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. संप्रेषण के सामान्य स्वरूप को समझना एवं संगठन या संस्थान के एक सफल सदस्य के रूप में विकसित होने के लिए उसके संप्रेषण प्रणाली को समझना।
2. एक सफल प्रशिक्षक के रूप में विकास करने के लिए 'अभिव्यक्ति कौशल' या 'वक्तृत्व कला' को समझना एवं अभ्यास द्वारा पुष्ट करना।
3. अपने दैनिक जीवन में सौहार्दमय संबंध एवं कार्य-निष्पत्ति के लिए अभिव्यक्ति में पारंगत बनाना।

अनेकान्त सिद्धान्त का आधार भगवान् महावीर का यह सूत्र है—'किं न नए के यं पुरिसे' (आचारांग) अर्थात् वक्ता तभी सफल हो सकता है जब वह बोलते समय यह ध्यान रखे कि सामने सुनने वाला व्यक्ति कौन है? उसका दृष्टिकोण क्या है? मैं किस दृष्टिकोण से बात कह रहा हूं? जीवन विज्ञान का प्रशिक्षक होने का तात्पर्य है कि अनेकान्त का व्यवहार में उपयोग किया जाये। सही परिप्रेक्ष्य में सही बात कहना व सामने वाले को सही संदर्भ में ग्रहण करना। प्राय: व्यक्ति अपनी बात को अनेक माध्यमों से अभिव्यक्त करता है किंतु उसमें सबसे कठिन है आमने-सामने अपनी बात को प्रभावी ढंग से रखना। सामान्यतया व्यक्ति अपनी बात को कहते समय यह भूल जाता है कि कहने वाला एवं सुनने वाला एक व्यक्ति नहीं किंतु दो अलग-अलग व्यक्ति हैं। दोनों की रुचियां, प्रयोजन, लक्ष्य, आवश्यकताएं एवं दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं। प्रशिक्षक को बोलते समय इन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

अच्छे अभिव्यक्ति कौशल से प्रशिक्षक अपने आपको अच्छे ढंग से प्रस्तुत कर सकता है। इससे उसके अनेक सहयोगी व मित्र बन जाते हैं। संगठन या संस्थान की संप्रेषण प्रणाली को समझकर कार्य करने से वहां वह अपनी सेवा सफलता से दे सकता है। अन्तत: वह अपने कार्यक्षेत्र में सफलता को प्राप्त करता है। कमजोर अभिव्यक्ति के दुष्परिणाम भी कष्टदायक होते हैं। इससे व्यक्ति अकेला पड़ जाता है। असमंजस में रहता है। निराश और उदास रहने लगता है। अपने आपको उपेक्षित अनुभव करने लगता है। उसके लिए सामान्य सम्बंधों की मधुरता एवं सुदृढ़ता को बनाये रखना कठिन होता है। अत: जीवन विज्ञान के अध्येता के लिए यह अनिवार्य है कि वह संप्रेषण के स्वरूप को समझे। संगठनों की संप्रेषण प्रणालियों को भी समझे और स्वयं में संप्रेषण दक्षता को विकसित करे।

13.1 उद्देश्य

1. अभिव्यक्ति कौशल या सम्प्रेषण दक्षता का महत्त्व समझाना।
2. सम्प्रेषण का स्वरूप क्या है? इनका अध्ययन करना।
3. सम्प्रेषण के सिद्धान्त, प्रक्रिया और प्रकार के विषय में जानना।
4. जीवन विज्ञान में सम्प्रेषण के किन-किन माध्यमों का उपयोग किया जाता है? इसका ज्ञान करना आदि।
5. अभिव्यक्ति के कारक तत्त्व कौन-कौन से हैं? उन्हें समझना आदि।

13.2 संप्रेषण का स्वरूप

13.2.1 अभिव्यक्ति कौशल का महत्त्व

अनेकान्त का सिद्धान्त अभिव्यक्ति कौशल का एक प्रमुख आधार है। संप्रेषण दक्षता या अभिव्यक्ति कौशल सफलता की कुंजी है। व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र में सफलता एवं पारस्परिक सम्बंधों में मधुरता इसी अभिव्यक्ति कौशल से अर्जित करता है। दूसरों पर अपने अनुभवों एवं विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति इसी अभिव्यक्ति की क्षमता से की जाती है। दूसरों के अनुभवों एवं विचारों से भी व्यक्ति तभी लाभान्वित हो सकता है जब सामने वाले व्यक्ति की अभिव्यक्ति स्पष्ट हो।

यदि कोई व्यक्ति अपने भावों एवं विचारों को प्रभावशाली ढंग से लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहे तो उसे संकेतात्मक एवं भावात्मक अभिव्यक्ति कौशल की दक्षता को विकसित करना होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अभिव्यक्ति एवं अभिव्यक्ति कौशल में वही अन्तर है जो जीने एवं कलापूर्ण जीवन जीने में है। संसार का प्रत्येक व्यक्ति जीवन जीता है किंतु सार्थक एवं कलापूर्ण जीवन कितने व्यक्ति जीते हैं। इसी प्रकार संसार का प्रत्येक व्यक्ति अभिव्यक्ति करता है लेकिन सार्थक व सोद्देश्यपूर्ण अभिव्यक्ति कितने लोग करते हैं? सार्थक व सशक्त अभिव्यक्ति करना अपने आप में एक कला है, इसे भी अन्य कलाओं की तरह सलक्ष्य प्रयत्नपूर्वक सीखना होता है। जीवन विज्ञान के अध्येता के लिए जीवन में पारस्परिक सौहार्द एवं कुशल प्रशिक्षण के लिए सशक्त अभिव्यक्ति कौशल का विकास आवश्यक है।

13.2.1.1 अभिव्यक्ति का स्वरूप

अच्छी अभिव्यक्ति के लक्षणों को अच्छे वक्ताओं एवं प्रशिक्षकों की अभिव्यक्ति मे देखा जा सकता है—

- वे जानते हैं कि उन्हें क्या कहना है?
- वे श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम होते हैं।
- वे श्रोताओं से तादात्म्य बनाने और बनाये रखने में कुशल होते हैं।
- वे श्रोताओं की पसन्द और रुचि को जानते हैं।
- वे अपने वक्तव्य और विषय-वस्तु का सावधानी से चुनाव करते हैं।
- वे अभिव्यक्ति कौशल में दक्ष होते हैं।
- वे कब और कहां क्या कहना है, इस बात का भी सावधानी से चुनाव करते हैं।
- वे अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट, संक्षिप्त व समयानुकुल बनाये रखते हैं।
- वे वक्ता के साथ-साथ अच्छे श्रोता भी होते हैं।
- वे दूसरों के विचारों को समझने की क्षमता रखते हैं एवं आवश्यकता पड़ने पर उसे स्पष्ट भी कर सकते हैं।
- वे अपनी एकाग्रता को बनाये रखते हैं।
- वे अभिव्यक्ति को प्रारंभ करना व समाप्त करना भी जानते हैं।

दूसरी ओर एक कमजोर वक्ता यह नहीं जानता है कि उसे क्या कहना है? किसे कहना है? श्रोता की आवश्यकता व रुचि क्या है? किस समय और कहां क्या बात कहनी चाहिए? वे श्रोताओं की प्रतिक्रियाओं के प्रति बेखबर रहते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता या ध्यान ही नहीं देते हैं कि श्रोता क्या चाहते हैं?

13.3 संप्रेक्षण

व्यक्ति में वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों होती हैं। वैयक्तिकता के सम्पूर्ण विकास और उपयोग का आधार है—स्व-प्रबंधन। वैयक्तिक उसकी स्वयं की विशिष्टता है। उसकी अभिव्यक्ति का हेतु बनता है—समाज। अतः व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी भी है। व्यक्ति-व्यक्ति को जोड़ने वाला है उसका परस्पर व्यवहार। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच पारस्परिकता से ही समाज का निर्माण होता है। पारस्परिकता, आपसी सौहार्द एवं कार्य निष्पत्ति का एक प्रमुख आधार है—सम्प्रेषण या अभिव्यक्ति दक्षता।

मानव शरीर में जो स्थान स्नायुतंत्र का है वही स्थान जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान और योग-प्रशिक्षण में संप्रेषण का है। वही संप्रेषण सफल एवं परिपूर्ण होता है जिसमें लक्ष्य पूर्त्ति के उद्देश्य से संप्रेषक द्वारा कही गई बात संप्रेषिती उन्हीं अर्थों में समझे तथा इच्छित कार्यवाही करें।

जीवन विज्ञान में ध्यान और योग की सैद्धान्तिक और प्रायोगिक जानकारी देना आवश्यक होता है। इसके लिए संप्रेषण एक अनिवार्य स्रोत है। यह व्यक्ति को अभ्यास और साधना के लिए भी प्रेरित करता है। जीवन विज्ञान प्रशिक्षण का मुख्य कार्य प्रशिक्षु को प्रशिक्षण द्वारा सहायता करना है। इसके लिए संप्रेषण के माध्यम का परिपक्व होना आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.3.1 संप्रेषण का अर्थ एवं परिभाषाएं

संप्रेषण सम्बंधी कुछ परिभाषाएं प्रस्तुत करके इसका अर्थ स्पष्ट किया जा रहा है—

संप्रेषण का व्यापक अर्थ—संप्रेषण की क्रिया को जीवन विज्ञान के लिए प्रभावी उपकरण समझना चाहिए जो प्रशिक्षु को प्रशिक्षित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। 1. संप्रेक्षण प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में जानबूझकर अथवा अनजाने में इच्छाओं, धारणाओं और मनोभावनाओं का प्रेषण है यह स्वभाव परिवर्तन की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण भाग है। 2. मूल्यों के विघटन की समस्या, मूल्यों की प्रतिष्ठापना तथा योग-प्रशिक्षण की आवश्यकता को देखते हुए अभिव्यक्ति-कौशल तथा संप्रेषण-दक्षता (Communication Skill) का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। वैयक्तिक मार्गदर्शन, सामुदायिक प्रशिक्षण, आन्तरिक रूपान्तरण संप्रेषण के अभाव में संभव नहीं है।

1. संप्रेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विचार एवं भावनाएं एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अभिव्यक्त की जा सकती है। इसका उद्देश्य संप्रेषित (Receiver) में समझ जागृत करना है—ब्राउन।

2. संप्रेषण विचारों एवं सूचनाओं का आदान-प्रदान है जिसके द्वारा अच्छे संबंधों की समझ विकसित की जाती है—अमेरिकन सोसायटी ऑफ ट्रेनिंग डारेक्टर्स।

3. संप्रेषण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सूचनाओं का प्रेषण है चाहे वह आश्वस्त हो अथवा नहीं—कूंज एवं ओडोवेल।

4. संप्रेषण तथ्यों, विचारों, सलाह एवं भावनाओं का दो या अधिक व्यक्तियों के बीच आदान-प्रदान है—न्यूमेन एवं समर।

5. संप्रेषण उन सब बातों का योग है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में समझ उत्पन्न करने की दृष्टि से कहता है। इसके अन्तर्गत बात कहने, सुनने और समझने की प्रक्रिया निरन्तर चला करती है—एलन ल्यूइस ए.।

उपरोक्त परिभाषाओं से पता लगता है कि—1. संप्रेषण के लिए कम से कम दो पक्ष होने चाहिए; संवाद प्रेषक एवं संवाद प्राप्तकर्त्ता, 2. सूचना प्राप्त होने के उपरांत समझना, स्वीकार करना तथा कार्यरूप देना प्राप्तकर्त्ता का कार्य है, 3. संप्रेषण में कथन एवं श्रवण संबंधी कोई कमी रहने पर पूछताछ करना तथा स्पष्टीकरण प्राप्त करना, 4. यदि संदेश संकेतों में दिया गया है तो उन संकेतों का अर्थ जानना तथा तदनुरूप समझ का संकेत देना, 5. जीवन विज्ञान योग प्रशिक्षण में प्रशिक्षण का यह दायित्व भी है कि वह प्रशिक्षु से पुनः जानकारी ले कि उसने संदेश को सही ढंग से ग्रहण किया और समझा है तथा उसके अनुरूप अभ्यास कर सकेगा। अतः यह कहा जा सकता है कि संप्रेषण जीवन विज्ञान के लिए मुख्य स्नायु तंत्र है।

13.3.2 संप्रेषण के तत्त्व (Elements of Communication)

मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने वाला उपकरण के रूप में संप्रेषण को मानव जीवन का अभिन्न अंग कहा जा सकता है। जीवन विज्ञान प्रशिक्षण में संप्रेषण का अभाव प्रशिक्षण क्षमता का अभाव कहलायेगा। संप्रेषण की क्रिया में संदेश भेजने और प्राप्त करने के लिए विविध माध्यम उपयोग किये जाते हैं। इसी आधार पर संप्रेषण—1. लिखित, 2. मौखिक, 3. संकेत एवं चिह्न, 4. हाव-भाव (Gesture), 5. मुखमुद्रा (Facial Expression), 6. शरीर के अंग-प्रत्यंक सिकोड़ना, 7. चुप्पी (Silence) या समझ के रूप में देखा जा सकता है। ऐसी सभी विधियां जिनसे प्रेषक के संवाद का उत्तर प्रापक से प्राप्त हो जाता है वह संप्रेषण के पूर्ण होने का प्रतीक होता है। जब तक प्रेषक द्वारा कही गई बात प्रापक द्वारा नहीं समझी जाती या उसी रूप में नहीं समझी जाती जिसमें कही जा रही है, तो संप्रेषण पूर्ण नहीं होता है।

सामान्यतः संप्रेषण के तीन प्रमुख तत्त्व बतलाये गये हैं—1. संकेत एवं चिह्न, 2. भाषा, 3. समझ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.3.2.1 संकेत एवं चिह्न (Signs and Symbols)

कुछ संकेत अथवा चिन्ह प्रेषक और प्रापक द्वारा पूर्व निर्धारित होते हैं। उनके प्राप्त होते ही प्रापक संकेतों की भाषा समझ कर उसके अनुरूप कार्यवाही प्रारंभ कर देता है। उदाहरण के लिए दिन के 2.00 बजे की घंटी या सायरन लंच की छुट्टी के लिए तथा 5.00 बजे का सायरन पूरी छुट्टी; एवं रुक-रुक कर बजने वाला सायरन खतरे की सूचना देने के लिए बजाया जाता है। इसी प्रकार लाल रंग खतरे का प्रतीक माना जाता है और हरी झंडी कार्य प्रारंभ करने का संकेत है आदि।

13.3.2.2 भाषा (Language)

लिखित अथवा मौखिक संप्रेषण भाषा के माध्यम से होता है। वह भाषा जो प्रेषित की जाती है, प्रापक के समझने योग्य होनी चाहिए।

13.3.2.3 समझ (Sementics)

अर्थ का विज्ञान 'Sementics' कहा जाता है अर्थात् भिन्न अर्थों वाले शब्दों को सही स्थान पर सही अर्थ में समझना तथा उसके अनुरूप क्रिया करना ही सफल संप्रेषण है।

वही प्रशिक्षक सफल हो सकता है जो धैर्य पूर्वक अन्य व्यक्तियों की बात या समस्या को सुनें, अपनी बात या समाधान अन्य व्यक्तियों को कहें तथा पूर्ण कुशलता से कम से कम शब्दों में प्रयोगों का अभ्यास करायें। संप्रेषण उस दशा में अपरिपक्व (Inmature) कहा जाता है जब वह—1. भ्रम में डालने वाला हो, (2) कठिनाई से समझ में आने वाला हो, (3) अपनी बात स्पष्ट करने में असमर्थ हो, (4) अधिकांश बातें उसमें निष्प्रयोज्य हों। इसके अतिरिक्त असामयिक संप्रेषण, अत्यधिक संक्षिप्त एवं अर्थ स्पष्ट नहीं करने वाला संदेश भी निरर्थक होता है।

13.4 अभिव्यक्ति के कारक तत्त्व

संप्रेषण के प्रमुख तत्त्वों के अतिरिक्त भी अनेक तत्त्व हैं जो संप्रेषण या अभिव्यक्ति को प्रभावित करते हैं। वे हैं—सौहार्दपूर्ण सम्बंध, आत्म-विश्वास, स्पष्टता, ग्रहण करने की क्षमता, भावनात्मक नियंत्रण, सीखने की इच्छा एवं सहयोग की इच्छा।

सौहार्दपूर्ण व सहयोगात्मक सम्बंध निर्भीक व स्पष्ट अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। इन सम्बंधों का पता वातावरण से लग जाता है। यदि वातावरण में उत्तेजना व खींचातानी हो या एकदम उदासीनता या नीरसता हो तो वहां व्यक्ति की अभिव्यक्ति अच्छी नहीं हो सकती। वहीं वातावरण सहयोगात्मक हो तो वहां अभिव्यक्ति के अच्छे होने की संभावना बढ़ जाती है।

सौहार्दपूर्ण सहयोगात्मक सम्बंध एवं वातावरण तब पैदा होता है जहां—

1. परस्पर प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्त करने व सुनने में तत्पर हों।
2. एक दूसरे को महत्त्व देते हों।
3. एक-दूसरे की रुचि और आवश्यकताओं का सम्मान करते हों।
4. एक-दूसरे के बारे में खुले दिल से बेझिझक विचार-विमर्श करने के लिए इच्छुक हों।
5. एक-दूसरे में विश्वास हो कि समय आने पर एक दूसरे की सहायता करेंगे।
6. सभी एक दूसरे की स्वतंत्रता एवं निर्णय शक्ति का सम्मान करते हों।
7. सभी यह भी स्वीकार करते हों एवं जानते हों कि उनकी सभी बातें सभी के द्वारा स्वीकार्य ही हों, यह आवश्यक नहीं है।

सौहार्दपूर्ण एवं सहयोगात्मक सम्बंधों के विकास के लिए निम्नलिखित सूत्र सहायक हो सकते हैं—

13.4.1 अनेकान्त दृष्टिकोण

दूसरे के दृष्टिकोण से उसकी बात को सुनने व समझने का प्रयास करना। दूसरों की भावना, विचार,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को जैसा है, वैसा स्वीकार करना, उसका सम्मान करना। उनकी कमियों को सहन करना।

13.4.2 कथनी-करनी में एकरूपता

व्यक्ति परस्पर जो कहे वैसा आचरण भी करे। छलनापूर्ण व्यवहार न करे।

जिस समुदाय में अधिकांश व्यक्तियों का दृष्टिकोण, भाव एवं विचारधारा उपरोक्त गुणों से युक्त होती है वहां संवाद् व अभिव्यक्ति की सुदृढ़ता उभर कर आती है। अन्यथा रिश्तों में मधुरता व सहृदयता नहीं रह पाती है। संवादहीनता में अभिव्यक्ति की झिझक व भय को पनपने का मौका मिलता है। यह भी उतना ही सही है कि अभिव्यक्ति की दक्षता के बिना अच्छे सम्बंध टिक नहीं सकते और अच्छे सम्बंधों के बिना अच्छी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

13.4.3 आत्म विश्वास

अभिव्यक्ति को प्रभावित करने वाले कारक तत्त्वों में एक प्रमुख तत्त्व है— आत्म-विश्वास। हम स्वयं को एवं स्वयं के विचारों को कितना महत्त्वपूर्ण मानते हैं इसका अभिव्यक्ति क्षमता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि हम स्वयं को एवं स्वयं के विचारों को, जो कहना चाहते हैं उसको महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान नहीं समझते हैं तो उस बात की अभिव्यक्ति प्रभावी नहीं हो सकती।

जो व्यक्ति स्वयं के महत्त्व एवं उपयोगिता को जानता है उसमें आत्म-विश्वास व आत्म-संतोष का भाव रहता है। वह अपने को सुरक्षित अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति सकारात्मक और निषेधात्मक भावों को निर्भीकता से अभिव्यक्त कर सकता है। आलोचनाओं का आसानी से सामना कर सकता है। जो व्यक्ति स्वयं की उपयोगिता और महत्त्व का सही अंकन नहीं कर सकता उसका आत्म-विश्वास कमजोर होता है। वह हीन भावना से ग्रसित रहता है। अपने आपमें असंतोष का अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति अनुभव करता है कि लोगों की उसमें रुचि नहीं है। अत: वह उनसे वार्तालाप करने से कतराता है। आलोचना और समीक्षा से भी घबराता है।

13.4.4 स्पष्टता

इसका तात्पर्य है हम क्या कहना चाहते हैं? एवं कैसे कहना चाहते हैं? एक अच्छा संप्रेषक या वक्ता वातावरण को भांपने की क्षमता रखता है एवं वह अपने आपमें भी स्पष्ट रहता है कि किससे क्या कहना है? जिन व्यक्तियों में अभिव्यक्ति कौशल का विकास नहीं होता वे अधिकांशत: अपने आप में स्पष्ट नहीं होते कि उन्हें कहना क्या है? वे क्या कहना चाहते हैं? उन्हें इस बात का अहसास नहीं है कि बात को कैसे करना चाहिए? वे अपनी बात को स्पष्ट शब्द व भाषा का रूप नहीं दे पाते हैं। अत: उनकी बात में, उनका मन्तव्य स्पष्टता से अभिव्यक्त नहीं हो पाता है।

वे अनेक बार यह मानकर भी चलते हैं कि सामने वाला व्यक्ति उनकी बात को समझता है क्योंकि वह स्वयं भी दूसरों की बात समझता है तो दूसरों को भी उसकी बात अवश्य समझ में आती होगी। इस प्रकार एक कमजोर अभिव्यक्ति दूसरों को अपने ढंग से अर्थ निकालने व समझने के लिए मजबूर करती है। जिससे संवादहीनता व आपसी समझ की दूरी बढ़ती चली जाती है।

13.4.5 गृहण क्षमता

अच्छे वक्ता की ग्रहण क्षमता भी अच्छी होनी चाहिए। उसे अच्छे वक्ता के साथ अच्छा श्रोता भी होना चाहिए। अच्छे श्रोता का अर्थ केवल सुनना नहीं है, उसके भी आगे, सामने वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण व भावों को पकड़कर समझने से है। दुर्भाग्य से अधिकांश व्यक्ति केवल सुनते हैं, कुछेक लोग ही गहराई तक जाकर चिंतन-मनन पूर्वक दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करते हैं। 75% मौखिक अभिव्यक्ति को नजरअंदाज एवं उपेक्षित कर दिया जाता है या जल्दी ही उसे भुला दिया जाता है। प्रभावी ग्रहण क्षमता स्वत: नहीं होती है, उसके लिए—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- श्रोता के सामने सुनने का भी एक निश्चित प्रयोजन होना चाहिए।
- श्रोता को एकाग्रता से वक्ता की बात सुनना चाहिए।
- उसे मौन रहना चाहिए तथा जहां नहीं समझ में आता है वहां पूछना भी चाहिए।
- दूसरे व्यक्तियों को बोलने का अवसर देना चाहिए।
- अनावश्यक टीका-टिप्पणी से बचना चाहिए।
- वक्ता की बात को सुनकर दोहराने की क्षमता होनी चाहिए।
- उसे अपने शब्दों में रखने की क्षमता होनी चाहिए।
- श्रोता को वक्ता के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करना चाहिए।

13.4.6 संवेग नियंत्रण

मनुष्य अपने जीवन में निरंतर भावों और संवेगों में उतार-चढ़ाव का अनुभव करता रहता है। क्रोध जैसे संवेगों के नियंत्रण में आम व्यक्ति कठिनाई का अनुभव करते हैं। क्रोध या आवेशवश व्यक्ति को अपनी वाणी पर नियंत्रण करने में बहुत कठिनाई होती है। इससे व्यक्ति सही ढंग से अपने आपको अभिव्यक्त नहीं कर पाता है।

अधिकांश व्यक्ति अपने भावों को दबा देते हैं अत: वे यह नहीं जानते कि उनमें किन भावों की प्रधानता है। वे यह भी नहीं जान पाते हैं कि भावों को परिष्कृत कैसे किया जाए। उन्हें कैसे रूपान्तरित किया जाये?

संवेगों का रूपान्तरण एवं परिष्कार सौहार्दपूर्ण सम्बंध एवं सशक्त अभिव्यक्ति के लिए बहुत आवश्यक है। संवेगों की अभिव्यक्ति इस ढंग से की जानी चाहिए कि उनका रूपान्तरण हो तथा वह स्वयं के एवं दूसरों के विकास में उपयोगी हो जाये। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए—

1. अपने संवेगों के प्रति जागरूक बनें। उनकी सही पहचान करें।
2. ध्यानावस्था में बैठकर कुछ समय तक ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान करें।
3. संवेगों को नकारें नहीं, उन्हें स्वीकार करें, यह भी आपके व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।
4. अपने संवेगों के परिष्कार के लिए गुरुजनों से मार्गदर्शन प्राप्त करें। संवेग-परिष्कार के बिना अच्छी अभिव्यक्ति क्षमता का विकास नहीं हो सकता।
5. अपनी भावना, संकल्प व इच्छा में संतुलन बनायें।

13.4.7 सीखने की इच्छा

जब हम किसी के साथ संवाद स्थापित करते हैं या समूह में भाषण देते हैं तो दो तरफ से प्रतिक्रियाएं प्राप्त होती हैं। एक तरफ बाह्य व्यक्तियों द्वारा एवं दूसरी तरफ अपने ही भीतर से। अच्छे वक्ता इन दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओं से अपने भाषण, संवाद, उसके प्रभाव, श्रोता की आवश्यकता और स्वयं के बारे में सीखते रहते हैं। इसके अतिरिक्त अच्छे वक्ता दूसरे वक्ताओं को ध्यान से सुनते हैं, उनकी शैली व विशेषताओं को समझने का प्रयास करते हैं एवं उनसे ग्रहण करने के लिए तत्पर रहते हैं।

अच्छे वक्तृत्व की अनुभूति वस्तुत: निरन्तर सीखने की प्रक्रिया है जो शनै: शनै: समृद्ध होती जाती है। अच्छे वक्ता अपनी कमियों से सीखते रहते हैं, नये-नये प्रयोग करते रहते हैं। अपनी शैली में परिष्कार करते रहते हैं। एक कमजोर वक्ता जो सीखने से घबराता है वह अनेक मूल्यवान तथ्यों से वंचित रहता है। इससे वह अपनी अभिव्यक्ति क्षमता, स्वयं की समझ व दूसरों के साथ मधुर सम्बंधों को विकसित करने में सफल नहीं हो पाता है।

प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने आपको पूर्ण प्रामाणिकता व सरलता से प्रस्तुत करे। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न अनुभवों, संवेदनाओं, विचारों व संवेगों से समृद्ध होता है। दूसरे व्यक्ति भी अपने विचारों से अवगत हों अत: यह आवश्यक है कि सही समय पर अपने अनुभवों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

को बांटने एवं दूसरों को सहयोग देने की इचछा होनी चाहिए। जितना अधिक एक-दूसरे के बारे में व्यक्ति जानेंगे उनके बीच उतना ही अधिक अच्छा संवाद स्थापित होगा।

अपने आपको अभिव्यक्त करने में अनेक बाधाएं हैं। अधिकांश व्यक्तियों में यह आशंका और भय रहता है कि दूसरा व्यक्ति मेरी बातों को सही अर्थों में लेगा कि नहीं? कहीं वह मेरा मखौल तो नहीं उड़ायेगा? अच्छे संवाद व अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है कि आशंका व भय के स्थान पर परस्पर विश्वास का वातावरण पैदा किया जाये। इससे प्रत्येक व्यक्ति अपने भावों, विचारों व संवेदनाओं को पूर्ण ईमानदारी व सरलता से प्रस्तुत कर सकेगा। उसकी अभिव्यक्ति सशक्त व प्रभावशाली बन सकेगी।

स्पष्ट है कि संप्रेषण या अभिव्यक्ति में स्पष्टता, संक्षिप्तता, पूर्णता, परिपक्वता, शालीनता, सहयोग, निरन्तरता, परिवर्तनशीलता, सद्विश्वास, अच्छे संबंध आदि तत्त्व होने चाहिए।

उपरोक्त तत्त्वों का उपयोग वांछित समाचार प्रेषण के लिए किया जाता है जिनसे विचारों, भावनाओं एवं समझ का आदान-प्रदान दो व्यक्तियों अथवा दो पक्षों के बीच होता है। इसका उद्देश्य, कही गई बात को सही अर्थ में समझाना है।

13.5 संप्रेषण के कार्य (Function of Communication)

सम्प्रेषण के मुख्यत: निम्नलिखित कार्य होते है-

1. सूचना प्रेषित करना एवं प्राप्त करना
2. मानवीय व्यवहार में परिवर्तन लाना
3. व्यक्तियों को निर्देषित करना
4. सहकारी प्रवृत्ति का विकास
5. सामाजिक संबंध बनाये रखना
6. विचार विमर्श द्वारा ओरा योजनाएं बनाना तथा क्रियान्विति करना
7. भूलसुधार करना
8. मनोभाव प्रकट करना

13.6 संप्रेषण की विशेषताएं (Characteristics)

संप्रेषण की निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

1. द्विमार्गी प्रवाह (Two-way flow)
2. प्रेषण एवं प्राप्ति (Sending and receiving)
3. सामान्य स्वीकृति की भाषा (Comman code of understanding)
4. शब्दों के अनुकूल कार्य (Act according to words)
5. निरन्तर प्रक्रिया (A continuous process)
6. प्रति पुष्टि (Feedback)

13.7 संप्रेषण की समस्या (Problems of Communication)

संप्रेषण एक जटिल प्रक्रिया है। प्रशिक्षक यह चाहता है कि प्रशिक्षु या साधक वह सब सुनें, समझें, अभ्यास करें जो वह बतलाना चाहता है। जीवन विज्ञान एवं योग की रीति-नीति, उद्देश्य, प्रक्रिया एवं परंपरागत पद्धतियों की जानकारी योगसाधक तक पहुंचाने के लिए प्रशिक्षक को कई उपाय करने पड़ते हैं। केवल अपनी बात कह देना मात्र ही संप्रेषण नहीं है साथ में यह भी बतलाना पड़ता है कि 1.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कहने का उद्देश्य क्या है? 2. संदेश के अनुसार कार्य कब करना है? 3. कैसे करना है? आदि। अत: केवल सैद्धान्तिक जानकारी प्रशिक्षु साधक तक पहुंचा देना या मौखिक रूप से बात कह देना सफल प्रशिक्षण नहीं है। संप्रेषण में कई प्रकार की समस्याएं आती है। संप्रेषण की पहली समस्या है कि व्यक्ति कही गई बात को समझे, दूसरा वह उसे समझकर अभ्यास के लिए प्रयत्नशील हो। कई बातें थोड़ी कठिनाई से समझ में आती हैं। अत: प्रशिक्षक को अपनी बात समझाने के लिए करके दिखाने की आवश्यकता भी होती है। अर्थात् वह व्यक्ति जिसे संदेश दिया जा रहा है, वह समझने एवं अभ्यास करने की इच्छा रखता हो, तीसरा संवाद ग्रहण करने वाले व्यक्ति में समझने की योग्यता हो। चौथा स्वीकारने की है अर्थात् संबंधित व्यक्ति अपने अहं को त्यागकर विचारों को स्वीकार करें। पांचवा संदेश प्राप्तकर्ता समस्या समाधान या साधना के लक्ष्य एवं साधना की प्रक्रिया या अभ्यास के साथ तालमेल बैठा सके। छठे कहे गये शब्दों का अर्थ अविधा, लक्षणा और व्यंजना में समझ सके। यह संप्रेषक की भावभंगिमा, मुखमुद्रा, प्रस्तुति आदि कई बातों पर निर्भर करता है। हयाकावा (Hayakawa) ने कहा है कि 'प्रत्येक बात केवल शब्दार्थ से नहीं समझी जाती। प्रत्येक शब्द का अर्थ केवल शब्दकोश का अर्थ नहीं होता।' यह कहा जाए तो अधिक युक्तिसंगत लगेगा कि 'शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता, व्यक्ति ही उनका अर्थ निकालते हैं। जिस प्रकार के अर्थ निकलते हैं वे व्यक्ति की योग्यता, समझ, व्यक्तित्व, वातावरण, संस्कृति, सामाजिक स्थिति आदि कई बातों के सम्मिलित प्रभाव से प्रकट होते हैं। इसके अतिरिक्त संदेश प्राप्तकर्त्ता का प्रेषक में उसका विश्वास, संदेश में उसका विश्वास, माध्यम में विश्वास तथा बात सुनते और ग्रहण करते समय उसकी मानसिक दशा (Mood) भी बात का अर्थ निर्धारण करते हैं।

13.8 संप्रेषण के उद्देश्य (Objectives of Communication)

कहते हैं शब्दों में जादू होता है क्योंकि वे उन व्यक्तियों का मस्तिष्क परिवर्तन करने की क्षमता रखते हैं जो उन शब्दों को सुनते हैं, पढ़ते हैं, ग्रहण करते हैं। उससे प्रेषिति का चिंतन बदलता है, और कार्य करने की इच्छा बदलती है। आचरण एवं स्वभाव बदलता है। यहां तक कि व्यक्ति का आचरण भी स्थायी रूप से उन शब्दों के अनुरूप ढ़लता है जिन्हें सुनकर वह कार्य करता है, अपने दैनिक जीवन में व्यवहार करता है। स्पष्ट है कि संप्रेषण बहुआयामी है तथा इसके उद्देश्य भी बहुआयामी है—

संप्रेषण के अनेक उद्देश्य सामने आते हैं—

1. व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताएं संतुष्ट करना जैसे मान्यता, आत्मप्रतिष्ठा तथा संगठन से लगाव की भावना।
2. मिथ्या सूचनाओं को हतोत्साहित करना।
3. परिवर्तन के लिए तैयारी।
4. प्रशिक्षु या साधकों को साधना या अभ्यास के लिए प्रोत्साहित करना।
5. भावुकता पूर्ण तनाव को दूर करना।

जीवन विज्ञान में संप्रेषण मुख्य रूप से केवल दो उद्देश्यों के लिए होता है—

1. जीवन के विज्ञान, जीने की कला एवं जीवन के रहस्यों को बालकों, युवाओं एवं बुजुर्गों तक पहुंचाना।
2. स्वयं के जीवन में पारस्परिक सम्बंधों को अभिव्यक्ति कौशल द्वारा सौहार्द बनाये रखना।

अच्छा संप्रेषण अच्छा प्रतिफल देने में सफल होता है। संप्रेषण व्यक्तियों में कार्य कौशल तथा कार्य की इच्छा का भी विकास करता है जिससे सामुदायिक भावना जागृत होती है तथा सुधार संभव होता है। सौहार्दमय वातावरण बनता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.9 संप्रेषण के सिद्धान्त (Principle of Communication)

13.9.1 स्पष्टता का सिद्धान्त (Principle of clarity)

संप्रेषण द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपना आशय समझा सकता है। अत: स्पष्ट एवं समझने योग्य भाषा का प्रयोग करना चाहिये। लॉर्ड चेस्टर फील्ड के अनुसार प्रत्येक अनुच्छेद इतना स्पष्ट एवं निश्चित होना चाहिए कि विश्व का सबसे मन्द बुद्धि वाला व्यक्ति भी उसका गलत अर्थ न लगा सके तथा उसे समझने के लिए दुबारा नहीं पढ़ना पड़े। टैरी का कथन है कि ''संदेश प्रेषित से पूर्व प्रेषक को स्पष्ट रूप से यह विचार करना और जानना चाहिए कि क्या भेजना है?''

13.9.2 ध्यान का सिद्धान्त (Principle of Attention)

संदेश जब प्राप्त हो रहा हो तो उसे पूरे ध्यान से सुनना चाहिए अथवा पढ़ना चाहिये। यदि संदेश कई स्रोतों से प्राप्त हो रहा हो तो प्रत्येक स्रोत के प्रजि सजग होना चाहिए।

13.9.3 ईमानदारी का सिद्धान्त (Principle of Integrity)

संप्रेषण को संगठन के उद्देश्य पूर्ति के लिए उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया जाए। जोसेफ धूहट (Joseph Dhuhat) का कथन है कि संदेश भेजते समय प्रेषक को संस्था की आवश्यकताओं तथा प्रशिक्षु की अपेक्षाओं को ध्यान रखना चाहिये।

13.9.4 उपयोग का सिद्धान्त (Principle of use)

प्रत्येक संप्रेषण उपयोगी होना चाहिए। मिथ्या संप्रेषण से समय और धन दोनों का अपव्यय होता है तथा आपसी संबंधों में खाई पड़ जाती है। संदेश योजनाबद्ध होना चाहिए जिससे वह अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके।

13.9.5 नियंत्रण का सिद्धान्त (Principle of Control)

औपचारिक संप्रेषण तो नियंत्रित होते ही हैं लेकिन अनौपचारिक किंतु आवश्यक संप्रेषण भी नियंत्रित होने चाहिये। बातचीत जहां समूह में हो रही हो तो पहल कौन करे? सबसे पहले कौन वक्तव्य दे? एवं कितने समय बोले आदि का ध्यान रखा जाना चाहिये क्योंकि प्रारंभ ही यदि गलत ढंग से हो जाए तो आगे की बातचीत से समस्या का हल ढूंढना कठिन हो जाता है।

13.9.6 प्रमापीकरण का सिद्धान्त (Principle of Standardization)

कई नियमित बाते तथा कुछ आचार संहिताएं प्रमापित कर दी जाती हैं, जैसे अभिवादन की विधि, संबोधन, बात प्रारंभ करने से पूर्व आज्ञा चाहना आदि। प्रमापीकरण में संदेश की एकरूपता बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। इसी उद्देश्य से प्रशिक्षक मेन्युअल, अनुशासन संहिता आदि बातें प्रमापित कर दी जाती है।

13.9.7 परामर्श सिद्धान्त (Consultancy Principle)

विचार को प्रकट करने से पूर्व अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए। प्रत्येक शब्द को तौल कर बोला जाना चाहिये क्योंकि कही हुई बात लौटकर वापस नहीं आती।

13.9.8 अनुकूलता सिद्धान्त (Principle of Consistancy)

भेजे जाने वाले तथा प्राप्त होने वाले संदेश समय एवं परिस्थिति के अनुकूल होने चाहिये। समय पर सही संदेश का प्रभाव अधिक होता है।

13.8.9 प्रतिपुष्टि सिद्धान्त (Principle of feedback)

संदेश प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए कि प्रेषक को अपनी त्रुटियों और शब्दों की अनुपयुक्तता का पता लगता रहे जिससे वह यथासमय उसमें सुधार कर सके। संप्रेषण की त्रुटियों को यथासमय सुधारा नहीं जाए तो कई प्रकार के अनिष्ट उत्पन्न हो सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.9.10 नेतृत्व का सिद्धान्त (Principle of Leadership)

संदेश देने वाला व्यक्ति अपनी बात का पक्का तथा विचारशील व्यक्ति होना चाहिये। वह अच्छा प्रेषक भी हो और अच्छा श्रोता भी हो।

बोध प्रश्न 1:

---

1. अभिव्यक्ति कौशल का महत्व बताएं?
2. संप्रेषण के तीन प्रमुख तत्वों का वर्णन करें?
3. संप्रेषण के सिद्धान्तों को सविस्तार समझाएं?

13.10 संप्रेषण प्रक्रिया (Process of Communication)

संप्रेषण प्रक्रिया दो पक्षों के बीच होने वाली प्रक्रिया है। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसका पुनरावलोकन समय एवं उद्देश्य के अनुसार किया जाता रहता है। संप्रेषण प्रक्रिया में निम्नलिखित बातें सम्मिलित होती है—

1. प्रेषक—वक्ता, लेखक, निर्देशक आदि
2. प्राप्तकर्त्ता
3. संदेश—मूल बात का उद्देश्य एवं उसका रूप
4. माध्यम
5. प्राप्तकर्त्ता की प्रतिक्रिया
6. प्रतिक्रिया की जानकारी, पुनरावलोकन।
7. संदेश प्रक्रिया में सुधार।

निम्नलिखित चित्र में संपेषण प्रक्रिया को समझाया गया है—

प्रेषक अपनी बात को प्रस्तुत करने के लिए भाषा या संकेत या हावभाव आदि का सहारा लेता है। इसे encoding कहा गया है। इस संदेश को मौखिक या लिखित या तार, टेलीफोन द्वारा या अन्य विधि से प्रेषित किया जाता है।

दूसरा पक्ष उस संदेश को प्राप्त करता है। प्राप्तकर्त्ता उन शब्दों को अर्थ प्रदान करता है, समझता है तथा क्रियात्मक रूप प्रदान करता है। प्रेषक और प्राप्तकर्त्ता के बीच अच्छे संबंध होने पर वह संदेश की कमियों, अपर्याप्ताओं आदि के बारे में स्पष्टीकरण मांगता है अथवा वह अपनी समझ को प्रेषक की भावना से मिलान करता है। तब उसे क्रियात्मक रूप देता है। प्राप्तिकर्त्ता की समझ और संदेश को दिया गया क्रियात्मक रूप संप्रेषक के लिए प्रतिपुष्टि का काम करते हैं। यदि क्रियान्विति उस रूप में नहीं है जैसी प्रेषक चाहता था तो यह निश्चित है कि संप्रेषण में अथवा समझ में अथवा क्रियान्विति में कहीं न कहीं त्रुटि रही है। इस त्रुटि को सुधारने का कार्य किया जाता है।

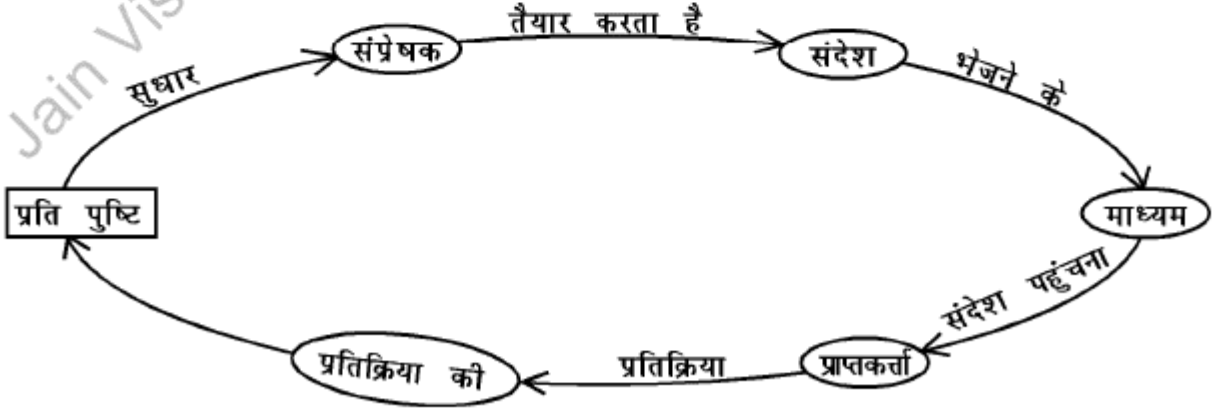

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सम्प्रेषण करते समय मुख्यत: चार तत्त्वों का ध्यान रखना आवश्यक है—1. संदेश, 2. साधन, 3. प्राप्तकर्त्ता, 4. प्रतिसूचना (फीडबैंक)।

13.10.1 संदेश

संदेश से तात्पर्य है समाचार अथवा सूचना। सम्प्रेषण करते समय यह आवश्यक ध्यान रखना चाहिए कि वह क्या संदेश सम्प्रेषित करना चाह रहा है? उसका संदेश अत्यंत स्पष्ट एवं सरल होना चाहिए, ताकि प्राप्तकर्ता उसको आसानी से ग्रहण कर सके। संदेश किसी भी प्रकार से द्विअर्थी न हो, यह सम्प्रेषक को ध्यान रखना चाहिए।

13.10.2 साधन

साधन से तात्पर्य है माध्यम। अर्थात् संदेश किस माध्यम से प्रेषित किया जा रहा है। मुख्यत: सम्प्रेषण के तीन साधन है मौखिक, लिखित एवं सांकेतिक। मौखिक संदेश देते समय विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है। अगर मौखिक संदेश प्राप्तकर्ता को सीधे दिया जाता है तो संदेश लगभग पूर्ण ग्राह्य हो जाता है परन्तु यदि उसमें चैनल अधिक हो तो संदेश भ्रामक होने की सम्भावना ज्यादा होती है क्योंकि ज्योंहि एक व्यक्ति से दूसरे व तीसरे के पास संदेश जाएगा तो कुछ जोड़ देने या इसमें कुछ हटा देने की सम्भावना रहती है और मूल संदेश की विषय वस्तु से व्यक्ति हट जाता है। इसलिए यदि मौखिक संदेश दिया जाए तो वह सीधे दिया जाना चाहिए उसमें चैनल नहीं होने चाहिए। इस सम्बंध में आप अपने दैनिक जीवन पर भी प्रयोग कर सकते हैं। यदि आप कोई संदेश या सूचना किसी व्यक्ति को देते हैं तो वह सूचना तीसरे अथवा चौथे व्यक्ति तक जाते-जाते कुछ और ही रूप ले लेती है। जहां तक लिखित संदेश का संबंध है उसमें यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि संदेश सरल एवं सुबोध भाषा में लिखा जाए ताकि प्राप्तकर्ता उसको आसानी से समझ सके व उचित कार्यवाही कर सके। सांकेतिक संदेश शारीरिक अवयवों के प्रयोग द्वारा सम्प्रेषित किया जाता है। सम्प्रेषण में शारीरिक हावभावों अथवा अवयवों का विशेष योगदान रहता है। अगर ये कहें कि संदेश सम्प्रेषण में या समझाने में हाव-भावों का अत्यन्त योगदान है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह समझा गया है कि सम्प्रेषण में 55 प्रतिशत योगदान संकेत (जेस्चर) का होता है। जब आमने-सामने बातें होती हैं तो सम्प्रेषण का प्रभाव निम्न प्रकार से होता है। शब्दों का प्रभाव 7 प्रतिशत-आवाज 38 प्रतिशत-संकेत 55 प्रतिशत। कहने का भाव यह है कि संकेतों अथवा हावभावों का सम्प्रेषण में एक बहुत बड़ा हाथ है।

13.10.3 प्राप्तकर्त्ता

जब संप्रेषण किया जाता है तो इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्राप्तकर्त्ता कौन है? क्या वह सुशिक्षित है अथवा कम पढ़ा लिखा है? वह कौनसी भाषा जानता है? अगर इन सब बातों का पता हो तो सम्प्रेषण और भी सार्थक एवं प्रभावी होगा। अगर प्राप्तकर्ता की भाषा में हम पत्र नहीं लिखेंगे तो वह तृतीय व्यक्ति से संपर्क करेगा और वह उसे पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ होगा। अगर प्राप्तकर्ता कम शिक्षित है तो इसे सरल एवं सुबोध भाषा में लिखा जाएगा तो वह आसानी से समझ सकेगा। कहने का आशय यह है कि सम्प्रेषण ऐसा होना चाहिए जो पूर्ण रूप से प्राप्तकर्ता को ग्राह्य हो सके इससे पूर्व प्राप्तकर्ता के बारे में जान लेना आवश्यक है ताकि उस के अनुरूप सम्प्रेषण की भाषा हो सके।

13.10.4 प्रति सूचना

सम्प्रेषण का यह एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जब कोई भी संदेश किसी को भेजा जाता है तो यह आवश्यक है कि इसकी प्रतिक्रिया सम्प्रेषक को मिले। जब तक इसकी प्रतिक्रिया नहीं मिल जाती तब तक सम्प्रेषक को पता नहीं चल सकता कि जो संदेश उसने भेजा है उसको प्राप्तकर्ता ने अच्छी तरह से ग्रहण किया है अथवा नहीं। इसलिए कोई भी सम्प्रेषण तब तक पूरा नहीं होता जब तक कि उसकी प्रतिसूचना (फीडबैक) नहीं ली जाती। अगर प्रतिसूचना प्राप्त नहीं होती तो संप्रेषक को पुन: सम्पर्क करने की आवश्यकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रतिसूचना प्राप्ति के पश्चात् ही संदेश पूर्ण होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अगर उपर्युक्त बिन्दुओं का ध्यान रखकर संप्रेषण किया जाए तो निश्चित ही सम्प्रेषण प्रभावी एवं पूर्ण होगा।

13.10 संप्रेषण के प्रकार (Types of Communication)

संगठन या संस्थानों में प्रचलित संप्रेषण को निम्नलिखित शीर्षकों में बांटा जा सकता है—

1. औपचारिक एवं अनौपचारिक संप्रेषण (Formal and Informal Communication)
2. मौखिक एवं लिखित संप्रेषण (Oral and Written Communication)
3. अधोगामी, ऊर्ध्वगामी तथा क्षैतिजीय एवं तिर्यक् संप्रेषण (Downward, Upward and Horizental or Crosswise Communication)

13.11.1 औपचारिक एवं अनौपचारिक संप्रेषण (Formal and Informal Communication)

अ. औपचारिक संप्रेषण-औपचारिक संप्रेषण में प्रेषक एवं प्राप्तिकर्ता के बीच सुनिश्चित एवं संगठित संबंध होते हैं। इन संबंधों का निर्माण प्रशासक के ढांचे के अनुरूप होता है। इन औपचारिक संप्रेषण प्रणालियों में कई प्रकार के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष संबंध होते हैं। इसके अतिरिक्त कार्य संबंध, समूह संबंध, व्यक्तिगत संबंध, अन्त:विभागीय संबंध, सहकर्मी संबंध आदि भी पाये जाते हैं। इन औपचारिक संप्रेषण प्रणालियों में कई प्रकार के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष संबंध होते हैं। इसके अतिरिक्त कार्य संबंध, समूह संबंध, व्यक्तिगत संबंध, अन्त:विभागीय संबंध, सहकर्मी संबंध आदि भी पाये जाते हैं।

औपचारिक संप्रेषण की कुशलता, कर्मचारी के मनोबल तथा कार्यक्षमता में वृद्धि करती है। औपचारिक संप्रेषण के मार्ग सुनिश्चित होते हैं जिसमें निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है-

1. संदेश की प्रकृति—आदेशात्मक, सलाहकारी, शिकायत, समस्या निवारण आदि।

2. संप्रेषण मार्ग—ऊर्ध्वमुखी, अधोमुखी, क्षैतिजीय, तिर्यक आदि अथवा सभी व्यक्तियों के लिए सामान्य जानकारी संदेश, शोकसंदेश जैसे वार्षिक सम्मेलन आदि।

3. सत्यता आधारित तथ्य—औपचारिक रूप से दी जा रही जानकारी का आधार ठोस तथ्य होने चाहिये अन्यथा उन्हें सिद्ध करने में कठिनाई आ सकती है तथा भविष्य के लिए आपसी विश्वास समाप्त भी हो सकता है।

4. आवश्यकता पड़ने पर सूचनाएं संग्रहित करना, उनका विश्लेषण करना तथा भविष्य के लिए सुरक्षित रखना,

5. दैनिक व्यवहार में न आने वाले मामलों के लिए उचित व्यवस्था करना।

संप्रेषण मार्ग (Communication Path)—औपचारिक संप्रेषण के लिए निर्धारित नियम होते हैं। उन्हीं के अनुसार संदेश प्रेषित किये जाते हैं तथा ग्रहण किये जाते हैं। प्राचीनकाल में निर्देशन की समस्त शक्तियां प्रबंधक में केन्द्रित रहती थी अत: वही संप्रेषण का केन्द्र होता था। वही सभी प्रकार की कठिनाइयां सुनता था, कार्य प्रतिवेदन प्राप्त करता था।

निर्देश देना, कार्य सुधार करना, कार्य सौंपना आदि क्रियाएं किया करता था। इस प्रणाली में संप्रेषण की एक ही श्रृंखला होने के कारण प्रबंधक का कार्य बढ़ जाता है, वह चिड़चिड़ा हो जाता है और कई बार गलत निर्णय दे देता है। इस प्रणाली में संदेश का प्रसार वैसा ही कृत्रिम लगता है, जैसे शल्यक्रिया के बाद रोगी के शरीर में रक्त पहुंचाया जाना।

आधुनिक युग में संप्रेषण कार्य को श्रृंखलाबद्ध कर दिया गया है। प्रत्येक कार्य में स्वतंत्र अधिकार, विभिन्न स्तरों पर आदेश एवं अनुपालन स्वतंत्रता, विचार विनिमय, संप्रेषण प्रक्रिया का विकास तथा नियमित प्रकार के संदेश हेतु नियमावलियां, मेन्युअल आदि तैयार कर लिये जाते हैं जिनके माध्यम से कर्मचारी स्वयं का मार्गदर्शन प्राप्त करते रहते हैं। संप्रेषण प्रणाली को विविध प्रकार से विकसित किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपरोक्त संप्रेषण प्रणालियों में विविध प्रकार के संपर्क बतलाये गये हैं। चित्र 1 में कुल 5 सदस्य हैं जिनमें A संदेश का प्रेषक है तथा अन्य चार व्यक्ति अपनी समस्याएं A को प्रस्तुत करते हैं अथवा A द्वारा सौंपे कार्य को पूरा करने के लिए उत्तरदायी है। उसे हम तारा (Star) कहते हैं क्योंकि केवल A ही प्रमुख व्यक्ति है जिस पर सबका ध्यान केन्द्रित है।

जहां संपर्क तथा निर्देशन की स्वतंत्रता होती है वहां वृत्तनुमा संबंध विकसित होते हैं। चित्र II, III, IV तथा V में रेखाओं के माध्यम से विविध व्यक्तियों के संपर्क-मार्ग प्रदर्शित किये गये हैं। चित्र II में D और E के बीच सीधा संपर्क नहीं है इसी प्रकार B और C के बीच भी सीधा संपर्क नहीं है। चित्र III में D और E को आपस में संपर्क करने की स्वतंत्रता दी गई है। किंतु B और C के संपर्क का माध्यम A ही है।

संप्रेषण-प्रणालियां

इसी प्रकार के संपर्क जाल चित्र सं. V में सबसे अधिक है। अर्थात् केवल D और E को छोड़कर ऊपर से नीचे तक सभी व्यक्ति आपस में संपर्क स्थापित कर सकते हैं। B और C क्रमशः D और E के पर्यवेक्षक हैं किंतु इन्हें यह स्वतंत्रता दी गई है कि आवश्यकता पड़ने पर B, E को निर्देश दे सकता है तथा C, D को नियंत्रित कर सकता है। इसी के साथ D को यह स्वतंत्रता है कि वह अपनी समस्या, शिकायत, सुझाव B अथवा C किसी को भी दे सकता

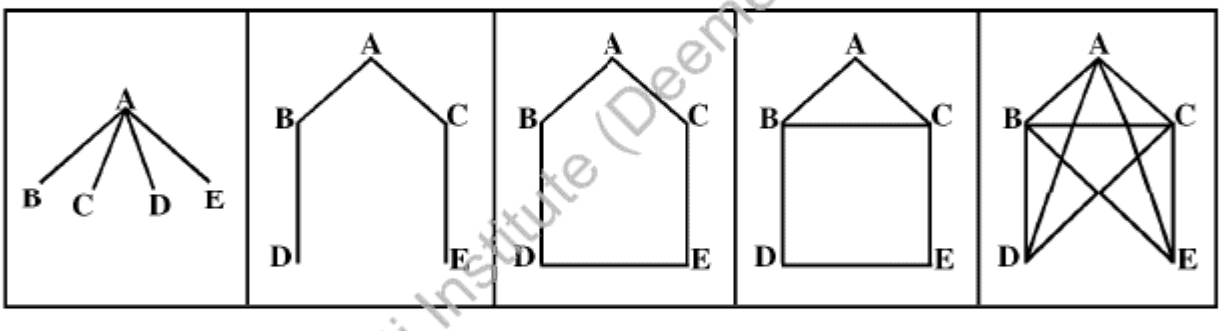

I II III IV V

है। लेविट के अनुसार 5 व्यक्तियों के समूह में 10 प्रकार के संप्रेषण संभव हैं, 10 व्यक्तियों के समूह में 45 तथा 100 व्यक्तियों के समूह में 4950 तक हो सकते हैं।

ब. अनौपचारिक संप्रेषण (Informal Communication)—अनौपचारिक संप्रेषण अंगूर लता की भांति है जो बिना किसी क्रम के कहीं भी संगठन रूपी वृक्ष के ऊपर फैल सकती है। इस में संप्रेषण का कोई निश्चित क्रम नहीं होता। कोई भी कर्मचारी किसी भी विभाग के कर्मचारी से अपनी बातचीत, अपना संदेश, विचार आदि कर सकता है। उसकी इस स्वतंत्रता पर किसी प्रकार के नियम रूकावट नहीं डालते। कई बार ये अनौपचारिक वार्ताएं अफवाहों का रूप ले लेती हैं, जिनकी कहीं कोई जड़ दिखाई नहीं देती। प्रत्येक व्यक्ति यह कहता है कि ''मैंने सुना है'' और इसके साथ ही वह अपनी भी दो बात जोड़ देता है। इससे कोई हानिकारक बात बढ़ते-बढ़ते विकराल रूप लेकर संगठन के लिए भारी रूप में अहितकारी बन जाती है। कई ऐसी अफवाहें निराधार भी होती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनौपचारिक संप्रेषण का कोई आकार प्रकार नहीं होता। व्यक्ति एक ही बात 10 व्यक्तियों या 50 व्यक्तियों से कह सकता है तथा उनसे सलाह ले सकता है। निम्नलिखित चित्रों में अनौपचारिक संप्रेषण तथा अंगूर लता को दर्शाया गया है—

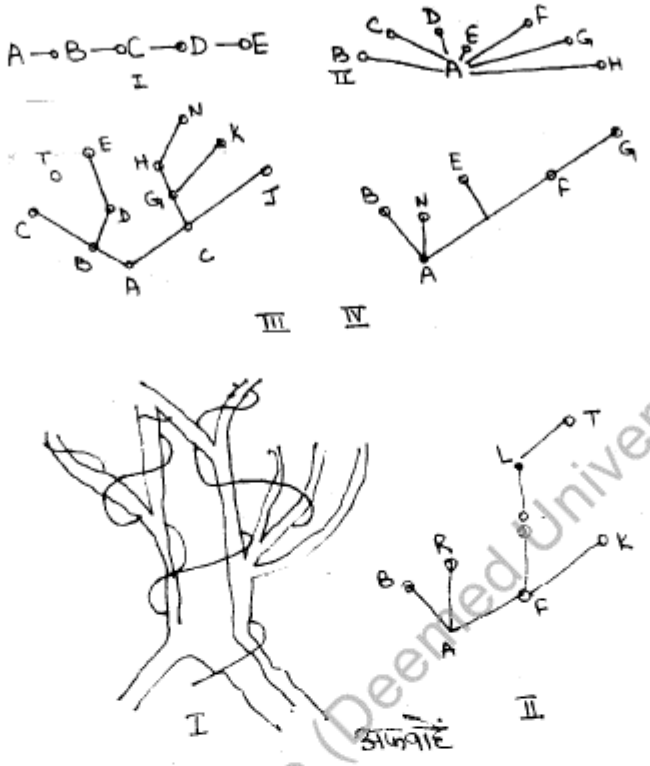

अंगूर लता की विशेषताएं (Characteristics of grape vine)–

1. अंगूरलता अनियमित रूप से फैलती है किंतु उनका आधार होता है।
2. ऐसी सूचनाएं कई बार जानबूझ कर फैलाई भी जाती है।
3. कुछ अहितकारी सूचनाओं को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है।
4. अंगूरलता प्रणाली से जो बात फैलती है वह किसी समूह के स्थायी सदस्यों का काम नहीं होता।
5. प्रत्येक व्यक्ति अपनी तरफ से कुछ न कुछ जोड़ता ही रहता है। परिणाम यह होता है कि कई बार इन सूचनाओं का रूप पूरी तरह विकृत हो जाता है।
6. कई सूचनाएं गलत भी होती हैं।
7. संदेश देने वाला तथा अग्रेषित करने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसमें अपने स्वार्थ की बात जोड़ता चलता है।
8. अंगूरलता में आदेश-अनुपालना मौखिक ही होती है अत: ठीक प्रकार अनुपालना नहीं होने पर अथवा गलत समझ के कारण त्रुटि होने पर कर्मचारी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

इन सभी कठिनाइयों के कारण अंगूरलता प्रणाली को संगठन में अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है। अंगूरलता प्रणाली का विकृत रूप अफवाहों का है। अफवाह और अंगूरलता में अन्तर यही है कि अफवाहें अमरबेल की तरह होती हैं जिसकी कोई जड़ नहीं होती। आधार हीन और तथ्य हीन बातें अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बढ़े-चढ़े रूप में विस्तार पाती रहती है किंतु यदि कोई उसका प्रारंभ खोजने की चेष्टा करे तो वह कहीं दिखाई नहीं देता। इन अफवाहों पर पर्याप्त नियंत्रण रखा जाना चाहिये। अफवाह का प्रारंभ होते ही यदि रोकने के प्रयत्न किये जायें तो वह फैलने से पहले ही समाप्त हो जाती है। यह एक प्रकार का भ्रामक प्रचार मात्र होता है अत: तत्संबंधी तथ्य प्रकट करने पर ही अफवाहों को रोका जा सकता है। प्रबंधकों का कर्त्तव्य है कि अफवाहों को निर्मूल सिद्ध करने के लिए हर संभव प्रयत्न करे। फास्टिजर एवं अन्य लेखकों ने बतलाया है कि "अफवाहें उन परिस्थितियों में पनपा करती है जब कर्मचारियों के अस्तित्व संबंधी बातों की जानकारी प्राय: उनसे गोपनीय रखी जाती हो और उनके नियंत्रण के बाहर हो। रॉबर्ट हर्शे के अनुसार अफवाहों का जन्म निम्नलिखित कारणों से होता है—

1. प्रभावी संप्रेषण का अभाव
2. कंपनी के प्रशासन स्तर में कर्मचारी का स्थान।

अक्सर अफवाहें उस स्थिति में फैलती हैं जब कर्मचारी जिस प्रकार की सूचना प्राप्त करना चाहते हैं वह उन्हें प्राप्त नहीं होती। इसी तरह अफवाहें निम्न स्तर के कर्मचारियों में मजदूरी, बोनस, कार्य की दशाएं, पर्यवेक्षकीय संबंध, कार्य-सुरक्षा, छंटनी आदि बातों को लेकर फैलती है।

अंगूरलता ऐसी प्रणाली है जिसमें प्रबंध को या अन्य पक्ष को कठिनाई में डालने की बातों का प्रसार अफवाहों के रूप में होता है या सही सूचनाओं को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है। ऐसी बातों का परिणाम कर्मचारियों में अविश्वास उत्पन्न करने वाला होता है क्योंकि वे प्रबंध से सही सूचना की अपेक्षा रखते हैं। यदि सही सूचना शीघ्रातिशीघ्र उपलब्ध कर दी जाये तो अंगूरलता जनित हानिकारक अफवाहें दब जाती है तथा आगे नहीं फैल पाती।

सायंकालीन गप्पें भी अनौपचारिक संप्रेषण का माध्यम है। इन बातों में विविध विषयों पर चर्चाएं होती हैं।

13.11.2 मौखिक एवं लिखित संप्रेषण (Oral and written communication)

संप्रेषण चाहे लिखित हो या मौखिक, स्थिति के अनुरूप, उद्देश्य के अनुरूप तथा पात्र के अनुरूप होना चाहिये। इतना ही नहीं, संप्रेषण के समय प्राप्तिकर्ता की मनोदशा (Mood) का भी ध्यान रखना चाहिये। प्राय: कर्मचारी यह कहते सुने जाते हैं कि "अभी साहब का मूड ठीक नहीं है, बात बाद में करेंगे" वास्तविकता यह है कि मनोदशा ठीक नहीं होने पर वार्ता के निष्कर्ष सही निकल जायें इसकी संभावना कम रहती है। संप्रेषण का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए भी कहा गया था कि उपयोगी संप्रेषण वह है जो सूत्र बद्ध हो तथा समय, परिस्थिति, व्यक्ति एवं उसकी समझ के अनुरूप हो। ऐसे महंगे संप्रेषण से कोई लाभ नहीं जिसका उपयोग ठीक प्रकार नहीं होता है। लिखित या मौखिक संप्रेषण को उपयोगी बनाने के लिए—

1. प्रेषक तथा प्राप्तकर्ता दोनों को यह जानकारी हो कि सूचना का प्रेषण और प्राप्ति हुई है।
2. सूचनाएं थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दी जानी चाहिये जिसमें उन्हें समझने तथा क्रियान्वित करने में सुविधा हो। कई सूचनाएं यदि एक साथ दे दी जाए तो उनमें दोहरान हो सकता है, भ्रम हो सकता है, प्रथामिकता क्रम बदल सकता है तथा भूल हो सकती है।
3. प्रत्येक सूचना की प्रतिपुष्टि का ध्यान रखा जाना चाहिये।
4. सूचना एक तरफा विषय नहीं बन कर उसमें भागीदार के अवसर बढ़ाये जाने चाहिए।

अ. मौखिक संप्रेषण (Oral Communication)—यह संप्रेषण की सबसे प्राचीन एवं सशक्त विधि है। यह ऐसी प्रणाली है जिसमें प्रत्यक्ष रूप से कई व्यक्तियों से संदेशों का आदान-प्रदान ही नहीं वरन् विचार-विमर्श भी किया जा सकता है। मौखिक संदेश तत्काल प्रेषित किये जाते हैं तथा उसमें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ग्रहणकर्त्ता शब्दों की समझ के साथ प्रेषक के हावभाव, शारीरिक अंग संचालन, मनोदशा, भय, खिन्नता, क्रोध, प्रेम, हास्य, व्यंग्य आदि का लाभ लिया जा सकता है।

लाभ (Advantage)—मौखिक प्रेषण प्रणाली के निम्नलिखित लाभ हैं—

1. सूचना का प्रेषण शीघ्र हो जाता है।
2. संदेश की प्रतिपुष्टि तत्काल की जा सकती है।
3. समय व धन दोनों की बचत होती है।
4. भ्रम निवारण शीघ्रता से किया जा सकता है।
5. शीघ्र निर्णय के अवसर अधिक होते हैं।
6. आपसी सद्भावना एवं सहयोग का विकास होता है।
7. प्रेषक के व्यक्तित्व का प्रभाव बातचीत पर पड़ता है इससे संदेश अधिक प्रभावी हो जाता है।
8. संभाषण कुशलता एवं प्रभावी मधुर वाणी का आनन्द श्रोताओं को मिल सकता है।
9. बातचीत की गंभीरता का पता चलता है।
10. यह प्रणाली अधिक लोचपूर्ण होती है।
11. निरन्तर आदेश-निर्देश तथा समस्या निवारण प्रक्रिया चलती रहने से प्रबंधकीय योग्यता का विकास होता है।

दोष (Disadvantage)

1. यह प्रणाली आमने-सामने की स्थिति में ही उपयोग की जा सकती है। आजकल दूरभाष की सुविधा हो जाने से यह दोष दूर हो गया है।
2. मौखिक प्रेषण और ग्रहण का लिखित आलेख नहीं होने के कारण न्यायालय में विवाद की स्थिति में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं रहता। यह कठिनाई भी टेप की सुविधाओं के उपरान्त कम हो गई है किंतु हर वार्तालाप को टेप करना सभव नहीं होता, यह खर्चीला होता है, बातचीत में भागीदार व्यक्ति को सशंकित करता है तथा उसे सतर्क रहकर बातचीत करने को प्रेरित करता है।
3. महत्त्वपूर्ण विषयों पर बातचीत करते समय उसे सोचने का पर्याप्य समय नहीं मिलता।
4. प्राय: त्रुटि हो जाने पर कार्यकर्त्ता संप्रेषण को ही दोष देता है, अपनी त्रुटि नहीं मानता।
5. ऐसी परिस्थितियों में कई बार तनाव बढ़ जाता है तथा अविश्वास की स्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं।
6. कुछ बातें लिखित रूप में ही करना आवश्यक होती हैं अत: उन क्षेत्रों के लिए यह प्रणाली उपयुक्त नहीं होती।
7. मौखिक संदेश अल्पकालीन होते हैं तथा स्मरण शक्ति पर निर्भर करते हैं।

इन सभी कमियों के कारण जहां कहीं नीति विषयक बात हो या संविदा जनित स्थितियां हों या लम्बे समय तक उसी आधार पर कार्य करते रहना हो तो मौखिक संप्रेषण प्रणाली को उपयुक्त नहीं माना जाता।

ब. लिखित संप्रेषण (Written Communication)—वे समस्त सूचनाएं, आदेश, संदेश जो लिखित रूप में भेजे और प्राप्त किये जाते हैं लिखित संप्रेषण कहे जाते हैं। कोई भी संदेश चाहे एक पंक्ति का हो अथवा पुस्तक के आकार का यदि लिखित रूप में है तो उसे लिखित संदेश ही कहा जायेगा। बुलेटिन, पत्र-पत्रिकाएं, समाचार पत्र, सूचना पत्र, मेन्यूअल, सुझाव पुस्तिकाएं आदि सभी लिखित संप्रेषण ही है।

लिखित संदेश का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है क्योंकि विविध सूचनाओं को एकत्र करना, उपयोग करना तथा लम्बे समय तक संभाल कर रखना व्यवसाय का दैनिक कार्य हो गया है। इतना ही नहीं, कई प्रकार के प्रतिवेदन, बैठकों के वृत्त, निर्णय, संविदा तथा अन्य महत्त्वपूर्ण पत्र प्रतिदिन तैयार करने पड़ते हैं जो मनुष्य के मस्तिष्क की स्मरण सीमा से कहीं अधिक होते हैं। आज के युग में प्रेषक और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रेषिती के बीच की दूरियां भी बहुत बढ़ गई हैं तथा आज का व्यवसाय अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की वस्तु बन गया है। अत: लिखित संप्रेषण अनिवार्य अंग बन गया है।

लिखित संप्रेषण की सावधानियां (Cautions of written communication)—लिखित संप्रेषण सदैव विद्यमान रहता है तथा भविष्य में कभी भी आवश्यकता पड़ने पर संदर्भ के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह पर्याय सोच विचार के बाद तैयार किया जाये। लिखित संदेश तैयार करते समय भाषा, विषयवस्तु, प्रस्तुति तथा संबोधन विधि का पूरा ध्यान रखा जाये।

कीथ डेविस का कथन है कि लिखित संप्रेषण में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिये—

1. स्पष्टता और भाषा की शुद्धता होनी चाहिये।
2. सरलीकृत प्रस्तुति अर्थात् कठिन मुहावरेदार या व्यंगात्मक भाषा का प्रयोग नहीं किया जाये।
3. लेखन सुन्दर एवं आकर्षक लिपि में होना चाहिये।
4. वाक्य छोटे हो तथा यथासंभव बोलचाल की भाषा में हो।
5. दोहरे अर्थ देने वाले शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाये।
6. अनावश्यक शब्दाडम्बर हटा दिया जाना चाहिये।
7. भाषा की रचना के स्थान पर अर्थ की स्पष्टता को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।
8. विचार तर्क पूर्ण होने चाहिये।
9. लिखित सामग्री तैयार करते समय उपलब्ध समस्त जानकारी का उपयोग किया जाये तथा जल्दबाजी में कुछ भी नहीं लिखा जाये।

गुण (Advantages)—लिखित संप्रेषण से निम्नलिखित लाभ है—

1. दीर्घकालीन आयोजन एवं नीति निर्माण में सहायक होता है।
2. भौगोलिक दूरी संप्रेषण में बाधक नहीं होती।
3. संक्षिप्ता और स्पष्टता स्वयं आ जाती है।
4. भावी संदर्भ के लिए उपयोगी आलेख तैयार रहता है।
5. प्रत्यक्ष संपर्क की आवश्यकता नहीं होती।

दोष (Disadvantages)—

1. लिखित संप्रेषण प्रणाली मौखिक प्रणाली की अपेक्षा अधिक खर्चीली है।
2. संदेश लिखने में समय नष्ट होता है।
3. संदेश पहुंचाने के लिए उपयुक्त माध्यम-डाकतार, रेल, व्यक्तिगत संदेश आदि का उपयोग करना होता है। जैसे- डाक, कोरियर, व्यक्तिश: आदि।
4. लिखित संप्रेषण की गोपनीयता कम हो जाती है।
5. प्रतिपुष्टि तत्काल नहीं हो सकती। कई बार समय निकलने के साथ बात का महत्त्व कम हो जाता है।
6. अधीनस्थ कर्मचारी अपनी लापरवाही के कारण कई बार संप्रेषित संदेश को टाल जाते हैं।

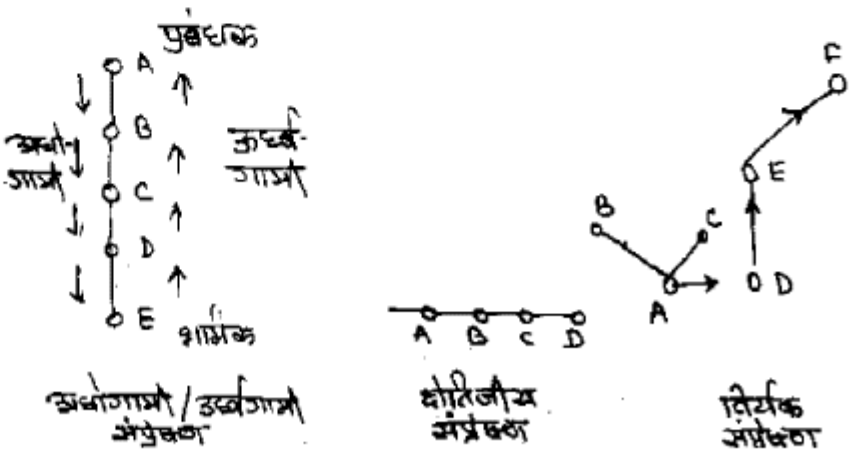

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.11.3 अधोगामी, ऊर्ध्वगामी, क्षैतिजीय एवं तिर्यक संप्रेषण (Downward, Upward, Horizontal and Cross Communication)

संप्रेषण चहुमुखी होते हैं किंतु प्रत्येक संप्रेषण विशिष्ट उद्देश्य से किया जाता है। अधोगामी संप्रेषण आदेश, निर्देश अथवा नीति विषयक होते हैं, ऊर्ध्वगामी संप्रेषण अनुपालन, शिकायत अथवा प्रस्ताव के रूप में होते हैं। कई बार सुझाव के रूप में भी कुछ बाते कही जाती है। क्षैतिजीय संप्रेषण विचार-विमर्श अथवा आम सहमति ज्ञात करने के लिए किया जाता है तथा तिर्यक संप्रेषण इन सभी उद्देश्यों का मिलाजुला रूप है। निम्नलिखित चित्रों द्वारा संप्रेषण के विभिन्न स्वरूपों को प्रकट किया गया है।

13.12 संप्रेषण के माध्यम (Medias of Communication)

जीवन विज्ञान में संप्रेषण के लिए निम्नलिखित माध्यम विकसित किये गये हैं—

13.12.1 सूचनापट्ट (Notice Board)

सूचनापट्ट ऐसे स्थान पर रखा जाना चाहिये जहां प्रत्येक व्यक्ति होकर निकलना हो, दरवाजे के पास या कैन्टीन में या प्रत्येक विभाग के लिए पृथक् व्यवस्था। इस सूचनापट्ट का उपयोग दैनिक कार्यक्रम बतलाने के लिए किया जाता है।

13.12.2 स्थायी निर्देश (Standing Order)

प्रशिक्षु या साधकों को साधना या अभ्यास हेतु निर्देशों से अवगत रखने के लिए प्रशिक्षण या संस्थान हर प्रकार से जानकारी सुलभ करवाते है। स्थायी निर्देश जो लम्बे समय तक उपयोग किये जाते हैं, एक साथ उपलब्ध होने पर प्रशिक्षु, साधक, प्रशिक्षक एवं प्रशिक्षण संस्थान सभी को सुविधा होती है।

13.12.3 पोस्टर पत्रिका

प्रेक्षाध्यान और उसके बारे में विविध जानकारी उपलब्ध करने का काम इन माध्यमों से किया जाता है। पत्रिका में चित्र आदि का उपयोग किया जाता है।

13.12.4 ब्राउचर या फोल्टर

इनमें समय-समय पर आकर्षक फोटोग्राफ, सूचनाएं, तालिकाएं, विशिष्ट कार्यक्रम की जानकारी आदि दी जाती है।

13.12.5 आकाशवाणी तथा दूरदर्शन

आकाशवाणी अथवा दूरदर्शन प्रसारण में प्रेक्षाध्यान के विशेष कार्यक्रम, योगासन, प्राणायाम आदि का व्यावहारिक निदर्शन किया जाता है। प्रेक्षाध्यान के सिद्धान्त और उसकी उपलब्धियों की जानकारी भी दी जाती है। अत: आकाशवाणी अथवा दूरदर्शन पर ऐसे प्रसारण करवाये जाते हैं।

13.12.6 पुस्तकालय-वाचनालय

प्रशिक्षण व साधना से संबंधित पढ़ने आदि के लिए इस माध्यम का उपयोग किया जाता है। अच्छा पुस्तकालय अच्छे साधकों को आकर्षित करता है तथा जिज्ञासा समाधान के लिए अच्छा वातावरण सुलभ करता है।

13.12.7 प्रशिक्षण कार्यक्रम

इन कार्यक्रमों के माध्यम से नये साधकों को जहां अपनी साधना मे कुशलता प्राप्त होती है, वही उसे प्रशिक्षण देने के अवसर भी सुलभ होते हैं। संगठन को इससे अपनी आवश्यकतानुसार प्रशिक्षक सुलभ होते हैं।

13.12.8 विशिष्ट कार्यक्रम

योग संस्थान आजकल सी.डी. एवं विडियो द्वारा चलचित्र दिलाने, भाषणों के टेप सुनाने का काम भी करते हैं। साधना सम्बंधी परामर्श इसी प्रकार का संप्रेषण कार्यक्रम है जिसमें साधकों की विशेष स्थिति को ध्यान में रखते हुए कार्यक्रम बनाये जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.13 क्रियात्मक संप्रेषण (Action Communication or Communication through behaviour)

किसी संदेश को सही अर्थों में अपने प्रशिक्षु या साधकों तक पहुंचाने के लिए प्रशिक्षक को वही करना चाहिए जो वह दूसरों से चाहता है। एक प्रशिक्षक जो यह चाहता है कि प्रशिक्षु प्रात: जल्दी उठकर समय पर सारा कार्य करे। वह कई बार अपनी बात सार्वजनिक रूप से कह भी चुका था किंतु अधिकांश व्यक्तियों ने उसे वास्तविकता नहीं माना। वह प्रशिक्षक चला गया। दूसरा प्रशिक्षक आया। वह स्वयं समय का बहुत पाबन्द व जागरूक था। यह बात जब चारों ओर फैली तो पूर्व प्रशिक्षक की बात का अर्थ प्रशिक्षकों की समझ में आया। स्पष्ट है कि संदेश, क्रियात्मक रूप लेने तक अधूरा रहा।

यदि प्रशिक्षक अपने समय का पाबन्द है तो अन्य प्रशिक्षु साधक भी समय का मूल्य समझने लगेंगे। इसी के विपरीत प्रभाव भी देखे जा सकते हैं।

बोध प्रश्न 2:

---

1. संप्रेषण के मुख्य तत्वों का वर्णन करें?

2. अनौपचारिक संप्रेषण क्या है?

3. लिखित संप्रेषण के दोष बताएं?

13.14 सारांश

➢ प्रशिक्षक अपने कार्यक्षेत्र में सफलता एवं परस्पर सम्बंधों में मधुरता अभिव्यक्ति की कुशलता से ही अर्जित करता है। अभिव्यक्ति और अभिव्यक्ति-कौशल में वही अन्तर है जो जीने एवं कलापूर्ण जीवन जीने में है। इसे भी अन्य कलाओं की तरह सलक्ष्य सीखना होता है।

➢ जीवन विज्ञान में ध्यान और योग को सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक जानकारी देना आवश्यक होता है। इसके लिए सम्प्रेषण अनिवार्य स्रोत है। सम्प्रेषण का सामान्य अर्थ है विचारों को प्रस्तुत करना या अभिव्यक्त करना।

➢ सम्प्रेषण के तीन मुख्य तत्त्व बतलाये गये हैं—1. संकेत एवं चिह्न, 2. भाषा, 3. समझ।

➢ इनके अतिरिक्त भी संप्रेषण को प्रभावित करने वाले कारक तत्त्व हैं—अच्छे संबंध, आत्मविश्वास, स्पष्टता, ग्रहण करने की क्षमता, भावनात्मक नियंत्रण, सीखने की इच्छा एवं सहयोग की इच्छा।

➢ जीवन विज्ञान में संप्रेषण मुख्य रूप से केवल दो उद्देश्यों के लिए होता है—

1. जीवन विज्ञान को प्रशिक्षु, सेवार्थी या साधक तक पहुंचाना, प्रशिक्षण देना।
2. स्वयं के जीवन में पारस्परिक सम्बंधों को अभिव्यक्ति कौशल द्वारा सौहार्दमय बनाये रखना।

➢ सम्प्रेषण के मुख्य सिद्धान्त हैं—स्पष्टता, ध्यान, ईमानदारी, उपयोग, नियंत्रण, प्रमापीकरण, परामर्श, अनुकूलता, प्रतिपुष्टि और नेतृत्व।

➢ संप्रेषण की प्रक्रिया में निम्नलिखित बातों का समावेश होता है—प्रेषक, प्राप्तकर्ता, संदेश, माध्यम, प्राप्तकर्त्ता की प्रतिक्रिया, उसकी जानकारी और संदेश में सुधार।

➢ प्रशिक्षक का सम्प्रेषण करते समय मुख्यत: चार तत्त्वों का ध्यान रखना चाहिए—संदेश, साधन, प्राप्तकर्त्ता एवं प्रतिपुष्टि या प्रतिसूचना।

➢ संगठन या संस्थाओं में प्रचलित संम्प्रेषण को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है—1. औपचारिक एवं अनौपचारिक संप्रेषण, 2. मौखिक एवं लिखित संप्रेषण, 3. अधोगामी, ऊर्ध्वगामी तथा क्षैतिजीय एवं तिर्यक् संप्रेषण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

➢ प्रशिक्षक को एक अच्छा श्रोता होना चाहिए। जितना अधिक अधिकार क्षेत्र होगा उतनी ही अधिक बातें सुननी पड़ेंगी। सुनने की ठोस पद्धति का निर्माण दूसरे व्यक्तियों की भावना को सही रूप से समझने का प्रयास है। प्रशिक्षक प्रत्येक व्यक्ति के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकर्त्ता नहीं बन सकता किंतु उसमें शांतिपूर्वक प्रत्येक व्यक्ति को सुनने का गुण अवश्य होना चाहिए।

➢ जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान और योग के सम्प्रेषण के लिए निम्नलिखित माध्यम विकसित किये गये हैं—1. सूचना पट्ट, 2. स्थायी निर्देश, 3. पोस्टर, पत्रिका, 4. फोल्डर या पेम्फ्लेट, 5. दूरदर्शन प्रसारण, 6. पुस्तकालय, वाचनालय, 7. प्रशिक्षण कार्यक्रम, 8. विशिष्ट कार्यक्रम आदि, 9. साहित्य-निर्माण।

➢ किसी संदेश को सही अर्थों में अपने प्रशिक्षु या साधकों तक पहुंचाने के लिए प्रशिक्षक को वही करना चाहिए जो वह दूसरों से चाहता है। अन्यथा इसका विपरीत प्रभाव भी हो सकता है।

13.15 प्रश्नावली

I निबंधात्मक प्रश्न

1. सम्प्रेषण के तत्त्वों का विस्तार से वर्णन करें?

II लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सम्प्रेषण के उद्देश्य क्या हैं?
2. जीवन विज्ञान में सम्प्रेषण के कौन-कौन से माध्यम विकसित किये गये हैं?

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न—

1. सम्प्रेषण का अर्थ क्या है?
2. जीवन विज्ञान के अध्येता के लिए अभिव्यक्ति कौशल का विकास क्यों आवश्यक है?
3. सौहार्दपूर्ण सम्बंधों के विकास हेतु कौन-कौन से सूत्र हैं?
4. सम्प्रेषण के कोई दो कार्य बतायें?
5. सम्प्रेषण की कोई दो विशेषताएं लिखें।
6. सम्प्रेषण के कोई दो सिद्धान्त बताएं।
7. सम्प्रेषण की प्रक्रिया के मुख्य तत्त्व क्या हैं?
8. सम्प्रेषण को कितने भागों में बांटा जा सकता है?
9. अंगूरलता प्रणाली और अफवाह में क्या अन्तर है?
10. क्रियात्मक संप्रेषण क्या है?

13.16 संदर्भ पुस्तकें

1. John Mulligan, Personal Management (1988)—Sphere Books, Ltd., Lodon
2. एम. एल. दशोरा, संगठन : सिद्धान्त एवं व्यवहार (1994)—हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर
3. लोक व्यवहार, डेल कारनेजी—तारापोरवाल सन्स एण्ड कम्पनी, बम्बई
4. शिव खेड़ा, जीत आपकी—फुल सर्कल, दिल्ली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–14 अभिव्यक्ति की दक्षता और बाधाएं, श्रवण कला और शारीरिक अभिव्यक्ति,अध्ययन क्षमता और जन–समूह में अभिव्यक्ति (वक्तृत्व कला या भाषण कला का विकास)

संरचना

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 अभिव्यक्ति की दक्षताएं

14.2.1 अभिव्यक्ति–दक्षता : प्रकार

14.2.1.1 निर्देशात्मक अभिव्यक्ति

14.2.1.2 सूचनात्मक अभिव्यक्ति

14.2.1.3 चुनौतीपूर्ण अभिव्यक्ति

14.2.1.4 विरेचनात्मक सम्प्रेषण

14.2.1.5 प्रेरणात्मक सम्प्रेषण

14.2.1.6 सहयोगात्मक सम्प्रेषण

14.3 अभिव्यक्ति के चरण

14.3.1 संदेश की तैयारी

14.3.2 स्वयं की पूर्व तैयारी

14.3.3 सम्पर्क करना

14.3.4 प्राप्तकर्त्ता को तैयार करना

14.3.5 संदेश देना

14.3.6 जिज्ञासा को सुनना एवं स्पष्ट करना

14.3.7 वार्ता को समाप्त करना

14.3.8 वार्ता का अनुवर्तन

14.4 अभिव्यक्ति के बाधक व्यवहार

14.4.1 अनुपस्थिति

14.4.2 दृष्टिकोण

14.4.3 प्रयोजन या लक्ष्य

14.4.4 दक्षता

14.4.5 विश्वास या पूर्ण धारणाएं

14.4.6 आशंका या भय

14.4.7 श्रोता के अन्य बाधक व्यवहार

14.5 प्रभावी श्रवण क्षमता

14.5.1 श्रवण कला की योग्यताएं

14.5.2 वक्ता के प्रति आदर और सम्मान

14.5.3 वक्ता को प्रोत्साहन

14.5.4 मौन

14.5.5 समझ एवं अभिव्यक्ति

14.5.6 ध्यानपूर्वक सुनने की विशेष बातें

14.5.7 श्रोता के रूप में प्रशिक्षक के गुण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.6 सार्वजनिक भाषण में शारीरिक स्थिति
14.6.1 मुद्रा
14.6.2 अभिवादन
14.6.3 हाथ
14.6.4 दृष्टि सम्पर्क
14.6.5 पोशाक
14.6.6 आवाज पर नियंत्रण
14.6.7 बल देने का महत्व
14.7 भाषण की तैयारी के महत्वपूर्ण मुद्दे
14.8 प्रभावशाली अध्ययन क्षमता
14.8.1 अध्ययन सामग्री का चयन
14.8.2 अध्ययन का प्रयोजन
14.8.3 पठन गति
14.8.4 अध्ययन दशाएं
14.9 सार्वजनिक भाषण कला
14.9.1 वक्तव्य की तैयारी
14.9.2 श्रोता की पहचान
14.9.3 सामग्री का संगठन
14.9.3.1 विषयानुसार
14.9.3.2 इतिहास/कालक्रम से
14.9.3.3 स्थान के अनुसार
14.9.3.4 कार्यकारण के अनुरूप
14.9.4 रोचकता
14.9.5 प्रस्तुति
14.10 अच्छी अभिव्यक्ति के बिन्दु
14.10.1 अच्छे भाषण के लिए ऐसा न करें
14.11 सारांश
14.12 प्रश्नावली
14.13 संदर्भ ग्रंथ

14.0 प्रस्तावना

शिक्षा जगत् में भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से विभिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं पर चारित्रिक विकास के लिए कोई विद्या शाखा नहीं है। जीवन विज्ञान का एक मुख्य उद्देश्य है कि व्यक्ति-व्यक्ति में नैतिक आस्था जागे, चारित्रिक बल का विकास हो। स्नातकोत्तर (एम.ए.) स्तर पर इसका एक उद्देश्य यह भी है कि विद्यार्थी का चारित्रिक बल तो ऊंचा उठे ही साथ-साथ वह प्रायोगिक प्रक्रिया, प्रेक्षाध्यान और योग में भी पारंगत बने। अत: यह आवश्यक है कि जीवन विज्ञान के अध्येता को एक अच्छा वक्ता और प्रशिक्षक भी होना चाहिए। इससे वह समाज को अपनी सेवाएं समर्पित कर सकेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रत्येक प्रशिक्षक को प्रशिक्षण के समय अनेक प्रयोजनों की पूर्त्ति करनी होती है अत: उसे अभिव्यक्ति के विभिन्न तरीकों में दक्ष होना चाहिए। विभिन्न अभिव्यक्ति दक्षताओं का विकास सशक्त अभिव्यक्ति के लिए भी आवश्यक है। अभिव्यक्ति के दौरान अनेक प्रकार की बाधाएं आती हैं उनके प्रति भी प्रशिक्षक को जागरूक रहना चाहिए। एक वक्ता को अच्छा श्रोता भी होना चाहिए जिससे वह दूसरों को समझ सके एवं अपनी बात को भी सही परिप्रेक्ष्य में सामने वाले तक पहुंचा सके। अभिव्यक्ति के पीछे ठोस ज्ञान भी अच्छे वक्ता का एक गुण होता है। उसकी अध्ययनशीलता एवं उसकी अध्ययन क्षमता के विकास के लिए अध्ययन की नवीनतम् तकनीक से भी लाभ उठाना चाहिए। सार्वजनिक स्थलों पर या समूह में सशक्त एवं प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के कुछ विशेष बातों पर ध्यान देना चाहिए एवं उससे परिचित होकर अभ्यास द्वारा उसमें कुशलता को अर्जित किया जा सकता है।

प्रशिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विषय ज्ञान के साथ-साथ उसकी अभिव्यक्ति में दक्षता को प्राप्त करे। उसे परस्पर-वार्ता, संवाद, निर्देशन एवं सार्वजनिक भाषणकला में परिपक्व बनना है। इससे वह अपने कार्यक्षेत्र में सफलता को प्राप्त करेगा एवं अपने जीवन में भी शांति एवं सौहार्द को बनाए रख सकेगा। समाज व राष्ट्र को अपनी सेवाएं समर्पित करते हुए सफल व्यक्तित्व के रूप में उभर सकेगा।

14.1 उद्देश्य

1. अभिव्यक्ति की विभिन्न दक्षताओं से परिचित कराना।
2. अभिव्यक्ति की विभिन्न बाधाओं से परिचित कराना।
3. सुनने की कला से अवगत कराना।
4. भाषण कला में शरीर की विभिन्न स्थितियों के प्रति जागरूक करना।
5. अध्ययन क्षमता में विकास के उपाय बताना।
6. सार्वजनिक भाषण कला के मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डालना।

14.2 अभिव्यक्ति की दक्षताएं

अभिव्यक्ति करते समय व्यक्ति के सामने एक स्पष्ट उद्देश्य होना चाहि। उसके साथ अनेक छोटे-छोटे लक्ष्य भी हो सकते हैं। वक्ता द्वारा उन लक्ष्यों को अभिव्यक्ति काल मे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

विशेष उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अलग-अलग प्रकार की अभिव्यक्ति दक्षताओं का उपयोग करना होता है। इससे भी पूर्व यह आवश्यक है कि अभिव्यक्ति करने से पहले वक्ता स्वयं में स्पष्ट रहे कि वह इससे क्या प्राप्त करना चाहता है?

14.2.1 अभिव्यक्ति-दक्षता :प्रकार

अभिव्यक्ति करने के पीछे अनेक उद्देश्य हो सकते हैं। प्रशिक्षक या अच्छे वक्ता में उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार की दक्षताओं का विकास आवश्यक है।

14.2.1.1 निर्देशात्मक अभिव्यक्ति

इसमें सम्प्रेषण निर्देश द्वारा दिया जाता है। इससे व्यक्ति को स्वयं अपनी सहायता करने में मदद मिलती है। निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति के लक्ष्य प्राप्ति की प्रक्रिया, विशिष्ट व्यवहार या विशिष्ट मूल्यों का निर्देश किया जाता है। यह आवश्यक नहीं कि सामने वाला व्यक्ति उसे उसी रूप में ही क्रियान्वित करे। वह स्वतंत्र है कि अपने ढंग से क्रियान्वित करे या बिल्कुल ही नहीं करे। हो सकता है उसे इसके दुष्परिणामों को भोगना भी पड़े।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्देशात्मक सम्प्रेषण की भाषा में आदेश, सुझाव, प्रस्ताव या सलाह का समावेश किया जाता है। इससे व्यक्ति के कार्यों का मूल्यांकन एवं परिष्कार किया जाता है। व्यक्ति को दायित्व-बोध कराने के साथ उसे जिम्मेदारी भी दी जा सकती है एवं कार्यविधि भी समझायी जा सकती है।

निर्देश आदेशात्मक भाषा में भी हो सकते हैं या निर्देश देने से पूर्व सामने वाले व्यक्ति से सलाह-मशविरा भी किया जा सकता है। निर्देशात्मक अभिव्यक्ति का उपयोग तब तक ही होना चाहिए जब तक कि सामने वाला व्यक्ति स्वयं चलने में सक्षम न हो। दूसरों की स्वतंत्रता का पूरा सम्मान करना चाहिए।

14.2.1.2 सूचनात्मक अभिव्यक्ति

सूचनाओं की अभिव्यक्ति से व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि होती है एवं वह स्वतंत्र चिंतन की क्षमता को अर्जित करने में सफल होता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में कुछ खतरे हैं जिनसे बचना चाहिए। जैसे अवांछित, अस्पष्ट, अनिश्चित व अयथार्थ सूचनाओं की अभिव्यक्ति। रूढ़िवादी धारणाओं की अभिव्यक्ति से बचना चाहिए। सूचनात्मक अभिव्यक्ति में सफलता के लिए पहले स्वयं अपने आपमें स्पष्ट हो जाएं कि—

1. आप क्या सूचना सम्प्रेषित करना चाहते हैं?
2. सही समय व स्थान का चुनाव करें।
3. निश्चित करें कि यह किस प्रकार की सूचना है—तर्क प्रधान, व्याख्या प्रधान, विश्लेषणात्मक या प्रतिपुष्टि।
4. किस मात्रा में एवं किस स्तर तक ही सूचना सम्प्रेषित करनी है?
5. किस रूप में सूचना देनी है—आमने-सामने, लिखित या फोन आदि साधनों से।

14.2.1.3 चुनौतीपूर्ण अभिव्यक्ति

ऐसी अभिव्यक्ति व्यक्ति के नकारात्मक दृष्टिकोण और व्यवहार को बदलने के लिए किया जाता है परन्तु यह निश्चित कर लेना चाहिए कि यह सामने वाले व्यक्ति के हित के लिए कर रहे हैं या स्वयं के लिए। हम सत्य को उजागर करने जा रहे हैं या टालमटोल कर उसे खुश करना चाहते हैं। सत्य को मृदुता से कहने पर भी वह सामने वाले व्यक्ति को आघात पहुंचाने वाला होगा। इससे उसे असुविधा होगी। अत: उसको सहायता की भी आवश्यकता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए कुछ निम्नलिखित सूत्र महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं—

1. इस प्रकार से कहें कि अपनी गलती के प्रति उसकी जागरूकता बढ़े।
2. प्रश्नों के माध्यम से बात को प्रकट करें।
3. अच्छाई को जागृत करने के लिए उसके सामने चुनौती के रूप में रखें।
4. दृढ़ता से बुराई के परिणामों को बताएं।

14.2.1.4 विरेचनात्मक सम्प्रेक्षण

इस प्रकार के सम्प्रेषण से व्यक्ति को तनाव-मुक्ति में सहायता मिलती है। वह अपने भाव एवं संवेगों को सही प्रकार से व्यक्त करने में सफल होता है। वक्ता स्वयं ऐसे उपायों को काम में ले जिससे दूसरों को भी प्रेरणा मिलेगी। वे भी आत्मविश्वास के साथ उन उपायों को काम ले सकेंगे।

1. दूसरों को तनाव-मुक्ति व संवेगों के परिष्कार के उपाय बताएं।
2. उपायों को काम में लेने हेतु प्रोत्साहित करें।
3. व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुरूप कार्यों में लगने हेतु सहयोग करें।

14.2.1.5 प्रेरणात्मक सम्प्रेषण

इस प्रकार का सम्प्रेषण दूसरे व्यक्ति को स्वयं से परिचित करवाता है। आत्मविश्वास को बढ़ाता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। स्वयं के निर्माण की जिम्मेदारी लेना सिखाता है। दूसरे व्यक्ति को कार्य करने हेतु प्रेरणा देना न कि उसके लिए काम करना। उसकी क्षमताओं को अधिक से अधिक काम में लेना चाहिए।

1. कार्यों की प्रशंसा द्वारा प्रेरित करना।
2. कार्य के प्रति समझ को विकसित करना।
3. प्रश्न या जिज्ञासा द्वारा मूल कार्य के प्रति ध्यान केन्द्रित करना।
4. स्व-क्षमताओं को समझने के लिए सहायता देना।

14.2.1.6 सहयोगात्मक सम्प्रेषण

इस प्रकार के सम्प्रेषण में वक्ता को धैर्य से दूसरों को सुनना और समझना चाहिए। अपने निर्णयों को उन पर नहीं थोपना चाहिए।

1. व्यक्ति को प्रोत्साहित करें, प्रशंसा करें, मूल्यांकन करें, समर्थन करें।
2. उनके विचारों, भावों, मूल्यों एवं व्यवहारों का स्वागत करें।
3. ईमानदारी से अपने भावों को अभिव्यक्त करें।
4. स्नेह एवं वात्सल्य दें।
5. अपनी विशेषता एवं कमजोरियों से अवगत कराएं।
6. उसके विकास के लिए प्रयत्नशील रहें।

निर्देशात्मक, सूचनात्मक और चूनौतीपूर्ण सम्प्रेषण यह दर्शाता है कि प्रशिक्षक अधिकृत रूप में या एक विशेषज्ञ के रूप में बात प्रस्तुत कर रहा है। शेष तीन में ऐसा कोई आभास नहीं होता है। एक अच्छे सम्प्रेषण के लिए सभी प्रकार की दक्षता अपेक्षित है। भिन्न-भिन्न स्थिति व प्रयोजन के अनुरूप अत्यन्त सावधानी से सम्प्रेषण को अंजाम देना चाहिए।

14.3 अभिव्यक्ति के चरण

अभिव्यक्ति का जब एक विशेष उद्देश्य होता है तब उससे पूर्व अभिव्यक्ति की सभी अवस्थाओं पर विचार कर लेना लाभदायक होता है। अभिव्यक्ति की आठ अवस्थाएं होती हैं—वक्ता को सबकी एक साथ आवश्यकता नहीं होती है किंतु सशक्त सम्प्रेक्षण या अभिव्यक्ति के लिए यदा-कदा इनकी आवश्यकता पड़ जाती है। 1. संदेश की तैयारी, 2. स्वयं की पूर्व तैयारी, 3. सम्पर्क करना, 4. संदेश प्राप्तकर्त्ता को तैयार करना, 5. संदेश देना, 6. जिज्ञासा को सुनना एवं स्पष्ट करना, 7. सम्प्रेषण को समाप्त करना और 8. उसका अनुवर्तन करना।

14.3.1 संदेश की तैयारी

अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं कि जो यह जाने बिना कि उन्हें क्या कहना है, वे अपनी बात प्रारम्भ कर देते हैं। यदि वे चाहते हैं कि उनकी अभिव्यक्ति निष्पत्तिकारक या परिणामदायक हो तो उन्हें पहले यह विचार कर लेना चाहिए कि मैं अभिव्यक्ति—

1. क्यों कर रहा हूं?
2. उसका मुख्य संदेश क्या है?
3. यह संदेश किसके लिए है?
4. क्या परिणाम चाहता हूं?
5. संदेश को किस प्रकार से कहना है?
6. सही समय कौन-सा रहेगा?
7. सही स्थान कौन-सा होगा?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. क्या मुख्य बिन्दु स्पष्ट है?
9. क्या कहीं अस्पष्टता है?
10. क्या तथ्य सही हैं?
11. क्या अपेक्षित सभी सूचनाओं का समावेश है?

14.3.2 स्वयं की पूर्व तैयारी

संदेश देने से पूर्व शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से स्वयं को तैयार करें। आपके हाव-भाव अनजान में ही बहुत कुछ अनकहा कह देते हैं। आपका आत्म-विश्वास, शांत स्वभाव और सुदृढ़ भाषा अभिव्यक्ति की सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण है।

14.3.3 सम्पर्क करना

संदेश देने से पूर्व श्रोता से सम्पर्क कर उसका ध्यान अपनी ओर खींचना आवश्यक है। ध्यान खींचने के लिए अनेक उपाय काम में लिये जा सकते हैं—1. प्रश्न पूछकर, 2. रुचि की बात प्रारम्भ कर, 3. चुटकलों से, 4. आंख से सम्पर्क कर, 5. आवाज में उतार-चढ़ाव द्वारा, 6. शारीरिक हाव-भाव या अभिवादन द्वारा।

14.3.4 प्राप्तकर्त्ता को तैयार करना

यदि संदेश श्रोता के लिए असह्य हो या झटका देने वाला हो या आघात पहुंचाने वाला हो तो उसको उसके लिए भी तैयार करने की आवश्यकता होती है अन्यथा उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस हेतु कुछ उपाय काम में लिये जा सकते हैं—

1. प्रयोजन को स्पष्ट करना
2. लाभकारी परिणामों से अवगत कराना
3. खतरों से अवगत कराना
4. प्रश्नोत्तर माध्यम से जागरूकता पैदा करना।

14.3.5 संदेश देना

संदेश देते समय अपने उद्देश्य को सामने रखना चाहिए। सरल भाषा का उपयोग करना चाहिए। अनावश्यक विस्तार से बचना चाहिए। मुख्य बिन्दुओं पर जोर देना चाहिए। प्रस्तुत करते समय—आवाज स्पष्ट हो, उतार-चढ़ाव हो, अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करते चलें, प्रश्न के जवाब के लिए रुकें, कथन को सार-संक्षेप में प्रस्तुत करें, सीधा आक्षेप न करें, आवश्यकता पड़ने पर अपने तरीकों को बदलें।

14.3.6 जिज्ञासा को सुनना एवं स्पष्ट करना

श्रोता की जिज्ञासा को ध्यान से सुनना। संक्षिप्त उत्तर देना। उस समय अन्य विचारों से बचना चाहिए। दूसरों की हां में हां न मिलाकर तटस्थता से अपने विचार रखने चाहिए।

14.3.7 वार्ता को समाप्त करना

वार्ता अनेक बार ऊबाऊ, अहितकारी व अनिर्णायक हो जाती है या सामान्यत: वह अपने प्रयोजन को प्राप्त नहीं होती है। अत: वार्ता की समाप्ति पर पर्याप्त पूर्व चिंतन की आवश्यकता होती है। वार्ता समाप्त करते समय—

- किसी कार्यवाही की स्पष्ट मांग कर सकते हैं।
- किसी कार्य के लिए अपने सुझाव दे सकते हैं।
- उपलब्धियों को सार-संक्षेप में रख सकते हैं।
- पुन: मिलने व वार्ता-चालू रखने का निश्चय कर सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- वार्ता समाप्ति का संकेत दे सकते हैं।
- वार्ता समाप्ति का संकेत देने की दृष्टि से धन्यवाद ज्ञापित कर सकते हैं।

14.3.8 वार्ता का अनुवर्तन

वार्ता की सफलता, कार्य-निष्पत्ति एवं सम्बंधों की निरन्तरता को बनाये रखने के लिए वार्ता के बाद उसका अनुवर्तन (Follow-up) आवश्यक होता है।

14.4 अभिव्यक्ति के बाधक व्यवहार

परस्पर वार्ता, अभिव्यक्ति या सम्प्रेषण काल के अनेक बाधाएं उपस्थित होती रहती हैं। उन बाधाओं में वक्ता एवं श्रोता के बीच सर्वसामान्य बाधा है—नासमझी। एक दूसरे को समझने का अभाव। इस बाधा को तभी हटाया जा सकता है जब व्यक्ति जागरूक हो जाये कि इस प्रकार की बाधाएं आपसी वार्ता और अभिव्यक्ति में बाधक बन रही हैं। इसके अतिरिक्त अनेक बाधाएं हैं जिनके प्रति वक्ता/प्रशिक्षक को जागरूक होना चाहिए।

14.4.1 अनुपस्थिति

वार्ता में उपस्थित व्यक्ति क्या वास्तव में मन से उपस्थित है या अनमने से बैठे हुए हैं। यदि अनमनायन हैं तो दोनों पक्षों में वार्ता के लिए गंभीरता का अभाव है।

14.4.2 दृष्टिकोण

क्या दोनों व्यक्तियों या पक्षों में एक दूसरे के प्रति सम्मान, स्वीकृति, सहानुभूति और समझ का भाव है। उनमें उपेक्षा या आक्रामकता का भाव यह दर्शाता है कि परस्पर सम्बंधों में गंभीर समस्या है।

14.4.3 प्रयोजन या लक्ष्य

क्या वार्ता के संभागी यह जानते हैं कि उनकी वार्ता का प्रयोजन क्या है? वे वार्ता से क्या चाहते हैं? क्या दोनों पक्ष एक-दूसरे के उद्देश्य से परिचित हैं? छल-कपट, गुप्त उद्देश्य, अस्पष्टता या दोहरा संदेश वार्ता को असफल बना सकता है एवं विश्वसनीय सम्बंधों को नष्ट कर सकता है।

14.4.4 दक्षता

सम्प्रेषण की सबसे बड़ी बाधा या समस्या है—दक्षता का अभाव। कैसे बोलना चाहिए? किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना चाहिए? वार्ता की सफलता के लिए कौन-सी रणनीति अपनानी चाहिए? जो कहना चाहिए उसे बिना दक्षता के कहना आसान नहीं होता है और जिसे सुनना चाहिए वह भी कठिन बन जाता है।

14.4.5 विश्वास या पूर्ण धारणाएं

प्राय: व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के बारे में जाने-अनजाने धारणाएं बना लेता है, जैसे कि उन्हें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए? वे कितना जानते हैं? वे क्या समझते हैं आदि-आदि। जब एक व्यक्ति की दूसरों से अपेक्षाएं पूरी नहीं होती है तो आपसी वार्ता या अभिव्यक्ति की समस्या पैदा हो जाती है।

14.4.6 आशंका या भय

कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो सब व्यक्तियो से खुलकर बात करे। व्यक्ति के मन में यह आशंका रहती है कि कहीं श्रोता उसकी कमियों का फायदा नहीं उठा ले या वह उसकी बात को पचा सकेगा कि नहीं?

प्राय: ऐसे अवसरों पर व्यक्ति या तो स्वयं की सुरक्षा के प्रति अधिक चिंतित होता है या दूसरे पर अपने प्रभाव को बनाये रखने के लिए। व्यक्ति अपने उद्देश्य के प्रति जागरूक रहकर अभिव्यक्ति कौशल में विकास कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.4.7 श्रोता के अन्य बाधक व्यवहार

श्रोता के अनेक व्यवहार ऐसे होते हैं जो वार्ता की सफलता में बाधक बनते हैं। उन व्यवहारों से सावधान रहना चाहिए एवं उन्हें कुशलता से निपटना चाहिए।

➢ कुछ लोग बहुत बातूनी होते हैं। केवल बोलते ही रहते हैं। सामने वाले को बोलने का अवसर ही नहीं देते हैं।

➢ कुछ लोगों का व्यवहार ऐसा होता है कि वे बात को सुनते ही नहीं हैं। बात को काटकर बीच में अपनी बात शुरु कर देते हैं।

➢ कुछ लोग अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए अनावश्यक और अप्रासंगिक विषयों की चर्चा छोड़ देते हैं। इससे मुख्य विषय पर चर्चा नहीं हो पाती है।

➢ कुछ लोग स्वयं प्रश्न खड़ा करते हैं। स्वयं उत्तर देने लग जाते हैं। स्वयं हंसने लगते हैं।

➢ कुछ लोग केवल अपनी उपलब्धियों का बार-बार उल्लेख करते रहते हैं। उनका 'मैं' एवं 'मेरापन' मुख्य और केन्द्रीय तत्त्व बन जाता है। वे केवल अपनी प्रशंसा चाहते हैं और इसके अतिरिक्त वे कुछ सुनना पसन्द नहीं करते हैं।

14.5 प्रभावी श्रवण क्षमता

संप्रेषण क्रिया दो तरफा होती है। जहां एक व्यक्ति कहता है, दूसरा सुनता है किंतु स्थिति के अनुसार श्रोता और वक्ता बदलते रहते हैं। जीवन विज्ञान प्रशिक्षक सिद्धान्त एवं अभ्यास द्वारा लोगों तक अपनी बात पहुंचाते हैं। वे ही उनकी कठिनाइयां, शिकायतें, सुझाव एवं अन्य विचार सुनते भी हैं। प्रशिक्षक को एक अच्छा श्रोता होना भी आवश्यक है। प्रशिक्षक का कार्यक्षेत्र या अधिकार क्षेत्र जितना बड़ा होगा उतना ही अधिक सुनना पड़ेगा।

अच्छे चिंतक जो कुछ सुनते हैं उस पर लम्बे समय तक विचार करते रहते हैं। सुनने की ठोस पद्धति का निर्माण भी दूसरे व्यक्तियों की भावना को सही रूप में समझने का प्रयास है। यदि सेवार्थी (सेवा लेने वाला) को अपनी बात कहने का पूरा अवसर दिया जाए तथा उसके मस्तिष्क से यह भय दूर कर दिया जाए कि उसकी कही गई बातें पकड़ कर उस पर कार्यवाही नहीं होने लगेगी तो वह पूरी बात कह सकेगा। प्रबंधक, प्रशिक्षक प्रत्येक व्यक्ति के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकर्त्ता नहीं बन सकता। इसके लिए उसके पास प्रत्येक अवसर पर समय भी नहीं होता किंतु उसमें शांतिपूर्वक प्रत्येक व्यक्ति को सुनने का गुण अवश्य होना चाहिए।

प्रभावी श्रवण क्षमता का तात्पर्य मात्र सुनना नहीं है। प्रभावी श्रवण क्षमता के विकास का अर्थ है कि जो शब्द सुने गये हैं, उनका अर्थ समझना, उनका तात्पर्य ग्रहण करना, संदिग्ध तथ्यों का निराकरण करना एवं वक्ता के दृष्टिकोण को समझना।

अधिकांश व्यक्ति सुनने की कला में दक्ष नहीं होते हैं क्योंकि—

1. उन्हें श्रवणकला का ज्ञान ही नहीं होता है।
2. वे वक्ता की बातों पर ध्यान नहीं दे पाते हैं।
3. सुनते समय उनका ध्यान अन्यत्र लगा रहता है।
4. सुनते समय वे अपनी ओर से टिप्पणियां करते रहते हैं।
5. वे बीच-बीच में वक्ता की बात को काट देते हैं।
6. वक्ता को बोलते समय वे अपना जवाब या प्रत्युत्तर तैयार करते रहते हैं।
7. वक्ता के तात्पर्य को समझने का प्रयास नहीं किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. वे वक्ता के भाषण से अपना वांछित मन्तव्य खोजते हैं, वक्ता के संदेश को सुनने का प्रयास नहीं करते हैं।

14.5.1 श्रवण-कला की योग्यताएं

'श्रवण-कला' के अन्तर्गत चार योग्यताओं का समावेश किया जाता है—आमंत्रण, प्रोत्साहन, मौन और समझ की अभिव्यक्ति।

14.5.2 वक्ता के प्रति आदर और सम्मान

सभी अच्छी श्रवण दक्षताओं का आधार सौहार्दपूर्ण सुदृढ़ सम्बंध, विषय में रुचि, वक्ता के प्रति आदर और खुलापन का भाव होता है। वक्ता के प्रति आदर व सम्मान की भावना को इन बातों से अभिव्यक्त कर सकते हैं।

1. वक्ता की आवश्यकता को प्राथमिकता देना, 2. वक्ता के असहमत होने पर भी धैर्य से उसकी बात को खुले दिमाग से सुनना, 3. उसकी तरफ शरीर का झुकाव रखना।, 4. आंख से सम्पर्क बनाये रखना, 5. वक्ता को बोलने का अवसर देना, 6. सही समय पर उनकी बातों पर प्रत्युत्तर देना, 7. स्वयं के और वक्ता के शारीरिक हाव-भाव के प्रति जागरूक रहना, 8. एकाग्रता को भंग न होने देना। व्यग्रता व चंचलता से बचना।

14.5.3 वक्ता को प्रोत्साहन

अच्छे श्रोता का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता है वक्ता को अपनी बात कहने का पूरा मौका देना। उसे पूरी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करना। प्रोत्साहन एवं अनुवर्तन के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का समावेश किया जा सकता है।

- दूसरे व्यक्ति की विशेषताओं का उल्लेख करना।
- व्यक्ति को अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिए आमंत्रित करना।
- मौन रहकर दूसरे को बोलने का समय देना।
- मुद्रा एवं हाव-भाव द्वारा बातों में भागीदारी दर्शाना।
- बीच में उसके प्रोत्साहन के लिए 'हां', 'ठीक है', 'अच्छा' आदि शब्दों का प्रयोग करना।
- संक्षिप्त बातों को दोहराना।

14.5.4 मौन

श्रोता द्वारा सुनते समय मौन रखने से वक्ता को बोलने, सोचने एवं अपनी बात को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का समय मिल जाता है। यह अच्छी श्रवण योग्यता का एक सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। चुप रहने से श्रोता को भी वक्ता की बात को ध्यानपूर्वक सुनने, उस पर चिंतन-मनन करने एवं समझने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है।

मौन के साथ श्रोता द्वारा अधिक जानकारी के लिए किये जाने वाले खुले प्रश्न वक्ता को अपनी पूरी बात कहने के लिए सहायक होते हैं। इससे वक्ता को अपनी भावना, अनुभूति व चिंतन रखने का पूरा अवकाश व अवसर मिल जाता है? उदाहरण के लिए क्या हुआ? आप कैसे अनुभव करते हैं? आदि प्रश्न पूरी बात को अभिव्यक्त कराने में सहायक होते हैं। दूसरी ओर 'हां' या 'ना' उत्तर वाले प्रश्न पूरी बात नहीं कहलवा सकते हैं। जैसे—क्या आप अप्रसन्न हैं? क्या वह कार्य नहीं किया? आदि प्रश्नों के उत्तर 'हां' या 'ना' के जवाब के साथ समाप्त हो जाते हैं। इससे वक्ता अपनी पूरी बात न कहकर वह किसी विशेष मुद्दे पर केन्द्रित हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.5.5 समझ एवं अभिव्यक्ति

वक्ता को बोलने का आमंत्रण, उसको प्रोत्साहन एवं मौन श्रवणकला की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएं हैं। इसके अतिरिक्त वक्ता यह भी जानना चाहता है कि श्रोता को उसकी बात समझ में आ रही है या नहीं? अर्थात् वक्ता यह भी चाहता है कि उसकी बात श्रोता के समझने योग्य होनी चाहिए। श्रोता वक्ता की बात को समझकर चार प्रकार से उसे अभिव्यक्त कर सकता है।

1. वक्ता की बात को ध्यान से सुनकर उसके सारांश को संक्षिप्त में प्रस्तुत करना।
2. वक्ता की भावना को अभिव्यक्त करना। जैसे—आपको इस घटना से बहुत दु:ख हुआ। आदि
3. वक्ता की समस्या और कारण को उसी के शब्दों में पुनरावर्तन करना।
   जैसे—तुम ऐसा ..... अनुभव करते हो क्योंकि ..... ।
4. वक्ता की मुख्य-मुख्य बातों को क्रमश: दोहरा देना।

उपरोक्त दक्षताएं श्रवण योग्यता के साथ-साथ समझने की शक्ति को भी विकसित करती है। इससे सशक्त अभिव्यक्ति कौशल का विकास होगा।

14.5.6 ध्यानपूर्वक सुनने की विशेष बातें (Salient features of emphatic hearing)

किसी बात को ध्यानपूर्वक सुनने के लिए कुछ मार्गदर्शन जो क्लिनिकीय मनोविज्ञान तथा साइकियेट्री से प्राप्त हुए हैं, इस प्रकार हैं—

1. आप स्वयं बोलना बंद रखिये तथा वक्ता को शांति पूर्वक बोलने दीजिये। यह जानते हुए भी, कि वह अनर्गल वार्तालाप कर रहा है, सुनते रहिये ऐसा प्रकट कीजिये कि आप उचित ध्यान दे रहे हैं बीच-बीच में 'हूं-हां' करते रहिये या 'I see' आदि शब्द बोलिये।

2. व्यक्ति जो भावनाएं, हावभाव, मुखमुद्रा प्रदर्शित कर रहा है उसे देखते रहिये। यदि वह कहीं कठिनाई अनुभव करता है (अपनी बात कहने में), तो उसे सहायता करिये।

3. वक्ता की भावनाओं को अपने शब्दों में व्यक्त करिये जिससे पता लगे कि जो आप समझे हैं, वही बात वह प्रकट कर रहा है। कुछ टिप्पणी इस प्रकार दीजिए कि आप वक्ता को अधिक आश्वस्त कर सकें किंतु अपनी बात थोपने का प्रयास मत करिये।

4. बातचीत को संगठन के नियम एवं नियमावली से पृथक रखिये, अपनी बात में अधिकार का पुट मत आने दीजिये तथा स्वतंत्र विचार विनिमय को प्रोत्साहित करिये।

5. ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करें जिससे बातचीत में व्यवधान उत्पन्न हो जैसे, 'जरा रुकिये', 'थोड़े आंकड़ों पर दृष्टि डाल लें' या 'क्या आप सिद्ध कर सकते हैं?'

6. जहां व्यक्ति थोड़ी-सी जानकारी देता है किंतु आप अधिक जानना चाहते हैं तो उस बात की मात्र पुनरावृत्ति कर दीजिये जिससे कि वह पूरी बात बता दे।

7. कुछ बिन्दु यदि छूट गये हैं या छोड़ दिये गये हैं तो उनकी ओर ध्यानाकर्षित कर दीजिये।

8. आगन्तुक यदि आपके विचार जानने के लिए ही उपस्थित हुआ है तो ईमानदारी से आप उसे अपनी बात बतलाइये किंतु यदि आप श्रोता की स्थिति में रहना चाहते हैं तो अपना वक्तव्य सीमित रखिये।

9. अन्य व्यक्ति को सुनते समय भावुक मत बनिये।

14.5.7 श्रोता के रूप में प्रशिक्षक के गुण

किसी समय श्रोता बनने के लिए काफी समझबूझ की आवश्यकता होती है। हम किसी व्यक्ति की भावनाओं को उस समय तक नहीं समझ सकते जब तक उसे सुनें नहीं और उसे सही ढंग से सुनने के लिए उसके व्यक्तित्व का सम्मान करना हमें आना चाहिये तथा हमें यह भी समझना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपना अलग व्यक्तित्व रखता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक श्रोता के रूप में प्रशिक्षक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

1. पर्याप्त समय (समस्या के अनुरूप) देना,

2. वक्ता की विशेषताओं और विशिष्ट गुणों को मान्यता देना,

3. व्यक्तित्व अनुशासन—अक्सर श्रोता भावनाओं में बह जाते हैं। किसी न किसी रूप में अपनी भावना अभिव्यक्त कर देते हैं, यह उचित नहीं है।

4. उदासीन रुख अपनाना।

बातचीत कम चलते रहने तक हां-हूं करते रहना अच्छा गुण कहा जा सकता है। नेतृत्व की सफलता इसी बात में है कि वह सभी को समान रूप से सद्भाव की अभिव्यक्ति करते हुए सुने।

व्यक्ति श्रवण के दौरान वक्ता की बात को समझने की क्षमता को कुछ सावधानी रखकर बढ़ा सकता है—

- अपनी समझ को दूसरों के विचारों पर हावी न होने दें।
- वक्ता की बात को सुनते समय उसकी भावना पर ध्यान केन्द्रित करके उसे समझने का प्रयत्न करें।
- वक्ता की भावना के अनुरूप अपनी आवाज व लय को बनाएं।
- वक्ता को सुनकर ठोस बात रखें, हल्की बातों से बचें।
- वक्ता के प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास न करें बल्कि उससे निहित भावना पर विचार करें।
- वक्ता को यह कभी न कहें कि मैं तुम्हें व तुम्हारी भावना को अच्छी तरह से जानता हूं।

बोध प्रश्न 1:

---

1. सहयोगात्मक संप्रेषण क्या है?
2. अभिव्यक्ति की बाधाओं को लिखें?
3. समझ एवं अभिव्यक्ति का क्या संबंध है?

14.6 सार्वजनिक भाषण में शारीरिक स्थिति

जब वक्ता की कथनी और करनी में अन्तर होता है तब श्रोता वक्ता की शारीरिक अभिव्यक्ति व हाव-भाव पर अधिक निर्भर रहता है।

उस समय शारीरिक अभिव्यक्ति निर्णायक सिद्ध होती है। वह वक्ता के कथन और हाव-भाव में विसंगति का स्पष्ट संकेत होती है। व्यक्ति की मुद्रा, उसका चेहरा, हाव-भाव आदि निरन्तर संदेश प्रसारित करते रहते हैं। अत: यह कहावत बन गई है कि व्यक्ति कोई बात छुपाना चाहता है तो भी उसका चेहरा चुगली खा जाता है। व्यक्ति के हाव-भाव उसकी कथनी के साथ सामंजस्य एवं संगति रखते हैं तो उसकी कथनी में शक्ति और विश्वसनीयता आ जाती है अन्यथा व्यक्ति की बात को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। अत: अच्छे वक्ता अपने वक्तव्य के साथ-साथ शारीरिक हाव-भाव और मुख-मुद्रा पर भी सलक्ष्य ध्यान देकर अपनी वक्तृत्व कला को सशक्त बनाने का प्रयत्न करते हैं।

कुछ विशेष बिन्दुओं पर ध्यान देकर वक्ता अपने कथन और हाव-भाव की विसंगति से बच सकता है। अत: अभिव्यक्ति के समय शरीर व आकृति का निम्नानुसार ध्यान दें—

भाषण देते समय शरीर व आकृति का निम्नानुसार ध्यान दें—

मुद्रा—विश्राम की आरामदायक स्थिति में रखें।

हाथ—प्रभावी संकेत का माध्यम बनाएं।

मुंह—हमेशा प्रफुल्लित रखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आंख—श्रोताओं से मिलाप बनाए रखें।

वस्त्र—सामान्य वस्त्र पहनें।

स्थिति—खड़े होने में आगे की ओर झुकाव रखें।

14.6.1 मुद्रा (भाव-भंगिमा)

दोनों पैरों के बीच कुछ इंचों का अन्तर रखते हुए पूरी तरह संतुलित होकर खड़े हों और एक पैर दूसरे से थोड़ा-सा आगे रहे। जब मंच से बोलने को पुकारा जाये, संतुलित चाल से मंच तक जायें, फिर स्वाभाविक ढंग से खड़े हों, श्रोता जब तक करतल ध्वनि (तालियां बजाना) बन्द न कर दें तब तक रुकें। अपने श्रोता वर्ग को निहार लें और श्रोताओं को भी आपको निहार लेने का पूरा अवसर दें। भाषण के दौरान पैरों की थोड़ी हरकत तो की जा सकती है पर अधिक हरकत होने पर श्रोताओं का ध्यान भंग होता है।

14.6.2 अभिवादन

प्रत्येक वक्ता को सही अभिवादन के साथ भाषण प्रारम्भ करना चाहिये। साधारणतया यह होगा—अध्यक्ष महोदय, देवियों और सज्जनों। इस अभिवादन में केवल पांच शब्द हैं परन्तु भाषण देने वाले व्यक्ति की अभिव्यक्ति और तरीके से श्रोताओं पर शब्दातीत (शब्दों के अर्थ के परे) असर पड़ता है। स्पष्ट रूप से कहा गया—अध्यक्ष महोदय (विराम 1, 2, 3), देवियों और सज्जनों (विराम 1, 2, 3) से भाषण प्रभावी प्रारम्भ होता है।

जब कोई सम्मानित अतिथि उपस्थित हो, उसे अभिवादन में नाम सहित सम्मिलित करना चाहिये (यदि वह व्यक्तिगत हैसियत से ही वहां उपस्थित हो), उसका नाम और पद (यदि वह सरकार या किसी संस्थान के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हो)। ऐसी स्थिति में अभिवादन होगा—अध्यक्ष महोदय, मि. एक्स (यदि निजी हैसियत से हो), देवियों और सज्जनों या फिर अध्यक्ष महोदय मि. व्हाई (यदि आधिकारिक हैसियत से हो), देवियों और सज्जनों।

14.6.3 हाथ

भुजाओं और हाथों की स्वाभाविक स्थिति बाजू में लटके रहने की ही होगी। हाथों को जेबों से बाहर रखें। यदि हाथ बाजू में रहेंगे तो उनका प्रयोग आसान होगा। सिक्कों, चाबियों आदि से न खेलें, इससे आपके भाषण के प्रति श्रोताओं का ध्यान भंग होता है। दूसरे ध्यान बटाने वाले हाव-भाव हैं—हाथ मारना, सिर खुजलाना, चश्मा उतारना व फिर पहनना या नोट्स को उलटना-पलटना।

हाथ-भाव दो प्रकार के होते हैं—

1. स्पष्टीकरण के लिए—आकार, संख्या, स्थान या भाषण में आने वाले अन्य भौतिक आयाम हाव-भाव द्वारा व्यक्त होते हैं। उदाहरण—एक ओर पहाड़ था और नीचे थी खूबसूरत झील। मैंने पहले कभी नहीं देखी थी।

2. बात पर जोर देने के लिए—ये भाव शब्दों के प्रति आपकी भावना व्यक्त करेंगे। आपका मूड और आपकी भावना मुट्ठी बांधने और खोलने से व्यक्त हो सकती है।

14.6.4 दृष्टि सम्पर्क

श्रोताओं को देखें और उन्हें ही अपनी बात कहें, उनकी ओर नहीं। अपनी नजर किसी के जूतों या छत पर न टिकायें, खिड़की के बाहर भी न निहारें, किसी एक व्यक्ति को न घूरें, सभी को भाषण के दौरान साथ लेकर चलें। कभी-कभी मुस्कराना न भूलें ताकि आप इतने दु:खी (बीमार) न लगें जितने आप स्वयं को भले अनुभव कर रहे हों।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.6.5 पोशाक

ध्यान बंटाने वाले कपड़े न पहनें। यदि आप साफ-सुथरे कपड़े पहनें और बाल संवारे हुए हैं तो आपको संतुलन और आत्मविश्वास बनाये रखने में सहायता मिलेगी। पेन या पेन्सिल को सीने पर लगी जेब से बाहर न निकाले रखें। लम्बे नोट्स या कागज अपने साथ न रखें, उन्हें जेबों में भरे हुए भी न दिखने दें।

14.6.6 आवाज पर नियंत्रण

सार्वजनिक वक्ता के नाते आपकी आवाज आपके उपकरणों में से सर्वाधिक प्रभावी औजार है। यदि आप इसे प्रभावी ढंग से उपयोग में न लायें तो इसका परिणाम हानिकारक भी हो सकता है। अपनी आवाज को इस प्रकार नियंत्रित करें कि सबसे पीछे की सीटों पर बैठे लोग भी आपको बिना कठिनाई सुन सकें। भाषण के दौरान आवाज में विविधता (उतार-चढ़ाव) भी लायें। यह उतार-चढ़ाव महत्त्वपूर्ण बात पर जोर देने व अनावश्यक को दबाने के लिए हो।

14.6.7 बल देने का महत्त्व

बल देकर आप अपने भाषण को प्रभावी बना सकते हैं और आपको अपने मुख्य बिन्दु श्रोताओं तक पहुंचाने में सहायता मिल सकती है। निम्नलिखित वाक्यों में रेखांकित शब्दों पर जोर देकर उच्चारण करें और अन्तर नोट करें—

1. **हमें** तो यह अवश्य करना चाहिये—दूसरे नहीं करेंगे।
2. हमें तो यह **अवश्य** करना चाहिये—यह आवश्यक है।
3. हमें तो यह अवश्य **करना** चाहिये—दूसरे चाहे न करें।
4. हमें तो **यह** अवश्य करना चाहिये—दूसरे करें या न करें।

निम्नलिखित गद्य का अभ्यास करें और देखें कि विरामों का प्रयोग किस प्रकार किया गया है और किस प्रकार श्रोताओं पर पड़ने वाले प्रभावों में वृद्धि होती है।

वह मर गयी। कोई भी नींद इतनी सुन्दर और शांत नहीं, पीड़ा के लेशमात्र से मुक्त, देखने में सुकोमल। हां, वह मर गयी।

14.7 भाषण की तैयारी के महत्त्वपूर्ण मुद्दे

भाषण की तैयारी करते समय निम्नांकित सूत्रों पर विशेष ध्यान दें—

1. विषय के अनुसार विचारों को पूर्ण रूप से लिखें।
2. उन्हें क्रमानुसार करें।
3. भाषण को रटें नहीं।
4. पूर्वाभ्यास अवश्य करें, उच्च स्वर में बोलें।
5. 3X5 इंच के कार्ड पर बिन्दुओं को लिखकर हाथ में रख सकते हैं।
6. श्रोता समुदाय पर नजर जमाए रखें।
7. भाषण का प्रारम्भ व अन्त सौम्यता व विशिष्टता से करें।

14.8 प्रभावशाली अध्ययन क्षमता

प्रभावशाली अभिव्यक्ति का एक सशक्त आधार होता है—व्यक्ति की अध्ययनशीलता। अध्ययन करना एक जटिल प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत अनेक सूक्ष्म विधाओं का समावेश होता है, जैसे—शब्दों की पहचान, अर्थ निकालना, तात्पर्य को ग्रहण करना। इसका तात्पर्य यह है कि जो पढ़ा गया है उसे अपने पूर्व ज्ञान से जोड़ना एवं जो उपयोगी है उसका चयन करके स्मृति कोष्ठकों में धारण करना। इन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सब प्रक्रियाओं को पढ़ने के समय अपनाना अपेक्षित है जिससे समय पर उनका पुनः स्मरण एवं सम्प्रेषण किया जा सके। जब भी जरूरत हो उसका उपयोग किया जा सके।

14.8.1 अध्ययन सामग्री का चयन

अत्यन्त व्यस्त व्यक्तियों पर अध्ययन सामग्री का बहुत दबाव होता है। उनके पास प्रतिदिन प्रति सप्ताह नई-नई सामग्रियों का ढेर लग जाता है। इस समस्या से निपटने के लिए उन्हें अत्यन्त कठोर अनुशासन अपनाना होता है। इसका एक तरीका है लिखित सामग्री का वर्गीकरण करना, जैसे अत्यन्त आवश्यक, उपयोगी, अनुपयोगी एवं व्यर्थ। जैसे ही सामग्री प्राप्त हो उसका वर्गीकरण कर लिया जाना चाहिए एवं नियमित रूप से पठित सामग्री को हटाते रहना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए वर्गीकरण को इसके अतिरिक्त और भी अनेक तरीके हो सकते हैं, जैसे—सरल, कठिन, अत्यन्त कठिन, विश्लेषणीय, स्मरणीय स्थलों का चयन करना आदि-आदि। कठिन सामग्री को अत्यन्त ध्यान से पढ़ना आवश्यक होता है। सरल सामग्री को विशेष समय लगाने की आवश्यकता नहीं होती है। सहज ही बोधगम्य होते हैं।

14.8.2 अध्ययन का प्रयोजन

वर्गीकरण के अतिरिक्त एक ओर महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। वह है अध्ययन का प्रयोजन। अधिकांश व्यक्ति बिना प्रयोजन ही अनेक सामग्री पढ़ते रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अध्ययन की कोई विशेष निष्पत्ति नहीं आती है।

किसी भी अध्ययन से सार तत्त्व का ग्रहण, धारण और स्मरण ही प्रभावशाली होता है जब उसके लिए पूर्व मानसिक तैयारी और तत्परता होती है। मानसिक तत्परता से रुचि बढ़ जाती है एवं पढ़ने से उनका समाधान व तुष्टि हो जाती है। मूलभूत प्रश्न यह है कि पढ़कर हम किसका उत्तर पाना चाहते हैं।

14.8.3 पठन गति

व्यक्ति अच्छा अध्येता हो सकता है किंतु सामान्यतया उसकी पठन गति मंद ही होती है। पठन गति को तीव्र करने के लिए—1. पहले अपने प्रयोजन को स्पष्ट कर लें, 2. मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान दें, 3. केन्द्रीय एवं विशिष्ट शब्दों का मनन करें।

इसके अतिरिक्त प्रतिदिन 15 मिनट सरल साहित्य जैसे कथात्मक अभ्यास से कठिन साहित्य लेख तक का अभ्यास करें।

1. केवल एक शब्द पर ध्यान न देकर शब्द समूह पर अपने ध्यान को केन्द्रित करें।

2. अध्ययन करते समय पेन्सिल के सहारे पढ़ें। समझ के साथ धीरे-धीरे पेन्सिल की गति को बढ़ाते हुए अध्ययन की गति को बढ़ायें।

3. पन्द्रह मिनट के अभ्यास में धीरे-धीरे पूरी लाइन पर ध्यान केन्द्रित करते हुए समझ व ग्रहण का विकास करें।

14.8.4 अध्ययन दक्षताएं

अध्ययन के भिन्न-भिन्न प्रयोजन के अनुरूप ही पढ़ने की भी विभिन्न विधियां होती हैं। ''उपस्थिति सामग्री में क्या-क्या पढ़ना है?'' इसको निर्धारित करने के लिए मोटे तौर पर सामग्री का ऊपरी अवलोकन पर्याप्त होता है। सरल सामग्री का अध्ययन सहजता से एवं शीघ्रता से किया जा सकता है। कठिन व तकनीकी सामग्री का अध्ययन विशेष ध्यान देने से होता है और शब्दशः अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक सामग्री का अध्ययन करना आवश्यक नहीं है। वही सामग्री पठनीय है जो अपने प्रयोजन से सम्बंधित हो। विशेषज्ञों ने अध्ययन की एक प्रणाली को विकसित भी किया है जो अध्ययन में सहायक व लाभदायक हो सकती है।

सर्वावलोकन—समग्र सामग्री का अवलोकन करें। शीर्षक, अग्र भाग व पृष्ठ भाग की सामग्री का अवलोकन करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उसकी विषय-वस्तु का अध्ययन करें।

अध्याय शीर्षक, तालिकाएं, उपशीर्षक, ग्राफ आदि का अवलोकन करें।

पठनीयता का निर्णय करें।

पूर्वावलोकन

पुस्तक के सारांश या निष्कर्ष का अध्ययन करें।

अध्याय सारांश का अध्ययन करें।

अध्याय के प्रारम्भ एवं अन्त को पढ़ें।

मुख्य बिन्दु व केन्द्रीय तत्त्वों को पकड़ें।

अन्तरावलोकन

अध्याय के अपठित एवं अवशिष्ट स्थलों को पढ़ें।

कठिन अंशों को छोड़ दें।

नोट की तैयारी करें। कठिन, महत्त्वपूर्ण व अत्यावश्यक अंशों को कच्ची पेन्सिल से चिन्हित करें।

पुनरावलोकन

महत्त्वपूर्ण अंशों को पुनः ध्यान से देखें।

नोट्स बनायें।

अवशिष्ट अंशों को ध्यान से पढ़ें।

नोट्स को अध्ययन के साथ अपनी समझ की दृष्टि से मिलान करें।

अधिकांश व्यक्ति अध्ययन का प्रारम्भ पुस्तक के प्रथम पृष्ठ से करते हैं एवं उसका अन्त अन्तिम पृष्ठ तक पढ़कर करते हैं। इस विधि से पुस्तक में से बहुत कम ग्रहण हो पाता है। बताई गई अध्ययन विधि के अध्ययन करने से कठिन से कठिन सामग्री में से ग्रहण, समझ, धारण व स्मरण की संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है। व्यक्ति को ही निर्णय करना होता है कि क्या याद रखने योग्य है। अध्ययन दक्षता जन्मदाता प्रवृत्त नहीं है, यह मात्र अभ्यास जन्य दक्षता है। इसका विकास नियमित अभ्यास द्वारा किया जा सकता है।

14.9 सार्वजनिक भाषण कला

जनता में अपनी बात रखने के अनेक रूप हो सकते हैं, जैसे—भाषण, व्याख्यान, वाद-विवाद आदि। प्रत्येक वक्तव्य की अपनी अलग-अलग तकनीक होती हैं किंतु कुछ आधारभूत तथ्य सबके लिए समान होते हैं। वक्तव्य का उपयोग अलग-अलग दृष्टि से किया जाता है, जैसे—मनोरंजन करना, अपने विचारों से परिचित कराना, अपने कार्यक्रम को क्रियान्वित करवाना।

14.9.1 वक्तव्य की तैयारी

सामान्यतः वक्तव्य का एक मुख्य प्रयोजन होता है और अनेक छोटे-छोटे प्रयोजन भी होते हैं। वक्तव्य पूर्व तैयारी के साथ भी दिया जाता है एवं कभी-कभी तत्काल भी दिया जाता है। वही वक्तव्य अच्छा होता है जिसका प्रभाव दूसरे पर पड़ता है, दूसरों की रुचि को बनाये रखा जाता है एवं दूसरों की अपेक्षाओं पर भी ध्यान दिया जाता है। एक अच्छे वक्तव्य को तैयार करने में निम्न बिन्दु सहायक हो सकते हैं—

श्रोता और स्थान के अनुरूप विषय का चयन करना।

अपने वक्तव्य को एक प्रयोजन तक सीमित रखना जो अपने ज्ञान एवं अनुभव के लिए उपयुक्त हो।

विषय को पुष्ट करने के लिए तथ्यों की खोज करना।

विषय की रूपरेखा तैयार करना जो अपने वक्तव्य का सारांश रूप में हो।

संकलित सामग्री का प्रभावी रूप में संगठित करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वक्तव्य को अंतिम रूप देना जो रूचिपूर्ण एवं विविधता लिए हो तथा केन्द्रीय तत्व की पुष्टि करने वाला हो।

अंतिम अवस्था है—वक्तृत्व को प्रभावी ढंग से लोगों के सामने रखना जो श्रोता के लिए सहज बोधगम्य हो।

14.9.2 श्रोता की पहचान

सभी वक्तव्य में श्रोता को पहचानना अत्यन्त आवश्यक होता है। वे क्या चाहते हैं? क्या वे सूचना चाहते हैं या मनोरंजन चाहते हैं? वे क्या जानते हैं? वे क्या नया जानना चाहते हैं? श्रोता की अपनी मान्यता या धारणा क्या है? आदि बातों की जानकारी होने से वक्ता अपनी बात को श्रोता तक अच्छे ढंग से पहुंचा सकता है।

14.9.3 सामग्री का संगठन

प्रदत्त वक्तव्य श्रोता को सहज रूप से बोधगम्य हो। अत: सामग्री को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। सामान्यतया भाषण का प्रारम्भ विषय परिचय से किया जाता है। मध्य में मूल बिन्दु का स्पर्श एवं अन्त में सारांश की प्रस्तुति की जाती है। इसके अतिरिक्त सामग्री को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने के लिए और भी अनेक तरीके हो सकते हैं—

1. विषयानुसार, 2. ऐतिहासिक रूप से, 3. स्थान के अनुसार, 4. तर्क के अनुसार, 5. आक्रामक तेवर के साथ, 6. समाधान परक, 7. भावात्मक, 8. मानवीयकरण।

14.9.3.1 विषयानुसार

विषयानुसार सामग्री को व्यवस्थित करना वहां उपयोगी होता है जहां विभिन्न सूचनाओं को सम्प्रेषित करना होता है। ऐसे वक्तव्यों में प्रत्येक विषय को छूते हुए उसे अगल विषय से जोड़ दिया जाता है।

14.9.3.2 इतिहास/कालक्रम से

जहां ऐतिहासिक वक्तव्य देना होता है वहां घटनाओं को कालक्रम से क्रमिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रशिक्षण के काल में इस प्रकार के वक्तव्य की विशेष उपयोगिता होती है।

14.9.3.3 स्थान के अनुसार

संग्रहालयों में वक्तव्य स्थान के क्रम से दिये जाते हैं। भौगोलिक स्थिति के अनुरूप क्रमश: वक्तव्य को ढाला जाता है।

14.9.3.4 कार्यकारण के अनुरूप

जहां वक्तव्य को तर्कयुक्त ठोस प्रमाणों के साथ प्रस्तुत करने की आवश्यकता हो वहां प्रत्येक बिन्दु को ठोस प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इसमें तर्क के नियमों का पूरा उपयोग किया जाता है।

14.9.4 रोचकता

वह वक्तव्य अधिक याद रह पाता है और प्रभावी बनता है जिसमें विचारों को मानवीय पहलुओं के साथ प्रस्तुत किया जाता है। मानवीयकरण का तात्पर्य है अपने विचारों को दृष्टान्त और उदाहरणों द्वारा समझाना। घटनाओं द्वारा पुष्ट करना। अपने जीवन्त उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत करना। अपने विचारों को पुष्ट करने के और भी अनेक तरीके हो सकते हैं—

1. अनुसंधानपूर्वक प्रमाणों को प्रस्तुत करना।
2. तथ्य और आंकड़ों को प्रस्तुत करना।
3. चित्रों का उपयोग करनाा।
4. महापुरुषों के वाक्यों का समावेश करना।
5. विशेषज्ञों की टिप्पणियों को जोड़ना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. तुलना करना।

7. दृश्य-श्रव्य साधनों का उपयोग करना।

श्रोताओं का ध्यान खींचने के लिए विषय-परिचय की आवश्यकता होती है। इसके माध्यम से आने वाले विषय एवं उसकी पृष्ठभूमि से परिचित कराया जाता है। वक्ता इस कार्य को अनेक तरीकों से विवादास्पद मुद्दे उठाकर श्रोताओं के लिए चुनौती प्रस्तुत कर, महापुरुषों के शक्तिशाली व सामयिक वाक्यों को प्रस्तुत कर या चुटकला कहकर श्रोताओं का ध्यान बहुत अच्छी तरह से खींच सकता है।

14.9.5 प्रस्तुत

लिखकर तैयार वक्तव्य को प्रस्तुत करने से पूरी बात तो कह दी जाती है किंतु वह बेजान और उबाऊ हो जाती है। वक्तव्य तो जीवन्त और विविध होना चाहिए। सामान्यतया श्रोता की एकाग्रता बहुत थोड़ी होती है। वक्तव्य के प्रारम्भ और अंतिम ही उन्हें याद रहने की संभावना होती है। अत: यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि वक्तव्य के प्रारम्भिक और अंतिम चरण में वक्तव्य का सार या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संदेश श्रोता तक पहुंचना चाहिए वही पुनरावर्तित होना चाहिए।

वक्तव्य को गति देने के लिए वक्ता अपने पास नोट्स एवं वाक्यांश रख सकता है। उसे आवाज, लय और गति में प्रसंगानुसार उतार-चढ़ाव बनाना चाहिए जिससे श्रोता जागरूक रह सके। सामान्यतया व्यक्ति जो सुनता है उसका अधिकांश अंश वह भूल जाता है अत: वर्तमान युग में दृश्य साधनों का अधिकतम उपयोग करना लाभदायक होता है। इससे याद रहने की संभावना बढ़ती है।

मुख्य बिन्दुओं पर बल देने के लिए विराम लेना, आवाज को धीमा करना और हाव-भाव व गति को कम करना उपयोगी होता है। यदि वक्ता वास्तव में अपने वक्तव्य को स्मरणीय बनाना चाहता है तो उसके मुख्य बिन्दुओं को (या पूर्ण रूप को) लिखित रूप में श्रोता तक पहुंचाना चाहिए।

अच्छे वक्तव्य के लिए यह आवश्यक है कि वक्ता अपने आप में स्पष्ट बने। स्वयं अपने आप को पूछें—मैं क्या कहना चाहता हूं? मेरा मुख्य संदेश क्या है? कौन-से वाक्य मेरे संदेश को अच्छी तरह से पहुंचान वाले हैं? मैं क्या पाना चाहता हूं? मैं वक्तव्य क्यों दे रहा हूं?

14.10 अच्छी अभिव्यक्ति के बिन्दु—संक्षेप में

1. स्वच्छ पोषाक में रहें, भाषण-मंच तक ठाठ से चलकर पहुंचे और सीधे खड़े हों। आपकी आंखों और भावों में आत्मविश्वास नजर आये।

2. आत्मीय, सद्भावपूर्ण मुस्कराहट से प्रारम्भ करें।

3. सभी व्यक्तियों से सीधी बात करें। उनके सिरों के ऊपर से, खिड़की के बाहर, माइक्रोफोन की तरफ या पूरे समय एक ही व्यक्ति की ओर न देखें।

4. इतनी ऊंची आवाज में बोलें की सब सुन सकें।

5. आवाज में उतार-चढ़ाव और रात्रि में समय-समय पर विविधता लायें।

6. अपने भाषण को रटें नहीं। हो सकता है आप भूल जायें, इसलिए रूपरेखा को पूरी तरह समझ लें और उससे अभ्यस्त हो जाएं। यदि विचार का केन्द्रीय शब्द छूट जाए तो दूर जाने दें क्योंकि आपके अलावा इस गलती को कोई नहीं ताड़ सकता।

7. श्रोताओं को भाषण पढ़कर कभी न सुनायें। कभी-कभार कोई अंश या उद्धरण पढ़ना पड़ सकता है पर पूरा भाषण कभी नहीं।

8. वार्तालाप में विचार एकत्र करें, शब्द नहीं।

9. मंच पर जाने के भय से ग्रसित न हों। यह सामान्य है। दिये गये परामर्श का पालन करें तो वह आत्मविश्वास जो यह जानने से मिलता है कि आप कुछ महत्त्वपूर्ण बात कहने जा रहे हैं, आप में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संचारित होगा। अपने विषय को समझें और ऐसी बात कहें जो श्रोता सुनना पसन्द करें। याद रखें मंच का भय देखने से ज्यादा अनुभव करने में बुरा होता है।

10. तत्पर नजर आएं, खुश रहें। आत्मविश्वास रखें, उत्साह से बोलें।

14.10.1 अच्छे भाषण के लिए ऐसा न करें

1. विश्वास न खोए।
2. भाषण को रटने का प्रयास न करें।
3. बिन्दुओं को दोहराएं नहीं।
4. अनावश्यक तथ्यों का प्रयोग न करें।
5. अधिक भावुकता नहीं दिखाएं।
6. बात को बढ़ा-बढ़ा कर न कहें।
7. भाषा अनुचित या व्यंगात्मक न हों।
8. मंच पर जाने से न डरें।
9. भाषण को पढ़कर नहीं सुनायें।
10. विषय से दूर न जाएं।
11. श्रोताओं का समय खराब न करें।
12. अनुसूचित हल-चल न करें।
13. आवाज को अप्रिय एवं अस्पष्ट न बनाएं।
14. सुस्त या मंद न हों।
15. सन्देह न करें।

बोध प्रश्न 2:

1. अभिव्यक्ति में अभिवादन का क्या महत्व है?
2. पूर्वालोकन से आप क्या समझते है?
3. भाषण कला में रोचकता का होना क्यों जरूरी है?

14.11 सारांश

1. स्पष्ट उद्देश्य सशक्त अभिव्यक्ति का प्रथम चरण है। अभिव्यक्ति के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं, जैसे—मार्ग दर्शन करना, सूचना संप्रेषित करना, किसी के दृष्टिकोण या व्यवहार को बदलना, किसी को तनाव-मुक्त करना, स्वयं की शक्तियों से परिचित कराना, सहयोग करना, आदि। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रशिक्षक को निर्देशात्मक, सूचनात्मक, चुनौतीपूर्ण, विरेचनात्मक, प्रेरणात्मक तथा सहयोगात्मक सम्प्रेषण में दक्षता प्राप्त करनी चाहिए।

सफल अभिव्यक्ति के भी अनेक चरण हैं जिन पर ध्यान देने से उद्देश्य की प्राप्ति की संभावना बहुत बढ़ जाती है, जैसे—संदेश की तैयारी, स्वयं की पूर्व तैयारी, श्रोता से सम्पर्क, श्रोता को तैयार करना, संदेश देना, श्रोता की जिज्ञासा का समाधान देना, वार्ता की समाप्ति एवं वार्ता का अनुवर्तन।

2. अभिव्यक्ति की सफलता में एक मुख्य बाधा वक्ता एवं श्रोता की आपसी समझ की कमी है। इनके अतिरिक्त अमनस्कता, नकारात्मक दृष्टिकोण, प्रयोजन या लक्ष्यहीनता, पूर्वाग्रह, आशंकाएं आदि भी वार्ता की सफलता में बाधक बनते हैं। कुछ श्रोताओं के अपने व्यक्तिगत व्यवहार भी वार्ता में बाधक बनते हैं। एक अच्छे प्रशिक्षक को इन सबकी जानकारी के साथ जागरूक रहकर उनसे निपटने की दक्षता का भी विकास करना चाहिए।

3. प्रशिक्षक को एक अच्छा श्रोता भी होना चाहिए। प्रशिक्षक का कार्य या अधिकार क्षेत्र जितना विशाल होगा उतना ही अधिक उसे सुनने की क्षमता का विकास करना होगा। श्रवण कला की चार योग्यताएं हैं—वक्ता को आदर से आमंत्रित करना, वार्ता के अन्तर्गत वक्ता को प्रोत्साहित करना, मौन रहकर सुनना एवं वक्ता की बात को समझकर संक्षेप में पुनः प्रस्तुत करना।

4. अच्छे प्रशिक्षक को मौखिक अभिव्यक्ति के साथ शारीरिक अभिव्यक्ति के प्रति भी जागरूक रहना चाहिए, जैसे—सहज एवं प्रसन्न मुख-मुद्रा, शालीन पहनावा, उत्साह, आंखों से सम्पर्क बनाना आदि।

5. सतत अध्ययन द्वारा ज्ञानवृद्धि अच्छी अभिव्यक्ति के लिए प्राण तत्त्व है। सतत अध्ययन शैली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के ज्ञान से अध्ययन सामग्री का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। सतत अध्ययन शैली का तात्पर्य है—अध्ययन सामग्री का चयन, प्रयोजन का स्पष्ट निर्धारण, पठन गति में विकास एवं अध्ययन दक्षताओं की प्राप्ति एवं उपयोग।

विशाल जनमेदिनी या लघु समूह में सशक्त वक्तृत्व के लिए कुछ बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है, जैसे—वक्तव्य की तैयारी, श्रोता की पहचान, सामग्री का संगठन, सामग्री की रोचकता एवं प्रभावी प्रस्तुति।

14.12 प्रश्नावली

I. निबन्धात्मक प्रश्न

1. सार्वजनिक भाषण कला के मुख्य बिन्दुओं पर विस्तार से प्रकाश डालें।

II. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रशिक्षक को अभिव्यक्ति की किन-किन दक्षताओं में विकास करना चाहिए?
2. प्रभावी श्रवण क्षमता का क्या तात्पर्य है एवं अधिकांश व्यक्ति सुनने की कला में दक्ष क्यों नहीं होते हैं?

III. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अभिव्यक्ति के कौन-कौन से चरण हैं?
2. किस प्रकार के सम्प्रेषण से व्यक्ति को तनाव-मुक्ति में सहायता मिलती है।
3. असह्य संदेश देने से पूर्व श्रोता को कैसे तैयार करें?
4. अभिव्यक्ति की मुख्य बाधाएं क्या-क्या हैं?
5. श्रवण कला में मौन रहने की क्या भूमिका है?
6. व्यक्ति के हाव-भाव एवं कथनी में सामंजस्य होने से श्रोता पर क्या प्रभाव पड़ता है?
7. अध्ययन क्षमता के विकास के लिए किन-किन दक्षताओं का उपयोग करना चाहिए?
8. पठन गति को तीव्र करने के लिए किसके सहारे पढ़ना चाहिए?
9. भाषण के समय वक्ता की पोशाक कैसी होनी चाहिए?
10. लिखकर तैयार वक्तव्य पढ़ने से श्रोता पर क्या-क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकते हैं?

14.13 संदर्भ ग्रंथ

1. Johan Mulligan (Ed) Personal management—Sphere book Ltd., London

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–15 निर्णय और क्रियान्विति, दिशा निर्धारण

संरचना

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 चिंतन से क्रियान्विति तक

15.2.1 क्रियान्विति की योजना

15.2.2 समीक्षा

15.3 दिशा निर्धारण

15.3.1 कल्पना शक्ति का उपयोग

15.3.2 भावी दिशा

15.3.3 दिशा निर्धारण का उदाहरण

15.3.4 मानक (मापदण्ड)

15.4 सहयोग प्राप्ति हेतु दृष्टिकोण एवं व्यवहार

15.4.1 आक्रामक दृष्टिकोण एवं तेज स्वभाव

15.4.2 नरम दृष्टिकोण एवं संकोची स्वभाव

15.4.3 परोक्ष दृष्टिकोण व व्यवहार

15.5 स्पष्ट दृष्टिकोण एवं सुदृढ व्यवहार

15.5.1 व्यक्तिगत अधिकारों का सम्मान

15.5.2 शारीरिक मुद्रा

15.6 स्पष्ट एवं सुदृढ प्रेरणा

15.6.1 निरन्तरता

15.6.2 सम्मति प्रकट करना

15.6.3 कृतज्ञता ज्ञापन

15.6.4 सुदृढ व्यवहार व अपेक्षित कार्य

15.7 सारांश

15.8 प्रश्नावली

15.9 संदर्भ ग्रंथ

15.0 प्रस्तावना

'जीवन-विज्ञान' स्वयं की शक्तियों से परिचित कराने के साथ उनकी सम्यक् अभिव्यक्ति और उपयोग के कौशल को अर्जित करने पर विशेष बल देता है। 'स्व-प्रबंधन' पत्र में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय इकाइयां उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्त्ति में सहायक होती हैं।

मनुष्य के अपने विचार ही उसकी सफलता अथवा असफलता के आधार होते हैं। जिस प्रकार मकान के लिए नींव की ईंटों का महत्त्व होता है उसी तरह मनुष्य के लिए विचारों का महत्त्व होता है। जीवन में सफलता के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने मन में अच्छे विचार रखे, अच्छी धारणाएं बनाएं, सकारात्मक सोचे तथा सफल व्यक्तियों के विचारों का अनुसरण करें। केवल अच्छे विचार रखने मात्र से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सफलता नहीं मिल सकती। इसके लिए आवश्यक है अच्छे विचारों को क्रियान्वित किया जाए। क्रियान्वयन के बिना सुविचार, चाह, उद्देश्य तथा अभिलाषाएं सब व्यर्थ है। उन विचारों अथवा उद्देश्यों के क्रियान्वयन के लिए दिशा निर्धारण, योजना बद्ध तरीके, आवश्यक संसाधन तथा सुविधाएं जुटाना भी आवश्यक है जो कि अपनी क्षमता के अनुसार जुटाए जा सकते हैं। क्रियाकलापों को समायानुसार पूर्ण करने के बाद अपना मूल्यांकन भी करना चाहिए कि उद्देश्यों को पाने में कितना सफल हो रहे हैं। यदि अपने को असफल या पूर्ण सफल नहीं पाते हैं तो परिणामों को संख्यात्मक या तुलनात्मक दृष्टि से देखें कि कितने प्रयास और करने से उद्देश्य पूरा हो सकेगा। ऐसा करके आवश्यक कार्य तथा किये गये कार्य के बीच का अन्तर स्पष्ट होगा। उसे पूरा करें। हिम्मत न हारे। अपने कार्य में दूसरों से आवश्यक सहयोग प्राप्त करने की कला भी सीखनी चाहिए। इससे सामुदायिक भावना व जिम्मेदारी के साथ कार्य को सफलता से पूरा किया जा सकता है।

15.1 उद्देश्य

1. कार्य को क्रियान्वित करने की योजना को समझ सकेंगे।
2. दिशा निर्धारण में कल्पना शक्ति के उपयोग को जान सकेंगे।
3. सहयोग प्राप्ति के बिन्दुओं को समझ सकें।
4. आक्रामक तथा नरम दृष्टिकोण के परिणामों को जान सकेंगे।
5. स्पष्ट एवं सुदृढ व्यवहार को समझ सकेंगे।
6. शाब्दिक सुदृढ़ता को जान सकेंगे
7. निर्देश देने से पूर्व की बातों को जान सकेंगे।

15.2 चिंतन से क्रियान्विति तक

किसी भी कार्य को प्रभावशाली ढंग से करने और संतोषजनक परिणाम को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को चिंतन से क्रियान्विति की दिशा मे आगे बढ़ना चाहिए। उस दिशा में प्रगति करने का अर्थ यह है कि व्यक्ति द्वारा उपलब्ध शक्ति का समुचित उपयोग करना, शक्ति को सुरक्षित रखना और जब तक कार्य पूर्ण न हो तब तक आंतरिक प्रेरणा को भी बनाये रखना है।

प्रत्येक कार्य की निष्पन्नता के लिए सुनियोजित चिंतन एवं तद्नुरूप क्रिया आवश्यक है। चिंतन और क्रिया—इन दोनों को निष्पन्न करने के लिए व्यक्तिगत दक्षता भी आवश्यक है। इससे भी बड़ी बात यह है कि दूसरे से सहयोग लेने की क्षमता को अर्जित करना। इस क्षमता के अन्तर्गत पारस्परिकता, सामुदायिक, समन्वय और नेतृत्व कौशल को अर्जित करने कि अपेक्षा होती है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि किसी भी कार्य को क्रियान्वित करने के लिए उन सभी सकारात्मक ताकतों को सक्रिय करने कि जरूरत पड़ती है जो अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक हो, इसके साथ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि बाधक तत्त्वों की ताकतों को कम से कम किया जाये। यह उपरोक्त रणनीति कार्य को प्रभावी ढंग से निष्पन्न करने के लिए बहुत सहायक सिद्ध होती है।

मुख्य रूप से कार्य को क्रियान्वित करने के लिए कार्यकर्त्ताओं को भी उनकी अपनी-अपनी भूमिकाओं में संगठित करना होता है। उदहारण के लिए जैसे नेतृत्व के लिए नेता, वित्तीय प्रबंधन के लिए कोषाध्यक्ष आदि। जिस प्रकार से बाहरी दुनिया में व्यवस्था व संगठन महत्त्वपूर्ण होते हैं। उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण अपनी आंतरिक क्षमताओं को एक दिशा में नियोजित करना है।

अपने भीतर की क्षमताओं को नियोजित करने के लिए भिन्न-भिन्न मानसिक शक्तियों को उपयोग में लाया जाता है। जैसे—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. कल्पना शक्ति—इसके द्वारा भावी दृष्टि और स्पष्ट लक्ष्य का निर्माण आसानी से किया जा सकता है।

2. सूचनाओं का संग्रह—इस क्षमता के द्वारा लक्ष्य प्राप्ति में आवश्यक सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है।

3. विश्लेषण क्षमता—इस क्षमता के द्वारा लक्ष्य को प्राप्त करने में आसानी होती है।

4. योजनाकार—इस क्षमता के द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि किस कार्य को किसे दिया जाये जो अपने-अपने अधिकृत कार्यों को क्रियान्वित कर सकें।

5. समीक्षा—इस क्षमता के द्वारा कार्य की समीक्षा की जाती है एवं आवश्यक सुझावों को क्रियान्विति के साथ जोड़ा जाता है।

पुन: उन मुख्य बिन्दुओं पर विचार करें जिनका उपयोग विचारों को क्रियान्वित करने के लिए किया जाता है। सबसे पहले विचारों के झंझाल से निकल कर किसी एक निर्णय पर पहुंचना आवश्यक है। केवल विचार करने से काम नहीं चलता, उससे आगे बढ़कर सम्बंधित आवश्यक सूचनाओं को प्राप्त करना और उन सूचनाओं का अपनी योजना में उपयोग करना होता है।

हमारी कल्पनाशक्ति भावी दृष्टि को स्पष्ट करने, निर्णय तक पहुंचने और हम क्या चाहते हैं उसको स्पष्ट करने में मदद करती हैं। इसके बाद योजना बनाने के लिए मुख्य रूप से निम्न प्रकार की सूचनाएं अपेक्षित होती हैं, जैसे—

1. किन-किन संसाधनों की आवश्यकता होगी?
2. वर्तमान में कौन-कौन से संसाधन उपलब्ध हैं?
3. हमें किसकी सहायता की जरूरत पड़ेगी?
4. वर्तमान में हमें किन-किन की सहायता मिल रही है?
5. उपलब्ध विकल्प या संभावनाएं क्या-क्या हैं?
6. प्रत्येक विकल्प के साथ क्या-क्या चुनौतियां या खतरे जुड़े हुए हैं?

इसके बाद यह निर्धारण करना आवश्यक है कि कार्य को मूर्त्तरूप कैसे दिया जाये? इस चरण में लक्ष्य को प्राप्त करने में चरणबद्ध छोटे-छोटे उपलक्ष्यों को निर्धारित कर अंतिम लक्ष्य तक पहुंचने की तैयारी की जानी चाहिए। इसके साथ यह भी चिंतन कर लेना चाहिए कि पहले किस कार्य को किया जाना चाहिए।

15.2.1 क्रियान्विति की योजना

कार्य को क्रियान्वित करने कि योजना बहुत ही स्पष्ट होनी चाहिए। यह स्पष्टत: पता होना चाहिए कि किस व्यक्ति को कौन-सा कार्य कब और कहां करना है?

योजना बनाने के परिश्रम को व्यर्थ और अनावश्यक नहीं समझना चाहिए। प्राय: हम सुनते है कि नये वर्ष के उपलक्ष में नई-नई घोषणाएं होती हैं। किंतु व्यवस्थित योजना के अभाव में वे सब धराशायी हो जाती हैं और आगे कुछ हो नहीं पाता। किसी भी घोषणा को क्रियान्विति होने के लिए और उसके परिणाम तक जाने के लिए व्यवस्थित योजना की आवश्यकता होती है।

क्रियान्विति की योजना के पश्चात् उसकी समीक्षा आवश्यक है। समीक्षा के द्वारा हम अपने अनुभवों का उपयोग कर सकते हैं। अपनी कार्यक्षमता को बढ़ा सकते हैं। हम यह निश्चित कर सकते हैं कि हमारी कौन-सी आन्तरिक क्षमता अधिक विकसित हैं? और किसे अधिक विकसित करने की आवश्यकता है?

योजना बनाने के पश्चात् हमारी यात्रा विचार से क्रियान्विती की ओर बढ़ती है, क्रियान्विति के अन्तर्गत किस कार्य को किस व्यक्ति को देना है? उस कार्य को कब, कहां और कैसे किया जाये? अंतिम निर्णय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लेने से पहले और कार्यकर्त्ताओं को काम सौंपने से पहले अपनी कल्पना शक्तियों का उपयोग करना चाहिए और यह देख लेना चाहिए कि क्या कल्पना और योजना में तारतम्यता है? यदि हम अपनी योजना और कल्पना से संतुष्ट हैं तो हमें क्रियान्विति की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए और कार्यकर्त्ताओं को कार्य सौंपना चाहिए। यदि हम योजना से संतुष्ट नहीं है तो पुन: योजना की समीक्षा करें और कल्पना के साथ ताल-मेल बिठायें।

15.2.2 समीक्षा

समीक्षा का तात्पर्य है कि जो कुछ भी किया जा रहा है उसे पीछे मुड़कर देखना और इस बात का विशेष रूप से पता लगाना कि कौन-से पक्ष अत्यंत शक्तिशाली व प्रभावपूर्ण है व परिणामदायक है? तथा कौन-से कार्य बिना किसी गति अवरोध के सहजता से चल रहे हैं? इसके साथ इस बात की भी जानकारी करना आवश्यक है कि कहां कौन-सा पक्ष कमजोर है और किस पक्ष को मजबूत करने कि आवश्यकता है? समीक्षा से हमें भावी कार्यक्रम को और अधिक अच्छे ढंग से करने तथा अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त करने में मदद मिलती है। संक्षेप में कहें तो समीक्षा के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रश्नों का समावेश होता है—

1. प्रथम दृष्टि से जो हमने परिणाम प्राप्त किये उनकी जांच करना। क्या वे वही हैं जिसको हम प्राप्त करना चाहते थे?

2. उन तथ्यों को प्रकाश में लाना जिसमें हमें विशेष रूप से सफलता मिली हो साथ ही साथ सफलता के कारणों को भी उभारना।

3. उन क्षेत्रों को पहचानना जिसमें विशेष कठिनाइयां आ रही हों और उन कठिनाइयों को दूर करने की योजना बनाना और उसे दूर करने का प्रयास करना।

समीक्षा की शक्ति के सक्रिय होने से यह अत्यन्त समस्त शक्तियों से अधिक कारगर व उपयोगी सिद्ध होती है किंतु इसके दौरान कुछ गलत दिशाएं भी बन सकती हैं। उसको रोकना बहुत आवश्यक है। जैसे—प्राय: व्यक्ति यह मानकर चलता है कि मैंने जो किया है उसको मैं अच्छी तरह से जानता हूं। वह इस प्रकार से समीक्षा से बचना चाहता है। प्राय: व्यक्ति अपनी सफलता पर अधिक ध्यान केन्द्रित करता है और असफलता के बहाने ढूंढ लेता है। कुछ लोग ऐसे भी होते है जो केवल अपनी असफलता को ही देखते रहते हैं और अवसाद ग्रस्त हो जाते हैं और वे अपने संपूर्ण कार्यकर्त्ताओं को भी निराशा की ओर धकेल देते हैं। ऐसे लोग अपनी अच्छाइयों को देखने, कार्य की सफलता का मूल्यांकन करने और भविष्य के शुभ निर्णय करने में असफल रहते हैं। अनेक बार व्यक्ति समीक्षा के दौरान सिद्धांतों की चर्चा करता है, भावी कल्पना बनाता है, सामान्य बातों की चर्चा कर लेता है लेकिन इस बात को नजर अंदाज कर देता है कि वास्तव में क्या घटित हुआ है? व उसके क्या परिणाम रहे हैं? समीक्षा का मुख्य कार्य ही यह हैं कि जो कुछ हो रहा है उसका विस्तार से अंकन करना एवं उसके वास्तविक परिणामों का पता लगाना।

15.3 दिशा निर्धारण

कार्य निष्पत्ति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यक्ति प्रारंभ से ही अपने आप में स्पष्ट हो, मुझे क्या करना है? दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कार्य प्रारंभ से पूर्व व्यक्ति को अपने लक्ष्य, उसके उद्देश्य और उसकी दिशा स्पष्ट होनी चाहिए। इस बात को व्यवहार के धरातल पर उतारने के लिए अपनी कल्पनाशक्ति का पूरा उपयोग करना लाभदायक सिद्ध होता है। कल्पना शक्ति के उपयोग पर प्राय: व्यक्ति का ध्यान कम ही जाता है। इसके लिए जितनी शक्ति और समय का नियोजन होना चाहिए उतना हो नहीं पाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कर्मजा शक्ति और कल्पना शक्ति दोनों का अपना अच्छा ताल-मेल होना चाहिए। एक की अधिकता व दूसरे की कमी से परिणाम आशा के अनुरूप प्राप्त नहीं हो पाते हैं। कभी-कभी बड़ी निराशाजनक स्थिति बनती है। यदि व्यक्ति जीवन में सफलता और स्व-प्रबंधन को मूर्त्तरूप देना चाहें तो उसको कर्मजा और कल्पनाशक्ति—दोनों में संतुलन को साधना चाहिए। वस्तुत: जीवन में दोनों की आवश्यकता होती है। एक को गौण करके दूसरे को बढ़ाने से आशानुरूप फल प्राप्त नहीं हो सकते हैं।

15.3.1 कल्पना शक्ति का उपयोग

अपनी कल्पनाशक्ति का उपयोग करके हम कार्य निष्पत्ति में तीन दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त कर सकते हैं अथवा यह भी कहा जा सकता है कि कार्य निष्पत्ति में कल्पनाशक्ति के तीन मुख्य योगदान हैं। हमारे भीतर इस बात की प्रतीति होती है कि हमें किस बात की आवश्यकता है एवं हमें भविष्य में क्या चाहिए। प्राय: व्यक्ति का अपने आपसे संपर्क नहीं होने के कारण अथवा अपनी शक्तियों को नहीं पहचानने के कारण वे उसे सही भाषा, दिशा और रूप नहीं दे पाते हैं। हमारी कल्पनाशक्ति में वह क्षमता है कि वह हमारे विचारों, लक्ष्यों, उद्देश्यों और आकांक्षाओं को सही भाषा, दिशा प्रदान कर सकती है। हमारी समस्त शक्तियों को लक्ष्य प्राप्त करने में भी नियोजित कर सकती है। कल्पना शक्ति को इस बात का भी एहसास है कि व्यक्ति के अपने मूल्यों के अनुरूप किस बात से संतोष होगा, किस बात से प्रेरणा जागेगी और किस बता से अपनी सार्थकता का बोध होगा।

कल्पनाशक्ति हमारे अधूरे विचारों को परिपूर्ण, आकर्षक और संवर्धित दृश्य के रूप में उपस्थित कर सकती है। हमारी आशाओं, आकांक्षाओं को मूर्त्तरूप में सामने प्रस्तुत कर सकती है।

इनके भी आगे कल्पनाशक्ति हमें यह भी बताती है कि किस स्तर की उपलब्धि से हम उसे सफलता की कोटी में रखेंगे। सफलता के क्या मानक होंगे, जिससे हमें अपने लक्ष्य प्राप्ति का स्पष्ट बोध हो सके।

15.3.2 भावी दिशा

भविष्य में मैं कहां जा रहा हूं? इसका समाधान कल्पना शक्ति द्वारा स्पष्टतया पाया जा सकता है। इसके सर्वश्रेष्ठ उपयोग के लिए कुछ सटीक प्रश्नों को अपने आपसे पूछे। कोई भी कार्य करें उससे पूर्व अपने आप में स्पष्ट होने एवं कल्पना शक्ति का उपयोग करने के लिए निम्नलिखित प्रश्नों का उपयोग किया जा सकता है।

I. उद्देश्यों की स्पष्टता के लिए—

मैं यह कार्य क्यों कर रहा हूं?

मैं किसके लिए कर रहा हूं?

इससे मुझे या दूसरों को क्या लाभ मिलेगा?

II. निष्पत्ति की स्पष्टता के लिए—

मैं क्या प्राप्त करना चाहता हूं?

इस कार्य की क्या निष्पत्ति होगी?

मेरी भविष्य की कल्पना क्या है?

इन दिनों में मैंने क्या प्राप्त किया है?

III. मानक (Standards)—

मुझे कैसे पता चलेगा कि अंतिम परिणाम संतोष जनक है?

मेरी प्रगति उद्देश्य की दिशा में हो रही है, इसका मापदण्ड क्या होगा?

मेरे परिणामों की गुणवत्ता कैसी है या मात्रा कितनी है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.3.3 दिशा निर्धारण का उदाहरण

हमारी कल्पनाशक्ति किस प्रकार से काम करती है उसको समझने के लिए एक विशेष उदाहरण के द्वारा जाना जा सकता है। यहां उदाहरण के रूप में ''स्नात्तकोत्तर अध्ययन'' को चुना गया है।

कार्य—जीवन-विज्ञान का स्नात्तकोत्तर अध्ययन (M.A./M.Sc.)

उद्देश्य—

I. अब हम उद्देश्य पर विचार करें कि मैं यह कार्य क्यों कर रहा हूं?

योग के बारे में जानने व अभ्यास करने के लिए।

योग प्रशिक्षक बनने के लिए।

अपने जीवन के विकास के लिए।

आजीविका के लिए।

II. यह कार्य मैं किसके लिए कर रहा हूं?

समाज की सेवा के लिए स्वयं के विकास के लिए।

III. इससे मुझे क्या मिलेगा?

अपनी शक्तियों का ज्ञान व विकास।

स्वयं में शांति की अनुभूति और दूसरों के शांतिपूर्ण जीवन जीने में सहभागी बनने से संतोष।

सत्य खोज की प्रक्रिया और उस दिशा में प्रस्थान।

IV. अंतिम निष्पत्ति

हम इससे क्या पाना चाहते हैं?

हमारी भावी कल्पना क्या है?

मैं एक अच्छा प्रशिक्षक व प्रवक्ता बनकर अपनी आजीविका को भी प्राप्त कर सकूं।

मैं जीवन जीने की कला को किसी एक क्षेत्र में पहुंचाने की विशिष्ट दक्षता प्राप्त कर सकूं।

मैं चिकित्सा के क्षेत्र मे अपने ज्ञान, अभ्यास एवं कौशल का उपयोग करते हुए शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक बीमारियों का समाधान कर सकूं।

आज तक जो मैंने अध्ययन किया है उससे जीवन व आजीविका की दृष्टि से क्या प्राप्त हुआ है?

यह मैं कितने समय में प्राप्त करना चाहता हूं?

दो वर्ष में अध्ययन को बहुत ही अच्छे नम्बर व अभ्यास से पूरा कर एक विशिष्ट छाप छोड़ना चाहता हूं।

मैं अध्ययन के बाद एक सफल प्रशिक्षक या अन्वेषक के रूप में अपनी छाप छोड़ना चाहता हूं।

इस ज्ञान को दूसरों तक पहुंचाने के लिए एक अच्छे प्रवक्ता के रूप में उभरना चाहता हूं।

15.3.4 मानक (मापदण्ड) (Standards)

कैसे पता चलेगा अंतिम परिणति संतोष जनक है?

यदि अध्ययन के प्रारंभ के कुछ महीनों बाद आपके योगाभ्यास, स्वयं के ज्ञान एवं स्वयं के प्रति जागरूकता बढ़ती हो।

यदि शारीरिक और मानसिक रूप से आप अच्छा अनुभव करते हों।

यदि अपने आप पर नियंत्रण की क्षमता में अभिवृद्धि लगती हो एवं विषय के प्रति रुचि बढ़ी हो।

यदि वर्षभर के पश्चात् अच्छे अंक और अच्छे अभ्यास की उपलब्धि प्राप्त हो।

यदि दो वर्ष के पश्चात् आप अपने आपमें ध्यान और योग के अभ्यास को कराने में सक्षम, सैद्धांतिक व अनुप्रायोगिक ज्ञान से परिपूर्ण, अभिव्यक्ति में दक्षता तथा विशिष्ट अंकों से उत्तीर्ण हों।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार व्यक्ति योजना को अपनी कल्पना शक्ति द्वारा स्पष्ट करके तीव्रता से क्रियान्विति की दिशा में प्रगति कर सकता है।

15.4 सहयोग प्राप्ति हेतु दृष्टिकोण एवं व्यवहार

कार्य को प्रभावी एवं सक्षम तरीके से करने के लिए साथियों का सहयोग प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक होता है। इसके साथ ही साथ अपने भीतर की शक्तियों का सहयोग लेना भी उतना ही आवश्यक है। सहयेाग प्राप्त करने के अनेक दृष्टिकोण हैं। प्रत्येक दृष्टिकोण की अपनी विशिष्टताएं हैं एवं कुछ कमियां भी हैं। उनको समझकर व्यक्ति परिस्थिति के अनुरूप समय-समय पर सर्वश्रेष्ठ विधि या दृष्टि का उपयेाग कर सकता है।

सहायता प्राप्त करने के लिए व्यक्ति द्वारा अपनाये जाने वाले दृष्टिकोण को मुख्य रूप से निम्नलिखित चार भागों में बांटा जा सकता है—

1. स्पष्ट एवं सुदृढ़, 2. आक्रामक, 3. नरम, 4. परोक्ष।

आपका रूख किस प्रकार का होगा वह इस बात पर निर्भर है कि आपकी मन:स्थिति और बाहर की परिस्थितियां किस प्रकार की हैं। कमजोर मन:स्थिति और दुर्बल मनोबल वाले प्राय: स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूख अपना नहीं पाते हैं। वे प्राय: आक्रामक या परोक्ष रूख अपनाते हैं।

यह याद रखना चाहिए कि दूसरे व्यक्तियों का सहयोग या अपनी पूरी टीम का सहयोग अपने काम में प्राप्त होना इस बात पर निर्भर है कि हमारे उनके साथ सम्बंध किस प्रकार के हैं। सौहार्दपूर्ण सम्बंध के साथ स्पष्ट एवं सुदृढ़ दृष्टिकोण दूसरों से सहयोग प्राप्त करने में अत्यंत प्रभावी होता है और दीर्घकाल तक चलने वाला होता है। शेष तीन विधियां थोड़े समय के लिए परिस्थितियों के अनुसार काम तो करती हैं किन्तु भविष्य की दृष्टि से पारस्परिक सहयेाग प्राप्ति हेतु कम लाभदायक सिद्ध होती हैं। व्यक्ति को ऐसा लग सकता है कि इन विधियों से भी काम तो हो जाता है किंतु इनसे आपसी सम्बंधों पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

15.4.1 आक्रामक दृष्टिकोण एवं तेज स्वभाव

जब व्यक्ति अपने कार्य को पूरा कराने के लिए आक्रामक दृष्टिकोण अपनाता है तो वह दूसरों की प्राथमिकताओं को ध्यान में लिये बिना अपनी बात को मनवाने का प्रयत्न करता है। उस समय वह अपने आदेश और निर्देश द्वारा दूसरे की भावनाओं को अनेक बार कुचल देता है। जहां पर आदेश देने के बजाय सामने वाले व्यक्ति से कार्य में सहयोग करने के लिए निवेदन करने से भी काम चल सकता है तो आदेश न देकर निवेदन ही करना चाहिए। आक्रामक दृष्टिकोण में व्यक्ति इस बात पर बल देता है कि कार्य वैसा ही होना चाहिए जैसा कि वह स्वयं करता है या चाहता है। व्यक्ति को इतनी भी स्वतंत्रता नहीं देता कि सामने वाला व्यक्ति अपने तरीके से भी कार्य कर ले। आक्रामक व्यक्ति सामने वाले व्यक्ति को प्रोत्साहित नहीं करता है। कभी-कभी तो वह और अधिक आलोचना करने लग जाता है। वह सामने वाले व्यक्ति की आलोचना के साथ तीव्र प्रतिक्रिया द्वारा उसके व्यक्तित्व पर प्रहार व दोषारोपण से भी नहीं चूकता है। इससे भी आगे बढ़कर कुछ व्यक्ति दूसरों की कमजोरियों का गलत फायदा उठाने लगते हैं।

परिणाम—यदि व्यक्ति आक्रामक दृष्टिकोण व व्यवहार अपनाता है तो परिणाम दीर्घकाल की दृष्टि से अच्छे नहीं होते हैं—

व्यक्ति या अधिकार की थोड़े समय के लिए अपना काम निकलवा लेता है क्योंकि कर्मचारी सीधे रूप में सामने सामान्यत: प्रतिरोध नहीं करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लम्बी अवधि में सहयोग की भावना में कमी आ जाती है क्योंकि वे प्रेरणा में कमी महसूस करते हैं या अपने आपको दबाव में अनुभव करते हैं। इसका परिणाम यह भी होता है कि वे पीछे से कार्य में बाधक बनने की चेष्टा करते हैं।

कार्य अनेक बार बिगड़ जाता है और विलम्बित हो जाता है। कुछ समय बाद कार्यकर्त्ता सामने से प्रतिरोध भी कर लेता है। आक्रामक अधिकारी की बात में वजन होने पर भी उसे गंभीरता से नहीं सुना जाता है। सहयोगी या कार्यकर्त्ता ऐसे व्यक्तियों से बचने की कोशिश करते हैं।

15.4.2 नरम दृष्टिकोण एवं संकोची स्वभाव

जब व्यक्ति का स्वभाव संकोची होता है तब वह अपनी बात एवं कार्य को भी कार्यकर्त्ता तक स्पष्ट रूप से कह नहीं पाता है। वह नेतृत्व करने से कतराता है। वह मान लेता है कि कार्यकर्त्ता या कर्मचारी को जो करना है उसको वे स्वयं जानते हैं, उन्हें मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं है, आदि। संकोची व्यक्ति कार्यकर्त्ता या कर्मचारी के अच्छे कार्य पर बहुत कम प्रोत्साहन देते हैं या उनकी कार्य की कमी पर भी टिप्पणी नहीं कर पाते हैं। वे अपनी राय को कार्य के प्रारम्भ या अंत में जताने से भी कतराते हैं।

कार्य के प्रति अपनी कोई भी सम्मति या राय को स्पष्ट न कहने के कारण कार्यकर्त्ता अपना-अपना अर्थ लगाने लगते हैं। कुछ कार्यकर्त्ता उसे ''मौनं सन्मति लक्षणं'' अर्थात् मौन को अपना समर्थन भी मान लेते हैं या वे नेता की दृष्टि और भावना को समझने में असमर्थ होते हैं। कार्य को सही समय पर सही स्वरूप प्रदान नहीं कर पाते हैं।

परिणाम

संकोची स्वभाव का परिणाम यह होता है कि कार्यकर्त्ता थोड़े समय के लिए ऐसा महसूस करते हैं कि नेतृत्व बहुत ही सहयोगात्मक है।

दूसरे लोग नेतृत्व और नेता को कम महत्त्व देते हैं। कार्यकर्त्ता ऐसा समझने लगते हैं कि नेता को कार्य के बीच में लाने कि जरूरत नहीं है। उनसे परामर्श करना भी आवश्यक नहीं है।

नेता के अत्यधिक नरमी से अनावश्यक कार्य का भार भी उसके ऊपर आ पड़ता है, मूलत: जिसका दायित्व स्वयं पर नहीं होकर दूसरों पर होता है। इसका परिणाम यह होता है कि अपने मूल दायित्व के कार्य में शक्ति और समय की कमी आ जाती है। और अपना काम भी प्रभावी ढंग से नहीं कर पाते हैं।

नेता की अत्यधिक नरमी, लचीलापन और संकोची स्वभाव के कारण दूसरे व्यक्ति हावी हो जाते हैं।

15.4.3 परोक्ष दृष्टिकोण व व्यवहार

इसके अन्तर्गत व्यक्ति अप्रामाणिक तरीकों का प्रयोग करता है, जैसे दूसरे व्यक्ति की झूठी प्रशंसा करना, उसको परोक्ष रूप में डराना, मित्रता का दुरुपयोग करना, उसकी भावनात्मक कमजोरियों का फायदा उठाना, व्यंग्यात्मक भाषा के द्वारा उसके मनोबल को गिराना आदि। नेता इन सब माध्यमों से दूसरों को अपने साथ बहाकर ले जाने की क्षमता रखते हैं। वे इतना प्रभाव डाल सकते हैं कि सामने वाला व्यक्ति यह समझने लग जाये कि नेता उसी के कार्य, विचार और नीति को प्रोत्साहित कर रहा है।

नेता दूसरों से उनके अहंकार की पुष्टि करके अपना काम निकलवा लेता है। वे ऐसे उपायों को काम में लेते हैं जो परोक्ष रूप में कष्टदायक होते हैं, उदाहरण के लिए हंसी-मजाक में दूसरों के मनोबल को गिराना, व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग करना, कड़ी दृष्टि रखना, कंधे नचाना, दूसरों की बात को नजर अंदाज करने के लिए उबासियां लेना या आवश्यक स्थान जहां उत्तर देना हो वहां मौन रहना वे संवेदनशील सूचना को भी दूसरों के द्वारा भेज देते हैं इससे प्राप्त करने वाले व देने वाले दोनों अपमानित अनुभव करते हैं क्योंकि सूचना प्राप्त करने वाले की प्रतिक्रिया को सूचना देने वाले को सहनी पड़ती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

परिणाम—यदि नेता परोक्ष तरीकों को अपनाता है तो उससे देखा जाता है कि प्राय: बहुत जल्दी सफलता मिल जाती है किंतु इसका प्रभाव बहुत थोड़े समय के लिए रहता है।

लंबे काल में उपरोक्त नीति से लोग जानने लगते हैं कि उनका दुरुपयोग किया जा रहा है। परिणामत: लोग परोक्ष रूप में तीव्र प्रतिक्रिया दर्शाते हैं, आक्रामक बन जाते हैं, अविश्वास व संदेह से देखते हैं व भविष्य में जहां तक हो सके बचने की चेष्टा करते हैं।

बोध प्रश्न 1:

---

1. क्रियान्विति में चिंतन के महत्व को समझाएं?
2. दिशा निर्धारण मे कल्पना शक्ति के महत्व को समझाएं?
3. परोक्ष दृष्टिकोण से आप क्या समझते है?

15.5 स्पष्ट दृष्टिकोण एवं सुदृढ़ व्यवहार

सीधी और सपाट बात कहना अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में सर्वाधिक प्रभावशाली तरीका है। इसके अन्तर्गत अधिकारी वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप अपनी प्राथमिकता को दृढ़ता एवं स्पष्टता से बताता है। उसी के साथ उनके विचारों, भावनाओं एवं प्राथमिकताओं को भी समझने का प्रयास करता है।

अधिकारी जब अपनी बात को सीधे रूप में रखता है तो उसके कथन में शक्ति आ जाती है। उसमें यह भी पता चल जाता है कि उस बात का महत्त्व कितना है। यदि बात कहने पर भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है, सहयोगीगण अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं दिखा रहे हैं तो पुन: धैर्य के साथ बलपूर्वक अपनी बात को रखने की आवश्यकता होती है।

अपनी बात में बल उस समय सहज ही आ जाता है जब वह महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि उसमें यथार्थता होती है और स्वयं में आत्मविश्वास होता है। जब व्यक्ति दबाव में होता है तो उसका आंतरिक संतुलन बिगड़ जाता है। उस समय यह बहुत अधिक संभावना होती है कि वह अन्य तरीकों का उपयोग करने लग जाए। वह अपनी बात में बहुत अधिक आक्रामक या अत्यधिक विनम्र या परोक्ष तरीकों को काम में लेने लग जाए।

परिणाम

दूसरों से सहयोग प्राप्त करने में स्पष्ट दृष्टिकोण व सुदृढ़ व्यवहार प्रभावी सिद्ध होता है। इससे दूसरों से सहयोग प्राप्त होने की संभावना बहुत अधिक हो जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि सरलता और स्पष्टता से नेता के प्रति दूसरों के मन में बहुत अधिक सम्मान की भावना होती है। नेता भी अपने सहयोगियों का सम्मान करना जानता है। इससे परस्परता की भावना पुष्ट होती है।

सफलता का तात्पर्य यह नहीं है कि हर परिस्थिति में वांछित कार्य की पूर्ति हो ही। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि ईमानदारी से सबके सहयोग को प्राप्त कर कार्यपूर्ति की दिशा में आगे बढ़ना। स्वयं के एवं साथियों के आत्म-सम्मान की रक्षा करते हुए भविष्य की संभावनाओं के द्वार को खुला रखना।

15.5.1 व्यक्तिगत अधिकारों का सम्मान

जब नेता अपनी बात को स्पष्टत: कहता है तो उसे अपने अधिकार के साथ-साथ सहयोगियों के अधिकारों का भी ध्यान रखना चाहिए। उनका भी सम्मान करना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि सामान्य अधिकार सबके लिए एक समान होते हैं, जैसे—

- प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति का अधिकार है। जब तक कि वे इस अधिकार का दुरुपयोग दूसरों के हितों को दबाने या कुचलने के लिए न करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- प्रत्येक व्यक्ति को मानवीय दृष्टिकोण से देखना चाहिए, उसे हीन या उच्च नहीं मानना चाहिए। सब मनुष्य समान हैं। आदर व सम्मान के पात्र हैं।
- प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता व प्राथमिकता को अभिव्यक्त करने का अधिकार होता है फिर चाहे दूसरा व्यक्ति उनसे कोई भी अपेक्षा क्यों न रखे।
- प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है कि सामने वाले व्यक्ति की बात को माने या न माने, समर्थन दे या न दे।
- सामान्य अधिकारों के साथ-साथ अपने कार्य, क्षेत्र के अनुरूप व्यक्ति के पास विशेष अधिकार भी होते हैं, जैसे—
  1. अपने सिद्धान्त, मूल्य एवं विचारों को खुलकर रखना।
  2. सही समय व सही स्थान पर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करना।
  3. दूसरों से उनकी इच्छाओं के बारे में जानना।
  4. किसी कार्य का समर्थन देना या अस्वीकार करना।
  5. किसी के विचारों को बदलना।
  6. किसी समस्या के समाधान में स्वयं को नियोजित करना या नहीं, आदि-आदि।

15.5.2 शारीरिक मुद्रा

जब व्यक्ति अपनी बात कहता है उस समय उसको अपनी शारीरिक मुद्रा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। आपकी शारीरिक मुद्रा से बहुत कुछ अनकही बातों का पता लग जाता है। अत: आप जब अपनी बात स्पष्ट एवं सुदृढ़ता से कहते हैं तब अपने शरीर को तनावमुक्त, सीधा व शिथिल रखना चाहिए।

इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि जब आप आक्रामक या नरम रूख अपनाते हैं उस समय शरीर में कहां पर तनाव रहता है। मुख्य रूप से आपका ललाट, भौंहें, आंखें, गर्दन, कंधा, हाथ, अंगुलियां, पैर आदि। आपकी आवाज, चेहरा, मस्तिष्क आदि तनाव-मुक्त रहने चाहिए। इन सबके शिथिलीकरण को कायोत्सर्ग के द्वारा आसानी से साधा जा सकता है। उन अवयवों को शिथिलता का सुझाव दें जिनमें तनाव हो एवं उनमें शिथिलता की अनुभूति करें। शिथिलता और तनाव-मुक्ति से आंतरिक संतुलन, समता और प्रसन्नता को बनाये रखने में सहायता मिल सकती है।

सहयोग प्राप्त करने के लिए सुदृढ़ और स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाते समय तीन बातों का विशेष ध्यान देना चाहिए—

शारीरिक मुद्रा तनाव-मुक्त, शिथिल एवं सीधी होनी चाहिए।

स्वयं के अधिकारों के बोध के साथ दूसरों के अधिकारों का भी सम्मान करना चाहिए।

अपने कार्य के उद्देश्य, कार्य-विधि एवं परिणामों को स्पष्ट रूप से रखना चाहिए। अस्वीकार्यता की स्थिति में भी धैर्य एवं दृढ़ता से पुन: पुन: उसे प्रस्तुत कर स्वीकृति व सहमति प्राप्त करनी चाहिए।

15.6 स्पष्ट व सुदृढ़ प्रेरणा (Mobilizing people assertively)

सहयोगियों से काम लेते समय जब हम स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाते हैं तो उसमें सफल होने के लिए सांकेतिक भाषा के साथ-साथ कुछ वाचिक सूत्र भी हैं जिसका उपयोग किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से दो बातों का समावेश होता है। पहली बात यह है—सहयोगियों के ध्यान या एकाग्रता को अपनी ओर खिंचना तथा उनकी एकाग्रता को बनाये रखना। दूसरी बात है—हम जो चाहते हैं उसको स्पष्ट शब्दों में सुदृढ़ता से कहना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सबसे पहले हमें यह निर्णय करना पड़ेगा कि वास्तव में हम दूसरों से क्या करवाना चाहते हैं? अनेक बार यह आसान लगता है और ऐसा करते भी हैं कि दूसरों को क्या-क्या नहीं करना चाहिए? वस्तुतः यह एक गलत व निषेधात्मक तरीका है जो दूसरे पर पर्याप्त प्रभाव नहीं छोड़ता है। अपेक्षा यह है कि हम ऐसी क्षमता को अर्जित करें, जिससे हम जो चाहते हैं उसको सकारात्मक सोच के साथ विधायक शबदों में अभिव्यक्त कर सकें।

संक्षेप में शाब्दिक सुदृढ़ता के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर पुनः ध्यान दें—

1. हम जो करवाना चाहते हैं उसका निर्णय।
2. ध्यान आकर्षित करना।
3. स्पष्ट व संक्षिप्त शब्दों में कहना।
4. सहयोगियों की बातों को सुनना।
5. धैर्य से अपनी बात को पुनः-पुनः स्पष्ट करना।
6. उसके परिणामों को बताना।
7. उनकी सहमति लेना।
8. उनको सहयोग के लिए धन्यवाद देना।

सुदृढ़ वाक्यों के निर्माण के लिए—

1. अपनी बात को मैं से शुरु करें तथा संक्षिप्त सटीक बात कहें।
2. तथ्य और सम्मति को एक न करें, अलग-अलग रखें व बतायें।
3. करना ही पड़ेगा या करना ही होगा के शब्दों के प्रयोग के बिना अपना सुझाव दें।
4. संरचनात्मक समीक्षा करें व दोषारोपण से बचें।
5. दूसरों की राय को जानें।
6. अन्य समाधान की खोज के लिए भी तैयार रहें।

जब यह निश्चित कर लिया जाता है कि हमें क्या कहना है? उसके बाद अगला चरण यह है कि सामने वाले व्यक्ति के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करें। जब व्यक्ति का ध्यान दूसरी ओर हो तब कुछ भी कहना उपयोगी सिद्ध नहीं होता। किसी व्यक्ति को निर्देश देने से पूर्व निम्नलिखित बातों को ध्यान में ले लेना चाहिए।

1. हम किस वातावरण में खड़े हैं। आस-पास कौन-कौन लोग खड़े हैं। ज्यादा शारेगुल तो नहीं है। मेरी आवाज उसको सुनाई देगी या नहीं आदि।

2. वह मेरे से कितनी दूर खड़ा है। वहां तक मेरी आवाज पहुंचेगी या नहीं।

3. कहीं व्यक्ति का ध्यान अन्यत्र तो नहीं लगा हुआ है। बात करने से पूर्व उसे जता दिया जाये कि मैं कुछ बात कहना चाहता हूं। उसका नाम सम्बोधित करते हुए या उसका स्पर्श करते हुए उसको बताया जा सकता है।

4. उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के बाद स्पष्ट शब्दों में आप जो कार्य करवाना चाहते हैं, उसे कहे। वाक्य के अन्तर्गत हम कहे कि ''मैं'' ''आपसे'' इस कार्य की अपेक्षा रखता हूं। अपनी बात कहते समय दृढ़ता से कहें एवं कार्य की प्राथमिकता को भी स्पष्ट करें। सभी कार्यों को ही यदि प्राथमिक व प्रमुख बता दिया जायेगा तो संभव है कि सामने वाला व्यक्ति आपकी बात पर पूरा ध्यान नहीं दे।

अपनी बात कहने के बाद रूकें। उसकी राय जानें। अन्य सूचनाओं के साथ संवाद स्थापित करें। जब दोनों की सहमति बनने लगे तो उसे सुनिश्चित कर दिया जाना चाहिए। लिखित में सहमति-पत्र तैयार कर लेना चाहिए, इससे स्पष्टता बढ़ती है। आपसी समझ बेहतर हो जाती है। कोई भी तथ्य अस्पष्ट हो तो स्पष्ट हो जाते हैं। उस कार्य की निगरानी और अनुगमन करना सरल हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.6.1 निरन्तरता

स्पष्ट व सुदृढ़ प्रेरणा से यदि एक बार में संतोषजनक परिणाम या उत्तर प्राप्त न हो पाने की स्थिति में अपनी बात को पुनः धैर्यपूर्वक सामने रखने की आवश्यकता होती है। इसके लिए दो उपायों को काम में ले सकते हैं—

पहले उपाय के अन्तर्गत हम अपनी बात को पुनः पुनः निवेदन करें। यह उपाय तब उपयोगी होता है जब अधिकारी या सहयोगी अपनी बात को नजर-अंदाज करने की कोशिश करते हैं। पुनः पुनः बात करने में विशेष ध्यान यह रखना है कि अपनी आवाज में उत्तेजना, आवेश या निराशा का भाव न आने दें एवं अपनी आवाज को सहज बनाये रखा जाये।

दूसरे उपाय के अन्तर्गत हम अधिकारी या सहयेागी के उत्तर को पुनः सारांश रूप में प्रस्तुत करें अथवा उनके सम्बंधित प्रश्नों का उत्तर दें और अपनी बात को पुनः सुदृढ़ता से निवेदित करें। ऐसे तथ्यों को प्रस्तुत करें कि वास्तव में यह लगे कि यह एक महत्त्वपूर्ण बात है।

यदि उपरोक्त दोनों उपायों से सफलता न मिले तब अपने कार्य से होने वाले परिणामों को प्रकट करें। यह स्पष्ट किया जाए कि यदि उस कार्य को मान लिया जाता है तो उसके क्या-क्या लाभ होंगे। इसे विस्तार से बताया जाये अथवा यदि बात को नहीं माना जाता है, सहयोग नहीं मिलता है तो उसके क्या-क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं, हानि हो सकती है, उसको भी विस्तार से बताया जाये।

15.6.2 सम्मति प्रकट करना

अधिकारी को अनेक बार अपने सहयोगियों के कार्यों पर प्रतिक्रिया करनी पड़ती है। यह प्रतिक्रिया अनुकूल होती है जब कार्य अच्छा किया हो। प्रतिक्रिया प्रतिकूल होती है जब कार्य अच्छा नहीं किया हो। इस प्रतिक्रिया का उद्देश्य यह होता है कि सहयेागी के कार्यदक्षता में विकास हो।

अधिकारी को अनुकूल और प्रतिकूल प्रतिक्रिया में संतुलन बनाये रखना चाहिए। यदि केवल अनुकूल प्रतिक्रिया में अत्यधिक प्रशंसा करेंगे तो सहयोगी के मन में संदेह उत्पन्न हो सकता है तथा वह उपेक्षा भी कर सकता है। दूसरी ओर यदि केवल प्रतिकूल प्रतिक्रिया और आलोचना ही की जाती है तो व्यक्ति का मनोबल टूटता है तथा व्यक्ति इससे अड़ियल व जिद्दी बन जाता है।

15.6.3 कृतज्ञता ज्ञापन

जब अधिकारी या सहयेागी द्वारा किसी कार्य के निवेदन को स्वीकार कर लिया जाता है तब हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित की जानी चाहिए। जब कार्य की समाप्ति पर अनुकूल प्रतिक्रिया जताई जाती है तो विशेष रूप से उस कार्य का उल्लेख किया जाना चाहिए जिसके लिए प्रशंसा की जा रही है। यदि अनुकूल प्रतिक्रिया को संदेह की दृष्टि से देखा जा रहा हो तो अपनी बात को पुनः बलपूर्वक जताना चाहिए।

15.6.4 संरचनात्मक समालोचना

अनेक बार ऐसा भी होता है कि जो कार्य जिस रूप में करने के लिए कहा जाता है, वैसा नहीं किया जाता है तब उसमें सुधार हेतु आलोचना या समीक्षा आवश्यक हो जाती है। समीक्षा करना एवं उसका सही अर्थों में दूसरे द्वारा ग्रहण होना कठिन कार्य है। सुधार हेतु संरचनात्मक समीक्षा करते समय सीधे तौर पर मुख्य व्यवहार एवं सम्बंधित व्यवहार की समीक्षा करनी चाहिए न कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व की। मुख्य व्यवहार से इच्छित परिणाम कैसे प्रभावित होंगे? विकल्प में हम किस प्रकार का व्यवहार चाहते हैं इसे भी स्पष्ट करना चाहिए। दूसरे को भी अपनी बात कहने का अवसर देना चाहिए। उसकी बात को भी ध्यान से सुनना चाहिए। यदि उसकी बात को सुनने के बाद भी सुधार अपेक्षित लगता हो तो उसको पुनः सुधार के लिए प्रेरित करना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.6.5 सुदृढ़ व्यवहार व अपेक्षित कार्य

यदि यह लगे कि सुदृढ़ व स्पष्ट कथन से भी अपेक्षित कार्य नहीं हो रहा है तो निम्न बिन्दुओं पर विचार करें—

क्या वास्तव में स्पष्टता व सुदृढ़ता से बात रखी गई थी? क्या परिस्थिति व स्थान के अनुरूप अपने दृष्टिकोण, कथन व व्यवहार में सुदृढ़ता थी? यदि नहीं तो पुनः उस बात को कहा जा सकता है।

यदि बात करने में अन्यथा बात या अनावश्यक या गलत बात कह दी गई हो तो उसका उल्लेख विशेष रूप से करते हुए सहजता व सरलता से एक ही बार में क्षमायाचना कर लेना चाहिए।

यदि पूरी बात या प्रस्ताव स्वीकृत नहीं होता है तो क्या कुछ पक्षों पर समन्वय या समझौता किया जा सकता है उसकी तैयारी की जाए।

यदि कोई भी समझौते की संभावना न हो तो अपने प्रस्ताव को एक बार स्थगित करने पर भी विचार करना चाहिए, उसके लिए तैयार रहना चाहिए।

जिस व्यक्ति से सहयोग लेना है, जैसा सहयोग लेना है उस समय प्राथमिकताओं पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिए। उदाहरण के लिए सहयोग लेने व देने का क्रम लम्बे समय तक चलने वाला है। किसी एक क्षेत्र में सहयोग न प्राप्त होने से आपसी सम्बंधों में दरार नहीं आनी चाहिए जिससे आगे का रास्ता रूक जाए। हमें अपने अधिकारों की प्राप्ति के साथ-साथ दूसरों के अधिकारों का भी उतना ही आदर व सम्मान करना चाहिए जितना कि हम स्वयं का करते हैं। यह दृष्टिकोण भविष्य की उज्ज्वल संभावनाओं को हमेशा के लिए खुला रखता है।

बोध प्रश्न 2:

---

1. सुदृढ व्यवहार में शारीरिक मुद्रा के महत्व को समझाएं?
2. शाब्दिक सुदृढता के मुख्य बिन्दुओं को लिखें?

15.7 सारांश

1. चिंतन से क्रियान्विति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए शक्ति का समुचित उपयोग, शक्ति का संरक्षण और कार्य-संपूर्त्ति तक आंतरिक प्रेरणा बनी रहनी चाहिए। इसके साथ व्यक्तिगत दक्षता एवं दूसरों से सहयोग लेने की क्षमता होनी चाहिए। अपनी आंतरिक क्षमताओं का पूरा उपयोग करते हुए व्यवस्थित योजना बनाकर खुले दिमाग से उसकी समीक्षा कर आगे बढ़ना चाहिए।

2. कार्य प्रारंभ करने से पूर्व उसके लक्ष्य, उद्देश्य एवं दिशा को स्पष्ट करना आवश्यक एवं लाभदायक होता है। इसमें कल्पनाशक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इससे दिशा निर्धारण के साथ कार्य का मूर्त्त रूप मस्तिष्क मे तैरने लगता है एवं यह भी स्पष्ट होता है कि सफलता के मानदण्ड क्या-क्या होंगे?

3. कार्य को सफलता से पूरा करने के लिए साथियों का भी सहयोग प्राप्त करना जरूरी है। सहयोग प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का अलग-अलग दृष्टिकोण और व्यवहार होता है, जिसे मुख्यतः चार प्रकारों में बांटा गया है—

1. आक्रामक दृष्टिकोण एवं व्यवहार
2. नरम दृष्टिकोण व संकोची स्वभाव
3. परोक्ष व्यवहार
4. स्पष्ट दृष्टिकोण एवं सुदृढ़ व्यवहार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. स्पष्ट दृष्टिकोण एवं सुदृढ़ व्यवहार सहायता प्राप्त करने का सर्वाधिक प्रभावशाली उपाय है। अल्प समय के लिए ऐसा लग सकता है कि इसमें समय अधिक लगता है किंतु दीर्घकालिक नीति की दृष्टि से यह बहुत लाभदायक होता है। इससे दूसरे लोगों के मन में व्यक्ति के प्रति सहज सम्मान व सहयोग की भावना पैदा हो जाती है।

5. स्पष्ट दृष्टिकोण सुदृढ़ कथन से एक बार में यदि कार्य न हो तो व्यक्ति को निराश या उग्र बने बिना धैर्य से पुन: उस बात की पुनरावृत्ति करनी चाहिए। उसके परिणामों से अवगत कराना चाहिए। बात को मान लिये जाने पर हार्दिक कृतज्ञता भी ज्ञापित करना चाहिए। किसी कारण से बात स्वीकृत न होने की स्थिति मे सम्बंधो की मधुरता पर आंच नही आने देना चाहिए। भविष्य के द्वारों को बंद नहीं करना चाहिए।

15.8 प्रश्नावली

I निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्य को क्रियान्वित करने एवं साथियों से सहयोग प्राप्त करने में स्पष्ट दृष्टिकोण एवं सुदृढ़ व्यवहार की क्या भूमिका है? विस्तार से लिखें।

II लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कार्य-निष्पत्ति में कल्पनाशक्ति के क्या-क्या योगदान हैं?
2. सहयोग प्राप्त करते समय आक्रामक दृष्टिकोण एवं उग्र व्यवहार का रूप कैसा रहता है व उसके क्या-क्या परिणाम होते हैं?

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रत्येक कार्य की निष्पन्नता के लिए क्या-क्या आवश्यक है?
2. अपने भीतर की क्षमताओं को नियोजित करने के लिए किन-किन मानसिक शक्तियों का उपयोग किया जाता है?
3. समीक्षा का क्या तात्पर्य है?
4. किन-किन प्रश्नों द्वारा कार्य के मापदण्ड तय किये जाते हैं?
5. अपने कार्य में दूसरो व्यक्तियों का सहयोग मिलना किस पर निर्भर है?
6. सहयोग प्राप्ति हेतु अपनाये जाने वाले दृष्टिकोण एवं व्यवहार को कितने भागों में बांटा जा सकता है? नाम बताएं।
7. नरम दृष्टिकोण एवं संकोची स्वभाव के क्या परिणाम होते हैं?
8. परोक्ष दृष्टिकोण व व्यवहार का तात्पर्य क्या है?
9. कार्य प्रारंभ से पूर्व व्यक्ति को ..... स्पष्ट होनी चाहिए।
10. अधिकारी को अनुकूल और प्रतिकूल प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते समय ..... रखना चाहिए।

15.9 संदर्भ पुस्तकें

1. Johan Mulligan (Ed) Personal management – Sphere book Ltd., London

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–16 साथियों को अभिप्रेरणा एवं कार्य निष्पत्ति

संरचना

16.0 प्रस्तावना

16.1 उद्देश्य

16.2.0 अभिप्रेरण का तात्पर्य

16.3.0 अभिप्रेरण प्रक्रिया

- 16.3.1 आवश्यकताएं
- 16.3.2 कार्यप्रवृत्ति
- 16.3.3 प्रयास एवं योग्यता
- 16.3.4 निष्पादन
- 16.3.5 पुरस्कार
- 16.3.6 संतोष
- 16.3.7 अभिप्रेरण के चरण

16.4.0 आदर्श अभिप्रेरण प्रणाली

16.5.0 जटिल व्यक्ति

- 16.5.1 जटिल व्यवहार के कारण
- 16.5.2 जटिल व्यक्ति कौन है?
- 16.5.3 आत्म-निरीक्षण
- 16.5.4 जटिल व्यवहार
- 16.5.5 जटिल व्यवहारों के प्रकार
- 16.5.6 अन्य वर्गीकरण

16.6.0 जटिल व्यवहार का प्रभाव

- 16.6.1 मनोबल एवं जटिल व्यवहार
- 16.6.2 विकल्प का महत्त्व
- 16.6.3 जटिल व्यवहारों के प्रति अपना व्यवहार
- 16.6.4 अपने व्यवहार का चयन

16.7.0 जटिल व्यवहारों से निपटने की रणनीति

- 16.7.1 क्रमबद्ध उपाय
- 16.7.2 उपयोगी उपाय
- 16.7.3 परस्पर संवाद
- 16.7.4 जटिल व्यवहार के परिष्कार के लिए संवाद व सहयोग

16.8.0 विशिष्ट व्यवहारों से निपटने के उपाय

- 16.8.1 अपमानजनक व्यवहार
- 16.8.1.1 अपमानजनक टिप्पणियों से निपटना
- 16.8.2 कार्य से बचने की मनोवृत्ति एवं व्यवहार
- 16.8.3 आक्रामक व्यवहार

16.9.0 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.10 प्रश्नावली
16.11 संदर्भ ग्रंथ

16.0 प्रस्तावना

जीवन-विज्ञान का एक उद्देश्य यह है कि व्यक्ति अपने जीवन में अपने साथियों के साथ मधुर एवं सौहार्दपूर्ण सम्पर्क बनाये रखते हुए अपने कार्य में सफलता अर्जित करे। जीवन संग्राम में यह एक चुनौतिपूर्ण कार्य हैं क्योंकि सभी सहयोगी साथियों का स्वभाव एक जैसा नहीं होता है, हर समय एक जैसा नहीं रहता है और तो क्या, स्वयं का स्वभाव भी हर समय एक जैसा नहीं रहता है। ऐसे समय में स्वयं शान्त रहते हुए दूसरों से कार्य निष्पति के लिए कैसे प्रेरित करें, सहयोग प्राप्त करें एवं विभिन्न प्रकार के जटिल स्वभाव के लोगों से कैसे निपटें? यह एक जीवन्त चुनौति है, जिसका कि जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को सामना करना पड़ता है। इस चुनौति का सफलता से सामना कर सके। यह इस पाठ का प्रमुख उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस पाठ में यह बताया गया है कि—

मनुष्य के सभी प्रयत्न जीवन में संतोष, शान्ति व सुख की वृद्धि करने के लिए होते है। अत: यह पता लगाना आवश्यक है कि कौन से कारक तत्त्व मानव जीवन को संतोषप्रद बनाते है।

कहा भी गया है कि अच्छा प्रारम्भ ही आधे कार्य की समाप्ति है (well begin is half done)। अधिकारी का यह कर्त्तव्य माना जाता है कि वह अपने साथियों के लिए इन सभी प्रेरकों को पहचानें तथा उन्हें उपलब्ध करे। जो उन्हें कार्य निष्पत्ति की दिशा में आगे ले जाएं। अभिप्रेरणात्मक विधियों का विकास भी तभी सफल माना जाता है जब उससे साथियों में संतोष की वृद्धि हो। इसके लिए अधिकारी की अन्तर्दृष्टि तथा सूझबूझ आवश्यक है। अधिकारी में अपने साथियों के स्वभाव को समझने एवं उनसे काम लेने की दक्षता का विकास दैनिक आपसी अन्त: क्रिया से होता है। अपने साथियों को अभिप्रेरित कर कार्य को निष्पत्ति तक ले जाना अपने आप में एक कला है। अनेक सहकर्मी या साथी ऐसे भी होते हैं जो मनोबल को तोड़ने व कार्य से बचने में चतुर होते हैं। उनसे निपटने की कला में दक्षता प्राप्त करने से स्वयं के मानसिक संतुलन को बनाये रखने तथा कार्य को कुशलता से निष्पन्न करने में अच्छी सफलता मिलती है। इससे जीवन में संतोष व शान्ति की अभिवृद्धि होती है।

16.1 उद्देश्य

1. अभिप्रेरण, अभिप्रेरण की प्रक्रिया और आदर्श अभिप्रेरण क्या है? आदि की जानकारी प्राप्त होगी।
2. जटिल स्वभाव वाले व्यक्ति एवं उनके व्यवहार से क्या तात्पर्य है? इसका ज्ञान होगा।
3. जटिल व्यवहार के प्रकार एवं उनके विषय में जानकारी होगी।
4. जटिल व्यवहार से निपटने की रणनीति का ज्ञान होगा।
5. विशेष प्रकार के जटिल व्यवहारों से निपटने के उपाय जान पायेंगे।

16.2 अभिप्रेरण का तात्पर्य

प्रबन्धन विशेषज्ञों के अनुसार अभिप्रेरण (Motivation) एक स्वार्थ है। इसका उपयोग प्रबन्धक अधिक व श्रेष्ठ कार्य निष्पत्ति के लिए करते हैं। अभिप्रेरित साथी सहकर्मी अभिप्रेरण प्राप्त कर अधिक उत्पादन करने, अच्छा प्रतिफल देने एवं अधिक रूचि से काम करने का विचार करते हैं। इससे वे कार्य के प्रति अपने आपको निष्ठावान सिद्ध करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अभिप्रेरण शब्द का प्रादुर्भाव 'प्रेरणा' से हुआ है।[1] प्रेरणा को इच्छा, आवश्यकता, प्रेरक तत्त्व और अन्त:स्फुरण कहा जाता है। प्रेरणा, जागृत, अथवा सुप्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दिशा निर्देश है। वास्तव में प्रेरणा ही प्रत्येक कार्य का प्रारंभ है।

अभिप्रेरण के अनेक प्रकार हैं। उनमें आन्तरिक एवं बाह्य अभिप्रेरणाएं भी सम्मिलित हैं। बाह्य अभिप्रेरण के उदाहरण हैं—सेवानिवृत्ति योजनाएं, स्वास्थ्य बीमा, सवेतन अवकाश आदि। आन्तरिक अभिप्रेरण कार्य निष्पादन के समय प्रकट होता है। कार्य में सफलता, मान्यता, उत्तरदायित्व, सहभागिता आदि से सहकर्मियों के स्वाभिमान एवं आत्मगौरव को बल मिलता है। उन्हें आत्म-संतोष प्राप्त होता है। कार्य की निष्पत्ति के लिए वास्तविक अभिप्रेरक तो आन्तरिक प्रेरणा ही होती है। विद्वानों का अभिमत है कि बाह्य अभिप्रेरणा भी तब ही कारगर होती है जब इसे अन्त:ग्राह्य कर लिया जाये। बाह्य अभिप्रेरण अक्सर संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं किन्तु आन्तरिक अभिप्रेरण कर्मचारी की भावनाओं, रूचियों और कार्य के प्रति लगाव की स्थितियों को बदलने में समर्थ होते हैं।

मनुष्य में कई प्रकार के चिन्ताभाव अर्थात उत्सुकता (anxiety) तथा अन्तर्द्वन्द्व (inner conflict) विद्यमान रहते है क्योंकि जीवन में ऐसी कई घटनाएं उन्हें जागृत और उत्तेजित करती रहती हैं।

चिन्ता तत्त्व (anxiety elements) मनुष्य के चेतन मस्तिष्क में उथल-पुथल मचाने में निम्नलिखित तत्त्व सहयोग करते हैं—1. अरूचिकर कार्य, 2. प्रबंधक द्वारा डॉट-डपट करना, 3. सहयोगियों से अलग पड़ जाना, 4. कार्य के प्रति उदासीनता, 5. उपलब्धियों के प्रति निराशा, 6. निरन्तर चिन्ता, 7. घर पर आराम नहीं मिलना, 8. किसी अप्रत्याशित घटना की आशंका तथा 9. व्यक्तिगत कठिनाइयां—(अ) सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा नहीं कर पाने पर अपमान की चिंता, (ब) बड़ों और बच्चों के प्रति कर्त्तव्य निर्वाह नहीं कर पाने की चिन्ता, (स) अवचेतन में कोई लज्जाजनक कार्य हो जाने की चिन्ता, (द) पारिवारिक कलह की चिन्ता आदि।

इसी प्रकार कई अन्तर्द्वन्द्व की स्थितियां भी जीवन में कष्टदायी होती है। इन के कारण वह अपने जीवन से घबराया सा रहता है तथा किसी कार्य में उसकी रूचि नहीं बन पाती। मस्तिष्क सदैव भारी रहता है और वह कुछ भी कर पाने की स्थिति में नहीं रह जाता। अन्तर्द्वन्द्व की स्थितियों में जीवन के प्रति निराशा, पत्नी के प्रति घृणा, स्वयं के प्रति हीन भावना, बच्चों के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व पूरा नहीं कर पाने की व्यथा, किसी कार्य का बलात् थोपा जाना और उसे करने की इच्छा नहीं होना, या कहीं से सहानुभूति (अपेक्षा रखने पर भी) नहीं मिलना, आदि कुछ उदाहरण हैं।

आन्तरिक अभिप्रेरण इन चेतन तथा अचेतन मस्तिष्क की चिन्ताओं और अन्तर्द्वन्द्व के प्रभाव को दूर करने के उपाय करता है। कर्मचारी को उचित वातावरण तथा प्रासंगिक उदाहरण देकर समझाया जाता है कि कोई भी व्यक्ति इस विश्व में पूर्णत: संतुष्ट नहीं हैं। यह बात उसके अन्तर्द्वन्द्व को कम करने में सहायक होती है तथा उसमें कार्य के प्रति रूचि उत्पन्न करती है।

निम्नलिखित उपाय आन्तरिक अभिप्रेरक कहे जा सकते हैं—

1. अरूचिकर कार्य को रूचिकर बनाने का प्रयास।
2. रचनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहन।
3. हीन भावना दूर करने का प्रयत्न।
4. भय (वास्तविक एवं कृत्रिम) को दूर करने का प्रयास।
5. अनिर्णायकता से मुक्ति के प्रयास।
6. अति-भावुकता में कमी के प्रयास।

'गुलरमेन' के अनुसार आन्तरिक अभिप्रेरण का अर्थ आत्मज्ञान द्वारा कार्य (self-action) के लिए प्रेरणा है। यह प्रेरणा व्यक्ति को आगे बढ़ाने में सहायक होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.3 अभिप्रेरण प्रक्रिया

अभिप्रेरण के अर्थ को समझना आसान है किन्तु उसकी प्रक्रिया को समझना आसान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएं अनन्त होती हैं, वह आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए प्रयत्न करता है तथा कार्य के लिए अभिप्रेरित होता है। संतुष्ट आवश्यकताएं अभिप्रेरक नहीं रह जाती हैं। केवल असंतुष्ट आवश्यकताएं ही प्रेरक होती हैं। प्रश्न यह उठता है कि कौन असंतुष्ट आवश्यकता कार्य के लिए प्रेरणा प्रदान करेगी? अनन्त आवश्यकताओं में से कुछ ही पूरी हो सकती हैं। शेष अपूर्ण रह जाती है। उनमें यह निर्धारण करना कठिन है। इसके उपरांत भी अभिप्रेरण प्रक्रिया को निम्नोक्त मोडल द्वारा समझाया जा सकता है।

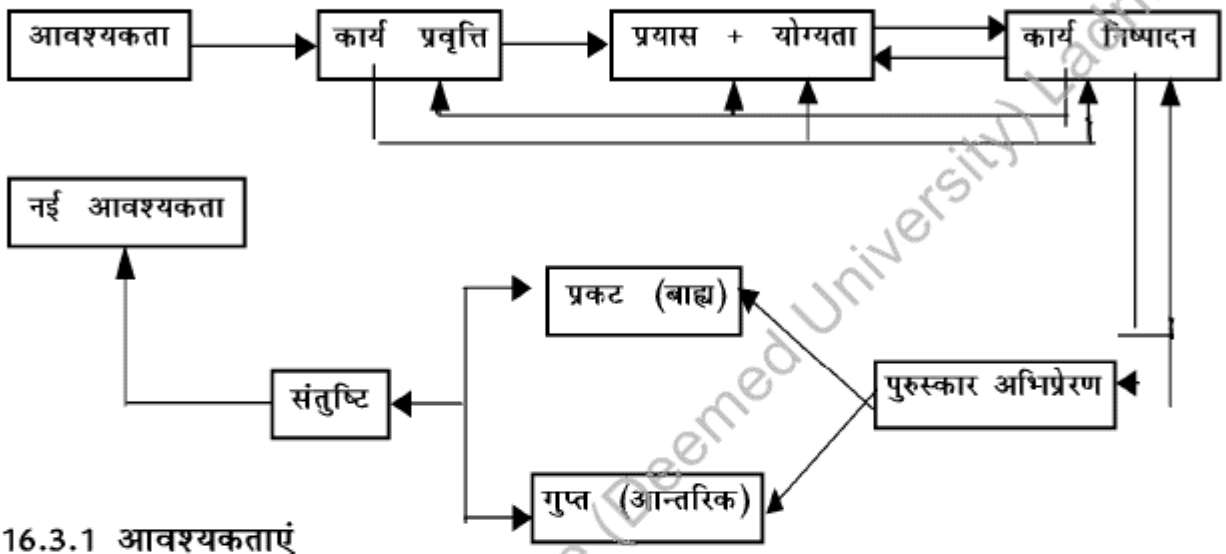

16.3.1 आवश्यकताएं

आवश्यकताएं अनन्त होती हैं। व्यक्ति उनमें से कुछ को चेतन स्तर पर अनुभव करता है। अन्यान्य सभी अवचेतन स्तर पर दबी रहती हैं। समय, स्थान व परिस्थिति के अनुकूल होने पर वे ही उभरकर चेतन स्तर पर आती रहती हैं। उनमें से प्राथमिक स्तर पर जो पहला स्थान प्राप्त करती हैं वे ही अभिप्रेरक बन जाती हैं। चाहे वे पहले से चेतन स्तर पर हो या बाद में आई हो।

16.3.2 कार्यप्रवृत्ति

जब मनुष्य किसी भी आवश्यकता को प्राथमिकता देता है तो वह उसका महत्त्व भी समझता है। यह भी समझता है कि उस प्राथमिकता के पूरा होने पर उसे क्या सुख मिलेगा एवं पूर्ति नहीं होने पर उसे क्या दु:ख होगा। इसी सुख की प्राप्ति एवं दु:ख से मुक्ति के लिए वह कार्य में प्रवृत्त होता है। कार्य में प्रवृत्ति अन्य तीन बातों पर भी निर्भर है–1. कार्य का महत्त्व, 2. सफलता की संभावना एवं 3. मिलने वाला पुरस्कार/प्रतिफल। यदि कार्य का महत्त्व अधिक हो एवं सफलता की संभावना पूरी हो तो पुरस्कार की संभावना कम होने पर भी व्यक्ति कार्य में प्रवृत्त हो जाएगा।

16.3.3 प्रयास एवं योग्यता

मनुष्य का पुरुषार्थ उसकी क्षमता, योग्यता एवं रुचि का परिणाम होता है। जिस कार्य के प्रति सहकर्मियों को उत्तरदायी बना दिया जाता है, उसे वे जी-जान से पूरा करने अथवा आधी रुचि से पूरा करने अथवा औपचारिकतावश पूरा करने का प्रयत्न करता है। यदि व्यक्ति की रुचि उस कार्य में है तो वह अपने प्रयास एवं योग्यता से कार्य का निष्पादन करेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16.3.4 निष्पादन

प्रयास-योग्यता के सम्मिलित प्रभाव को परिणति या निष्पादन या प्रतिफल के रूप में देखा जाता है। यहां प्रयास एवं निष्पादन में दो तरफा अभिप्रेरण होता है। ठोस प्रयास एवं कुशलता से कार्य निष्पादन सफलतापूर्वक किया जाता है। सफल निष्पादन से व्यक्ति की योग्यता बढ़ती है तथा और अधिक प्रयास करने के प्रति उत्साह जागृत होता है। इसी क्रम में व्यक्ति कार्य के महत्त्व को अधिक अच्छे ढंग से समझने लगता है। उसकी कार्य प्रवृत्ति बढ़ती है। निर्णय लेने की क्षमता तथा अधिक साहसिक कार्य करने में रुचि बढ़ती है।

16.3.5 पुरस्कार

पुरस्कार की राशि एवं मात्रा सहकर्मियों के लिए अभिप्रेरण का काम करती है। यह अभिप्रेरण बाह्य होते हुए भी सहकर्मी को प्रेरित करने में समर्थ होता है तथा उसमें कार्य के प्रति आन्तरिक रुचि उत्पन्न करता है।

16.3.6 संतोष

आवश्यकता जनित कार्य प्रवृत्ति इस प्रकार निरन्तर अभिप्रेरण प्राप्त करते हुए कार्य समापन पर संतुष्टि के रूप में व्यक्ति को उपलब्ध होती है। जब एक आवश्यकता संतुष्ट हो जाती है तो वह कार्य के लिए प्रेरक नहीं रह जाती। फिर नई आवश्यकता, नए उद्देश्य और नई योजना पर कार्य प्रारम्भ किया जाता है।

16.3.7 अभिप्रेरण के चरण

कीथ डेविस ने अभिप्रेरण प्रक्रिया को निम्नलिखित चरणों में विश्लेषण किया है। इसमें प्रबंधक के प्रयास सूचीबद्ध किये गये हैं।

1. उद्देश्य निर्धारण
2. कर्मचारी भावना का अध्ययन
3. संप्रेषण
4. हितों का समन्वय
5. सहायक दशाएं उपलब्ध करना
6. टीम भावना (सामुदायिक चेतना)

उपरोक्त योजना में प्रबंधक द्वारा सर्वप्रथम उद्देश्य निर्धारण किया जाता है। उसके बाद वह उन व्यक्तियों की भावना का अध्ययन करता है जिनसे उसे काम लेना है। भावना के प्रति समझ जागृत करके वह अपनी बात कर्मचारियों के सामने रखता है। संप्रेषण द्वारा आपसी समझ विकसित हो जाने पर कर्मचारी और प्रबंध के हितों का समन्वय होता है। जैसा कि प्रारंभ में लिखा गया है ''अभिप्रेरण एक स्वार्थ है'' प्रबंधक एवं कर्मचारी अपने-अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए कार्य निष्पादन करने लगते हैं। ऐसे कार्य निष्पादन के लिए सहायक दशाएं उपलब्ध की जाती हैं तथा कर्मचारियों में टीम भावना जागृत करके कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाती है। हितों का समन्वय एवं सहायक दशाओं की उपलब्धि के अन्तर्गत पुरस्कार योजनाएं, प्रशंसा, पदोन्नति, मान्यता आदि सभी प्रकार के अभिप्रेरकों का उपयोग सम्मिलित है। इससे प्रयास में सफलता आदि सभी प्रकार के अभिप्रेरकों का उपयोग सम्मिलित है। इससे प्रयास में सफलता मिलती है तथा उद्देश्य पूर्ति होती है। यह क्रम प्रत्येक नये प्रयास के लिए चलता है।

16.4 आदर्श अभिप्रेरण प्रणाली (A model motivation system)

अच्छी अभिप्रेरण प्रणाली में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए—

1. अभिप्रेरण प्रणाली स्थायी एवं दीर्घकालीन हो जिसमें समय-समय पर परिवर्तन नहीं किये जाये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अभिप्रेरण प्रणाली में परिवर्तन पक्षपात एवं शंकाओं को स्थान देते हैं।

2. वह संस्था के उद्देश्यों, नीतियों एवं आदर्शों के अनुकूल होनी चाहिए। बड़े काम के लिए छोटे पुरस्कार या आसान काम के लिए बड़े पुरस्कार दोनों हानिकारक सिद्ध होते हैं।
3. अभिप्रेरण प्रयासों के अनुरूप होने चाहिए।
4. अभिप्रेरण उत्पादन को प्रोत्साहन देने वाले हो।
5. न्यायपूर्ण अभिप्रेरण ही सही रूप में सफल हो सकते हैं।
6. अभिप्रेरण प्रणाली सरल एवं समझ में आने वाली हो।
7. अभिप्रेरण की प्रकृति प्रतिस्पर्धात्मक हो।
8. अभिप्रेरण प्रणाली संगठन पर न्यूनतम वित्तीय भार वाली हो।
9. अभिप्रेरण प्रणाली पर्याप्त लोचदार होना चाहिए।
10. संगठन की प्रतिष्ठा वृद्धि में सहायक होनी चाहिए।
11. अभिप्रेरण प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन एवं मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
12. अभिप्रेरण प्रणाली कर्मचारी हितों की वृद्धि करने वाली हो।

16.5 जटिल व्यक्ति

प्रत्येक संगठन, समुदाय, संस्था या परिवार में किसी न किसी जटिल प्रकृति वाले व्यक्ति से सामना हो ही जाता है। ये ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके बारे में शुभचिंतक लोग सलाह देते रहते हैं कि इनसे सावधान रहना है क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसे लोगों से काम लेना या सहयोग प्राप्त करना कितना कठिन है, दु:साध्य है। अत: शुभ चिंतक वैसे लोगों के प्रति सतर्क करते रहते हैं जिससे उनके असामाजिक व्यवहारों का अच्छे ढंग से सामना किया जा सके।

यदि हम विस्तार से यह जानना चाहे कि कठिन/जटिल व्यक्तियों मे ऐसा क्या है जिससे निपटना कठिन होता है तो हमें ऐसे व्यक्तियों की भावनाओं, प्रतिक्रियाओं, निर्णयों एवं समस्याजनक व्यवहारों का लेखा-जोखा दूसरों से प्राप्त हो जाता है। यदि उस व्यक्ति से हमारा भी परिचय हो तो हमें उसकी कुछ जानकारियां सही लगती हैं किंतु सभी नहीं।

16.5.1 जटिल व्यवहार के कारण

सच्चाई यह है कि कोई भी व्यक्ति जटिल नहीं होता है। सामान्यतया व्यक्ति के कुछ व्यवहार मात्र जटिलता के कारण होते हैं संपूर्ण व्यक्तित्व नहीं। प्राय: समस्या तब खड़ी होती है जब दो व्यक्तियों के बीच किसी मुद्दे पर सही संवाद् स्थापित नहीं होता है अथवा अपसी सहयोग में कमी होती है। ऐसे समय में कुछ व्यक्तियों द्वारा नासमझी भरे कदम उठाये जाते हैं या प्रतिक्रियाएं दर्शायी जाती हैं। कभी-कभी पूर्व धारणाओं के कारण भी व्यक्ति असहयोग करना प्रारम्भ कर देता है। अधिकतर जटिल व्यवहार व्यक्ति की अपनी हठधर्मिता एवं जिद का परिणाम है। ऐसे व्यक्तियों के समस्याग्रस्त दृष्टिकोण, आग्रह एवं व्यवहारों को उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से भिन्न करके देखने से उसका सामना करना, निपटना या उनसे काम लेना आसान हो जाता है। इससे समस्याग्रस्त व्यक्ति को उस व्यवहार से मुक्त होने में भी सहायता मिलती है।

16.5.2 जटिल व्यक्ति कौन है?

थोड़ा चिंतन करें आपके लिए जटिल व्यक्ति कौन हैं? अर्थात् आप जटिल किसे मानते हैं? संभवतया आप अपने कार्य समूह में जटिल उन्हें मानते होंगे जो सहयोग नहीं करता है, अनावश्यक आलोचना करता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है, मायावी एवं कुटिल है, अविश्वसनीय है, पूर्वाग्रही है, आदि-आदि। इसके अतिरिक्त आप उन लोगों को भी इसी श्रेणी में रखते होंगे जो आपके दायित्वों एवं अधिकारों को हेय दृष्टि से देखते हैं, ईर्ष्या करते हैं, जो दोहरी भाषा बोलते हैं एवं दोहरा व्यवहार करते हैं? यदि वास्तव में ही ऐसा है तो आप दूसरों के अवगुणों पर अधिक ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं न कि स्वयं पर।

अब उन स्थितियों की कल्पना करें जब दु:साध्य व्यक्ति से आप निपट रहे हैं। उस व्यक्ति की भाव-भंगिमा, आवाज व दृष्टिकोण पर ध्यान केन्द्रित करें। अब थोड़ी देर बाद पुन: ध्यान केन्द्रित करें कि स्वयं की प्रतिक्रियाएं उस व्यक्ति के प्रति कैसी रही हैं?—इस पर ध्यान केन्द्रित करें। और भी हमारे भीतर किस प्रकार के भाव उत्पन्न हो रहे हैं? किस प्रकार के विचार आ रहे हैं? हमने उस व्यक्ति के प्रति कैसा व्यवहार किया? कुछ समय के लिए इस प्रकार विभिन्न स्थितियों एवं व्यक्तियों पर विचार करें। क्या आप अपने भीतर किसी विशेष प्रकार की स्थिति का अनुभव करते हैं।

प्रथम बार के ध्यान में वही बातें आपको मिलेंगी जो आप उन व्यक्तियों के बारे में सोच रहे हो, जिसको सामान्यतया संभालना कठिन होता है। किंतु उन व्यवहारों के प्रति जो प्रतिक्रियाएं व्यक्त की जाती हैं वे व्यक्ति-व्यक्ति में एकरूप नहीं होती हैं। उसमें अत्यधिक भिन्नताएं पायी जाती हैं क्योंकि अवांछित या असामाजिक व्यवहार क्या-क्या होते हैं? इस बारे में लोगों की राय में कुछ समानताएं अवश्य दिखाई देती हैं किन्तु उनसे निपटने के उपायों में बहुत अधिक विविधता देखी जा सकती है।

जब कठिन व्यक्तियों से आमना-सामना होता है तो उनसे निपटने के लिए लोगों के तरीके भी बहुत अलग-अलग होते हैं। कुछ लोग आक्रामक बन जाते हैं, कुछ लोग ऐसे व्यक्तियों से बचना चाहते हैं, कुछ ऐसे भी होते हैं जो उनकी हरकतों पर करुणादृष्टि डालते हुए उनके प्रति सहयोगात्मक रुख अपनाते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यक्ति विशेष से उसके किसी व्यवहार विशेष के कारण किसी परिस्थिति विशेष में और किसी विशेष अवसर पर अपने आपको परेशानी में अनुभव करता है। किंतु हो सकता है वही स्थिति किसी दूसरे के लिए परेशानी का कारण न भी हो।

16.5.3 आत्म-निरीक्षण

यह महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी होगा कि कठिन व्यक्तियों की सूची बनाएं एवं उनका वर्गीकरण करें। इससे उनके व्यवहारों से अप्रभावित रहने की क्षमता बढ़ेगी। साथ ही साथ उनके व्यवहारों से निपटने के लिए सही रणनीति के चयन में सहायता मिलेगी।

अब ध्यान की मुद्रा में बैठें। उन व्यक्तियों की स्मृति करें जो आपको कठिन लगते हैं। उनके नाम एवं उनके व्यवहार विशेष की तालिका बना लें। अब क्रमश: पुन: ध्यान में बैठकर एक-एक व्यक्ति को याद करें। उनके कठिन एवं अवांछित व्यवहार को देखें, चारों ओर की परिस्थिति को देखें, उसके दृष्टिकोण एवं भाव-भंगिमा को देखें।

अब अपने आपको देखें, उसके व्यवहार का स्वयं पर प्रभाव कैसा पड़ा? आपके भाव क्या बन रहे हैं? आपका उसके प्रति दृष्टिकोण कैसा है? आपका व्यवहार उसके प्रति कैसा है? इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के साथ अपने भाव, दृष्टिकोण एवं व्यवहार का आकलन करें। क्या आप अधिकांशतया बचना चाहते हैं? अथवा आक्रामक रुख अपनाते हैं? अथवा व्यंग्यात्मक भाषा का उपयोग करते हैं? अथवा अत्यधिक चिंतित हो जाते हैं?

क्या आपको कठिन व्यवहारों में कोई समानता दिखाई दे रही है? अथवा कठिन व्यक्तियों के चरित्र में कोई विशेष एकरूपता दिखाई देती है? क्या आपकी प्रतिक्रियाओं में एकरूपता है या विभिन्नता? क्या आपको इस अभ्यास से कोई महत्त्वपूर्ण बोध पाठ या अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस अभ्यास को आत्म-निरीक्षण के प्रयोग को सामने वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण से करें जो आपको कठिन एवं जटिल व्यक्ति के रूप में देखता है। वह आपके किन-किन व्यवहार, दृष्टिकोण एवं भावों को दु:साध्य मानता है? इससे उन पर क्या-क्या प्रभाव पड़ता है? वह इनसे किस प्रकार निपटता है?

क्या दूसरे व्यक्ति को दु:साध्य मानना सरल है? अथवा अपने को? कठिन व्यक्ति के बारे में क्या स्वयं की एवं दूसरों की मान्यताएं समान हैं? अपने उत्तर को दूसरों से मिलकर, पूछकर जांच सकते हैं।

16.5.4 जटिल व्यवहार

अलग-अलग प्रकार के जटिल व्यवहारों का वर्गीकरण करने से व्यक्तियों को समझने में सुविधा होती है। इससे यह निर्धारण करना आसान हो जाता है कि उनसे निपटने के लिए सबसे अच्छा उपाय क्या हो सकता है? हमें व्यवहार की जटिलता और उसको करने वाले व्यक्ति को अलग-अलग देखना भी आना चाहिए। ऐसा करने से हम व्यक्ति के प्रति सहानुभूति के साथ अवांछित व्यवहार पर कारवाई कर सकते हैं। व्यक्ति को तिरस्कृत या अपमानित करने से बचा जा सकता है। महात्मा गांधी ने इसी अनुभूति को शब्दों में बांधते हुए कहा है कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।

अवांछित या जटिल व्यवहारों का वर्गीकरण मात्र सुविधा एवं समझ के विकास के लिए है। यह व्यक्ति के संपूर्ण व्यवहारों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। यह तो केवल व्यवहार को समझने एवं अन्य व्यवहारों से पृथक् देखकर उसका सही हल खोजने का प्राथमिक प्रयास है।

16.5.5 जटिल व्यवहारों के प्रकार

जटिल व्यवहारों को समझने में सुविधा हो इसके लिए कुछ व्यवहारों का वर्णन किया जा रहा है। ये विशेष प्रकार के व्यवहार अधिकांशतया स्वयं ही रक्षा एवं क्षतिपूर्ति के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। वास्तव में जरूरत इस बात की होती है कि व्यक्ति के व्यवहार के पीछे मूल कारण को खोजा जाए। जैसे-जैसे हम दूसरों के व्यवहारों को समझने का प्रयास करते हैं वैसे-वैसे स्वयं के व्यवहारों को भी ठीक से समझने लगते हैं एवं स्वीकार करने लगते हैं। व्यवहार को समझना एवं सहानुभूति के साथ उस पर विचार करना किसी भी जटिल व्यवहार से निपटने का पहला कदम है। इसी से व्यक्ति का सही दिशा में निर्माण संभव होता है।

यह वर्गीकरण केवल विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को समझने में सहायक होता है किंतु किसी भी एक व्यक्ति में ये संपूर्ण गुण दिखाई नहीं देंगे। हो सकता है स्वयं के व्यवहारों का भी कुछ-कुछ प्रतिबिम्ब उसमें दिखाई पड़े। हम किसी व्यक्ति से किसी विशेष अवसर पर जो व्यवहार करते हैं, ठीक उससे भिन्न व्यवहार अन्य अवसर पर करते हैं। हमारा व्यवहार भी सदा एक जैसा नहीं रहता है। समय एवं परिस्थिति के अनुरूप बदलता रहता है।

पांच प्रकार के जटिल व्यवहार के अतिरिक्त एक स्पष्ट व सरल व्यवहार होता है। जिसमें व्यक्ति विधायक दृष्टिकोण रखता है एवं सभी बातों को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश करता है। वह स्पष्टवादी होता है। इससे बात को घुमा-फिराकर या तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने की आदतें नहीं होती हैं। बीच में बोलने या बात काटने या किसी को दबाने की बात वह नहीं सोचता है। सरल व स्पष्ट वक्ता अपने लिए बात करते समय सीधे तौर पर अधिकृत व्यक्ति से बात करते हैं। उनकी कथनी व करनी में एकरूपता होती है। कहने व करने के तरीके में भी समानता होती है।

1. अधिकारियों या कर्मचारियों में ऐसे लोग भी होते हैं जो किसी कार्य में सहयोग मांगने पर शिकायतों का अम्बार लगा देते हैं। वे असहयोग के साथ अपनी तुलना अन्य साथियों से करने लगते हैं। अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए दूसरों पर दोषारोपण कर स्वयं अपने कर्त्तव्य से बचने का प्रयास करते हैं।

2. कुछ व्यक्ति अपने आपको अन्दर ही अन्दर महत्त्वहीन अनुभव करते हैं। उन्हें निरन्तर दूसरों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समर्थन की आवश्यकता होती है। वे समय-समय पर अपनी असहायता, शक्तिहीनता व कमजोरी भी प्रदर्शित करते हैं। ऐसे लोग भय व असुरक्षा की भावना में हां में हां मिलाने में विश्वास करते हैं। उनकी अपनी कोई अहमियत नहीं होती है। वे अपने आपको ऐसा भी दिखाते हैं कि वे सबकी बातों का समन्वय करते हुए सबके आपसी मतभेदों का निपटारा कराने में कुशल हैं। किंतु जब कर्त्तव्य व दायित्व की बात आती है तो वे पीछे हट जाते हैं।

3. कुछ व्यक्ति अत्यधिक तार्किक होते हैं। वे हर बात को तर्क की कसौटी पर कसते हैं, आंकड़ों की बात करते हैं एवं उसकी व्याख्या में अधिक रस लेते हैं। वे अपने आपको आदर्श चिंतनशील व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ऐसे व्यक्ति अधिकांशत: नीरस, बोझिल एवं एकाकी होते हैं। वे प्राय: लम्बा भाषण देते हैं। अपनी बात को स्पष्ट करने का प्रयास करते रहते हैं। वे अन्दर से अपने आपको अकेला व अवांछित अनुभव करते हैं।

4. कुछ लोग बहुत ज्यादा व्यग्र और उतावले होते हैं। वे असम्बद्ध बातें करते हैं, मूल काम की बात पर ध्यान कम देते हैं। वे एक साथ अनेक कार्यों में हाथ डाल देते हैं। वे छिछला व बच्चों जैसा व्यवहार करते हैं। वे दूसरों को भी अस्थिर बना देते हैं एवं असमंजसता में डाल देते हैं। गहराई से विचार किया जाये तो ऐसे व्यक्ति में स्नेह, सौहार्द व वात्सल्य पाने की तीव्र भूख होती है। उनके सामने जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होता है। उन्हें ऐसा महसूस होता है कि इस संसार में मेरा कोई नहीं है।

5. कुछ लोग टालमटोल प्रकृति के होते हैं। वे घूमते रहते हैं। वे ऐसा नाटक करते हैं कि उन्हें कुछ पता ही नहीं हो। कार्य के बारे में पूछने पर कोई न कोई बहाना तैयार रखते हैं अथवा कह देंगे कि मैं तो भूल ही गया अथवा इधर-उधर झांकने लगते हैं। वे अपने आपको बड़ा मानते हैं। किंतु वे बहुत कमजोर व अयोग्य साबित होते हैं। अन्दर ही अन्दर उन्हें बाहरी दुनिया से डर लगता है। वे चाहते हैं कि उनका कोई बराबर ध्यान रखे। काम में आकर सहयोग करता रहे।

16.5.6 अन्य वर्गीकरण

व्यवहार को बांटने के अन्य तरीके भी हैं—

एक तरीका पहले काम में लिया गया था, जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों को चार भागों में बांटा गया—आक्रामक, नरम एवं संकोची, तेज एवं चालाक, स्पष्ट एवं सरल।

आक्रामक या गरम स्वभाव वाला व्यक्ति दूसरों के अधिकारों की अवहेलना कर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करता है। उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दूसरों को नुकसान पहुंचाने व अपमानित करने में भी संकोच नहीं करता है।

नरम एवं संकोची स्वभाव वाला अपने अधिकारों का सम्यक् उपयोग नहीं कर पाते हैं। दूसरे व्यक्ति उसका अनावश्यक लाभ उठाते रहते हैं।

तीसरे प्रकार के व्यक्ति या अधिकारी बहुत तेज एवं चालाक होते हैं। उनकी कमजोरियों का फायदा उठाना बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। उनके साथ रहने वाले लोग अपने को ठगा हुआ अनुभव करते हैं।

सुदृढ़ व्यक्तित्व वाले अधिकारी अपने कार्य की जिम्मेदारी स्वयं लेते हैं, अपने अधिकारों की सुरक्षा करते हैं, दूसरों के अधिकारों का सम्मान करते हैं। वे स्पष्ट, सरल व ईमानदार होते हैं।

प्रयोग—अपने आपको ध्यानमुद्रा में स्थित करें एवं उपरोक्त चरित्र वाले व्यक्तियों की स्पष्ट तस्वीर अपने दिमाग में बनाएं। उनकी शारीरिक मुद्रा, बोलने का लहजा और दृष्टिकोण को देखें।

देखें क्या कोई एक विशिष्ट चरित्र वाला व्यक्ति अधिक सम्पर्क या परिचय में है। उसको विशेष रूप से ध्यानावस्था में देखें। उनका चरित्र चित्रण करें। अपने चरित्र से तुलना करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अब अपने जीवन में उपस्थित लोगों को देखें। क्या कोई चरित्र-विशेष उनसे मेल रखता है? जिससे मेल खाता है उनके व्यवहार व दृष्टिकोण से तुलना करें। इस प्रकार करने से आपके भीतर क्या भाव व दृष्टिकोण बनते हैं? इस अभ्यास से ऐसे व्यक्तियों की दृष्टि व भावों को समझने में बहुत सहायता मिलेगी।

बोध प्रश्न 1:

---

1. अभिप्रेरण की प्रक्रिया को समझाएं?
2. जटिल व्यवहार के कारण बताएं?

16.6 जटिल व्यवहार का प्रभाव

दैनिक जीवन के कार्यों मे जब सहकर्मियों के व्यवहार मनोनुकूल एवं सहयोगात्मक नहीं होते हैं तब अधिकारी का मनोबल बहुत अधिक प्रभावित होता है। उनसे भावनाएं आहत होती हैं एवं मानसिक संतुलन भी बिगड़ता है। उस समय आक्रोश अथवा निराशा के भाव भी आ जाते हैं। यह स्थिति बार-बार उभरे तो सामने वाले व्यक्तियों द्वारा कोई गहरी साजिश की गंध आने लगती है। उस समय सही अधिकारीगण उस स्थिति का विश्लेषण न कर पाये तो अपने आपको असमंजस व दुःखद स्थिति में पाते हैं।

16.6.1 मनोबल एवं जटिल व्यवहार

सहकर्मियों के असहयोगात्मक एवं जटिल व्यवहार के कारण नेता अथवा अधिकारी का मनोबल कमजोर पड़ता है जो कार्य वह करवाना चाहता है उसमें एक बार निराशाजनक स्थिति बन जाती है। वे इस असहयोग का कोई निश्चित कारण अपने में ढूंढ नहीं पाते हैं। इस निराशाजनक स्थिति को तोड़ा जा सकता है। जिस प्रकार से दूसरों के व्यवहार से हम प्रभावित होते हैं, वैसे ही हमारे व्यवहार से दूसरे प्रभावित होते हैं।

जब जटिल सहकर्मियों से काम लेना पड़ता है तो ऐसा लगता है कि बहुत सारी बातें अनुकूल नहीं हैं, जैसा हम चाहते हैं वैसा सहयोग नहीं मिल पा रहा है। हम कुछ समय के लिए अपने आपको अकेला और निसहाय अनुभव करते हैं। किंतु यदि अपनी योग्यताओं पर विश्वास हो, अपने पास अन्य तरीके हों, अनेक विकल्प हों तो ऐसे जटिल व्यक्तियों से निपटना आसान हो जाता है।

इसके साथ ही यदि अपने उद्देश्यों के प्रति स्पष्टता हो तो काम और भी आसान हो जाता है। भीड़ भरी सड़क में अनेक बाधाओं को पार करके भी व्यक्ति अपने वाहन को निकाल लेता है क्योंकि उसे अपनी दिशा और मंजिल की स्पष्टता होती है।

निराशाजनक स्थित एक बार के असहयोग से नहीं आती है। यह स्थिति तब बनती है जब ऐसा जीवन में बार-बार होता रहता है। असफलता उसका पीछा नहीं छोड़ती है। इस स्थिति को बदला जा सकता है।

यह एक अवसर है कि हम अपने जीवन की लगाम अपने हाथ में लें। अपने कार्यों के सकारात्मक परिणामों का साक्षात्कार करें। इससे निराशा और असहाय स्थिति में स्वत: आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखाई देंगे।

16.6.2 विकल्प का महत्त्व

बचपन से ही हमारे लिए अधिकांश निर्णय दूसरों द्वारा लिये जाते रहे हैं। हमें यह बतलाया जाता रहा है कि क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए? क्या सीखना चाहिए? कैसे व्यवहार करना चाहिए?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यह आश्चर्य नहीं कि इससे यदि ऐसा लगने लगे कि हमारा निरीक्षण बाहर से हो रहा है एवं हमारे व्यवहार की जिम्मेदारी भी हम पर नहीं है। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं अपने लिए निर्णय लेने एवं चुनाव करने की स्वतंत्रता बढ़ जाती है। बहुत सारे व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो इस अवसर का लाभ नहीं उठा पाते हैं।

अपने आपको शक्तिहीन नहीं, किंतु शक्तिशाली अनुभव करना है। इसके लिए पहली आवश्यकता है अपने आप में आस्था का जागरण—मेरे में शक्ति है, अपने लिए मैं स्वयं निर्णय कर सकता हूं, अपने लिए स्वयं चुनाव कर सकता हूं।

आत्म-नियंत्रण की स्थिति को प्राप्त करने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति यह अनुभव करने लगे कि मेरे पर नियंत्रण किसी ओर का नहीं किंतु स्वयं मेरा है, मुझे कोई सुखी अथवा दु:खी नहीं बना सकता। आत्म-नियंत्रण की चाबी किसी दूसरे के पास नहीं किंतु स्वयं मेरे पास है। ऐसा अनुभव करने वाले व्यक्ति—

- अपने व्यवहार की जिम्मेदारी स्वयं लेते हैं।
- दूसरों के व्यवहार की जिम्मेदारी भी उसी दूसरे व्यक्ति मानते हैं।
- अपने चारों तरफ की घटनाओं का भली-भांति निरीक्षण करते हैं।
- अधिक चिंता में नहीं उलझते हैं।
- अधिकारों को प्राप्त कर दुरुपयोग नहीं करते हैं।
- वे निर्णायक पुरुषार्थ व परिश्रम पर अधिक विश्वास करते हैं।
- वे अपने व्यवहार में आत्म-नियंत्रण का अधिक से अधिक परिचय देते हैं।

16.6.3 जटिल व्यवहारों के प्रति अपना व्यवहार

जटिल व्यवहारों के वर्गीकरण के साथ साथ, उनके जवाब में स्वयं के व्यवहारों का आकलन करना भी अत्यन्त उपयोगी रहता है। सहकर्मियों के अवांछित एवं जटिल व्यवहार के जवाब में अनेक प्रकार के व्यवहार व्यक्ति द्वारा किये जाते हैं। उनका त्वरित गति से आकलन करना अपनी प्रतिक्रियाओं को पहचानने में बहुत सहायक होता है।

एसे जटिल व्यक्तियों से निपटते समय क्या हम एक दूसरे से दूर रहते हैं अथवा समीप चले जाते हैं? ऐसी स्थिति से सामना होने पर अपने आपसे जिज्ञासा करें कि

1. क्या सामनेवाला मुझ पर आक्रमण कर रहा है अथवा शारीरिक या मानसिक रूप से दबाना चाहता है?
2. क्या वह मुझे कार्य से हटाना चाहता है या स्वयं कार्य से बचना चाहता है।
3. क्या मेरे कार्य के लिए आश्वासन प्राप्त हो गया है अथवा उनसे अभी बात करनी है।

यदि हम यह महसूस करते हैं कि सामने वाले व्यक्ति बार-बार आक्रामक रूप अपना रहे हैं तो हो सकता है हम पीछे हट जायें। यदि हमें सारे कार्यक्रम से बाहर निकालने का प्रयास किया जा रहा हो तो संभव है कि उनसे बात करें, उनको मनवाने की कोशिश करें। ये सारे प्रयास दीर्घकालीन रणनीति की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं होते हैं।

जटिल चरित्रवाले व्यक्तियों से निपटने का सबसे अच्छा उपाय है परस्पर संवाद। इसका तात्पर्य यह है कि एक दूसरे के विचारों, भावनाओं एवं अपेक्षाओं का आदर करते हुए खुले दिमाग से खुलकर बात करने की तैयारी। इसके अन्तर्गत अपनी अपेक्षाओं को स्पष्टतया सामने रखा जाता है एवं दूसरे की अपेक्षाओं को धैर्य से सुना जाता है। एक ऐसा सर्वमान्य रास्ता खोजा जाता है जिससे दोनों पक्षों की निराशा और अन्तर्द्वन्द्व को दूर किया जा सके।

सुदृढ़ अभिव्यक्ति में विचारों की स्पष्टता, सही शब्दों का चयन एवं अनुरूप आवाज पर विशेष

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ध्यान दिया जाता है। आलोचना एवं मूल्यांकन करते समय व्यवहार एवं कार्यों की आलोचना की जाती है न कि व्यक्ति की। किसी कार्य विशेष के लिए दोषी पाये जाने पर उसी कार्य के लिए ही क्षमा मांगी जाती है। इसमें व्यक्ति का दृष्टिकोण संरचनात्मक होता है न कि विध्वंसात्मक। व्यक्ति किसी को जीतने या किसी को हराने के लिए बात नहीं करता किन्तु संतोषजनक समाधान प्राप्त हो इसके लिए प्रयास किया जाता है।

16.6.4 अपने व्यवहार का चयन

अधिकतर हम ऐसे व्यक्तियों एवं परिस्थितियों का चयन करते हैं जिसे हम अच्छे ढंग से संभाल सकें। इसके ठीक विपरीत उन स्थितियों एवं व्यक्तियों से बचना चाहते हैं जिसे हम ठीक से संभाल न पाते हों। लेकिन कभी-कभी ऐसी स्थितियां भी बनती हैं जब चाहे-अनचाहे वैसे व्यक्तियों एवं परिस्थितियों को संभालना पड़ जाये। उन परिस्थितियों में भी हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि अब हमारे पास कोई विकल्प नहीं, अब क्या करें? वहां भी बहुत सारे विकल्प होते हैं।

यहां पर अनेक विकल्पों पर विचार किया जा रहा है। उनकी उपयोगिता इस बात पर निर्भर है कि सामने व्यक्ति कौन है? परिस्थितियां कैसी हैं? सही विकल्प के चयन के लिए उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर एक प्रक्रिया को सुनिश्चित करना होगा। यह याद रखना चाहिए कि जटिल व्यवहारों से निपटने के लिए कोई एक उपाय सही नहीं हो सकता। अनेक उपाय हैं वे सभी विभिन्न व्यक्ति विशेष या समय विशेष के लिए उपयोगी हो सकते हैं। स्वयं के लिए भी यह खोज का विषय है कि कौन-सा उपाय सर्वाधिक कारगर हो सकता है। जैसे—

- जटिल व्यवहार की उपेक्षा करना
- अथवा उसे स्वीकार कर लेना।
- दृढ़ता के साथ अपनी सीमा व स्थिति को स्पष्ट करना
- जैसा हो रहा है होने देना
- सहन करना
- सामंजस्य बिठाना
- उस पर परिवर्तन के लिए दबाव डालना
- उसकी पदावनति करना
- अपनी प्रतिक्रिया नहीं दर्शाना, स्थिति को ढीला छोड़ना
- समस्या पर दोनों पक्षों द्वारा मिलकर बात करना
- अपने मित्र वर्ग की सहायता लेना।

16.7 जटिल व्यवहारों से निपटने की रणनीति

अधिकांश लोग जटिल व्यवहारों से निपटने में संकोच का अनुभव करते हैं। उन्हें लगता है कि बात बनने की बजाय बिगड़ नहीं जाए। जब ऐसे व्यवहारों से निपटना हो तो क्रमबद्ध तरीके से विभिन्न उपायों पर ध्यान देना चाहिए। क्रमबद्ध तरीके से कार्यवाही करने में प्रारम्भ में कुछ कठिनाई का अनुभव हो तो भी घबराना नहीं चाहिए। एक-एक करके सभी उपायों को काम लेना चाहिए। सभी दक्षताओं की तरह यह दक्षता भी अभ्यास से ही प्राप्त की जा सकती है। अभ्यास के बाद यह दक्षता भी सहज व स्वत: ही परिस्थिति के अनुरूप कार्य करने लगती है।

16.7.1 क्रमबद्ध उपाय

- बिना किसी प्रतिक्रिया को दर्शाए जटिल एवं कठिन व्यवहार को पहचानें एवं उसे स्वीकार करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- कुछ समय के लिए उसके व्यवहार का अवलोकन करते रहें, तुरन्त कोई प्रतिक्रिया न करें। बाह्य दबाव अथवा आन्तरिक हड़बड़ाहट में कोई भी विध्वंसक कार्यवाही न करें।
- सामान्यतया यह न सोचें कि वह व्यक्ति जानबूझकर ऐसा कर रहा है। अपना दृष्टिकोण यह रहे कि वह ऐसा अज्ञानता या योग्यता की कमी के कारण भी कर सकता है।
- अपने आप पर संयम रखें। उसके व्यवहार को देखकर स्वयं आपा न खोयें।
- अपने मूल्य, लक्ष्य और उद्देश्यों को दिमाग में स्पष्ट करें। वर्तमान परिस्थिति में हम क्या चाहते हैं? वह हमारे लिए कितना महत्त्वपूर्ण है।
- सामने वाले व्यक्ति के व्यवहार का वर्गीकरण करें और निर्णय करें कि उपरोक्त में से कौन-सा उपाय अधिक कारगर होगा।
- अपने उपाय को क्रियान्वित करें।

16.7.2 उपयोगी उपाय

ऐसे अनेक उपाय हैं जो जटिल व्यवहारों को सुलझाने के लिए उपयोगी हो सकते हैं—

1. अत्यंत संक्षेप में अपने उद्देश्य, विचार, अपेक्षा और विश्वास को स्पष्ट कर दें।
2. सामने वाले व्यक्ति की बात की सराहना करते हुए अपने उद्देश्यों और अपेक्षाओं को पुनः दोहराएं, जैसे—आपका विचार ठीक है किंतु.....।
3. उसके व्यवहार से अपने ऊपर होने वाले प्रभाव को बताएं अथवा अपनी भावना को अभिव्यक्त करें। जैसे—मुझे यह कहते हुए दुःख होता है किंतु यह मैं आपको बताना चाहता हूं कि इससे क्या-क्या कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं।
4. अपनी अपेक्षाओं को स्पष्ट करने के बाद समझौते के लिए भी तैयार रहें।
5. यदि उसके व्यवहार से बहुत अधिक क्रोध आ रहा है या भय पैदा हो रहा है तो पहले अपने आपको शांत कर लें।
6. कुछ समय के लिए अपने ध्यान को अन्यत्र लगा दें।
7. उसकी बात को दोहराएं एवं पूछें कि क्या वह यही कहना चाहते हैं, जैसा कि हमने समझा है।
8. उसकी भावना को कुरेदें, जैसे कि हो सकता है आप कहना न चाहें, आप मुझसे परेशान हैं?
9. यदि वह सुनने के लिए तैयार हो तो उसकी समालोचना करें?
10. यदि कोई अन्तर्द्वन्द्व हो तो उसको सामने लाएं। सबसे पहले ऐसी अपेक्षाओं को स्पष्ट रूप से सामने रखें एवं उसके बाद दोनों के लिए उपयुक्त समाधान को खोजें।

16.7.3 परस्पर संवाद

जटिल व्यवहारों को सुलझाने के लिए जब व्यक्ति एक-दूसरे के सामने आते हैं तो प्रायः विवाद और विग्रह बढ़ने की कल्पना उभरती है। यथार्थ में ऐसा नहीं होना चाहिए। पर जटिल व्यवहारों को सुलझाने की कला बहुत कम व्यक्ति जानते हैं। अधिकांश व्यक्ति ऐसी स्थिति को टालना चाहते हैं, स्वयं बचने का प्रयास करते हैं। इससे परस्पर संवाद् का भी कोई सार्थक परिणाम नहीं आता है। परस्पर संवाद् का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि यथास्थिति एवं यथार्थ को प्रेमपूर्वक सामने लाना, जैसा कि कहा गया है—'सत्यं वद, प्रियं वद, सत्यं अप्रियं मा वद' अर्थात् सत्य कहो किंतु प्रिय कहो, सत्य भी अप्रिय मत कहो। उसके दो परिणाम हो सकते हैं। हम जो चाहते हैं वह हमें प्राप्त हो जाये अथवा सामने वाला व्यक्ति नई बात सीखकर जाये।

अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यक्ति के व्यवहार को स्पष्ट रूप से रेखांकित करें, जैसे—'आप विचार-विमर्श के समय बीच में से उठकर चले जाते हो।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- इसके बाद उस व्यवहार का स्वयं पर क्या प्रभाव पड़ा उसको बतायें—''इससे मैं अपने को अपमानित अनुभव करता हूं और उस समय आप पर बहुत क्रोध आता है।''
- फिर किसी घटना विशेष का उल्लेख करें, जो इन दिनों घटित हुई हो, जैसे—''पिछली रात बातचीत के दौरान बीच में से उठकर चले गए जब हम कार्य की जिम्मेदारी पर बात कर रहे थे।''
- अपेक्षित व्यवहार को स्पष्ट करें, जैसे—ठीक है जो हुआ सो हो गया, अब भविष्य में जब तक बात सम्पन्न न हो जाये अथवा आपस में बैठक सम्पन्न न कर लें तब तक आप वहीं उपस्थित रहें।

16.7.4 जटिल व्यवहार के परिष्कार के लिए संवाद् व सहयोग

जटिल व्यवहार के परिष्कार के लिए निम्नलिखित चरणबद्ध कार्यवाही एक सीमा तक सहायक हो सकती है।

1. व्यक्ति से पूछना कि क्या आप अपने बारे में कुछ हमारी राय को जानना चाहेंगे?
2. फिर मुख्य मुद्दे की बात करें, जैसे आपके व्यवहार से मेरे ऊपर और दूसरों पर जो प्रभाव पड़ रहा है, मैं उसकी चर्चा करना चाहता हूं।
3. समस्या को स्पष्टतया, विनम्रता और मधुरता से कहें, जैसे—आपके कटाक्ष व टिप्पणियां अनेक लोगों को एवं मुझे भी कष्टदायक लगती हैं एवं इससे आपके प्रति मन में अच्छे भाव नहीं आते हैं।
4. उसके परिणामों को बताएं, जैसे—यदि यह तुम्हारा व्यवहार इसी तरह चलता रहा तो तुमसे लोग टूट जाएंगे और तुम अकेले पड़ जाओगे या कुछ लोग अनावश्क रूप से छोड़कर चले जाएंगे। इससे सभी को नुकसान होगा।
5. अब सामने वाले व्यक्ति को भी अपनी बात कहने का पूरा अवसर दें। उसकी बात को भी शांति से सुना जाए।

यह याद रखना चाहिए कि परिष्कार का संवाद् कितनी भी मृदुता अथवा स्पष्टता से किया जाये इससे दूसरे व्यक्ति को असुविधा अवश्य होती है। अत: उसे अपने व्यवहार को सुधारने के लिए समय एवं सहयोग अवश्य दिया जाना चाहिए। उसकी बात को भी धैर्य से अवश्य सुना जाना चाहिए। इस कार्य के लिए कुछ अतिरिक्त सावधानी भी बरतनी चाहिए, जैसे—

- ऐसे समय का चयन करना चाहिए जिससे वह बात सुनने की मानसिकता लिए हुए हो।
- ऐसे स्थान का चयन हो जहां दूसरों के आवागमन द्वारा बाधा उपस्थित न हो।
- यदि अनेक बार प्रयास करने पर भी सुधार न हो तो कुछ समय के लिए उस बात को ढीला छोड़ दिया जाए। फिर अवसर आने पर उस पर प्रयास किया जा सकता है।
- एक बार में केवल एक ही मुद्दे को उठाएं। अनेक मुद्दों को उठाकर असमंजस की स्थिति पैदा न करें। अपने आप पर भी संयम रखा जाये।

16.8 विशिष्ट व्यवहारों से निपटने के उपाय

कुछ विशेष प्रकार के जटिल व्यवहारों से निपटने के लिए अनेक उपाय करने पड़ सकते हैं। सामान्य रूप से जिनका अधिक सामना करना पड़ता है उन जटिल व्यवहारों से निपटने की रणनीति में अवश्य दक्षता प्राप्त कर लेनी चाहिए। ऐसे व्यवहार और ऐसी परिस्थितियों से जीवन में बार-बार सामना होता रहता है। इससे निपटने में जितनी अधिक कुशलता प्राप्त करेंगे उतना ही अधिक हम उस प्रकार के लोगों से निपटने में सफल हो सकते हैं।

कुछ जटिल व्यवहारों में से कुछ व्यवहारों का सर्वाधिक सामना होता रहता है, जैसे—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. कार्य से बचने की मानसिकता,
2. अपमानजनक व्यवहार,
3. आक्रामक व्यवहार।

16.8.1 अपमानजनक व्यवहार

अधिकांश लोगों ने विभिन्न अवसरों पर दूसरों द्वारा किये गये अपमानजनक व्यवहार का सामना अवश्य किया होगा। ऐसे व्यवहारों से निपटना कुछ कठिन होता है क्योंकि इन व्यवहारों में स्पष्ट रूप से ऐसा कुछ प्रदर्शित नहीं होता है। किंतु परोक्ष में वैसा किया जाता है। इनसे निपटने के लिए कुछ किया जाए तब भी समस्या यह रहती है कि कहीं हम अनावश्यक प्रतिक्रिया करके बात को उलझा तो नहीं रहे हैं? एवं कुछ भी न करें तो मन कचोटता है कि वह इतनी बेहुदी हरकतें कर रहा है एवं हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं। यदि हम अपने में संतुष्ट हैं, सुव्यवस्थित हैं तो दूसरे के कथनों का हम पर बहुत ज्यादा असर नहीं होगा।

16.8.1.1 अपमानजनक टिप्पणियों से निपटना

यदि अपमानजनक टिप्पणियां स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष हैं तो हम सीधे शब्दों में अपने दिल की बात उन्हें बता दें, जैसे—आपकी टिप्पणी से मुझे बहुत पीड़ा हुइ है। आपके कहने का तात्पर्य क्या है? आप क्या कहना चाहते हैं? इस बात को उसे दोहराएं। वह कह सकता है कि मैंने तो मजाक किया है। पुनः अपनी बात को दोहराएं—तुम्हारे लिए यह मजाक हो सकता है, किंतु मुझे इससे बहुत कष्ट हुआ है।

अधिकांशतया ऐसी स्थितियों का प्रतिकार भय, संवेग की तीव्रता, आक्रोश या असंमंजसतावश नहीं किया जाता है। ऐसे समय में अपनी भावना को सम्पूर्ण आत्म-सम्मान और गौरव को पुनः अनुभव कर सकते हैं। चुनौती को स्वीकार कर सकते हैं।

यह याद रखना चाहिए कि अपमानजनक वाक्यों को सटीक रूप से सामने रखकर कारवाई की जा सकती है। स्पष्टीकरण मांगा जा सकता है एवं भविष्य में अपेक्षित व्यवहार को स्पष्ट रूप से उसे बता देना चाहिए। यही बात लोग भूल जाते हैं एवं उन्हें बार-बार उसी व्यक्ति से अवांछित व्यवहार को भुगतना पड़ता है।

16.8.2 कार्य से बचने की मनोवृत्ति एवं व्यवहार

कार्य से बचने का प्रयास करने वाले व्यक्ति से निपटने का अच्छा तरीका यह है कि—

- उसे स्पष्ट शब्दों में अपेक्षित कार्य को पूरा करने की प्रार्थना की जाए।
- मैं चाहता हूं कि आपके वायदे के अनुसार अगले सप्ताह तक यह कार्य आप पूरा कर लें।
- इसका उत्तर यह भी हो सकता है कि वह कहे—"मेरा कम्प्यूटर रिपेयर के लिए गया हुआ है, कब आएगा मुझे पता नहीं है।"
- उसकी कठिनाई के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए यह बताया जाए कि तुम्हें बिना कम्प्यूटर के कार्य करना कठिन होगा फिर भी मैं यह चाहता हूं कि "तुम्हारे वायदे के अनुसार अगले सप्ताह तक यह कार्य पूरा हो जाए।"

स्पष्ट एवं सुदृढ़ पुनरावृत्ति आश्चर्यजनक रूप से कार्य करती है। आवेश या आवेगवश उसकी कमजोरियों को उभारने की कोशिश नहीं करना चाहिए जब तक सलक्ष्य वैसा करना आवश्यक न हो।

यदि सामने वाला व्यक्ति भी स्पष्ट एवं सरल व्यवहार करता है तो एक कार्यकारी समझौता या छूट दी जा सकती है।

बोध प्रश्न 1:

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. जटिल व्यवहार के प्रभाव को बताएं?
2. अपमानजनक व्यवहार हो जाने पर आप क्या करेंगे?

16.8.3 आक्रामक व्यवहार

अनेक व्यक्तियों ने कार्य करते समय अपने ऊपर आक्रामक व्यवहार का अनुभव किया होगा। प्राय: कुछ लोग दोषारोपण करने, धमकाने एवं गाली-गलौच जैसे तुच्छ व्यवहारों पर भी उतर जाते हैं।

ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए आवश्यक है कि आक्रामक स्थिति को यथाशीघ्र सुस्पष्ट एवं सुदृढ़ संवादशैली में परिवर्तित कर दिया जाए।

- जब सबसे पहले ऐसे संवाद से सामना हो तो रूकें, अपने आप पर नियंत्रण करें, तुरंत कोई प्रतिक्रिया न करें।
- उसके बाद स्पष्टीकरण मांगें एवं अपनी समझ को अभिव्यक्त करें एवं उनसे पुष्ट करावें। उससे पूछा जाये कि आपके कहने का तात्पर्य क्या है? आपको और क्या-क्या जानकारी है, मुझे इस बात को पूरा बताएं। मैं इसे जानना चाहता हूं।

जब उसको हम सुनने के लिए तैयार हो जाते हैं और शांत भाव से सुनते हैं तो क्रोध का पारा स्वत: नीचे आ जाता है।

इससे हमें भी सोचने के लिए समय मिल जाता है। समस्या को गहनता से समझने का मौका हाथ लग जाता है।

उनकी बातों को सहानुभूतिपूर्वक स्वीकार करते हुए हम अपनी भावना को स्पष्टता एवं सुदृढ़ता से अभिव्यक्त करें, जैसे—मैं आपकी भावनाओं का आदर करता हूं किंतु यह मेरा स्पष्ट अभिमत है कि.....।

इसके उपरान्त भी यदि आक्रामक व्यवहार बना रहता है तो दो कार्य किये जा सकते हैं—अपनी स्थिति को विनम्रता एवं सुदृढ़ता से स्पष्ट करें एवं कोई गलतफहमी हो तो उसको दूर कर दें।

इसके बावजूद भी यदि आक्रामक व्यवहार बना रहता है तो उससे अपने ऊपर होने वाले नुकसान से उसको अवगत करा दें एवं भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों की जानकारी भी दे देवें, जैसे—"यदि तुम मुझ पर ऐसे ही बिना प्रयोजन चिल्लाते रहोगे तो मुझे तुम पर बहुत गुस्सा आयेगा। यदि ऐसा ही चलता रहा तो मेरे पास और कोई उपाय नहीं है, फिर मैं उच्च अधिकारी तक इस बात को पहुंचाऊंगा। मैं चाहता हूं कि ऐसी नौबत ही नहीं आए।"

यदि स्वयं मन नहीं मानता हो तो उच्च अधिकारी की बात लाने की आवश्यकता नहीं है। यह अंतिम उपाय है।

यदि कोई भी रणनीति कार्य नहीं करती है तो उस पर दूसरे व्यक्ति के द्वारा प्रभाव डलवाया जाए एवं आक्रामक व्यवहार के मूल कारणों की जानकारी की जाए।

16.9 सारांश

1. प्रेरणा से ही प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ होता है। अभिप्रेरित साथीगण अधिक निष्पत्ति देने और अधिक रुचि से काम करने का विचार करते हैं। आन्तरिक अभिप्रेरणा का एक अर्थ है—आत्म-ज्ञान द्वारा कार्य के लिए प्रेरणा। यह प्रेरणा व्यक्ति को आगे बढ़ाने में सहायक होती है। व्यक्ति की आन्तरिक असंतुष्ट व प्राथमिक आवश्यकता की तीव्र प्रेरणा से व्यक्ति कार्य में प्रवृत्त होकर अपने प्रयास व योग्यता के अनुरूप कार्य को निष्पन्न करता है।

2. अधिकारी के लिए कुछेक व्यक्तियों के जटिल स्वभाव के कारण उनसे काम लेना कठिन होता है। उनके जटिल व्यवहारों को उनके संपूर्ण व्यक्तित्व से अलग करके देखने से उनसे निपटना एवं काम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लेना आसान हो जाता है। जटिल व्यक्ति के प्रति व्यक्ति-व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं बहुत भिन्न होती हैं। कुछ लोग आक्रामक हो जाते हैं, कुछ लोग उनसे बचना चाहते हैं एवं कुछ सहानुभूतिपूर्वक उनको अपनी कमजोरियों से मुक्त होने में सहयोग करते हैं।

3. अधिकांशतया जटिल व्यवहार स्वयं की सुरक्षा के लिए किये जाते हैं। व्यवहार के पीछे मूल कारण को समझना एवं सहानुभूति के साथ उस पर विचार करना किसी भी जटिल व्यवहार से निपटने का पहला कदम है। इसी से व्यक्ति का सही दिशा में निर्माण संभव होता है। जटिल व्यवहार वाले व्यक्ति मूल रूप से कार्य एवं उसकी जिम्मेदारी से बचना चाहते हैं। कुछ लोग दोषारोपण द्वारा, कुछ हां में हां मिलाकर, कुछ अपने कुतर्कों द्वारा, कुछ व्यग्रता व उत्तावलेपन द्वारा एवं कुछ टालमटोल प्रकृति से अपना बचाव करते रहते हैं।

4. दैनिक जीवन में साथियों का व्यवहार सहयोगात्मक नहीं होने पर अधिकारी का मनोबल बहुत गहरे हद तक प्रभावित होता है। किंतु अपने आप में विश्वास और अन्यान्य वैकल्पिक उपाय, उद्देश्य की स्पष्टता हो तो ऐसी स्थितियों से निपटना आसान हो जाता है। जटिल चरित्र वालों से निपटने का सबसे अच्छा उपाय परस्पर संवाद है। इसके अतिरिक्त भी अनेक उपाय हैं जो व्यक्ति विशेष या समय विशेष के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

5. अधिकांश लोग जटिल व्यवहारों से निपटने में संकोच का अनुभव करते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि इससे बात बनने की बजाय बिगड़ नहीं जाए। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है स्वयं पर संयम रखते हुए क्रमबद्ध उपाय काम में लेना। परस्पर संवाद का भी यही उद्देश्य होता है कि यथास्थिति एवं यथार्थ को आत्मसंयम के साथ मृदुता से सामने लाना।

6. कुछ जटिल व्यवहार विशेष प्रकार के होते हैं, जैसे—अप्रत्यक्ष रूप से अपमानजनक व्यवहार करना, कार्य से बचने की मनोवृत्ति एवं आक्रामक व्यवहार। इनका सामान्यतया जीवन में अधिक सामना होता है। कार्य-निष्पत्ति एवं जीवन में सफलता के लिए इनसे निपटने की रणनीति में अवश्य दक्षता प्राप्त कर लेना चाहिए।

16.10 प्रश्नावली

I निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्य-निष्पत्ति के लिए अभिप्रेरणा के महत्त्व को समझाते हुए अभिप्रेरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करें।

अथवा

साथियों द्वारा उत्पन्न जटिल व्यवहारों से निपटने के लिए क्रमबद्ध एवं उपयोगी उपायों की चर्चा करें।

II लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आदर्श अभिप्रेरणा प्रणाली के मुख्य बिन्दुओं को स्पष्ट करें।
2. अधिकारी पर सहकर्मियों के जटिल व्यवहार करने पर क्या प्रभाव पड़ता है एवं उससे कैसे निपटा जा सकता है? संक्षिप्त में लिखिए।
3. कौन-कौन से उपाय आन्तरिक अभिप्रेरक कहे जा सकते हैं?

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अभिप्रेरण शब्द का तात्पर्य क्या है?
2. अभिप्रेरण के चरण क्या-क्या हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. अधिकतर जटिल व्यवहार व्यक्ति की अपनी ..... का परिणाम है।

4. जटिल व्यक्तियों से निपटने के लिए लोगों के तरीके क्या-क्या होते हैं?

5. व्यक्ति एवं उसके जटिल व्यवहार को अलग-अलग क्यों देखना चाहिए?

6. स्पष्ट व सरल वक्ता की मुख्य विशेषता क्या होती है?

7. अपने आपको शक्तिशाली अनुभव करने के लिए पहली आवश्यकता क्या है?

8. जटिल चरित्र वाले व्यक्ति से निपटने का सबसे अच्छा उपाय क्या है?

9. अधिकांश व्यक्ति जटिल व्यवहारों से निपटने में संकोच क्यों करते हैं?

10. व्यावहारिक जीवन में किन-किन जटिल व्यवहारों का सर्वाधिक सामना होता है?

16.11 संदर्भ पुस्तकें

1. John Mulligan (Ed) Personal management—Sphere book Ltd., London
2. संगठन : सिद्धान्त एवं व्यवहार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग 5 सहयोगी तंत्र एवं समूह–प्रबन्धन

इकाई–17 सहयोग प्रकृति एवं उसके प्रति भाव, सहयोगात्मक सम्बन्ध

संरचना

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 सहयोग की प्रकृति
  17.2.1 सहयोग का तात्पर्य
  17.2.2 सहयोग के प्रति दृष्टिकोण या भाव
  17.2.3 अपने दृष्टिकोण का निश्चय करना
  17.2.4 सहयोग पूर्ण सम्बन्ध
  17.2.5 वर्तमान सम्बन्ध
17.3 सहयोग के प्रकार
  17.3.1 पोषण सहयोग
  17.3.2 शक्ति प्रदान करने वाले सहयोग
  17.3.3 विश्राम या शिथिली सहयोग
17.4 आवश्यकताएं एवं सहयोग
17.5 सहयोग एवं व्यवहार
  17.5.1 असहयोगी सम्बन्ध
  17.5.2 सहयोग प्राप्ति के लिए नए सम्बन्ध
17.6 सहयोग के विभिन्न क्षेत्र
17.7 प्रश्नावली
17.8 संदर्भ ग्रंथ

17.0 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आपने सम्प्रेषण के बारे में पढ़ा। सम्प्रेषण के लिए किस तरह स्वयं को व अन्य लोगों को तैयार किया जाता है और अच्छे सम्प्रेषण से किस प्रकार की निष्पत्तियां प्राप्त होती हैं आदि। इस अध्याय में हम सहयोग के बारे में पढ़ेंगे। हर व्यक्ति अपनी उन्नति करने एवं उद्देश्यों की प्राप्ति करने के लिए कहीं न कहीं से सहयोग प्राप्त करता है। सहयोग की प्रकृति क्या है? सहयोग के प्रति अपने दृष्टिकोण एवं भाव कैसे होने चाहिए। इसके बारे में इस अध्याय में अध्ययन करें। इसके अतिरिक्त सहयोग के प्रति अपना दृष्टिकोण निश्चित करना, सहयोगपूर्ण सहयोग, सहयोग के प्रकार, आवश्यकताएं एवं सहयोग सहयोग एवं व्यवहार, असहयोगी सम्बन्ध, सहयोग प्राप्ति के लिए नए सम्बन्ध एवं सहयोग के विभिन्न क्षेत्रों के बारे में भी अध्ययन करेंगे।

17.1 उद्देश्य

1. इस अध्याय के अध्ययन के बाद सहयोग का तात्पर्य क्या है? इसके बारे में आप जान पायेंगे।
2. इस अध्याय के अध्ययन के बाद सहयोग के प्रति दृष्टिकोण या भाव, सहयोग के प्रति अपना दृष्टिकोण निश्चित करना एवं सहयोगपूर्ण सम्बन्धों के बारे में भी आप जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
3. सहयोग के प्रकारों, आवश्यकताएं एवं सहयोग के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. सहयोग एवं व्यवहार, असहयोगी सम्बन्ध, सहयोग प्राप्ति के लिए नए सम्बन्ध कैसे बनाए जा सकते हैं। एवं किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। इस बात की जानकारी भी होगी।
5. इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप इससे सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के प्रश्नों का उत्तर दे पायेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.2 सहयोग की प्रकृति (Nature of Support)

17.2.1 सहयोग का तात्पर्य (What is support)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने जीवन की प्रगति व उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निरन्तर क्रियाएं करता रहता है। मनुष्य अपने जीवन की प्रगति चाहता है, वह कुछ बनना चाहता है व अपने जीवन का परिष्करण भी करना चाहता है। इस प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में किसी न किसी प्रकार के सहयोग की आवश्यकता रहती है। व्यक्ति हमेशा अपने आप से, परिवार के सदस्यों से, समाज के लोगों से या अपने सहकर्मियों से सहयोग की अपेक्षा रखता है। अपने मूल्यों की एवं अधिकारों की रक्षा के लिए तथा जीवन में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी सहयोग अपेक्षित है।

हमारे विश्वासों, मूल्यों, मानदण्डों, साहसों एवं धैर्यों को बनाए रखने के लिए जो भी सहायता हम स्वयं से या अन्य किसी भी प्राणी से प्राप्त करते है, सहयोग कहलाता है। सहयोग के परिणामस्वरूप हम अपनी उन्नति एवं उद्देश्यों की प्राप्ति करते हैं। इससे हमारी वृद्धि एवं विकास होता है। व्यक्ति को जीवन में सहयोग केवल जीवित प्राणी से ही नहीं मिलता अपितु निर्जीव वस्तु से भी सहयोग प्राप्त होता है। जैसे गाड़ी, भवन, टेलिविजन, कम्प्यूटर, रेडियो, पत्र-पत्रिकाएं, पुस्तकें, विद्युत उपकरण आदि।

मनुष्य एवं निर्जीव वस्तु के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे प्राणी है जिनकी सहायता हमारे जीवन विकास के लिए बहुत उपयोगी हैं जिनमें गाय, घोड़ा, बकरी, हाथी, गधा, मछली इत्यादि मुख्य है।

उपरोक्त सभी प्रकार के निर्जीव और सजीव वस्तुएं व्यक्ति के विकास में सहयोगी होती हैं। चित्र सं. 1 एवं 2 से उपरोक्त बात दर्शायी गयी है।

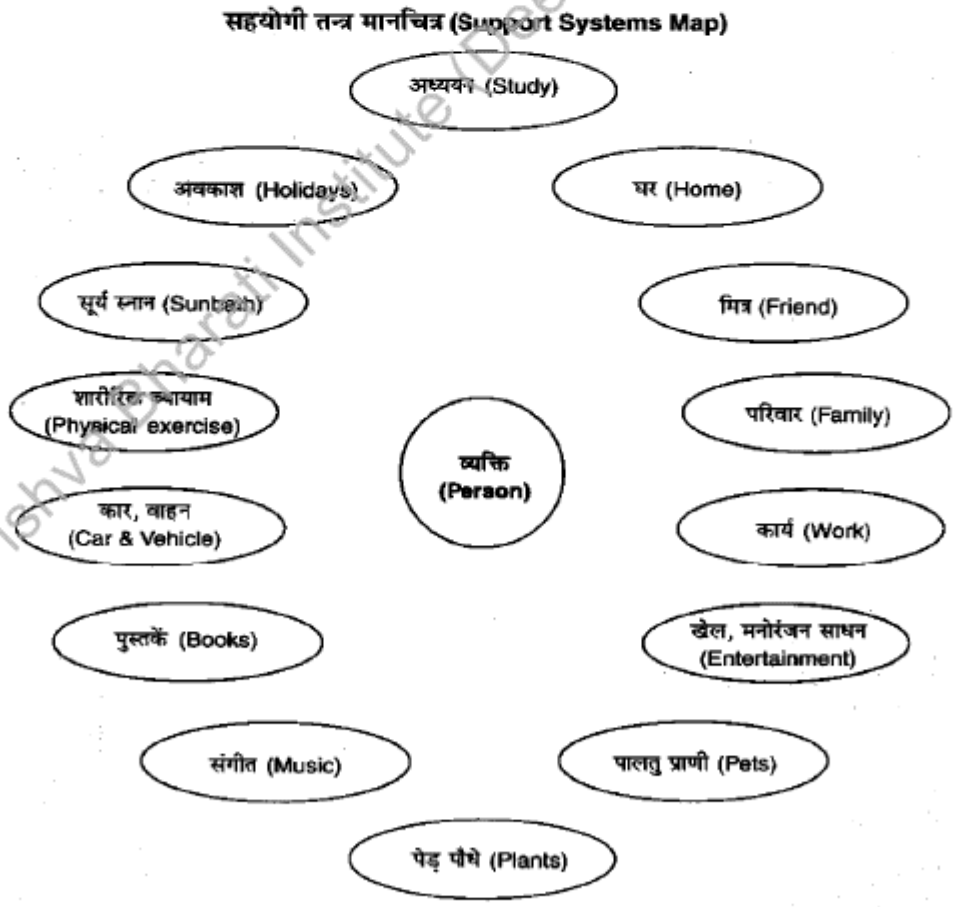

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

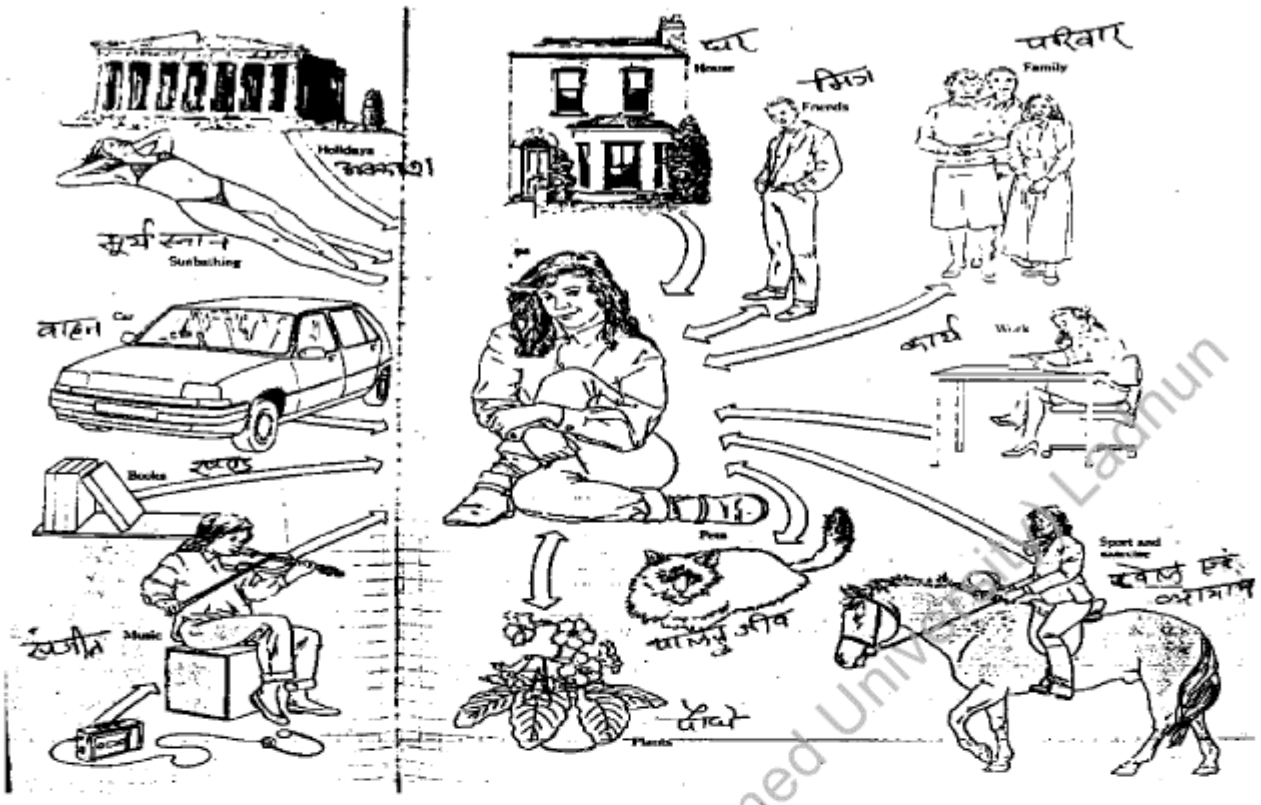

प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण के सम्बन्ध में कई प्रश्न हो सकते हैं, जिनको हमें जानना चाहिए एवं खोजना चाहिए। सहयोग के प्रति दृष्टिकोण के अन्तर्गत यह निश्चय करना है कि हम कहां, किससे और कैसे अपने जीवन के कार्यों के लिए सहयोग ले सकते हैं या सहयोग दे सकते हैं। हमें यह भी जानना आवश्यक है कि क्या हम सहयोग तंत्र का प्रभावी ढंग से उपयोग कर रहे हैं? क्या हमें सहयोग लेने में या सहयोग देने में विश्वास है? हमारी क्या आवश्यकताएं हैं? और उन आवश्यकताओं के अनुरूप हम सहयोग तंत्र को किस दृष्टि से उपयोग में लाते हैं।

सहयोग तंत्र को सीखने, इसके विकास एवं उपयोग के संदर्भ में प्रत्येक व्यक्ति अपने सहयोग की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अपने स्वयं के सहयोग का उत्तरदायित्व ले सकता है। सहयोग की भावना, दृष्टिकोण या धारणा व्यक्ति को चुनौतियों का सामना करने एवं उसे उत्साहित करने में बड़े सहायक होते हैं।

व्यक्ति अपनी उन्नति के लिए एवं कार्यों की सिद्धि के लिए बिना लोभ किए सहयोग लेता है अथवा देता है तो वह बड़ा ही सफल रहता है। हमें किससे सहयोग लेना है या देना है? कौन-कौन सी वस्तुएं या व्यक्तियों या प्राणियों से सहयोग लेना है या देना है इसका निश्चय कर लेने से सहयोग तंत्र का प्रभावी उपयोग कर सकते हैं। हमें सहयोग की आवश्यकता कहां है? जीवन के किस मोड़ पर है? जीवन के किस क्षेत्र पर है? इसका भी निश्चय कर लेना व्यक्ति के लिए लाभदायक रहता है। हमें सहयोग कैसे प्राप्त करना है? इसके लिए क्रियान्विति तय कर लेने से भी सहयोग तंत्र का सही उपयोग हो सकता है। अत: हमें किन-किन से सहयोग लेना है और जिन-जिन से सहयोग लेना है उनसे कहां-कहां लेना है और कैसे-कैसे लेना है। इन सारी बातों का ध्यान रखकर सहयोग तंत्र को मजबूत बना सकते हैं।

17.2.3 अपने दृष्टिकोण का निश्चय करना (Determine your attitude)

प्राय: समाज या परिवार में या मित्रों में सहयोग देने या लेने के प्रति विरोधाभासी दृष्टिकोण है। कुछ लोगों का दृष्टिकोण यह है कि वे सहयोग प्राप्त कर ही किसी वस्तुस्थिति का सामना कर सकते है, अकेले

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नहीं। कई लोगों का यह भी विचार है कि सहयोग लेना कमजोरों की निशानी है। कई लोग सहयोग देने में हिचकिचाते है तो कई लोग अपने स्वार्थवश सहयोग देते है। कुछ लोग अपना कर्त्तव्य समझकर सहयोग देते है। अत: सहयोग प्राप्त करने में या सहयोग देने में अपने दृष्टिकोण का अन्वेषण करने के लिए हम साहचर्य क्रिया के अभ्यास को काम में ले सकते है। यह हम स्वयं अकेले कर सकते है या अपने मित्रों अथवा साथियों के साथ कर सकते है। इसके लिए हमें अपनी सहायता के प्रकारों के साथ कुछ शब्द जोड़ें। जिन शब्दों को हम सहायता के साथ साहचर्य करते है, उन शब्दों की सूची तैयार करें। इन शब्दों के आस-पास अपने चित्त या मन को घुमाएं और एक-दूसरे शब्द के साथ स्वतंत्र साहचर्यता (Free association) करें। यह हमारे चेतन एवं अचेतन मन को अपने दृष्टिकोण के क्षेत्र को ज्ञात करने में सहायता देगा। इस प्रकार चिन्तन करने के बाद हम अपनी सूची में विधेयात्मक एवं नकारात्मक क्षेत्रों को भी देख सकते है। विधेयात्मक दृष्टिकोण उत्साह बढ़ाने में एवं नकारात्मक दृष्टिकोण हतोत्साहित करने में सहायक होंगे। कुछ सकारात्मक एवं नकारात्मक शब्दों को चुनें। जो हमें आवश्यक या विशेष लगे और उनके साथ स्वतंत्र साहचर्य करें। विधेयात्मक या सकारात्मक शब्द जैसे 'आधार' इसके साहचर्य शब्द है मजबूत नींव, प्रतिबल क्षमता आदि और नकारात्मक शब्द जैसे 'आश्रय' जिसके साहचर्य शब्द कमजोर, दुर्बल आदि है। जब हम ऐसा करते है तो हम अपना ध्यान अपने भावों, प्रतिमूर्तियों एवं स्मृतियों पर ले जाते है।

नकारात्मक सहयोग में व्यक्ति की पारिवारिक समस्या, सामाजिक समस्या, बीमारी, व्यक्तिगत सम्बन्ध, बच्चों की समस्या, साथियों की समस्या एवं कार्यभार है। इसी तरह बैंक कार्य समस्या, टेलिविजन पर अवांछित कार्यक्रम, गाड़ी का खराब हो जाना तथा साथियों का विरोध आदि है। जैसाकि चित्र संख्या 3 एवं 4 में बताया गया है। सकारात्मक सहयोग जहां व्यक्ति को अपने कार्य सम्पन्न करने तथा प्रगति करने के लिए उसका मनोबल बढ़ाते है वही नकारात्मक सहयोग व्यक्ति की प्रगति में बाधक बन जाते है।

नकारात्मक सहयोग तंत्र (Negative Support Systems Map)

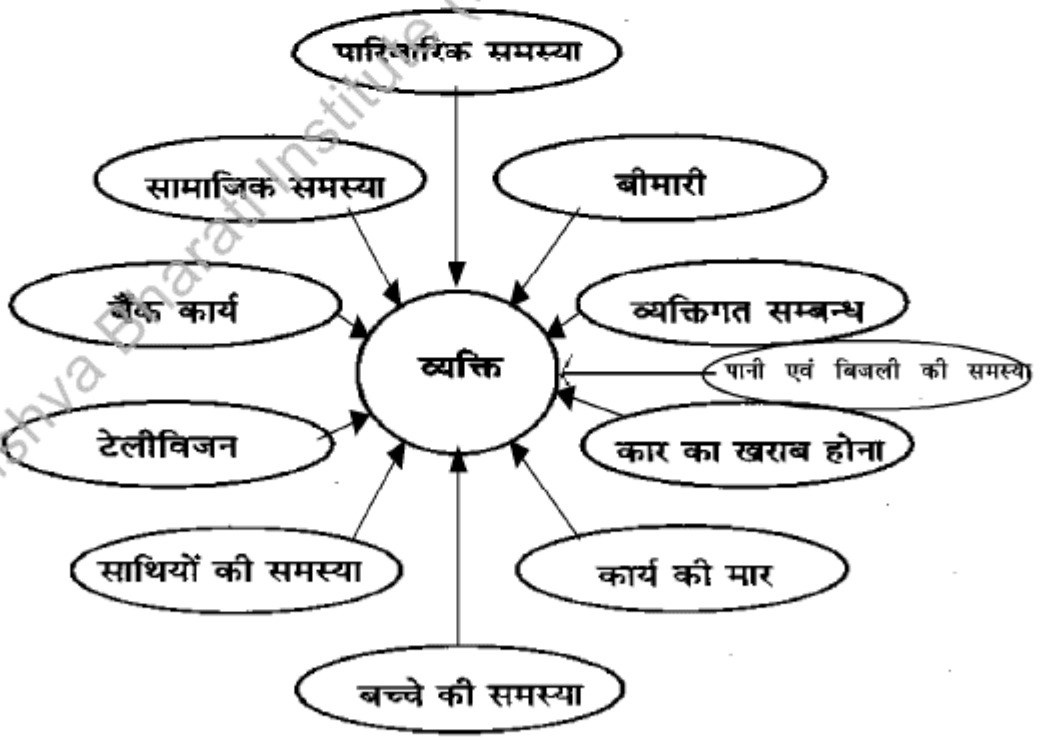

चित्र संख्या - 3

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चित्र संख्या - 4

17.2.4 सहयोगपूर्ण सम्बन्ध (Supportive relationship)

व्यक्ति को जीवन में विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कई व्यक्तियों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। जीवन की विभिन्न स्थितियों, पड़ावों एवं मोड़ों पर हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए दूसरों की सहायता चाहते हैं। केवल एक ही व्यक्ति की सहायता से हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते है। अपितु कई व्यक्तियों की सहायता या सहयोग की आवश्यकता रहती है। इन सहायक व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाए रखना एक चुनौती भी है। ये सहायक लोग बड़े महत्त्वपूर्ण भी होते हैं, जिनमें प्राय: हमारे सहभागी, सहकर्मी, विद्यालय काल के मित्र या सहपाठी, परिवार के सदस्य एवं सामाजिक लोग होते हैं, जिनके साथ आपसी सद्भाव, सम्मान एवं विश्वास रखना होता है। हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सहायक सम्बन्धित व्यक्तियों के वर्तमान सम्बन्ध किस प्रकार से हैं और उनसे ली जाने वाली सहायता के प्रकार पर विचार एवं उनका विश्लेषण ठीक ढंग से करना आवश्यक है। वर्तमान में सहायक सम्बन्धित व्यक्तियों से हमारे सम्बन्ध कैसे हैं? क्या वे सहयोग देने के लिए तत्पर हैं या सहयोग में बाधक हैं? वे कितना व किस सीमा तक सहयोग कर सकते हैं व कहां-कहां सहयोग कर सकते हैं। इन सभी बातों का विश्लेषण करना जरूरी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

17.2.5 वर्तमान सम्बन्ध (Current relationship)

वर्तमान में हमें किस प्रकार का सहयोग चाहिए उसके अनुसार हम सहयोगी तंत्र मानचित्र (संख्या 1 एवं 2) से एक सूची तैयार करें कि कौन से व्यक्ति, प्राणी या वस्तुएं हमारी वर्तमान समय की समस्या का समाधान करने में सहयोगी है। फिर निम्न बिन्दुओं पर चिन्तन करें।

1. ऐसे व्यक्ति, प्राणी या वस्तुएं जो आपको किसी भी प्रकार के सहयोग के बारे में इंगित करते है। अर्थात् वे किस प्रकार के सहयोग हमें दे सकते हैं। जैसे हमारे परिवार के सदस्य पिता-माता, भाई-बहन हमें किस प्रकार का सहयोग कर सकते हैं। इसी तरह मित्र, सहपाठी या सहकर्मी हमें किस प्रकार का सहयोग प्रदान कर सकते हैं। इसी तरह पालतू पशु-पक्षी या अन्य साधन जैसे-यातायात (गाड़ी इत्यादि), यंत्र, उपकरण आदि। हमारे कार्य में किस प्रकार सहयोगी हो सकते है।
2. वर्तमान में हमारे सहयोगी तंत्र में सहयोग करने वाले साधन यदि न रहें तब क्या होगा एवं कार्य कैसे होगा। इस पर भी चिन्तन करना आवश्यक है। यदि ये सहयोगी साधन उपलब्ध न रहे या अचानक ये दूर हो जाएं तब हमारा कार्य कैसे होगा इस पर भी विस्तार से विचार करना चाहिए।
3. तीसरे बिन्दु पर हमें ये चिन्तन करना चाहिए कि इनसे हम किस प्रकार का सहयोग प्राप्त करते हैं या कर सकते हैं या करना चाहिए और इन्हें हम क्या सहयोग या अन्य सामग्री देते है अर्थात् हम अपने आप में इस बात से स्पष्ट रहे कि हम किस प्रकार का सहयोग प्राप्त करते हैं। जो सहयोग हम प्राप्त करना चाहते हैं वह सहयोग देने के सक्षम है या नहीं। इस बिन्दु में दूसरी विचारणीय बात यह है कि सहयोगी तंत्र को प्रतिसहयोग में हम क्या देते हैं। हम सहयोगी तंत्र की कितनी सहायता कर पाते है या भविष्य में कर पाएंगे।
4. इस बिन्दु में यह चिन्तन किया जाता है कि ये सहयोगी तंत्र सम्बन्ध हमको किस प्रकार से सहयोग करते हैं या कर सकते है अर्थात् इनसे सहयोग पाने के क्या तरीके हो सकते हैं और क्या प्रकार हो सकते हैं। हमारे सम्बन्धों के प्रकार किस प्रकार से हैं, इस पर भी चिन्तन करना चाहिए।
5. सहयोगी तंत्र से सहयोग लेने पर हमें किस प्रकार की क्षति हो सकती है या इनसे किस प्रकार का लाभ हो सकता है। इस पर भी चिन्तन की आवश्यकता है। यदि सहयोगी तंत्र से हमें क्षति होती है तो उसकी पूर्ति हो सकती है या नहीं और यदि सहयोगी तंत्र से हमें लाभ हो सकता है तो उस लाभ का उपयोग हमारे लिए व सहयोगी तंत्र के लिए किस प्रकार हो सकता है। इस पर भी चिन्तन आवश्यक है।
6. हमें इस बात पर भी चिन्तन करना चाहिए कि सहयोगी तंत्र जोकि हमें किन कारणों के कारण सहयोग नहीं कर पाएगा तो उसके क्या कारण हैं और क्या हम उन कारणों को हटा सकते है।

17.3 सहयोग के प्रकार (Types of Support)

जीवन में व्यक्ति कई प्रकार के एवं कई क्षेत्रों में सहयोग प्राप्त करता है। अपनी प्रगति के लिए, अपनी बाधाओं को दूर करने के लिए, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, दूसरों को सहयोग करने के लिए, अपना मनोबल बढ़ाने के लिए, आयी विपत्तियों से उभरने के लिए, आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए एवं राजनीतिक क्षेत्र में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए व्यक्ति सहयोगी तंत्र से सहयोग प्राप्त करता है। उपरोक्त प्रकार के सहयोगों को हम मूलत: तीन प्रकारों में बांट सकते हैं।

17.3.1 पोषण सहायता (Nuturing Support)

इस प्रकार के सहयोग में किसी कार्य के लिए प्रोत्साहित करने वाले सहयोग आते है। मनोबल बढ़ाने के लिए, असफल हो जाने पर धैर्यता देने वाले एवं अन्य प्रकार की सहायता एवं प्रोत्साहन देने वाले प्रकार के सहयोग आते हैं। इस प्रकार के सहयोग हमें कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं एवं प्रोत्साहित करते हैं। ये सहयोग नेक एवं स्वीकृत होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.3.2 शक्ति प्रदान करने वाले सहयोग (Energizing support)

किसी परिस्थिति या चुनौती भरे कार्यों का सामना करने के लिए व्यक्ति को विशेष ऊर्जा एवं सहयोग की आवश्यकता होती है। ऐसे समय में जो सहयोग प्राप्त किया जाता या दिया जाता है उसे शक्ति प्रदान करने वाला सहयोग कहते हैं। जैसे-व्यक्ति किसी संघर्ष में गिर जाए या उसका मनोबल गिर जाए या अस्वस्थता के कारण शारीरिक कठोर श्रम न कर पाए तो ऐसी स्थिति में उसे प्राप्त होने वाला सहयोग शक्ति प्रदान करने वाला सहयोग होता है।

17.3.3 विश्राम या शिथिली सहयोग (Relaxing support)

इस प्रकार का सहयोग थके हुए व्यक्ति को विश्राम या शिथिलीकरण करवाकर पुन: उसके कार्य में कार्यरत करने के लिए सहायक होते हैं। इस प्रकार के सहयोग से व्यक्ति अपने कार्य को पूर्ण कर आराम या विश्राम की स्थिति में आता है और अपने में पुन: आन्तरिक ऊर्जा पैदा कर पुन: कार्य में प्रवृत्त हो जाता है। जैसे—लम्बी दूर तक वाहन चलाने वाले वाहन चालकों को विश्रान देने के लिए सहयोगी चालक उनको सहयोग करते हैं। इसी तरह फैक्ट्री वगैरह में या मशीनों का संचालन करने वाले मशीन ऑपरेटरों को विश्राम देने के लिए सहयोगी ऑपरेटर सहायक होते हैं।

17.4 आवश्यकताएं एवं सहयोग (Needs & Support)

किसी भी प्रकार का सहयोग प्राप्त करने से पहले हमें यह देखना चाहिए कि हमारी आवश्यकता क्या है? आवश्यकताओं का निश्चय करने के लिए हमें आवश्यकताओं की एक वरीयता सूची बना लेनी चाहिए। जिन आवश्यकताओं की पूर्ति को हमें प्राथमिकता देनी है उन्हें हम वरीयता क्रम में रखें। इन आवश्यकताओं के अनुसार हमें यह निर्धारण करना चाहिए कि हमारी आवश्यकताओं के प्रकार क्या है? प्रकार के आधार पर हमें उनके सहयोगी तंत्र को या सहयोगी साधनों को भी लिख लेना चाहिए। हमें यह भी तय कर लेना चाहिए कि किस सहयोगी तंत्र या साधन का सहयोग कब, कहां व क्यों लेना है। उसके उपरान्त इन सहयोगी तंत्रों से सम्पर्क कर सहयोग प्राप्त करना चाहिए। इसमें इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि जो आवश्यकताएं अनावश्यक हों या महत्त्वपूर्ण नहीं हो उनको सूची में सबसे बाद में लिखना चाहिए या सूची से अलग कर देना चाहिए। यदि हमें सहयोग साधनों में यंत्रों की या उपकरणों की आवश्यकताएं पड़ती हो तो उनकी उपलब्धताओं पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् ये साधन कहां, कैसे व कब उपलब्ध हो सकते हैं? क्या इनका रख-रखाव ठीक है इत्यादि बातों पर भी ध्यान देना चाहिए। यदि प्राणियों का सहयोग हम लेना चाहें तो उनकी उपलब्धताओं को भी निश्चित करना चाहिए। जैसे—हमें किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वाहन का सहयोग चाहिए तो हमें यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वाहन सही हालत में है, उसका रख-रखाव ठीक है और वह वाहन हमें उपलब्ध हो सकता है। वाहन का चालक सही है और वह वाहन को ठीक ढंग से नियंत्रित कर सकता है, आदि। इन उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हमें आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सहयोग प्राप्त करने की नीति बनाना चाहिए।

बोध प्रश्न :

---

1. सहयोग तन्त्र के लिए मानचित्र बनाएं?
2. नकारात्मक सहयोग से आप क्या समझते है?
3. सहयोग के प्रकारों को लिखें?

17.5 सहयोग एवं व्यवहार (Support & Behaviour)

सहयोग तंत्र से सहयोग प्राप्त करने के लिए हमारे व्यवहार की भी अहम् भूमिका रहती है। व्यवहार में सहयोग प्राप्त करने वाले और सहयोग देने वाले सहयोग तंत्र की दोनों ही व्यावहारिक क्रियाएं महत्त्वपूर्ण होती हैं। यदि हमें किसी से वास्तव में सहयोग प्राप्त करना है तो हमें यह देखना चाहिए कि उसके प्रति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हमारा व्यवहार पूर्व में कैसा रहा है, वर्तमान में कैसा है और सहयोग प्राप्त करने के बाद हमारा व्यवहार कैसा हो सकता है। प्राय: व्यक्ति चार प्रकार के व्यवहार करते हैं।

1. ऐसा व्यवहार जिसमें केवल स्वयं को संतुष्टि मिले और दूसरों को कष्ट।
2. ऐसा व्यवहार जिसमें स्वयं को भी संतुष्टि मिले व दूसरों को भी संतुष्टि मिले।
3. ऐसा व्यवहार जिसमें स्वयं को कष्ट हो सकता है परन्तु दूसरों को संतुष्टि या सुख प्राप्त होता है।
4. ऐसा व्यवहार जिसमें स्वयं को भी कष्ट होता है एवं दूसरों को भी कष्ट पहुंचता है।

कई लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सहयोग प्राप्त करने के लिए बड़े विनम्र और सरल बन जाते हैं और सहयोगी तंत्र से सहयोग प्राप्त कर लेते हैं परन्तु ज्योंहि उनकी आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है तब उनके व्यवहार में अचानक परिवर्तन आ जाता है और सहयोगी तंत्र के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे कि उनको भविष्य में सहयोगी तंत्र की आवश्यकता नहीं रहेगी। ऐसा व्यवहार, सहयोग प्राप्त करने वाले व्यक्ति के प्रति भविष्य में, सहयोगी तंत्र में अविश्वास पैदा कर सकता है इससे सहयोगी तंत्र उस व्यक्ति के लिए भविष्य में नकारात्मक सहयोगी व्यवहार कर सकते हैं।

कई व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए या कार्य को साधने के लिए सहयोगी तंत्र से सहयोग लेते समय विनम्र, सरल रहते हैं और सहयोग प्राप्त करने के बाद भी वे सहयोगी तंत्र के प्रति विनम्र एवं सरल बने रहते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति भविष्य में भी सहयोगी तंत्र से बराबर सहयोग प्राप्त करते रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्रति सहयोगी तंत्र का व्यवहार भी सकारात्मक या विधायक रहता है।

कई व्यक्ति सहयोगी तंत्र से सहयोग प्राप्त करते समय बड़े विनम्र व सरल रहते हैं सहयोग प्राप्त करने के बाद भी विनम्र एवं सरल रहते हैं साथ ही वे सहयोगी तंत्र के प्रति अपने आप को ऋणी मानते हैं और समय आने पर वे सहयोगी तंत्र को पुन: पूरा सहयोग प्रदान करते हैं।

प्राय: यह देखा जाता है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को अनावश्यक रूप से बढ़ा लेता है और उनकी पूर्ति के लिए सहयोगी तंत्र से अनावश्यक रूप से सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। यदि सहयोगी तंत्र उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्ण सहयोग नहीं कर पाता है तो वे नाराज एवं क्रोधित हो जाते हैं और कई बार सहयोगी तंत्र के घटकों से आक्रामक एवं अभद्र व्यवहार कर लेते हैं। वर्तमान समय में व्यक्ति की धैर्यता की सीमा बहुत कम है और वह येन-केन-प्रकारेण अपनी आवश्यकताओं की शीघ्र पूर्ति करने के लिए सहयोगी तंत्र से उचित या अनुचित सहयोग की मांग करता है। यदि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति शीघ्र न हो तो वे आक्रामक व्यवहार अपना लेते हैं। यहां तक कि वे लड़ाई-झगड़ा व मारपीट पर उतारू हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति कुंठित व तनावमय रहते हैं।

कई व्यक्ति निर्जीव वस्तु के साथ में भी अपनी कुण्ठाओं और तनाव के कारण अभद्र व्यवहार कर लेते हैं। जैसे—किसी व्यक्ति का वाहन यदि रास्ते में बिगड़ जाए व समय पर ठीक नहीं हो पाए ऐसी स्थिति में यह व्यक्ति वाहन पर लातों और मुक्कों से प्रहार भी कर देते हैं।

सहयोग प्राप्त करने की प्रक्रिया में हमें यह भी देखना चाहिए कि हमारे सहयोगी तंत्र का व्यवहार कैसा है? क्या वे अपने स्वार्थ के लिए सहयोग कर रहे हैं या हमसे कुछ प्राप्त करने के लिए सहयोग कर रहे है? क्या सहयोगी तंत्र हमें कुछ समय के लिए सहयोग करके बाद में शोषण या ब्लेकमेल करना चाहता है। कई सहयोगी तंत्र सहयोग करने के बाद, सहयोग प्राप्त करने वाले व्यक्ति से अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं। अत: ऐसी स्थिति में सहयोग प्राप्त करने वाले व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की सीमाओं को घटाकर ऐसे सहयोगी तंत्र से सहयोग प्राप्त नहीं करना चाहिए।

17.5.1 असहयोगी सम्बन्ध (Unhelpful relation)

समाज या कार्य क्षेत्रों में जहां व्यक्ति कार्य करता है कई व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाने पड़ते हैं या रखने पड़ते है। यदि इन व्यक्तियों के साथ हन अपने सहयोग सम्बन्धी सम्बन्धों का मूल्यांकन करें तो कई बार हमें यह पता चलता है कि कई व्यक्ति हमारे सहयोग में सहायक नहीं है। कई व्यक्ति हमारे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कार्य में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहयोग की जगह बाधा खड़ी करने में तत्पर रहते हैं। कई व्यक्ति अपने स्वभाव या स्वार्थवश इस प्रकार का असहयोगी सम्बन्ध पैदा करते हैं। कई लोग ईर्ष्या के कारण दूसरे लोगों को आगे न बढ़ने देने के लिए बाधाएं या रूकावटें पैदा करते हैं। ऐसे व्यक्ति असहयोग के लिए षडयंत्रों की रचना करते हैं। ऐसे असहयोगी तंत्र के घटकों को अपनी सहयोगी सूची से दूर रखना चाहिए। ऐसे लोगों को विनम्रता व शालीनता से अपने सम्बन्धों से दूर रखना चाहिए। इस प्रकार के व्यक्तियों में असहयोग की भावना उनके व्यक्तित्व का गुण बन जाता है और उनमें बदलाव होने की संभावनाएं कम रहती हैं।

17.5.2 सहयोग प्राप्ति के लिए नए सम्बन्ध (New relationships for support)

अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हम नए सहयोगी सम्बन्ध बनाना चाहते हैं। नए सम्बन्धों से सफलतापूर्वक सहयोग प्राप्त करने के लिए हम निम्न नीतियों को अपना सकते हैं।

1. सबसे पहले हम अपने आप में यह स्पष्ट कर लें कि नए सहयोगी सम्बन्धों से हम क्या चाहते हैं। हमें किन-किन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है या किन-किन लक्ष्यों को प्राप्त करना है, इनको भी स्पष्ट कर लें। कौनसी आवश्यकताएं एवं उद्देश्य गौण हैं उनको भी स्पष्ट कर लें।
2. इस बात पर चिन्तन करें कि सहयोगी तंत्र के कौन-कौन से घटक इसके लिए हमें सहयोग कर सकते हैं। इनमें से सही व्यक्ति या साधन को जो वास्तव में सहयोग कर सकते हैं, उनका चुनाव करें।
3. चयनित सहयोगी घटकों के साथ बातचीत करें, उनके साथ बैठक करें और अपनी आवश्यकता एवं उद्देश्यों को स्पष्ट करें व उन पर विचार-विमर्श करें।
4. यदि चयनित व्यक्ति आपकी आवश्यकताओं एवं उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग करने में समर्थ न हो तो उनको धन्यवाद देते हुए विचार समाप्त करें और अन्य सहयोगी घटक को चुनें।
5. इस बात की जानकारी प्राप्त कर लें कि सहयोग देने वाला व्यक्ति आपसे क्या चाहता है? और उसकी आवश्यकताएं क्या हैं?
6. सहयोगी व्यक्ति एवं आप स्वयं सहयोग के लिए किए गए वायदों के प्रति सही एवं सचेत रहें।
7. सहयोगी तंत्र व्यक्ति से यह स्पष्ट कर लें कि सहयोग के बदले में वह आपसे क्या अपेक्षाएं रखते हैं। यदि वह सहयोग के बदले में कुछ वित्तीय लाभ पाना चाहता है या अन्य कोई दूसरी प्रकार की सेवाएं, विनिमय के रूप में चाहता है तो इसके लिए स्पष्ट वार्तालाप कर लें एवं स्पष्ट समझौता कर लें।
8. सहयोग प्राप्ति के पहले, सहयोग प्राप्ति के समय एवं सहयोग प्राप्ति के बाद में भी अपना व्यवहार विनम्र और सरल बनाएं रखें।
9. सदैव याद रखें कि सहयोग प्राप्ति के पश्चात् सहयोगी तंत्र के घटक की उपेक्षा न करें।
10. यदि सहयोगी तंत्र के घटकों से सहयोगी सम्बन्ध चिर स्थायी बनाए रखना चाहते हैं तो उनसे बराबर सम्पर्क बनाए रखें और उनकी आवश्यकताओं और उद्देश्यों के लिए प्रति सहयोग करें।
11. यदि सहयोगी तंत्र का घटक किसी कारणवश सहयोग न कर पाएं तो दूसरों के सामने उसकी आलोचना न करें अपितु वस्तुस्थिति समझते हुए वास्तविकता को स्वीकार करें।
12. सहयोग प्राप्ति के बाद सहयोगी तंत्र के घटकों या व्यक्तियों का आभार प्रकट करें। उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करें।

17.6 सहयोग के विभिन्न क्षेत्र (Different fields of support)

वैसे तो व्यक्ति को जीवन के हर क्षेत्र में सहयोग की आवश्यकता रहती है चाहे वह घर, समाज या किसी विशिष्ट क्षेत्र के कार्य हों, सहयोग हर जगह चाहिए। अकेला एक व्यक्ति चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो यहां तक कि आध्यात्मिक क्षेत्र में भी हो तो भी उसे सहयोग तंत्र की आवश्यकता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रहती है। कुछ विशेष क्षेत्रों का हम आगे उल्लेख कर रहे हैं जहां व्यक्ति को सहयोगी तंत्र की आवश्यकता रहती है।

1. शिक्षा का क्षेत्र
2. चिकित्सा एवं स्वास्थ्य क्षेत्र
3. वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र
4. व्यापारिक क्षेत्र
5. खेल क्षेत्र
6. सामाजिक कार्य
7. औद्योगिक क्षेत्र

सारांश

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रकृति में हर प्राणी को सहयोग की आवश्यकता रहती है। विशेषकर मनुष्य को। जिस-जिस क्षेत्र में मनुष्य कार्यरत है, उस-उस क्षेत्र में सहयोग की अपेक्षा है।

17.7 अभ्यास के प्रश्न

1. सहयोग की प्रकृति एवं दृष्टिकोण को समझाइए।
2. सहयोग के दृष्टिकोण किस प्रकार निश्चित किए जाते हैं?
3. सहयोग के प्रकारों को समझाइए।
4. सहयोग प्राप्ति के नए सम्बन्धों पर टिप्पणी कीजिए।

17.8 संदर्भ ग्रंथ

1. Personal Management (Hand bood) Mulligan J.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–18 सहयोगी समूह, स्व–सहयोग एवं सहयोग के अवसर

संरचना

18.0 प्रस्तावना
18.1 उद्देश्य
18.2 सहयोगी समूह
18.3 समूह की स्थापना
18.3.1 समूह को संचालित करना
18.3.2 पुनर्निवेश मुहैया करवाना
18.4 स्व सहयोग
18.4.1 समय का प्रबन्धन
18.5 पर्यावरणीय सहयोग
18.6 सहयोग के अवसर
18.7 प्रश्नावली
18.8 संदर्भ ग्रंथ

18.0 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आपने सहयोग प्रकृति, उसके प्रति भाव एवं सहयोगात्मक सम्बन्धों के बारे में अध्ययन किया। इस अध्याय में आप सहयोगी समूह, स्व–सहयोग एवं सहयोग के अवसर के बारे में अध्ययन करेंगे। सहयोगी समूह किस तरह बनाए जाएं और इसके लिए किन–किन बातों का ध्यान रखा जाए इसके बारे में अध्ययन करेंगे। समूह को संचालित करना, पुनर्निवेश मुहैया कराना, इसका अध्ययन भी आप इस पाठ में करेंगे। स्व–सहयोग क्या है? व स्व–सहयोग के घटकों के बारे में तथा स्व–सहयोग में समय प्रबन्धन पर्यावरणीय सहयोग के अवसरों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

18.1 उद्देश्य

1. इस पाठ का उद्देश्य सहयोगी समूह एवं समूह की स्थापना किस प्रकार की जा सकती है, उसकी जानकारी देना है।
2. समूह को किस प्रकार संचालित किया जा सकता है इसकी जानकारी देना।
3. समूह के सदस्यों के सहयोग का पुनर्निवेश एवं स्व–सहयोग के बारे में जानकारी देना इस पाठ का उद्देश्य है।
4. इस पाठ के अध्ययन के बाद आप यह जान पाएंगे कि स्व–सहयोग में समय के प्रबन्धन का क्या महत्त्व है।
5. पर्यावरणीय सहयोग एवं सहयोग के अवसरों के बारे में भी जानकारी देना इस पाठ का उद्देश्य है।
6. इस पाठ के अध्ययन के बाद इस पाठ से जुड़े विभिन्न प्रश्नों का उत्तर दे पाएंगे।

18.2 सहयोगी समूह (Supportive Groups)

संसार में प्रत्येक व्यक्ति अन्य दूसरों व्यक्ति के सम्पर्क में आता है। वह दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति मात्र से प्रभावित होता है एवं दूसरे को भी अपनी उपस्थिति से प्रभावित करता है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों से जितने ज्यादा सम्बन्ध होते हैं वह उतना ही अधिक प्रभावित करता है। संसार में सभी व्यक्ति अपना जीवन यापन अकेले नहीं कर सकते। उनको किसी न किसी के साथ रहना होता है। वे जिन व्यक्तियों के साथ रहते हैं उनसे उनके सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं और किसी कार्य के लिए वे एक–दूसरे का सहयोग करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति एक समूह का सदस्य बन जाता है व समूह का निर्माण होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कुछ व्यक्ति मिलकर कुछ विशेष प्रयोजन से या प्रयोजन के लिए समूह बनाते हैं। विभिन्न समूहों के प्रयोजन एवं उद्देश्य भी विभिन्न हो सकते हैं। जैसे-प्रबन्धन समूह (Management Group) किसी संगठन या संस्थान को सुचारू रूप से चलाने या उस संगठन की उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विशेष प्रयत्न एवं क्रियाएं करते हैं। सामाजिक समूह, समाज की समस्याओं, समाज के विकास और नए समाज की संरचना करने के लिए क्रियाएं करते हैं। इसी तरह खेल क्षेत्र मेंभी विभिन्न खेलों के लिए खिलाड़ियों के समूह बनाए जाते हैं। किसी घटना की जांच करने के लिए भी विशेषज्ञों के समूह या टोली बनाई जाती है। इसी तरह किसी विशेष आवश्यकता की पूर्ति के लिए या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ व्यक्ति मिलकर सहयोगी समूह भी बनाते हैं। इनका उद्देश्य प्राय: एक दूसरे को भावनात्मक एवं व्यावहारिक सहायकता करना होता है। समूह, सहयोगी रूप में या किसी कार्य को सम्पन्न करने में दोनों प्रकार से सहयोगी समूह बनाए जा सकते हैं। समूह बनाते समय हमें यह जान लेना चाहिए कि हमारे जीवन के किस पहलू एवं कार्य के लिए किस प्रकार का सहयोगी समूह किस प्रकार बनाया जा सकता है? और ये समूह किस प्रकार हमें सहायता दे सकते हैं?

यदि वर्तमान में हमारे उद्देश्य पूर्ति के लिए या किसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए इस प्रकार का सहयोगी समूह नहीं है तो हम उसे आसानी से बना सकते हैं। इसके लिए अपने साथ रहने वाले सामान्य और समान रूचि रखने वाले लोगों में से कुछ व्यक्तियों को छांटकर ओर अपने साथ लेकर समूह बना सकते हैं। जैसे-हमें प्रबन्ध क्षेत्र में किसी उद्देश्य की प्राप्ति करने के लिए किसी महिला के सहयोग की आवश्यकता है तो ऐसी स्थिति में महिला का चयन हम अपने साथियों में से या अपने सहपाठी या किसी सहकर्मी में से कर सकते हैं।

18.3 समूह की स्थापना

जब हम किसी समूह को विस्थापित करना चाहते हैं तो निम्न बिन्दुओं पर ध्यान अवश्य देना चाहिए।

1. यह स्पष्ट रहे कि जिस व्यक्ति को जोड़कर आप समूह बनाना चाहते हैं, उससे आप क्या चाहते हैं। आपका उद्देश्य स्पष्ट रहना चाहिए।
2. जिस कार्य को आप प्राथमिकता देते हैं उसे प्राथमिकता से करें। यदि आप ये समझते हैं कि कार्य कठिन है तो आप समूह से विनम्र समझौता करें। केवल उन लोगों से सम्पर्क करें जिनसे आप समूह बनाना चाहते हैं। उनके साथ अपनी वचनबद्धता, समय-सीमा, धन एवं स्रोतों की उपलब्धता के प्रति स्पष्ट रहें।
3. अपनी आवश्यकताओं और उद्देश्यों के बारे में समूह के सदस्यों को स्पष्ट कर दें।
4. समूह के साथ बैठक करें तथा प्रथम या प्रारम्भिक बैठक में ही अपनी आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों के बारे में विचार-विमर्श करें कि किस तरह आप एक-दूसरे की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकते हैं।
5. यह सामान्य बात है कि समूह से जब आप अपने उद्देश्यों की पूर्ति एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के बारे में बतलाते हैं तो समूह के सदस्यों की भी आवश्यकताएं एवं उद्देश्यों को भी जानना चाहिए। ये भी जानना आवश्यक है कि समूह के सदस्यों की क्या मांग है?
6. समूह से समयान्तराल से बराबर बैठकें करें एवं विचार-विमर्श करें कि समूह किस तरह कारगर रह सकता है और क्या इसे आगे भी बनाया रखा जा सकता है।
7. यदि समूह में अन्य सदस्यों को भी जोड़ने की आवश्यकता हो तो अवश्य जोड़े। इससे उद्देश्य प्राप्ति में ज्यादा सहयोग प्राप्त होने की सम्भावना रहती है।
8. यदि समूह में सदस्य स्थिर है तो ये बड़ी अच्छी बात होती है। इससे विश्वास मजबूत होता है तथा सहयोग भी अच्छा प्राप्त होता है।
9. यदि समूह में ऐसे व्यक्ति सदस्य जो जो नकारात्मक सहयोग दे सकते हैं अर्थात् सहयोग में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं तो उन सदस्यों को तत्काल अलग कर दें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.3.1 समूह को संचालित करना

जब सही लोगों का समूह स्थापित हो जाए तो उनको संचालित करने के लिए निम्न मार्ग निर्देशन काम में लिए जा सकते है। जिससे समूह का संचालन ठीक ढंग से किया जा सके व सदस्यों से सहयोग प्राप्त किया जा सके।

1. समूह का विश्वास प्राप्त करने के लिए विनम्र एवं सही व्यवहार करें। आपका व्यवहार सभी सदस्यों के प्रति विनम्र एवं सन्तुलित होना चाहिए, इससे समूह के सदस्यों का आपके प्रति भी विश्वास बढ़ेगा।
2. समूह के सदस्यों को समान समय में अर्थात् प्रत्येक सदस्य को अपनी बात कहने या विचार प्रकट करने के लिए बराबर समय दें।
3. समूह के सदस्यों को विचार प्रकट करने के लिए खुली छूट दें। उनको अपने विचार प्रकट करते समय टोंकें नहीं।
4. समूह के प्रत्येक सदस्य से उनके हालचाल पूछे और उनकी आवश्यकताएं पूछें।
5. समूह के प्रत्येक सदस्य को बराबर सम्मान दें, जिससे समूह का प्रत्येक सदस्य यह समझ लें कि उसकी उपेक्षा नहीं हो रही है।
6. समूह की बैठक में प्रत्येक सदस्य की बत को धैर्यतापूर्वक सुनें और बीच में रोक-टोक नाकरें।
7. समूह के सदस्य एक दूसरे से अनावश्यक बाते करके समय नष्ट न करें, इस बात का ध्यान रखें।
8. समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं और उनके सहयोग की प्रकृति के अनुसार कार्यसूची तैयार करें और उनके अनुसार कार्य का समय निर्धारित करें।
9. समूह की गोपनीयता को बनाए रखना चाहिए और समूह के सदस्यों की आलोचना न करें।
10. क्या समूह के सदस्यों का कार्य समय पर सम्पन्न हो रहा है? इसका मूल्यांकन करें।
11. समय-समय पर यह विचार करें कि क्या समूह, समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं को पूर्ण कर रहा है?
12. कार्य को सम्पन्न करने के लिए यदि सदस्यों को किसी प्रकार की कठिनाइयां पैदा होती है तो उनकी खुलकर चर्चा करें और इन कठिनाइयों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है, इसके लिए भी खुलकर चर्चा करें।
13. प्रत्येक सदस्य के कार्य का पुनर्निवेश (Feed back) प्राप्त करें।
14. प्रत्येक सदस्य को उद्देश्य प्राप्ति के लिए सहयोगी क्रिया करते समय कई चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। इन चुनौतियों को पुनर्निवेश (Feed back) के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इसके लिए समूह कार्य में पुनर्निवेश प्रक्रिया मुहैया करवानी चाहिए।

18.3.2 पुनर्निवेश मुहैया करवाना (Providing Feed back)

जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि समूह के सदस्यों को उद्देश्य प्राप्ति की क्रिया करने के लिए कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौत्यिों को हम सहायक चुनौतियां कह सकते है। प्रत्येक सदस्य की सहायक चुनौतियां विधेयात्मक एवं नकारात्मक रूप से पुनर्निवेश द्वारा प्राप्त की जा सकती है। अतः समूह के लिए यह आवश्यक है कि इस विधि पर उससे सदस्य आम सहमति बनाएं। इसके लिए निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

1. प्रत्येक सदस्य अपनी एवं अपने कार्यों के निष्पादन की समीक्षा करें। इसके लिए उनको पर्याप्त समय लगाना चाहिए।
2. प्रत्येक सदस्य कार्य निष्पाद के समय अपनी कमजोरियों एवं शक्तियों का मूल्यांकन एवं समीक्षा करे।
3. बैठक में प्रत्येक सदस्य अपना स्वयं का मूल्यांकन प्रस्तुत करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. फिर प्रत्येक सदस्य अपना पुनर्निवेश दें।

5. पुनर्निवेश के आधार पर एवं अब तक हुए कार्य निष्पादन के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति भविष्य के कार्य की रूपरेखा का निर्धारण करने के लिए समीक्षा करें।

18.4 स्व-सहयोग (Self-Support)

अपने उद्देश्य की प्राप्ति करने एवं कार्यों को अंजाम देने के लिए व्यक्ति यदि स्वयं अपने आप को सहयोग देता है तो यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। स्व-सहयोग का तात्पर्य यहां यह है कि व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभी तरह से अपने आप को तैयार करे। व्यक्ति स्वयं अपने आपको शारीरिक एवं मानसिक रूप से अपने आपको सहयोग करे। स्वयं अपने मूल्यों को जाने और अपनी क्षमताओं को पहचाने। अपने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को सही बनाये रखना अपने आप के लिए एक बहुत बड़ा स्व-सहयोग है। यदि व्यक्ति मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ है तो वह किसी कार्य को प्रसन्नतापूर्वक करके निर्धारित समय पर पूर्ण कर स्व-सहयोगप्राप्त कर सकता है।

कई लोग चिंताओं, कुण्ठाओं एवं ईर्ष्याओं से ग्रसित होकर स्वयं की एवं दूसरों की आलोचना में ही लगे रहते हैं। इससे न तो वे स्वयं के उद्देश्य की पूर्ति कर पाते हैं और न ही दूसरों के उद्देश्यों को पूर्ण होने देते हैं। इसी तरह शारीरिक रूप से जानबूझ कर अस्वस्थ होकर भी व्यक्ति अपने उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर पाते। यह एक तरह से नकारात्मक स्व-सहयोग (Negative Self Support) हो जाता है।

अधिकांश व्यक्ति अपनी ही क्षमताओं एवं शक्तियों से परिचित नहीं होते, इस कारण वे अपनी शक्तियों एवं क्षमताओं का उपयोग समय पर नहीं कर पाते । कई व्यक्तियों को अपने मूल्यों का निर्धारण करना ही नहीं आता और इसी कारण वे अपने क्रिया क्षेत्र में असफल हो जाते हैं।

अधिकांश स्व-सहयोग के लिए चार घटक बड़े अनिवार्य हैं-1. शारीरिक स्वास्थ्य 2. मानसिक स्वास्थ्य, 3. क्षमताओं की पहचान एवं 4. अपने मूल्य।

स्व-सहयोग बढ़ाने के लिए इन चारों घटकों का पुष्ट होना आवश्यक है। शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए व्यक्ति योगासनों, प्राणायामों, कायोत्सर्ग एवं प्रेक्षाध्यान का उपयोग कर सकता है। इनसे शरीर के दूषित या वर्ज्य पदार्थ बाहर निकलकर शरीर में प्राण ऊर्जा का संचार करते हैं। इससे व्यक्ति की जीवन शक्ति (Vital Power) बढ़ती है और कार्य करने की क्षमताएं भी बढ़ती हैं। अत: अपने कार्यों को पूरा करने एवं अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ये स्व-सहयोगी बन जाते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए भी योगासन, प्राणायाम, कायोत्सर्ग, प्रेक्षाध्यान, भावातीत ध्यान बड़ी ही उपयोगी विधियां हैं। इसके अतिरिक्त अपना व्यवहार भी महत्त्वपूर्ण है। अपने सहयोगी तंत्र के सदस्य के साथ मैत्री, करुणा, मुदिता एवं निर्लिप्तता का भाव रखें तो मानसिक स्वास्थ्य बहुत अच्छा रह सकता है।

अधिकांश व्यक्तियों को अपनी क्षमताओं एवं कौशलताओं की पहचान नहीं होती है। वे अपनी कला एवं दक्षताओं को नहीं जान सकते। इनको जानने के लिए हमें अपने आपको जानना चाहिए। हमें स्वयं से प्रेम करना चाहिए और अपना स्व-निरीक्षण एवं मूल्यांकन करना चाहिए।

स्व-सहयोग के लिए अपने मूल्य भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। हमें अपने जीवन में सही मूल्यों को स्थापित करना चाहिए एवं अपने मूल्यों को जानना चाहिए। हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि किन्हीं कारणों से हमारे मूल्यों का ह्रास तो नहीं हो रहा है।

यदि हम उपरोक्त सभी बातों को या घटकों को ध्यान में रखें तो हम स्वयं का स्व-सहयोग अच्छी तरह से पा सकते हैं व हम स्वयं स्व-सहयोग का एक स्रोत बन जाते हैं। कई व्यक्ति अपना अधिकांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समय स्वयं की ही आलोचना करने में नष्ट कर देते हैं और अपने आपको हीनता की भावना से ग्रसित कर लेते हैं। इस हीनता की भावना से ग्रसित हो जाने पर वे स्वयं ही अपने कार्यों की पूर्ति में बाध ा खड़ी कर लेते हैं। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हर व्यक्ति में किसी-न-किसी प्रकार की विशेष योग्यता होती है। अपनी विशेष योग्यता एवं विशिष्टता को जानकर एवं अपनी हीनता की भावना को दूर कर हम स्व-सहयोग पा सकते हैं।

18.4.1 समय का प्रबन्धन (Time Management)

स्व-सहयोग में स्वयं के समय का प्रभावी ढंग से उपयोग का बहुत ही महत्त्व है। समय का प्रभावशाली ढंग से उपयोग कर हम अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बहुत ही अच्छा स्व-सहयोग कर सकते हैं। इसके लिए यह अति आवश्यक है कि हम समय का सही उपयोग करें एवं उसकी समीक्षा करें। (हमने समय का प्रबन्धन वाले पाठ में इसकी बड़े विस्तार से चर्चा की है।) समय की उपयोगी समीक्षा करने के लिए प्रत्येक दिन, प्रतिसप्ताह, प्रतिमाह एवं प्रतिवर्ष को हम किस तरह व्यतीत करते है, इसकी समीक्षा करें। हम इसका भी लेख-जोखा रखते हैं कि कितना समय हमारा बिना उद्देश्य के व्यर्थ चला जाता है। सहयोगी तंत्र के परिप्रेक्ष्य में समय का प्रबन्धन करने के लिए हमें निम्न बिन्दुओं पर ध यान देना चाहिए।

1. उन वस्तुओं की, कार्यों की या घटकों की सूची बनाएं जो आपके स्व-सहयोग में सहायक है।
2. प्रत्येक सप्ताह एवं माह में इन वस्तुओं के लिए व्यतीत समय को चिहिन्त करें एवं उनकी समीक्षा करें। उन वस्तुओं की, कार्यों की एवं घटकों की सूची बनाएं जो आपकी योजना को बिगाड़ देती है और कार्यों को क्रियान्वित करने में बाधा पहुंचाती है। चूंकि इससे स्व-सहयोग में बाधा उत्पन्न होती है अत: इनको अलग कर देना चाहिए।
3. यह लिखने या नोट करने का भी प्रयास करें कि आप सहयोगी तंत्र के द्वारा किस तरह से अपने बिगाड़ को रोक सकते हैं।

बोध प्रश्न :

---

1. समूह की स्थापना कैसे की जाती है?
2. स्व-सहयोग क्या है?

18.5 पर्यावरणीय सहयोग (Ecological Support)

हमें अपने वातावरण, घर, कार्यालय, देश एवं पृथ्वी से भी पर्याप्त सहयोग मिलता है। ये सभी हमारे लिए बहुत बड़े सहयोगी तंत्र के भाग हैं। इन सभी से हम आपसी सहयोग प्राप्त करते हैं, ये एक तरह से आपसी सहयोगी तंत्र हैं। जैसे-प्रकृति को हन सहयोग करते हैं तो प्रकृति भी हमें सहयोग करती हैं वातावरण में हम प्रदूषण अधिक करते हैं तो प्रकृति हमें सहयोग नहीं करती। इसी तरह हम प्रकृति के वनों की कटाई करते हैं तो हमें शुद्ध हवा, अच्छी बरसात से वंचित रहना पड़ता है। अत: हम एक-दूसरे के परस्परिक सहयोगी तंत्र (Mutual Supporting System) हैं। वर्तमान में मनुष्य प्रकृति एवं अपने वातावरण की उपेक्षा कर रहा है। पर्यावरण एवं वातावरण में कई प्रकार के प्रदूषण मनुष्य के द्वारा फैलाये जा रहे हैं। इस तरह से वह प्रकृति को नकारात्मक सहयोग देता है। फलस्वरूप प्रकृति से भी मनुष्य नकरात्मक सहयोग प्राप्त करता है। बड़े-बड़े शहरों में जो प्रदूषण है वह प्रकृति और मनुष्य के बीच में पारस्परिक सहयोग न होने का प्रमाण है। यदि हम एक छोटा-सा उदाहरण लें, सवेरे बगीचे में हम घूमने जाते हैं और घर से बगीचे या उद्यान तक जाने के लिए किसी वाहन का प्रयोग करते हैं तो यह प्रकृति के साथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

और स्वयं के साथ भी नकरात्मक सहयोग है। घूमने हम इसलिए जाते हैं कि हमारी सेहत बनी रहे यह तो एक तरह से स्व-सहयोग हुआ परन्तु जब हम वाहन का उपयोग करके घूमने जाते है। तब प्रकृति के साथ प्रदूषण फैलाने का नकारात्मक सहयोग हुआ। कालान्तर में यह नकरात्मक सहयोग हमारे लिए ही प्रकृति के द्वारा रात्मक सहयोग बन जाता है।

इसी तरह वर्तमान समय में परिवार एवं समाज में भी ऐसी ही स्थिति जा रही है। मनुष्य के ही स्वार्थवश संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं और पारिवारिक सदस्य में पारस्परिक सहयोग कम होता जा रहा है। समाज में भी यही स्थिति बनती जा रही है। अलग-अलग वर्ग के लोग कुछ कारणों को लेकर अपने पारस्परिक सहयोग को नकारात्मक पारस्परिक सहयोग में बदल रहे हैं। इतना ही नहीं राज्य स्तरों, राष्ट्रीय स्तरों एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर भी इस प्रकार के पारस्परिक सहयोगों की कमी होती जा रही है।

18.6 सहयोग के अवसर (Time for Support)

मनुष्य की जीवन यात्रा एक तरह से सरल नहीं है, परन्तु यदि मनुष्य इसका प्रबन्धन ठीक ढंग से करें तो यह काफी हद तक सरल हो जाती है। जीवन के अलग-अलग स्तरों पर कई उतार-चढ़ाव आते है। इन उतार-चढ़ाव में व्यक्ति अपने जीवन का प्रबन्धन किस तरह करता है यह भी एक कला है। जीवन में विकास के स्तर, परिवर्तन के स्तरों पर व्यक्ति काफी कुछ सीखता है। यदि हम जीवन को और उसमें आने वाले उतार-चढ़ाव को ठीक से समझें एवं स्वीकार करें तो जीवन की राह काफी सरल हो सकती है। जीवन की यात्रा में हमें कई दु:खों एवं सुखों का अनुभव होता है। कभी हम सुख प्राप्त करते हैं कभी दु:ख। जब जीवन में उतराव का समय या असफलता का समय आता है तब हम दु:खी एवं व्यथित हो जाते हैं और जब सफलताओं या प्रगति का समय आता है तब हर्षित होते हैं पर सही दिशा में जीवन जीने वाले व्यक्तियों में सुखों का और दु:खों का स्थान कम होता है। वे तो अपने निमित्त कर्मों को ध्यान में रखते हुए कर्म करते रहते हैं। असफलताओं के कारण व्यक्ति व्यथित हो जाता है और घबराने लग जाता है। यदि ये स्थिति अतिरंजित हो जाए तब व्यक्ति के व्यक्तित्व में नकरात्मक परिवर्तन आ जाता है और भविष्य में भी वह अपनी सफलताओं से दूर होने लग जाता है। ऐसी स्थिति में न तो वह सहयोगी तंत्र से सहयोग ले पाता है न ही वह पारस्परिक सहयोग को प्राप्त कर पाता है। दूसरी ओर जो व्यक्ति जीवन की सफलताओं एवं असफलताओं में समभाव रखते हुए क्रिया करते है वे एक तरह से योगी के समान ही होते हैं। श्रीमद्भगवतगीता में यह कहा गया है कि 'समत्व योग उच्चते'। जो व्यक्ति इस प्रकार का व्यक्तित्व अपनाते हैं उनके लिए असफलता जैसी कोई चीज नहीं होती है और वे अपना जीवन निरापद जीते है परन्तु ऐसी स्थिति बहुत ही कम गिने-चुने लोगों में मिल सकती है।

असफल व्यक्ति अपनी असफलताओं को छुपाने के लिए झूठी वास्तविकता का प्रदर्शन करते हैं और धीरे-धीरे वे अपनी जीवन की वास्तविकता से अलग हो जाते है और किसी भी क्रिया में वे अवास्तविकता का मुखौटा लगा देते हैं, परन्तु असफलता एवं सफलता में समान रहने वाला ऐसी नहीं करता। वे हमेशा जीवन की वास्तविकता को लेकर ही चलते हैं।

प्रकृति में भी जीवन का विधीविधान लयबद्ध तरीके से चलता है, जैसे ऋतुओं के बदलने में एक क्रम रहता है या लयबद्धता रहती है। सर्दी के बाद बसन्त, बसन्त के बाद ग्रीष्म, ग्रीष्म के बाद बरसात। इस तरह ऋतुओं का परिवर्तन भी लयबद्ध तरीके से होता है। जीवन का सही प्रबन्धन करने वाले व्यक्ति इस बात को जानते हैं कि जीवन में बदलाव भी लयबद्ध तरीके से होता है। जीवन की अवस्थाओं को यदि हम देखें तो उनमें भी इस प्रकार के परिवर्तन हैं। बाल्यावस्था से युवावस्था, युवावस्था से प्रौढ़ावस्था और प्रौढ़ावस्था से वृद्धावस्था। संसार में मनुष्य का जीवनचक्र इसी तरह चलता है। इन सभी अवस्थाओं में व्यक्ति को किसी-न-किसी प्रकार के सहयोग की आवश्यकता रहती है। इन सभी अवस्थाओं पर व्यक्ति अपने जीवन का प्रबन्धन करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बाल्यावस्था में वह अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों से सहयोग प्राप्त करता है, प्रेम प्राप्त करता है। किशोरावस्था में अपने परिवार के सदस्यों से एवं समाज से सहयोग प्राप्त करता है। इस अवस्था में अपने मित्रों एवं साथियों से भी सहयोग प्राप्त करता है। युवावस्था में व्यक्ति उपरोक्त सहयोगतंत्र के घटकों के अतिरिक्त अपने सहयोगियों, सहकर्मियों आदि से भी सहयोग प्राप्त करता है और वृद्धावस्था में अपने परिवार के सदस्यों एवं समाज से सहयोग प्राप्त करता है। जीवन की उपरोक्त सभी अवस्थाओं में व्यक्ति स्व-सहयोग एवं पारस्परिक सहयोग भी प्राप्त करता है।

18.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. समूह क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. समूह की स्थापना करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
3. सहयोग के लिए समूह का संचालन किस प्रकार किया जाता है?
4. स्व-सहयोग क्या है? इसमें समय प्रबन्धन का क्या उपयोग है?
5. पर्यावरणीय सहयोग क्या है?
6. सहयोग के अवसरों को स्पष्ट करें।

18.8 संदर्भ ग्रंथ

1. डेन कार्नो : लोक व्यवहार
2. केम्पल स्थिम Career Control Billing are Sans, Ladon.
3. The Personal Management : Mullign J (Hand Book)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–19 समूह की प्रकृति और उसकी क्रिया प्रणाली

संरचना

19.0 प्रस्तावना

19.1 उद्देश्य

19.2 समूह का अर्थ एवं परिभाषाएं

19.3 समूह आदर्श

19.3.1 समूह के आदर्शों के कार्य

19.4 समूह मन

19.4.1 समूह मन सामूहिक चेतना के रूप में

19.4.2 समूह मन को व्यक्तियों एक समान मानसिक प्रदत्तों के रूप में मानने वाले सिद्धांत

19.4.3 समूह मन को मानव समाज के मस्तिष्क के रूप में मानने वाले सिद्धांत

19.5 समूहों का वर्गीकरण

19.5.1 बोगार्डस का वर्गीकरण

19.5.2 कूर्ले का वर्गीकरण

19.5.2.1 प्राथमिक समूह

19.5.2.2 द्वितीयक समूह

19.6 सामूहिक जीवन की कुछ विशेषताएं

19.7 समूह की क्रियाप्रणाली

19.8 प्रश्नावली

19.9 संदर्भ ग्रंथ

19.0 प्रस्तावना

गत अध्याय में सहयोगी समूह, स्व–सहयोग एवं सहयोग के अवसर के बारे में अध्ययन किया। इस अध्याय में हम समूह की प्रकृति एवं इसकी क्रिया प्रणाली के बारे में अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में समूह क्या है? समूह का आदर्श क्या है? इसके बारे में आप अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में समूह के आदर्शों के कार्य, समूह–मन, समूह के प्रकारों और समूह के वर्गीकरण के बारे में अध्ययन करेंगे।

19.1 उद्देश्य

1. इस पाठ का उद्देश्य समूह के बारे में जानकारी देना है।
2. समूह के आदर्श एवं समूह के आदर्शों के कार्यों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होगी।
3. समूह के विभिन्न प्रकारों एवं वर्गीकरण के बारे में भी जानकारी देना इस पाठ का उद्देश्य है।
4. इस पाठ के अध्ययन के बाद इसके विषय में सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

19.2 समूह का अर्थ एवं परिभाषाएं (Managing and definition of Group)

समूह व्यक्तियों का आधारभूत परिवेश है। प्रत्येक व्यक्ति कई समूह का सदस्य होता है, जैसे–परिवार का समूह, विद्यालय का समूह, सामाजिक समूह, कार्य समूह आदि। समूह में व्यक्ति की कोई–ना–कोई स्थिति या कोई–ना–कोई स्थान होता है, जैसे–कहीं वह समूह में प्रत्येक बालक तो कहीं माता या पिता, कहीं छात्र या शिक्षक, कहीं मित्र आदि। समूह की इन स्थितियों में से प्रत्येक के साथ व्यक्ति के व्यवहारों, विश्वासों एवं अभिवृत्तियों का सम्बन्ध होता है और ऐसे वर्ग या समूह में व्यक्ति की भूमिका होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

समूह ऐसे व्यक्तियों का वर्ग या समुच्चय होता है, जिसमें व्यक्तियों सहयोगपूर्ण व अन्तराश्रित सम्बन्ध होते हैं। अन्तराश्रित सम्बन्ध होने का अर्थ केवल यही नहीं है कि समूह के इन व्यक्तियों में अन्तर क्रियाएं होनी चाहिए अपितु चुनिन्दा व्यवहारों, अभिवृत्तियों एवं विश्वासों के बारे में भी इन सदस्यों के कुछ समान आदर्श भी होते हैं। समूह में प्रत्येक सदस्य इस सम्बन्ध में कुछ अपेक्षाएं रखता है कि दूसरे के प्रति वह कैसा व्यवहार करता है और दूसरे सदस्यों से वह कैसे व्यवहार की अपेक्षा रखता है। समूह का एक विशेष गुण यह है कि इसकी अपनी एक समूह रचना ;ळतवनच ैजतनबजनतमद्ध होती है। ये समूह संरचना समूह के सदस्यों की भूमिकाओं और भूमिका सम्बन्धों का अवकलन है। विभिन्न समूहों के संरचनाओं के स्तर भी भिन्न-भिन्न होते हैं। अति सुगठित समूह की संरचना का स्तर भी उच्च कोटि का होता है। सुगठित समूह के प्रत्येक व्यक्ति या सदस्य की भूमिका और कार्य स्पष्ट रूप से निर्धारित होते हैं।

समूह का महत्त्वपूर्ण दूसरा पहलू उसकी सुसम्बद्धता होता है। यह सदस्यों के उन सम्मिलित शक्तियों का बल है जो समूहों को एक-जुट बनाए रखते हैं। समूह जितना अधिक सुसम्बद्ध होता है उतना ही वह अनेक विपरीत परिस्थितियों में सुरक्षित बना रह सकता है। जैसे-एक परिवार सुगठित समूह उसी समय हो सकता है जब पति और पत्नी के बीच प्रेम व सम्मान की भावना हो तथा माता-पिता और बच्चों में परस्पर प्रेम व आदर की भावना हो ऐसा सुगठित परिवार एक सुगठित समूह के रूप में कार्य करता है। ऐसा सुगठित समूह अनेक विपरीत परिस्थिति में भी संतुलन बनाए रखता है। जैसे-बीमारी, दुर्घटना या किसी प्रकार का संघर्ष आदि यदि समूह के सामने विपरीत परिस्थिति बनकर खड़ा होता है तो इसके सदस्य सुसम्बद्धता के कारण इसका सामना कर लेते हैं। इसके विपरीत यदि माता-पिता का परस्पर सम्बन्ध संतोषप्रद नहीं है परस्पर प्रेम व सम्मान भी नहीं है और बच्चों में भी परस्पर प्रेम, सम्मान व आदर नहीं है तो ये सभी व्यक्ति नाम मात्र के लिए साथ-साथ रहते हैं परन्तु इनमें निरन्तर द्वन्द्व और अनुशासनहीनता की स्थिति बनी रहेगी तथा ये सदस्य समूह के रूप में किसी कार्य को पूरा नहीं कर पायेंगे।

किसी भी समूह की सुसम्बद्धता को प्रभावित करने वाले अनेक अभिप्रेरक होते हैं, जैसे-सामूहिक लक्ष्य की प्राप्ति की आवश्यकता, सम्बन्ध की आवश्यकता, प्रतिष्ठा और शक्ति प्राप्त करने की आवश्यकता आदि प्रमुख अभिप्रेरक हैं। ये अभिप्रेरक समूह की सुसम्बद्धता को बढ़ा सकते हैं और समूह की सफलता को नष्ट भी कर सकते हैं। जैसे-किसी संयुक्त परिवार में प्रतिष्ठा एवं शक्ति बढ़ाने के लिए माता-पिता की आकांक्षाएं एवं परिवार के सदस्यों के प्रति उनका स्नेह, परिवार की सुसम्बद्धता को बढ़ा सकते हैं। परन्तु दूसरी ओर प्रतिष्ठा और शक्ति की प्राप्ति के लिए पुत्र व पुत्रवधुओं की आकांक्षाएं संयुक्त परिवार के विघटन का कारण बन सकती है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने समूह को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। शर्मा एवं शर्मा (1998) ने एडवर्ड सपिर की परिभाषा को इस तरह परिभषित किया है "किसी समूह का निर्माण इस तथ्य पर होता है कि कोई ना कोई स्वार्थ है जो समूह के सदस्यों को परस्पर बांधे रहता है।" इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि समूह में सदस्यों के कुछ सामान्य स्वार्थ या उद्देश्य होते हैं जिससे वे आपस में एक दूसरे से बंधे रहते हैं।

शर्मा एवं शर्मा (1998) ने मैकाइवर की परिभाषा को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "समूह से हमारा तात्पर्य सामाजिक प्राणियों से किसी ऐसे संकलन से है जो एक दूसरे के साथ विशेष सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हों।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि समूह के सदस्यों में कुछ समान हित एवं रुचियां होती हैं, अर्थात् समूह के सदस्य अपने इन हितों या उद्देश्यों या रुचियों या अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए समूह की रचना करते हैं। प्राय: समूह की रचना निम्न कारणों से होती है—

1. जब कुछ व्यक्तियों की समान अभिवृत्तियां हो।
2. जब व्यक्तियों में समान विश्वास हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. जब व्यक्तियों में एक समान ध्येय एवं समान लक्ष्यों की पूर्ति की इच्छा हो।
4. जब व्यक्तियों में समान हित हो।

अर्थात् समूह उसी समय बनता है जब व्यक्तियों की अन्तर क्रियाओं में ऐसी अभिवृत्तियां, विश्वास एवं व्यवहार के तरीके परस्पर समान हो। इनमें समान अभिवृत्तियां एवं समान विश्वासों का संचार भी पूर्वानुमानित होता है। ये पूर्व धारणा बनाते हैं एवं समूह के सदस्य अपने-अपने विचार प्रकट करते हैं। इस प्रकार समान हित, समान अभिवृत्तियां एवं समान विश्वासों के समूह की सुसम्बद्धता एवं समूह की एकता को बल मिलता है इसी कारण सदस्यों के लिए अपने आपको सामूहिक क्रिया के लिए शीघ्र और प्रभावकारी ढंग से सक्रिय हो जाना सम्भव हो पाता है। समूह सुसम्बद्धता से सदस्यों में आपसी सहयोग की भावना बढ़ती है क्योंकि उनका ध्येय या उद्देश्य समान होता है।

किसी भी समूह के प्रति आकर्षण का आधार उनके सदस्यों की परस्पर क्रिया में ही निहित है। एक सदस्य अन्य सदस्यों के साथ परस्पर क्रिया से लाभ का अनुभव करता है। इसी प्रकार अन्य सदस्य की परस्पर क्रिया भी एक-दूसरे के लिए संतोषप्रद एवं लाभदायक हो सकती है। समूह का प्रत्येक सदस्य समूह के प्रति इसीलिए आकर्षित रहता है, क्योंकि प्रत्येक सदस्य को समूह की गतिविधि मूल रूप से लाभप्रद प्रतीत होती है।

19.3 समूह आदर्श (The Group Norms)

किसी भी समूह की आदर्श स्थिति उस समय तक बनी रहती है जब समूह के सभी सदस्य नियमितता के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति बनाए रखें। समूह के आदर्शों से ही सामाजिक घटनाओं और सामाजिक अन्तरक्रियाओं को पर्याप्त नियमितता प्राप्त होती है। ये आदर्श औपचारिक भी हो सकते हैं और अनौपचारिक भी। समूह के ये आदर्श किसी स्थिति या विशेष परिस्थिति को स्पष्ट करते हैं जिनमें एक नियमितता रहती है। समूहों में नियमितता को ही एक नियम बनाया जाता है। जो विशेष स्थितियों में एवं विशेष व्यक्तियों पर लागू होता है। समूह आदर्श को किसी नियमितता एवं नियम की स्वीकृति के रूप में माना जा सकता है। किसी समूह में किसी निर्धारित नियम की उपस्थिति इस बात की स्पष्ट संकेत होती हैं कि किसी भी सदस्य का निश्चित व्यवहार होना किसी अनुशास्त्री अथवा विधि-विधान अथवा नियमों पर ही निर्भर है। ये अनुशास्त्री (Sanction) सकारात्मक भी हो सकता है और नकारात्मक। किसी व्यवहार का अनुमोदित होना या पुरस्कृत होना सकारात्मक अनुशासन है जबकि किसी का निर्धारित नियम के अनुसार व्यवहार न होने पर दण्डित होता है, नकरात्मक अनुशासन है। समूह के आदर्श को पूरी स्वीकृति प्राप्त है तो यह आशा की जा सकती है कि वह अपने आप लागू होगा और उसमें किसी बाह्य अभिकरण के हस्तक्षेप के आवश्यकता नहीं होगी। समूह के सहभागियों का एक समान आदर्श होता है। समूह के प्रत्येक सदस्य का निर्णय अन्य सदस्यों को भी प्रभावित करता है तथा पारस्परिक निर्णय एक दूसरे सदस्यों को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार से समूह का एक आदर्श प्रकट होता है। इनमें प्रत्यक्ष बोधात्मक आदर्श होते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक आदर्श एवं मूल्यात्मक आदर्श भी उपस्थित रहते हैं।

समूह के आदर्शों में व्यवहारात्मक आदर्श अपना विशेष स्थान रखता है। यही आदर्श समूह स्थायित्व एवं सुव्यवस्था प्रदान करता है।

19.3.1 समूह के आदर्शों के कार्य

किसी भी समूह का अस्तित्व तभी कायम रह सकता है, जब उसके आदर्श समूह के लिए एवं उसके सदस्यों के लिए हितकर हो। समूह आदर्श का मुख्य कार्य है समूह को सुव्यवस्था के साथ-साथ स्थायित्व प्रदान करना। यदि समूह आदर्श न हो तो प्रत्येक सदस्य अपने-अपने ढंग से व्यवहार करेगा तथा समूह एवं उसके सदस्यों का अस्तित्व अस्त-व्यस्त एवं अप्रत्याशित हो जाएगा। ऐसी स्थिति में सदस्यों में किसी भी प्रकार की सहयोगपूर्ण कार्यवाही सम्भव नहीं है। समूह आदर्श का दूसरा कार्य समूह के सदस्यों के मध्य अन्तरक्रिया की सुविधा प्रदान कराना है। अन्तरक्रिया, समूह के सदस्यों के अनुभवों की सहभागिता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

से ही संभव है। इसके लिए कुछ संज्ञानात्मक एवं प्रत्यक्ष बोधात्मक आदर्शों का होना आवश्यक है। समूह के आदर्शों में आस-पास के संसार को देखने एवं समझने के लिए परस्पर सहमति प्राप्त कुछ विधियों एवं आस पास होने वाली घटनाओं के विषय में कुछ समान विश्वासों का होना भी अनिवार्य है।

19.4.0 समूह-मन (Group-Mind)

समूह-मन का अर्थ यह है कि एक समूह के सदस्य की परस्पर अन्त:क्रियाओं के समय अथवा सामूहिक-परिस्थितियों के समय उत्पन्न उस मस्तिष्क या मन से है जो अपनी विशिष्टताओं के कारण वैयक्तिक मनों से पृथक एवं श्रेष्ठ होता है और जो व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित एवं नियंत्रित करता है। प्राय: व्यक्ति अकेले में अपने वैयक्तिक मन (Individual Mind) के अनुसार कार्य करता है वही समूह की स्थिति में उसका वैयक्तिक मन दब जाता है और उसके स्थान पर समूह के विभिन्न व्यक्तियों के बीच जो अन्त:क्रियाएं (Interaction) होती है उसके फलस्वरूप उनके वैयक्तिक मन सम्मिलित रूप से एक गृहीत एवं उच्च स्तर के मन का रूप धारण कर लेते है और व्यक्ति सामूहिक स्थिति में इसी मन से संचालित होकर विशेष प्रकार का व्यवहार करने लगता है। मन के इस स्तर को अर्थात् सामूहिक स्थिति में व्यक्तियों के व्यवहार को संचालित करने वाले इस उच्चस्तर मन को समूह-मन (Group-Mind) कहते है। समूह-मन वैयक्तिक गुणों का योग मात्र न होकर उनसे उत्पन्न हुई एक श्रेष्ठ शक्ति है। जिस तरह से भवन निर्माण में ईंट एक इकाई होती है। जब एक इकाई ईंट अलग होती है तब हम इसे ईंट ही कहते है परन्तु जब कई ईंटें मिलकर भवन का रूपधारण कर लेती है तब ये ईंट ना कहलाकर भवन कहलाती है। इसी तरह समूह-मन किसी व्यक्ति विशेष का मन न होकर यह समूह के सदस्यों की सामूहिक चेतना या सामूहिक मन है।

समूह-मन की व्याख्या करने के लिए भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के सिद्धान्त दिये हैं। इन सिद्धान्तों के आधार पर उन्होंने समूह-मन की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। समूह-मन को समझने के लिए प्राय: तीन प्रकार के सिद्धान्त का उपयोग किया जाता है। ये सिद्धान्त हैं-

1. समूह-मन को सामूहिक चेतना के रूप में मानने वाले सिद्धान्त
2. समूह-मन को समूह के व्यक्तियों के एक समान मानसिक प्रदत्तों के रूप में मानने वाले सिद्धान्त
3. समूह-मन को संगठित मानव समाज के मस्तिष्क के रूप में मानने वाले सिद्धान्त।

उपरोक्त सिद्धान्तों की चर्चा संक्षेप में हम आगे कर रहे हैं।

19.4.1 समूह मन सामूहिक चेतना के रूप में

इस सिद्धान्त को मानने वाले मुख्य विद्वान लेबों, ऐचपीना तथा दुर्खीम प्रमुख हैं। समूह-मन की कल्पना लेबों ने 1992 में की। उन्होंने अपनी पुस्तक (Group-Mind) में समूह-मन की व्याख्या की है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है, "भीड़ के सारे व्यक्तियों के सारे उद्वेग और विचार एक दिशा में बहने लगते हैं और उनका चेतन मन समाप्त हो जाता है। एक सामूहिक मन बन जाता है। यह नि:संदेह अस्थिर होता है और स्पष्ट विषमताओं को उपस्थित करता है।"

लेबों के अनुसार "जब मनुष्य समूह की स्थिति में होता है तो वह व्यक्तिगत मस्तिष्क से विचार, अनुभव और कार्य न कर एक अन्य मस्तिष्क से कार्य करता है वह मस्तिष्क ही समूह-मन कहलाता है।"

ऐस्पीना ने भी 'सामूहिक चेतना' (Collective Consciousness) की कल्पना की थी। उनकी इस कल्पना के अनुसार मनुष्य सामूहिक परिस्थित में अपनी वैयक्तिकता से हटकर सामूहिक चेतना प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार समूह में विभिन्न व्यक्तियों की चेतना मिलकर एक सामूहिक चेतना का निर्माण करती है। उनके अनुसार समाज में या सामूहिक स्थितियों या सामूहिक परिस्थितियों में व्यक्ति अपनी वैयक्तिक चेतना को छोड़कर समूह की सामूहिक चेतना ग्रहण कर लेते हैं और इसी को सामूहिक चेतना मन कहते हैं।

दुर्खीम ने सामूहिक-मन की कल्पना सामूहिक चेतना के रूप में की। उन्होंने मानसिक तत्त्व या आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं माना है। उनके अनुसार मन केवल चेतना का प्रवाह है, उन्होंने चेतना के विकास का एक क्रम प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार सबसे पहले व्यक्ति के चेतन प्रवाह में 'संवेदनाएं' उत्पन्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होती हैं और इनके परिणामस्वरूप उत्तेजनाओं का प्रवाह ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा मस्तिष्क तक पहुंचता है। मस्तिष्क की कोशिकाओं में विशेष प्रकार की प्रक्रियाएं होती हैं जो मिलकर या संयुक्त होकर मस्तिष्क में संवेदनाएं उत्पन्न करती हैं। इन संवेदनाओं से मस्तिष्क में प्रतिमाएं जन्म लेती हैं और इन प्रतिमाओं के सम्मिलित होने पर व्यक्ति के विचार बनते हैं। चेतना के विकास के स्तरों तक मानसिक संगठन का कार्य, व्यक्ति के विचार, भाषा एवं अन्य संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त होकर दूसरे व्यक्तियों तक पहुंचते हैं। समूह के व्यक्तियों में इनसे जो विचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया होती है उसे ही सामाजिक चेतना कहते हैं और उसे ही समूह-मन कहते हैं।

जटिल प्रक्रिया होने के कारण सामूहिक चेतना की प्रक्रिया का पुन: भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की चेतना में इसका विश्लेषण नहीं हो पाता। यह प्रक्रिया ठीक उसी प्रकार से है, जैसे रासायनिक तत्त्व मिलकर मिश्रण बनाते हैं और इस मिश्रण से रासायनिक तत्त्वों को सरलता से अलग-अलग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार से मिश्रण के गुण उन तत्त्वों के गुणों से भिन्न हो जाते हैं। दुर्खीम में समूह-मन को सामाजिक चेतना माना है और उसकी उत्पत्ति क्रमश: संवेदना, मानसिक प्रतिमा, विचारों का आदान-प्रदान और सामाजिक चेतना से मानी है।

19.4.2 समूह-मन को व्यक्तियों के एक समान मानसिक प्रदत्तों के रूप में मानने वाले सिद्धान्त

इस सिद्धान्त में मुख्य रूप से जार्ज सिमेल का सिद्धान्त एवं मैक्स वेबर के सिद्धान्त प्रमुख है। जार्ज सिमेल ने समूह-मन की व्याख्या के अन्तर्गत व्यक्ति के वैयक्तिक रूप की जगह व्यक्तियों के सामूहिक रूप की बात कही। उनके अनुसार यद्यपि समाज में व्यक्तियों का परिवर्तन होता रहता है परन्तु फिर भी उनमें एकता झलकती है। समाज या समूह में इस एकता के बने रहने के कारण, व्यक्तियों के विचारों के कारण भावनाओं की अभिव्यक्ति समान एवं स्थाई भाषा में पायी जाती है। उन्होने समूह-मन की व्याख्या करते समय तीन विशेषताओं को स्पष्ट किया है। ये विशेषताएं हैं-1. समाज की एकता या समूह की एकता, 2. व्यक्तियों के भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम की एकता, 3. समाज या समूह या संरचना की एकता तथा स्थायित्व।

मैक्स वेबर ने समूह-मन के बारे में अपना कोई विशेष सिद्धान्त अलग से प्रस्तुत नहीं किया अपितु सिमेल के सिद्धान्त को ही और अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया। उन्होंने दो प्रकार के समूह की कल्पना की। ये समूह हैं-

1. प्राथमिक समूह (Primary Groups) 2. द्वितीय समूह (Secondary Groups)

1. **प्राथमिक समूह** (Primary Groups)- इसमें सिमेल ने समूह की जिन एकताओं का वर्णन किया है उन्हीं का वर्णन मेक्स वेवर ने किया है। इन समूह के सदस्यों में निकट सम्पर्क एवं सम्बन्ध होते हैं और इनमें पायी जाने वाली एकताओं का आधार परस्पर सम्बन्ध वैयक्तिक चेतना ही है। इस प्रकार के समूह में व्यक्ति के स्वयं का परिवार और उसके आस-पड़ोस के समूह होते हैं।
2. **द्वितीय समूह** (Secondary Groups)- द्वितीयक समूह के व्यक्तियों मे निकट के सम्पर्को या सम्बन्धों का अभाव रहता है। परिणामस्वरूप इन्हें एक-दूसरे की स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता। ऐसे समूह के सदस्यों की विचारों में एकता बनी रहती है। हालांकि उनमें निकटीय सम्पर्क का अभाव रहता है। इस प्रकार के समूह में राजनैतिक दल, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंच आते हैं।

19.4.3 समूह-मन को मानव समाज के मस्तिष्क के रूप में मानने वाले सिद्धान्त

पूर्वोक्त सिद्धान्तों में लेबों, ऐस्पीना तथा दुर्खीम ने सामूहिक चेतना को समूह-मन के रूप में माना है। परन्तु मैकडूल ने इन सिद्धान्तों को अस्वीकार किया। वे सामूहिक चेतना को स्वीकार करते हैं। उन्होंने मन को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया है-"हम मन को मानसिक या प्रयोजन की शक्तियों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की व्याख्या के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।" मन की इस परिभाषा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि प्राणी भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहता है। इन उद्देश्यों की एकसूत्रता तथा उनकी प्राप्ति में लगी हुई प्राणियों की एक व्यवस्थित शक्ति को मन कहते हैं। इसी तरह उन्होंने समूह-मन की अवधारणा को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार "समाज शक्तियों की एक संगठित व्यवस्था है जिसका अपना एक जीवन है, जिसकी अपनी प्रवृत्तियां हैं, जिसमें अपने अंग के व्यक्तियों (Component individual) के परिवर्तन करने की शक्ति है और अपने को एक व्यवस्था के रूप में बनाए रखने की शक्ति है जिसमें क्रमश: धीरे-धीरे परिवर्तन होता है। मैकडूकल ने समूह-मन को व्यक्तियों के मनों का योग मात्र नहीं माना है। उनके अनुसार व्यक्तियों के व्यक्तिगत मनों से अपना अलग अस्तित्व एवं अपनी अलग विशेषताएं है जिनका प्रभाव व्यक्तिगत मनों पर पड़ता है। यही कारण है कि किसी समूह के सदस्यों के रूप में व्यक्ति के विचार, अनुभव तथा कार्य करने का ढंग बदल जाता है। मैकडूकल के अनुसार समूह-मन का अर्थ किसी समाज या किसी समूह के उद्देश्यों की एक व्यवस्थित तथा उनको प्राप्त करने वाली शक्तियों से है जिसके अनुसार उस समाज या समूह के व्यक्ति या सदस्य अपना जीवन व्यतीत करते हैं उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के मन में अन्य व्यक्तियों के प्रति बहुत से मानसिक संस्कार भी उपस्थित रहते हैं और ये ही संस्कार एक व्यक्ति का सम्बन्ध दूसरे व्यक्ति से जोड़ते हैं और इन्हीं के कारण समाज या समूह की उत्पत्ति होती है।

बोध प्रश्न :

1. समूह आदर्श क्या है?
2. समूह मन के बारे में विस्तार से समझाएं?

19.5 समूहों का वर्गीकरण (Classification of Groups)

समूह का निर्माण व्यक्तियों के आवश्यकतानुसार होता है। समूह कई प्रकार के हो सकते हैं। किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्राय: समूहों का निर्माण होता है। व्यक्ति के कार्यों के विभिन्न क्षेत्रों में समूहों का निर्माण किया जा सकता है। कई विद्वानों ने समूह के वर्गीकरण का मुख्य आधार उनका कार्य (Function), क्षेत्र (Fields) तथा स्थिरता (Stability) को माना है। परिवार में भी विशेष कार्य व विशेष उद्देश्यों के आधार पर समूह बनते हैं। ये प्राथमिक समूह होते हैं। जैसे खिलाड़ियों के समूह, चिकित्सा क्षेत्र में सामूहिक चिकित्सा के समूह (Group Therapy) सही प्रबन्धन के लिए प्रबन्धकों का समूह। इसी तरह से एक ही लिंग वाले सदस्यों का समूह जैसे महिला वर्ग या पुरुष वर्ग। एक ही जाति के एक ही वर्ण के, एक ही आयु के समूह का निर्माण लोगों की आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता है।अत: समूह का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है।

19.5.1 बोगार्डस का वर्गीकरण (Classification of Groups by Bogards)

जाने माने समाज मनोवैज्ञानिक बोगार्डस ने समूह को निम्नलिखित छ: मुख्य वर्गों में वर्गीकृत किया है-

1. औपचारिक (Formal) अनौपचारिक (Informal) तथा प्रशासनीय (Bureaucratic)
2. प्राथमिक (Primary) और द्वितीयक (Secondary)
3. अनैच्छिक (Involantary) तथा ऐच्छिक (Vclantary)
4. वंशगत (Genetic) व समूहीकृत (Congregate)
5. अतिक्रमणकारी (Overlapping) तथा विभाजनकारी (Disjunctive)
6. सामाजिक (Social) तथा असामाजिक (Antisocial)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

19.5.2 कूर्ले का वर्गीकरण

कूर्ले ने समूह को दो प्रमुख भागों में बांटा है-

19.5.2.1 प्राथमिक समूह (Primary Group) -

इस प्रकार के समूह में समूह के सदस्यों की अन्तक्रियाएं आमने-सामने की होती है। इस प्रकार के समूह के सदस्यों में सम्बन्ध घनिष्ट होते हैं। इस समूह के सदस्य सहयोग बनाए रखते हैं। इस प्रकार के समूहों में प्राय: परिवार का समूह, खिलाड़ियों का समूह, विद्यार्थियों का समूह, प्रबन्धकों का समूह, चिकित्सकों का समूह, वैज्ञानिकों का समूह आदि होते है।

19.5.2.2 द्वितीयक समूह (Secondary Group)

इस प्रकार के समूह के सदस्यों में सम्बन्ध प्राय: घनिष्ठ नहीं होते है तथा व्यक्तिगत एवं अन्य सम्बन्ध भी इनमें नहीं पाये जाते। इस प्रकार के समूह में प्राय: राजनैतिक दलों के समूह तथा अस्थायी रूप से कार्य करने वाले मजदूरों का समूह इत्यादि होते हैं। समनर ने इन समूहों को दो भागों में बांटा है-

अ. अन्त: समूह (In Group)- इस प्रकार के समूहों के सदस्यों में समान उद्देश्य होते हैं। इनमें हित और स्वार्थ भी समान व सामान्य होते है। इनमें हम भावना (We-feeling) भी होती है। इस समूह के सदस्य अपने समूह वालों को अपना और दूसरे समूह वालो को पराया समझते हैं। इस प्रकार के समूह में प्राय: धर्म का समूह, जाति समूह, परिवार के समूह इत्यादि पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त आर्थिक स्वार्थ की पूर्ति वालों का समूह एवं जातीय आधार पर समूह भी विशेष हैं।

ब. बाह्य समूह (Outer Group)-इस प्रकार के समूह के सदस्य कुछ कट्टरवादिता लिए हुए होते हैं और अपने समूह के सदस्यों के अतिरिक्त सभी सदस्यों को बाहर का सदस्य एवं विरोधी सदस्य मानते है। जैसे-मुसलमानों के लिए सभी गैर-मुस्लिम बाह्य समूह है और जो लोग इस्लाम को नहीं मानते या उसकी निन्दा करते हैं तो उनके लिए वे 'काफिर' हैं। उग्रवादी सदस्यों के समूह इसी वर्ग में आते हैं।

आगे हम सामूहिक जीवन की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कर रहे है।

19.6 सामूहिक जीवन की कुछ विशेषताएं

किसी भी समूह के सदस्यों को कुछ विशेषताएं, उस समय के गुण या समूह की विशेषताएं बन जाती हैं। जब व्यक्ति किसी विशेष समूह से जुड़ जाता है या उसका सदस्य बन जाता है तो उसको उस समूह के नियमों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। अर्थात् उसक जीवन के कुछ कार्य समूह के नियमों के अनुसार होने लगते हैं और वह सदस्य का सामूहिक जीवन बन जाता है। सामूहिक जीवन की कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. समूह के सदस्यों में आपसी एवं परस्पर सम्बन्ध होते हैं।
2. समूह के सदस्यों में एकता की भावना होती है।
3. समूह के सदस्यों में परस्पर सहयोग की भावना होती है।
4. समूह के सदस्यों के व्यवहारों में समानता पायी जाती है।
5. समूह के सदस्यों में उद्देश्य, स्वार्थ, मूल एवं आदर्शों की एकरूपता या समानता होती है।
6. समूह के सदस्यों की क्रियाओं पर समूह का नियंत्रण रहता है।
7. समूह के सदस्यों में पारस्परिक कर्त्तव्यों का भाव होता है।
8. समूह के सदस्यों में किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पारस्परिक आशाएं रहती हैं।

19.7 समूह की क्रियाप्रणाली

किसी भी स्वस्थ समूह के लिए उसकी क्रियाप्रणाली का स्वस्थ होना अति आवश्यक है। जैसा कि हमने पूर्व में लिखा है कि किसी भी समूह का एक निश्चित उद्देश्य होता है। उसके सदस्यों के हित सामान्य एवं समान होते हैं। किसी कार्य की उद्देश्य प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि समूह की क्रियाप्रणाली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सही ढंग से संचालित हो। समूह की क्रियाप्रणाली का सही संचालन करने के लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है-

1. स्वस्थ समूह के लिए सदस्यों का उद्देश्य सामान्य, समान और सटीक होना चाहिए।
2. किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उपयोग होने वाले साधन सही और कारगर होने चाहिए।
3. समूह के सभी सदस्यों को सामान्य स्वीकृति या सामान्य पहचान मिलनी चाहिए।
4. समूह के सदस्यों को यह ज्ञान होना चाहिए कि वह उस समूह का महत्त्वपूर्ण सदस्य है।
5. समूह के सदस्यों में समूह के विकास के लिए योग्यताएं होनी चाहिए।
6. समूह की स्थिरता एवं अखण्डता को बनाए रखने के लिए समूह के सदस्यों को, समूह के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाते हुए कार्य करना चाहिए।
7. समूह के सदस्यों के बीच में प्रेम, स्नेह एवं त्याग की भावना होनी चाहिए।
8. समूह के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए समूह के हित को सर्वोपरि मानना चाहिए।

19.8 प्रश्नावली

1. समूह क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. समूह के आदर्शों को समझाइए।
3. समूह-मन क्या है? समझाइए।
4. बोगार्डस द्वारा समूह का वर्गीकरण कीजिए।
5. प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह को समझाइए।
6. समूह की क्रियाप्रणाली समझाइए।

19.9 संदर्भ पुस्तकें

1. आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान-रामबाबू गुप्त, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा।
2. समाज मनोविज्ञान के मूल तत्त्व-बी कुप्पूस्वामी, विकास पब्लिशिंग हाऊस (प्रा.लि.) अंसारी रोड, दिल्ली।
3. समाज मनोविज्ञान-डा. राजेन्द्र कुमार शर्मा एवं डा. रचना शर्मा, एटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, अंसारी रोड, नई दिल्ली।
4. The Personal Management : Mullign J. (Hand Book)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–20 समूह गति, समूह में सहभागिता और प्रभावशीलता

संरचना

20.0 प्रस्तावना
20.1 उद्देश्य
20.2 समूह–गतिकी
20.3 समूह सहभागिता
20.4 समूह के साथ कार्य एवं समूह का बोध
20.5 समूह का निर्माण
20.5.1 समूह निर्माण का महत्व
20.6 समूह प्रभावकारिता
20.6.1 समूह की रचना
20.6.2 नेतृत्व की शैली
20.7 प्रश्नावली
20.7 संदर्भ ग्रंथ

20.0 प्रस्तावना

गत अध्याय में आपने समूह की प्रकृति एवं उसकी क्रियाप्रणाली के बारे में अध्ययन किया। इस पाठ में हम समूह गति की, समूह में सहभागिता एवं प्रभावकारिता के बारे में अध्ययन करेंगें।

20.1 उद्देश्य

1. इस पाठ का उद्देश्य समूह के समूह गतिकी के बारे में विस्तृत जानकारी देना है।
2. समूह सहभागिता क्या है? इसके बारे में भी जानकारी देना भी इस पाठ का उद्देश्य है।
3. समूह के सदस्य, समूह के साथ किस प्रकार कार्य करते है, यह ज्ञान भी आप इस अध्याय द्वारा प्राप्त करेंगे।
4. समूह का निर्माण किस प्रकार होता है और समूह के निर्माण का क्या महत्व है इसके बारे में भी संक्षेप में जानकारी प्राप्त होगी।
5. समूह प्रभावकारिता क्या है? और उसके निर्धारक क्या है? इसके बारे में भी जानकारी देना इस पाठ का उद्देश्य है।

20.2 समूह–गतिकी (Group Dynamics)

विश्व का प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। वह अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति मात्र से प्रभावित होता है और स्वयं भी दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को अपनी उपस्थिति एवं व्यवहार से प्रभावित करता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से जितना अधिक सम्बन्धित होता है उतना ही वह दूसरे व्यक्तियों से प्रभावित भी होता है। सभी व्यक्ति अपन जीवन अकेले में नहीं गुजारते। उनको किसी-न-किसी अन्य व्यक्ति से सहयोग लेना पड़ता है और उनके साथ रहना पड़ता है। वह जिन व्यक्तियों के बीच रहता है और सम्बन्ध स्थापित करता है उनके साथ एक समूह का करता होता है अथवा समूह में सम्मिलित होता है। सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मिलने से बनता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको एक इकाई के रूप में अनुभव करते हैं एवं किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अन्त:क्रिया करते हैं। इन समूहों के सदस्य एक दूसरे के प्रति विश्वासपात्र हो सकते हैं, एक-दूसरे को प्रेरणा दे सकते हैं और प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं या समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक-दूसरे का सहयोग ले सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विभिन्न समूहों की प्रकृति उनके विकास के नियमों एवं व्यक्ति के परस्पर सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त करना ही समूह-गतिकी है।

समूह-गतिकी (Group dynamics) अपने आपमें एक ऐसा क्षेत्र है, जिसका अध्ययन एक विशेष उद्देश्य से किया जाता है। इसका उद्देश्य विभिन्न समूहों की प्रकृति के बारे में, उनके विकास के नियमों के बारे में तथा समूह के व्यक्तियों या सदस्यों के परस्पर सम्बन्धों और अन्य समूह के साथ उनके सम्बन्धों के बारे में जानकारी प्राप्त करना होता है। समूह गतिकी का अध्ययन प्रयोगाश्रित शोध पर आधारित होती है। मनुष्य चाहे घर में हो या बाहर, कार्यालय में हो या खेल के मैदान में कुछ सदस्यों के छोटे-छोटे समूह बन जाते हैं। कहीं पांच-दस व्यक्तियों का समूह या कहीं पन्द्रह-बीस सदस्यों के समूह के साथ व्यक्ति कार्यरत रहता है। समूह-गतिकी का उद्देश्य समूह में सम्बन्धों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक शक्तियों का अध्ययन करना है।' समूह गतिकी' के शब्द का प्रचलन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुआ। इसका समूह जीवन के सम्बन्ध में प्रयोगाश्रित अध्ययनों का कार्य तीसरे दशक के समय प्रारम्भ हुआ। इसके अन्तर्गत समूह कैसे बनते हैं और किस प्रकार कार्य करते हैं इस विषय में विचार-विमर्श आमतौर से अनुमान एवं अन्तर्दृष्टि पर आधारित होता है।

समूह-गतिकी के अध्ययन के अनतर्गत केवल समूह के गुणधर्मों अथवा समूह से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन मात्र नहीं होता अपितु समूह-गतिकी के अध्ययन द्वारा समूह जीवन एवं सामूहिक गतिविधियों के सिद्धान्तों की खोज करना भी होता है। इनमें समूह की समस्याओं का अध्ययन भी किया जाता है। जिन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है उनमें से कुछ समस्याएं समूह में होने वाले उन परिवर्तनों से सम्बन्धित होती हैं, जो तब घटित होते हैं जब समूह के सदस्यों में व्यक्तिगत रूप से कोई परिवर्तन होता है। जैसे- किसी समूह के किसी एक सदस्य ने समूह का त्याग कर दिया। इसके कारण समूह में रिक्त हुए पद पर कौन व्यक्ति उसके कार्यों का उत्तरदायित्व लेगा तथा उसके कारण समूह में क्या-क्या परिवर्तन हो सकते हैं। इसी तरह किसी विभाग या कार्यालय में नये अधिकारी की नियुक्ति पर समूह में क्या-क्या परिवर्तन हो सकते हैं। इसी तरह नया दल सत्ता में आता है तो सरकार में कौन-कौन से परिवर्तन हो सकते हैं समूह में होने वाले ऐसे कौन से परिवर्तन हैं जो उद्योग की उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। समूह की सुसम्बद्धता में परिवर्तन होने पर अर्थात् सुसम्बद्धता के घटने या बढ़ने पर समूह की क्रियाशीलता की अन्य विशेषताओं पर क्या प्रभाव पड़ सकता है आदि।

किसी समूह की समूह-गतिकी में जिन मूलभूत एवं प्रमुख समस्याओं का अध्ययन किया जाता है उनमें परिवर्तन, परिवर्तन का प्रतिरूप, समूह के सदस्यों का दबाब, समूह के बाहरी वातावरण का दबाब, समूह के आन्तरिक घटकों का दबाव तथा समूह की संरचना आदि से संबंधित समस्याएं प्रमुख हैं। इन समस्याओं का सम्बन्ध समूह के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक शक्तियों से है जो समूह को प्रभावित करती है। इन अध्ययनों की व्यावहारिक उपयोगिता काफी महत्त्वपूर्ण है। हर कोई सदस्य समूह की क्रियाशीलता को अधिक से अधिक बढ़ाना और समूह के सदस्यों को संतुष्टि प्रदान करना चाहता है। इसके लिए बहुत से व्यावसायिक व्यक्ति इस विषय में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते हैं तथा श्रमिक प्रबन्धक सम्बन्ध, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, विवाह विषयक परामर्श, सामाजिक समूह-कार्य आदि के विशेषज्ञ बन जाते हैं।

कुर्ट लेविन (1890-1947) ने सर्वप्रथम समूह-गतिकी का आरम्भ किया। उन्होंने इस शब्द को प्रचलित किया। इसके शोध व सिद्धान्त के क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। लेविन और उनके सहयोगियों ने कुछ महत्त्वपूर्ण अध्ययन किए। लेविन व उनके सहयोगियों ने (1947) में यह ज्ञान करने के लिए कि सामूहिक निर्णय का अभिवृत्ति के परिवर्तन पर क्या प्रभाव पड़ता है इस विषय पर अध्ययनों का क्रम प्रारम्भ किया और यह निष्कर्ष निकाला कि सामूहिक दबाव से अभिवृत्ति के परिवर्तन और समर्थन में काफी सहायता प्राप्त होती है।

लेपिट और ह्वाइट (1943) ने समूह-गतिकी के अध्ययन के लिए बच्चों की कुछ क्लबों से ज्ञात करने का प्रयास किया कि विभिन्न प्रकार के सामाजिक वातावरण का समूह जीवन और व्यक्तिगत व्यवहार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)/Ladnun

पर क्या प्रभाव पड़ता है। उन्होंने अपने प्रयोग में तीन प्रकार के सामाजिक वातावरण उत्पन्न किए। 1. लोकतांत्रिक (Democratic) 2. सत्तावादी (Autharidtarian) और 3. स्वतंत्रतावादी (Laissezfaire)। इन समूह में सत्तावादी समूह में नीति सम्बन्धी सारे निर्णय नेता द्वारा होते हैं। समूह में कार्य के लिए जो कदम उठाये जाने थे उनका आदेश नेता द्वारा इस प्रकार के टुकड़ों में दिया जाता था कि अगले कदमों के बारे में समूहों में अनिश्चितता की स्थिति बनी रहती थी। कार्य और कार्य करने के लिए साथियों के बारे में नेता ही निर्णय लेता था। नेता ही प्रत्येक सदस्य के कार्य का मूल्यांकन करता था और कार्यकर्त्ताओं की प्रशंसा एवं आलोचना में व्यक्तिगत रवैया ही अपनाता था और वह सक्रिय सामूहिक कार्यों से बिलकुल अलग रहता था। लोकतांत्रिक समूह के नेता ने अपने समूह नीतिनिर्धारण का काम सामूहिक विचार-विमर्श और सामूहिक निर्णय पर छोड़ देता था। कार्य के विभिन्न स्तरों के बारे में समूह स्वयं तय करता था और सदस्यों को अपने साथियों का चुनाव करने की स्वतंत्रता थी। इस समूह में नेता प्रशंसा और आलोचना में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाता था और भावानात्मक रूप से वह समूह के एक सामान्य सदस्य के रूप में सक्रिय रहने का प्रयास करता था। स्वतंत्रतावादी समूह में सभी सदस्यों को कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता थी तथा नेता कम से कम भाग लेता था। वह सिर्फ साधन उपलब्ध कराता था और आवश्यकता होने पर कोई सूचना सदस्य को प्रदान कर देता था। कार्य का मूल्यांकन करने या उन्हें व्यवस्थित करने का उनकी ओर से कोई प्रयास नहीं होता था। इस प्रयोग में नेताओं को प्रति छः सप्ताह बाद एक समूह से दूसरे समूह में बदल दिया जाता था और प्रत्येक नेता उस समूह के वातावरण के अनुसार अपने नेतृत्व की शैली को बदल लेता था। सभी समूह एक स्थान पर इकट्ठे होते थे और समान वस्तुओं के साथ समान प्रकार की गतिविधियों में भाग लेते थे।

इस प्रयोग के परिणामों से स्पष्ट हुआ कि स्वतंत्रतावादी समूह, लोकतांत्रिक समूह की अपेक्षा कम सुगठित, कम योग्य और निश्चित रूप से कम संतुष्ट था। वहीं दूसरी ओर सत्तावादी समूह की अपेक्षा लोकतांत्रिक समूह कहीं अधिक योग्य था। लोकतांत्रिक समूह के सदस्यों ने सामाजिक लक्ष्यों और कार्य सम्बन्धी लक्ष्यों, दोनों की प्राप्ति की, जबकि सत्तावादी समूह यदि किसी प्रकार की प्राप्ति कर पाया तो वह थी केवल सामाजिक लक्ष्यों की। इस प्रयोग के द्वारा एक अन्य बात यह भी सिद्ध हुई कि सत्तावादिता समूह के सदस्यों में काफी मात्रा में विद्वेष और आक्रामकता को उत्पन्न हुई। इससे असन्तोष भी उत्पन्न हुआ तथा इसमें पराश्रितता भी अधिक होती गई है। वहीं दूसरी ओर लोकतांत्रिक वातावरण में सामूहिकता की भावना एवं मैत्रीत्व की भावना प्रचुरता से बढ़ी।

समूह-गतिकी की कुछ आधारभूत मान्यताएं हैं। कार्ट राइट और जान्ड (1968) के मतानुसार समूह-गतिकी की अधिकांश विशेषज्ञों की आधार मान्यताएं निम्न हैं-

1. समूह अपरिहार्य है। यहाँ तक कि अत्यंत उग्र व्यक्तिवादी भी अपने निजी आदर्शों के अनुरूप अपने समूहों को संगठित करते हैं।
2. समूह ऐसी बलवान शक्तियों को संचालित कर सकते हैं जो व्यक्तियों पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। समूह के किसी व्यक्ति की निजत्व की भावना उस समूह द्वारा रूपायित होती है। जिसके साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और समूह की उसकी आकांक्षाओं और उसके आत्माभिमान को निर्धारित करता है।
3. समूह अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के परिणामों के कारण होते हैं जो समूहों के लिए और समूहों के व्यक्तिगत सदस्यों के लिए विध्वंसात्मक एवं रचनात्मक दोनों प्रकार के हो सकते हैं।
4. समूह के प्रयोगाश्रित अध्ययनों के आधार पर समूह-गतिकी की ठीक-ठीक समझ से ही समूह जीवन के रचनात्मक पहलुओं को बल पहुंचाने का प्रयास सम्भव है।

ब्राडरिक (1956) ने समूह गतिशीलता से सम्बन्धित निम्न तीन परिवर्त्य बताए हैं-

1. समूह की व्यवस्था की प्रकृति।
2. प्रबन्धन का अंश।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. क्षेत्रीय प्रबन्धन की महत्ता।

4. प्रबन्धन क्षेत्रों की संख्याएं और उनका विस्तार।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि समूह में उन व्यक्तियों को सहयोगी के रूप में या सदस्यों के रूप में चुना जाता है जो समूह के वर्तमान अभिवृत्तियों के साथ अनुरूपता रखते हैं। जब कभी किसी समूह के सदस्यों के अन्तरवैंतीय सम्बन्ध जब अधिक घनात्मक और आकर्षक हो जाते है तो ऐसे समूह प्राय: अधिक स्थायी होते है। समूह गतिशीलता समूह के सदस्यों के व्यवहारों और कार्यो को प्रभावित करती है।

समूह गतिशीलता के बारे में ब्रेडन (1972) ने लिखा है, "According to internal and external conditions the group is either an instrument for misure to gratify individual for social demands or else an admirable means to develop and maintain mature individual in beneficial interaction with society. Group dynamics is the essence of all problem solving interaction processes which are developed by individual conscious of relatively stable structures i.e. Norms, roles, attitudes, habits and relatively changing forces (e.g. identified goals, cooperative actions, realization of drives and motives which may be subjective or standardized by society, the goal is to active continuous integrative development and the differentiation of social relationship.

20.3 समूह सहभागिता (Group Participation)

किसी भी समूह के सदस्य जब समूह में भाग लेते हैं तो उनको विभिन्न प्रकार के कार्यो को एवं उद्देश्यों को पूर्ण करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति जो समूह का सदस्य है उसको समूह के उद्देश्यों एवं कार्यो को पूर्ण करने के लिए बराबर सहभागिता निभानी पड़ती है। समूह के सदस्य को प्राय: इस प्रकार से कार्य करना पड़ता है, जिससे कि उसका आदर्श बना रहे, साथ ही समूह का आदर्श भी बना रहे और समूह के वांछित कार्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति भी हो जाए। समूह के साथ सहभागिता निभाने के लिए भी कुछ कौशल चाहिए। इसके लिए निम्न बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

1. समूह में अपनी भूमिका को निश्चित करें तथा उसका अर्थ निरूपित करें, ग्रहण करें तथा परिमार्जित करें अर्थात् सदस्य में समूह में अपनी भूमिका सुनिश्चित करने उसके अर्थ निरूपित करने तथा परिमार्जित करने की कुशलता होनी चाहिए।
2. समूह का सदस्य, समूह के अन्य सदस्यों में सहभागिता विकसित करने में कुशल होना चाहिए।
3. नेतृत्व का चयन करने और अपनी क्रियाओं के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व स्वीकार करने में सहयोगी होना चाहिए।
4. सहभागिता के समय समूह के सदस्यों को अपने विचारों, कार्यो के उद्देश्यों, निकटतम् लक्ष्यों का स्पष्टीकरण करना चाहिए।
5. समूह के सदस्यों को अपनी सीमाओं और क्षमताओं को समझना चाहिए।
6. समूह के विकास की क्षमता व रूचि को निर्धारित करने की कुशलता होनी चाहिए।
7. समूह के सदस्य में, समूह के प्रति अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने तथा अपनी भावना को नम्रता के साथ प्रस्तुत करने की निपुणता होनी चाहिए।
8. समूह की प्रत्येक नवीन परिस्थिति का अध्ययन करने में निपुणता होनी चाहिए।
9. समूह के कार्यकर्त्ताओं में समूह को अपनी नकारात्मक व सकारात्मक भावनाओं को व्यक्त करने में सहायता देने की कुशलता होनी चाहिए।
10. समूह कार्यकर्त्ता में सामूहिक या अन्तर्सामूहिक संधर्षों की स्थिति का विश्लेषण करने में समूह की सहायता करने की निपुणता होनी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11. समूह कार्यकर्ता में सामूहिक चिन्तन को ठीक ढंग से निर्देशित करने की कला होनी चाहिए जिसे अभिरूचियां एवं आवश्यकताएं प्रकट हो सके एवं उन्हें समझा जा सके।
12. ऐसे कार्यक्रमों को विकसित करने की कुशलता होनी चाहिए जिनके माध्यम से समूह अपनी आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति कर सके।
13. समूह के ऐसे सदस्यों को जिनकी आवश्यकताओं की पूर्ति, समूह में सम्भव नहीं हो सकती, विशेष सेवा प्राप्ति के लिए संदर्भित करने की कुशलता होनी चाहिए।
14. लक्ष्य प्राप्ति के लिए उपयोग में आने वाले साधनों का ज्ञान एवं उनकी जानकारी समूह के सदस्यों को देने में कुशल होना चाहिए।
15. समूह के कार्यों की विकासात्मक प्रक्रिया का विश्लेषण व अभिलेखन करने की कुशलता होनी चाहिए।
16. समूह द्वारा स्वीकृति प्राप्त करने तथा सकारात्मक व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करने की कुशलता होनी चाहिए।
17. समूह के सदस्यों में उद्देश्य प्राप्ति करने एवं एक-दूसरे सदस्यों को स्वीकार करने के लिए सहायता देने की कुशलता होनी चाहिए।

20.4 समूह के साथ कार्य एवं समूह का बोध (Understanding and Working with the Group)

समूह का सदस्य या कार्यकर्त्ता समूह के साथ कार्य करता है एवं उसे लक्ष्य प्राप्ति करनी होती है, अत: सदस्य को समूह की प्रक्रिया उसके स्वरूप एवं समूह के अंगों का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है। समूह में 2 या 2 से अधिक सदस्य होते हैं जिनमें परस्पर क्रियाएं या अन्त:क्रियाएं एवं सम्बन्ध होते हैं जो प्रत्येक समूह के आवश्यक अंग होते हैं। समूह का कोई भी सदस्य समूह को ठीक प्रकार से तभी समझ सकता है जब उसे इन अंगों का ज्ञान हो।

चूंकि व्यक्ति जन्मजात ही एक सामाजिक प्राणी है एवं अन्य व्यक्तियों के साथ रहना उसकी प्रकृति है अत: इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह समूह का सदस्य बनता है। समूह में रह कर ही हर स्थिति, अवस्था व आयु का व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभवों को प्राप्त करता है तथा वह अपने उद्देश्यों एवं अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। किसी भी समूह के साथ जुड़ने या उसकी सदस्यता प्राप्त करने के कई कारण है। व्यक्ति किसी समूह के साथ जुड़कर अपनी आवश्यकता के अनुसार कार्य को करता है। इसके कुछ निम्नलिखित प्रमुख कारण भी हैं-

1. व्यक्ति अपनी मानवीय प्रकृति एवं स्वभाव के कारण ही दूसरे लोगों के साथ रहकर या अन्य लोगों के साथ रहकर सामाजिक जीवन जीने की आवश्यकता महसूस करता है इसीलिए वह किसी समूह का सदस्य बनता है।
2. सुरक्षा एवं पारिवारिक जीवन के लिए भी व्यक्ति समूह का सदस्य बनता है।
3. व्यक्ति अपनी हर प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति करना चाहता है परन्तु ऐसा वह अकेला नहीं कर सकता। इसके लिए उसको अन्य लोगों से सहयोग एवं सहायता लेनी पड़ती है इसलिए वह किसी समूह के साथ जुड़ जाता है व इच्छाओं की पूर्ति करता है।
4. हर व्यक्ति अपने जीवन का विकास चाहता है। इसके लिए उसको अपनी कुछ कुशलताओं को तराशना पड़ता है परन्तु ऐसा वह स्वयं अकेला नहीं कर सकता। इसके लिए उसको कुछ सम्बन्धित व्यक्तियों की सहायता की अपेक्षा होती है जिसको प्राप्त करने के लिए वह किसी समूह से जुड़ जाता है या उसका सदस्य बन जाता है। हम देखते हैं कि कई लोग अपने उद्देश्य की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्राप्ति के लिए अपने कौशल का विकास करना चाहते हैं और इसके लिए ऐसे समूह से जुड़ जाते हैं जो उनके कौशल को विकसित कर सकें। इन कुशलताओं का विकास होने पर इनका समुचित प्रयोग करके व्यक्ति अपना उद्देश्य पूर्ण करता हैं।

5. व्यक्ति समूह में इसलिए बना रहना चाहता है ताकि उसे अन्य सदस्यों के बीच स्वीकृति मिल पाए और इसके लिए वह कुछ उत्तरदायित्व भी निभाता हैं।
6. हर व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि वह अपना विकास करे व अधिक से अधिक प्रभावशाली बनें। उसे समाज में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो सके इसके लिए वह किसी समूह का सदस्य बन जाता है।
7. कई बार व्यक्ति अभिभावकीय नियंत्रण से मुक्त होने तथा अपने ज्ञान की वृद्धि करने के लिए भी समूह का सदस्य बनता हैं।
8. व्यक्ति अपने व्यक्तित्व विकास के लिए तथा अपने माता-पिता के नियंत्रण से मुक्ति पाने के लिए अन्य सदस्यों की सहायता चाहते हैं और वे इस सहायता को प्राप्त करने के लिए किसी समूह के सदस्य बन जाते हैं।
9. व्यक्ति एक सहभागी के रूप में किसी समुदाय का अंग बनने के लिए किसी समूह का सदस्य बनता है।
10. अपनी अभिरूचियों पूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भी समूह का सदस्य बनता है।
11. मनुष्य का मानवीय स्वभाव है कि वह प्रसन्नता, मनोरंजन, विश्रान्ति एवं अपनी अभिरुचियों के अनुरूप आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करें। इन आवश्यकताओं की पूर्ति किसी समूह के माध्यम से ही पूर्ण हो सकती है मनुष्य किसी समूह का सदस्य बनता है।

बोध प्रश्न :

---

1. समूह-गतिकी से आप क्या समझते हैं?

2. सहभागिता पर टिप्पणी लिखें।

20.5 समूह का निर्माण (Formation of Group)

समूह के निर्माण के लिए कुछ विशेष घटक कार्य करते हैं। इनका निर्माण कुछ विशिष्ट व्यक्ति ही निम्न तीन शक्तियों के कारण करते हैं-

1. व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छाशक्ति से प्रेरित होकर
2. सामाजिकता की इच्छाशक्ति से प्रेरित होकर
3. समुदाय की इच्छाशक्ति से प्रेरित होकर

1. ये इच्छाशक्तियां स्वप्रेरित तथ उभयप्रेरित दोनों ही रूपों में पायी जाती हैं। समूह के निर्माण में कुछ प्रारम्भिक कार्य करने होते हैं और उनमें निम्न चार कार्यों का होना अनिवार्य होता है। निर्माणकर्त्ता के स्वयं के आन्तरिक या बाह्य प्रेरणा पर मनोशारीरिक योग एकत्रित होना।
2. एक सर्वमान्य अथवा अत्यधिक मान्यनियम का विकास करके एक सूत्र में सदस्यों का बंधना या बंध जाना।
3. यह निश्चित करना कि भविष्य में किन-किन सदस्यों को या कौन-कौन से व्यक्तियों को समूह में सम्मिलित किया सकेगा।
4. समूह का स्वरूप क्या होगा यह निर्धारित करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

20.5.1 समूह निर्माण का महत्त्व

1. समूह के माध्यम से समूह के सदस्यों के व्यक्तित्व विकास में वृद्धि होती है।
2. योजनबद्ध रूप से किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु समूह लाभप्रद रहता है एवं उपयोगी होता है।
3. समूह के सदस्य, समूह के निर्माण के माध्यम से अपनी सेवाओं का विस्तार कर सकते हैं तथा उनको अधिकाधिक लाभप्रद बनाते हैं।
4. समूह में विशिष्ट एवं वैयक्तिक भिन्नता की सम्भावना अधिक होने के कारण समूह के सदस्यों के लिए लाभान्वित होने की संभावनाएं अधिक होती हैं।

20.6 समूह प्रभावकारिता (Group Effectiveness)

जैसाकि हमने पूर्व में लिखा है कि व्यक्ति विभिन्न कारणों से समूह से जुड़ते हैं या सम्मिलित होते हैं इसके अतिरिक्त किसी एक समूह के विभिन्न सदस्य अपनी सदस्यता के माध्यम से विभिन्न आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते हैं और प्राप्ति करते हैं। समूह प्रभावकारिता का तात्पर्य यह है कि समूह कितना प्रभावशाली ढंग से कार्य करता है और उसके सदस्य कितने प्रभावशाली ढंग से उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। समूह के सदस्यों को समूह से कितनी संतुष्टि होती है यह सभी समूह प्रभावकारिता के अन्तर्गत ही है। समूह प्रभावकारिता केवल सदस्य संतुष्टि भी हो सकती है या समूह द्वारा किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति भी हो सकती है। किसी उद्योग या व्यावसायिक संगठन, किसी कार्यरत अथवा किसी अन्य क्षेत्र में सामूहिक उत्पादकता की मात्रा पर भी समूह प्रभावकारिता हो सकती है।

क्रेच और उनके सहयोगियों (1962) ने समूह प्रभावकारिता के निर्धारकों के दो स्तर बताएं हैं-

20.6.1 समूह की रचना (Structure of Group)

इस निर्धारक के अन्तर्गत यह अपरिवेश आता है, जिसमें समूह कार्य करता है। इसके अतिरिक्त कार्य सम्बन्धी, परिवर्त्य जैसे निर्धारक होते हैं। समूह की रचना में समूह का आकार, समूह और समूह के सदस्यों का लक्ष्य आदि भी होते हैं।

20.6.2 नेतृत्व की शैली (Style of Leadership)

इस निर्धारक के अन्तर्गत सदस्यों की सहभागिता, सदस्यों को अनुप्रेरणा, सदस्यों का मनोबल आदि समान मध्यवर्ती परिवर्त्य होते हैं। इसी प्रकार समूह का उत्पादन जैसे कितना माल तैया हुआ, किस प्रकार का माल तैयार हुआ अर्थात् मात्रा व गुणवत्ता दोनों आदि आश्रित परिवर्त्य (Dependent Variables) होते हैं। समूह की संरचना आदि जैसे स्वतंत्र परिवर्त्यों (Independent variables) एवं नेतृत्व की शैली आदि आश्रित परिवर्त्य जैसे उत्पादन आदि को प्रभावित करते हैं।

प्राय: कम सदस्यों वाले समूह ज्यादा सदस्यों वाले समूहों (बड़े समूहों) की अपेक्षा अधिक सुसम्बद्ध होते हैं।कुछ उद्योगों (Industries) के कार्य समूह की सुसम्बद्धता के अध्ययनों से यह पता चला है कि पांच से बीस सदस्यों की संख्या वाले छोटे कार्य समूह, बड़े कार्य समूह की अपेक्षा अधिक सुसम्बद्ध होते हैं।इन अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि समूह सुसम्बद्धता के निम्न स्तर के साथ अनुपस्थिति का भी सम्बन्ध होता है। अर्थात् यदि सदस्यों की अनुपस्थिति अधिक है तो समूह सुसम्बद्धता निम्न स्तर की हो जायेगी जो कि एक असंतोष का लक्षण है। कुछ अन्य अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि समूह का आकार बढ़ने से सदस्यों के सामूहिक विचार-विमर्श में भी आती है। इससे श्रमिक संतोष व कार्यकुशलता दोनों में ही भी आने लगती है।

समूह के सदस्यों की व्यक्तिगत विशेषताओं के सम्बन्ध में यह ज्ञात हुआ है कि सदस्यों की कुशलता, अन्तर्दृष्टि एवं सहयोगशीलता का सम्बन्ध, समूह की सुगम और उत्पादक क्रियाशीलता के साथ होता है। दूसरी ओर एकाधिकार वादित एवं आक्रमकता आदि व्यवहार के कारण समूह-सुसम्बद्धता और समूह के सदस्यों के मैत्री भाव में कभी आती है। इससे समूह के सदस्यों का मनोबल गिर जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यह भी देखा गया है कि किसी समूह के सदस्यों के बीच व्यक्तिगत विशेषताओं की एवं कार्यकुशलताओं की सदृशता से सदस्यों की संतुष्टि को एवं मनोबल को बढ़ावा मिलता है। समूह के संगठन और उसकी प्रभावशीलता का एक और महत्त्वपूर्ण कारक है, वह है सदस्यों के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों में अनुरूपता का होना। कुछ अध्ययनों से यह पता चला है कि अनुरूप समूह अननुरूप समूह की अपेक्षा अच्छा कार्य करते हैं और इनके सदस्यों में अच्छा तालमेल रहता है। अननुरूप समूह में अन्तर्वैयक्तिक समस्याओं पर शक्ति, समय दोनों का अधिक अपव्यय होता है।

समूह की प्रभावशीलता का एक प्रमुख कारक नेतृत्व की शैली भी है। समूह के कार्य को सम्पादन करने एवं कार्य के निष्पादन को सुनिश्चित करने में समूह का नेता एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक प्रभावकारी समूह के लिए नेता भी प्रभावकारी होना आवश्यक है। प्रभावकारी नेता, सदस्यों को अभिप्रेरणाएं देकर, संतोषप्रद विचार-विमर्श करके, सदस्यों को उत्साहित करने में एक अच्छी भूमिका निभा सकता है। लोकतांत्रिक समूहों के लिए सहभागी नेतृत्व ;च्तजपबपचंजवतल स्मंकमतेीपचद्ध को बहुत अच्छा माना गया है। इस प्रकार का नेता सदस्यों को किसी निर्णय पर पहुंचने की पूर्ण स्वतंत्रता देता है, साथ ही महत्त्वपूर्ण बातों का सुझाव देते हुए वह इसमें सक्रिय भूमिका भी निभाता है। किसी समूह के सदस्यों की कार्यसंतुष्टि तथा समूह की उत्पादनशीलता पर नेता की कार्यशैली का बहुत प्रभाव पड़ता है।

किसी भी समूह की प्रभावकारिता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए काम करने की सदस्यों की कितनी इच्छा है? उनका मनोबल कैसा है? यदि किसी समूह के सदस्यों में कार्य सम्बन्धी अभिप्रेरणा ;ड्ढ उवजपअंजपवदद्ध कम होता है तो उत्पादन भी कम होता है। समूह की सहयोगशीलता का वातावरण और समूह की निर्णयप्रणाली समूह की प्रभावकारिता को प्रभावित करती है।

20.7 प्रश्नावली

1. समूह-गतिकी क्या है? समझाइए।
2. समूह-सहभागिता के बारे में आप क्या समझते हैं?
3. समूह का निर्माण किस प्रकार सम्भव है? स्पष्ट करें।
4. समूह प्रभावकारिता के कारकों का वर्णन करें।

20.8 संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान-रामबाबू गुप्त, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा।
2. समाज मनोविज्ञान के मूल तत्त्व-बी कुप्पूस्वामी, विकास पब्लिशिंग हाऊस (प्रा.लि.), अंसारी रोड, दिल्ली।
3. समाज मनोविज्ञान-डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा एवं डॉ. रचना शर्मा, एटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, अंसारी रोड, नई दिल्ली।
4. The Personal Management : Mullign J. (Hand Book)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ-341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

णाणस्स सारमायारो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एम.ए./एम.एस-सी. (उत्तरार्द्ध)

विषय-योग एवं जीवन विज्ञान

षष्ठ पत्र : स्व-प्रबन्धन में जीवन विज्ञान

संवर्ग

संवर्ग-1 स्व-प्रबन्धन की प्रस्तावना एवं जीवन विज्ञान वृत्ति विकास

संवर्ग-2 क्षमताओं का विकास

संवर्ग-3 स्व-प्रबंधन एवं तनाव प्रबन्धन

संवर्ग-4 अभिव्यक्ति कौशल एवं जीवन विज्ञान (अनेकान्त)

संवर्ग-5 सहयोगी तंत्र एवं समूह-प्रबन्धन

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. संग्रामसिंह नाथावत**
   आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   एमिटी विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

2. **प्रो. ए.के. मलिक**
   पूर्व आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

3. **प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा**
   प्रो. एवं डीन, स्कूल ऑफ लाईफ साईंस,
   गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर

4. **डॉ. साधना दौनेरिया**
   सविभागाध्यक्ष, योग विभाग
   बरकत्तुल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

5. **प्रो. समणी मल्लीप्रज्ञा**
   आचार्या,
   जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूँ (राज.)

6. **डॉ. बी.पी. गौड़**
   पूर्व सहआचार्य,
   जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूँ (राज.)

लेखक

मुनि धर्मेश, डॉ. बी.पी. गौड

संपादक

प्रो. ए.के. मलिक, जोधपुर

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 900

प्रकाशक

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुक्रमणिका

क्र.सं	पाठ का नाम	पृष्ठ सं.
संवर्ग–1	**स्व–प्रबन्धन की प्रस्तावना एवं जीवन विज्ञान वृत्ति विकास**	
1.	स्व–प्रबन्धन की अवधारणा, स्व–प्रबन्धन का आधार, अर्थ, प्रकृति एवं आवश्यकता	1–16
2.	स्व–प्रबन्धन से जुड़े विभिन्न आयामों का अध्ययन	17–36
3.	आत्म–विश्वास एवं अभिवृद्धि के उपाय	37–56
4.	जीवन वृत्ति विकास:लक्ष्य निर्धारण और प्राप्ति (आधार, प्रक्रिया, कार्य योजना औरजीवन विज्ञान)	57–83
संवर्ग–2	**क्षमताओं का विकास**	
5.	इच्छा शक्ति (संकल्प शक्ति) और कल्पना शक्ति का विकास तथा प्रेक्षाध्यान	84–99
6.	चिंतन का विकास और संवेगों का नियंत्रण एवं प्रेक्षाध्यान	100–114
7.	इन्द्रिय क्षमता और अन्तर्दृष्टि के विकास में प्रेक्षाध्यान	115–128
8.	स्मृति क्षमता का विकास एवं लेश्याध्यान	129–139
संवर्ग–3	**स्व–प्रबंधन एवं तनाव प्रबन्धन**	
9.	आवश्यकताओं एवं आंतरिक जगत् का प्रबन्धन, स्वास्थ्य एवं शक्ति का संरक्षण	140–148
10.	समय प्रबन्धन एवं जीवन विज्ञान की विभिन्न अवस्थाएं, समस्या, निर्णय एवं योजना	149–161
11.	दबाव या तनाव का स्वरूप, कारक तत्त्व एवं प्रभाव	162–176
12.	तनाव प्रबन्धन एवं जीवन विज्ञान	177–187
संवर्ग–4	**अभिव्यक्ति कौशल एवं जीवन विज्ञान (अनेकान्त)**	
13.	अभिव्यक्ति का महत्त्व, कारक तत्त्व एवं अनेकान्त	188–209
14.	अभिव्यक्ति की दक्षता और बाधाएं, श्रवण कला और शारीरिक अभिव्यक्ति, अध्ययन क्षमता और जन–समूह में अभिव्यक्ति (वक्तृत्व कला या भाषण कला का विकास)	210–228
15.	निर्णय और क्रियान्विति, दिशा निर्धारण	229–242
16.	साथियों को अभिप्रेरणा एवं कार्य निष्पत्ति	243–260
संवर्ग–5	**सहयोगी तंत्र एवं समूह–प्रबन्धन**	
17.	सहयोग प्रकृति एवं उसके प्रति भाव, सहयोगात्मक सम्बन्ध	261–270
18.	सहयोगी समूह, स्व–सहयोग एवं सहयोग के अवसर	271–277
19.	समूह की प्रकृति और उसकी क्रिया प्रणाली	278–285
20.	समूह गति, समूह में सहभागिता और प्रभावशीलता	286–293

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun